

बाल्यम् 111-112

श्री हर्षदेव नाट्य विशेषांक



सुधासु नानादा रक्षित्वा जगु

स्वहस्तो मम महाराजाधिराज-श्रीहर्षस्य

नाट्यम्

111-112

(अक्टूबर 2024-मार्च 2025)

श्रीहर्षदेव नाट्य-विशेषांक

ISSN : 2229-5550, UGC Care Listed Journal

संरक्षक
नीलिमा गुप्ता
कुलपति

संस्थापक
राधावल्लभ त्रिपाठी

संपादक
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

प्रबन्ध संपादक
सञ्जय कुमार

संपादक मण्डल
नौनिहाल गौतम, रामहेत गौतम
शशिकुमार सिंह, किरण आर्या

प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग
डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय) सागर, (म.प्र.)

नाट्यम् 111-112, अक्टूबर 2024-मार्च 2025

रंगमंच एवं सौन्दर्यशास्त्र की पूर्वसमीक्षित त्रैमासिक शोधपत्रिका

ISSN : 2229-5550

UGC Care Listed Journal, S.N.17

नाट्य परिषद् (पंजीकरण क्र. 100066)

संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.)

दूरभाष-फैक्स (कार्यालय) 07582-264366 पिन-470 003

Natyam : A Quarterly Journal of theatre and aesthetics

published by Natya Parisad. Deptt. of Sanskrit,

Doctor Harisingh Gour University, Sagar,

Madhya Pradesh-Pin-470 003. India.

Phone-Fax (off.): 07582-297149

सदस्यता शुल्क :

विशेषांक - 500/- रु.

प्रत्येक अंक - 200/- रु., वार्षिक - 800/- रु.

वार्षिक सदस्यता व्यक्तिगत - 2100/- रु.

पांच वर्षीय सदस्यता (संस्थागत) - 5000/- रु.

इस अंक का मूल्य - 200/- रु.

यह शुल्क ऑनलाइन मनीआर्डर, चेक या नगद दिया जा सकता है

जो भारतीय स्टेट बैंक नाट्य परिषद्, संस्कृत-विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के नाम देय होगा।

बैंक अकाउंट नं.- 10186726875

पत्रव्यवहार :

प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.) 470003

e-mail : sanskritsagar1946@gmail.com

natyamsagar@gmail.com

07582297149 Mob : +919425656284

© सर्वाधिकार सुरक्षित

आवरण चित्र - गूगल से

मुद्रण : अजय जैन, अमन प्रकाशन नमक मंडी,

कटरा, सागर (म.प्र.) मो. 9826434225

नाट्यम् में प्रकाशित नाटकों के अनुवादों/रूपान्तरों या किसी भी अन्य सामग्री की किसी भी रूप में प्रस्तुति के लिए नाट्य परिषद् से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति अथवा विचारों से नाट्य परिषद्, संपादक या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय

नाट्य परिषद् , संस्कृत विभाग, डाक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर द्वारा प्रकाशित 'नाट्यम्' शोध पत्रिका अपनी प्रकाशन-यात्रा का लगभग चार दशक पूराकर आज नये पड़ाव पर आ पहुंची है , जहां कुछ क्षण ठहरकर पीछे मुड़कर देखना हमारे लिए बहुत सुखद प्रतीत हो रहा है। इस विश्वविद्यालय के इतिहास में 'नाट्यम्' शोध पत्रिका के शताधिक अंकों का प्रकाशन कोई सामान्य घटना नहीं है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा 1982 में स्थापित यह पत्रिका निश्चय ही मील का पत्थर सिद्ध हुई है। इस पत्रिका का यूजीसी केयरलिस्टेड होना इस बात का प्रमाण है कि इसे शोध की स्तरीय पत्रिका के रूप में मान्य किया गया है। देशभर के संस्कृत विद्वानों, अध्यापकों और शोधार्थियों का रचनात्मक सहयोग हमें निरंतर मिलता रहा है। इसी बलबूते हम नाट्यम् पत्रिका के प्रकाशन - संपादन के प्रति प्रतिबद्ध बने रहे हैं।

संस्कृत के मूर्धन्य नाटककारों पर 'नाट्यम्' शोध पत्रिका के अनेक महत्वपूर्ण और बृहदाकार विशेषांक प्रकाशित हुए हैं, जिन्हें संस्कृत ही नहीं वरन् हिंदी लेखकों और शिक्षाविदों की भरपूर सराहना मिली। 'नाट्यम्' का विशाखदत्त, शूद्रक, भास, भवभूति, नारायण भट्ट, कालिदास, रामजी उपाध्याय, के नाटकों पर केंद्रित विशेषांक उल्लेखनीय हैं। नाट्यम् का नवीनतम बृहदाकार महाविशेषांक महाकवि हर्ष के नाट्य साहित्य पर केंद्रित है।

महाकवि श्रीहर्ष और उनके द्वारा विरचित रूपकों- नागानंद, रत्नावली और प्रियदर्शिका पर संस्कृत विद्वानों ने समय-समय पर विचार-विमर्श अवश्य किया है, किंतु एकाग्र रूप में श्रीहर्ष के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर विचार करने का सुअवसर 'नाट्यम्' पत्रिका के इस अंक के द्वारा ही संभव हुआ है।

श्रीहर्ष को देश दुनिया में कौन नहीं जानता है? वे संस्कृत के मूर्धन्य नाटककार होने के पहले एक महान् शासक थे। भारतीय इतिहास में उनका शासनकाल हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में पर दर्ज है। वे अपने दौर के सशक्त हिंदू राजा थे। अपने धार्मिक समन्वयवादी और उदार विचारों के लिए वे खूब जाने जाते हैं। उनके सृजनधर्मी होने पर संदेह करने वालों को विचार करना चाहिए कि उनका लेखन उनके गुणी चरित्र के अनुरूप है। भाव, भाषा और शिल्प सभी दृष्टियों से उनका कृतित्व उनके साहित्यिक संवेदनशील और कलामर्मज्ञ स्वभाव के अनूकूल है। हर्ष की रचनाएं उनकी अध्ययनशीलता का परिचायक हैं। बृहत्कथा से उनके नाटकों की कथावस्तु चयनित है। प्रेम और श्रृंगार उनके नाटकों की केंद्रीय विषयवस्तु है। प्रकृति की नाना छवियां मानवीय संवेदना से अभिप्रेरित हैं। उस जमाने के समाज और संस्कृति की झलकियां प्रभावित करती हैं। श्रीहर्ष के राजत्वकाल में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था और उसने आंखों देखा हाल बयां किया है जिसमें हर्ष की वीरता और बुद्धिमत्ता का बखान किया गया है। हर्ष के राज्य का विस्तार हिमालय से नर्मदा तथा मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र तथा कुछ दूर तक बंगदेश में भी था। हर्ष का सुशासन पूरे राज्य में था।

शिक्षा व्यवस्था पर उसने विशेष ध्यान दिया था। उसके राजदरबार में बाणभट्ट, मयूर जैसे प्रसिद्ध कवि थे। विद्याव्यासंगी होने के नाते हर्षवर्धन का समाज में विशेष महत्त्व था। रूपकों की रचना के अलावा हर्ष ने एक व्याकरण ग्रन्थ भी रचा जो अब अनुपलब्ध है। अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता के कारण भी वह बहुत लोकप्रिय हुए थे। उनका राज्यकाल सन् 606 से सन् 646 तक स्वीकार किया गया है।

संस्कृत के सुधी अध्येताओं ने श्रीहर्ष के रूपकों के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया है। इस अंक में कुल पचास शोध लेख संकलित हैं। लेखकों ने नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से हर्ष की तीनों नाट्य कृतियों का स्वतंत्र मूल्यांकन किया है। सांस्कृतिक और सामाजिक पक्ष, दार्शनिकता, प्रेम और सौंदर्य, नैतिक मूल्य, शैक्षिक तत्त्व, पुरुषार्थ, राजधर्म, लोक चेतना, मानवाधिकार, पर्यावरण, राजनैतिक चिंतन आदि के साथ ही व्याकरण, सूक्तियां, रस, छंद, औचित्य आदि अनेक दृष्टियों से हर्षदेव के रूपकों का सारगर्भित विवेचन शिक्षकों ने सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है। संपदकीय दायित्व का निर्वहन करते हुए मैंने जहां कहीं किसी लेख में सामग्री विषय से हटकर या अनापेक्षित प्रतीत हुई, कुछ कांट-छांट करना पड़ा, इसे लेखक साथी अन्यथा बिल्कुल न लेंगे। पत्रिका की सामग्री में दुहराव - तिहराव न हो, यह ध्यान रखना जरूरी था। सभी लेखकों को हार्दिक धन्यवाद। उनके सहयोग के लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मेरे संपादन और डॉ. संजय कुमार के प्रबंध संपादकत्व में प्रकाशित नाट्यम् पत्रिका का यह आखिरी विशेषांक है। डॉ. संजय कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर होकर सागर से चले गए और अप्रैल माह मेरे अध्यक्षीय कार्यकाल का समापन है। विभागीय अध्यापकों के अथक सहयोग से नाट्यम् के अनेक सामान्य अंक और मूल्यवान विशेषांक प्रकाशित हुए, बहुत संतोष मिला। नाट्यम् और सागरिका दोनों शोध पत्रिकाओं का संपादन और प्रकाशन मेरे विभागाध्यक्ष कार्यकाल की अन्यतम अकादमिक उपलब्धियां हैं।

नाट्यम् और सागरिका दोनों शोध-पत्रिकाओं का टंकण और मुद्रण अमन प्रकाशन और एक्टिव कंप्यूटर्स के मालिक श्री अजय जैन ने एक दशक तक बड़े धैर्य और लगन से प्रकाशित किया। एतदर्थ उन्हें हार्दिक आभार। एक्टिव कंप्यूटर्स संस्थान में मैटर कंपोजिंग का काम करने वाले भाई अशोक जी की मेहनत, प्रूफ करेक्शन आदि कार्य बहुत तत्परता और धैर्य से हमेशा करते रहे हैं, उनके व्यवहार और सहयोग दोनों के प्रति भी हार्दिक धन्यवाद।

आशा है कि आगे भी नाट्यम् पत्रिका का प्रकाशन नियमित होता रहेगा, यही मेरी हार्दिक शुभकामना है। विभागीय मित्रों को अशेष शुभकामनाएं। सद्भावना के साथ.....

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

अनुक्रम

सम्पादकीय

1. श्री हर्ष : जीवन और नाट्य साहित्य	09
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी	
2. संस्कृत साहित्य में हर्ष का स्थान	14
ऋचा मुक्ता, सन्त कुमारी	
3. इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटकों पर हर्ष के रूपकों का प्रभाव	19
अंकित दुबे	
4. रत्नावली नाटिका में सांस्कृतिक एवं सामाजिक जनजीवन	23
धनञ्जय मणि त्रिपाठी	
5. श्री हर्ष के रूपकों में मानवाधिकार-बोध एवं तज्जन्य प्रवृत्तियाँ	27
दशरथ कुमार चौधरी	
6. नागानन्द नाटक में सांस्कृतिक संदर्भ	32
श्रुति राय	
7. नागानन्द नाटक में नैतिक मूल्य	38
सुजाता शाण्डिल्य	
8. हर्ष के नाट्य-साहित्य में प्रकृति-सौन्दर्य	43
उमेश चन्द्र तिवारी	
9. हर्ष की कृतियों में राजनैतिक चिन्तन	47
नितीश उपाध्याय, अवधेश प्रताप सिंह	
10. हर्ष के रूपकों में लोकपरकता	52
पंकज कुमार मिश्र	
11. हर्ष की कृतियों में पर्यावरणीय चिन्तन	57
धनञ्जय कुमार	
12. रत्नावली नाटिका में हर्ष की दार्शनिकता	62
मयूरी झा	
13. हर्षवर्धन के रूपकों में लोक संवेदना	67
भूपेन्द्र कुमार राठौर	
14. हर्ष की कृतियों में आत्मोत्सर्ग की भावना	73
ममता त्रिपाठी	

15. हर्ष के रूपकों में राजधर्म सज्जय कुमार	81
16. रत्नावली नाटिका का सामाजिक वैशिष्ट्य देवी प्रसाद मिश्र	86
17. रत्नावली नाटिका में प्रेम एवं सौन्दर्य सकीना कुमार सालवी	90
18. नागानन्द के मूल्य एवं शैक्षिक तत्त्व शिवशंकर यादव, धर्मेन्द्र कुमार सराफ	93
19. हर्ष के रूपकों का सांस्कृतिक संदर्भ रामकरण लुहार एवं दयाशंकर तिवारी	100
20. रत्नावली नाटिका का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन भरत यादव	104
21. नागानन्द नाटक में भारतीय ज्ञान-परम्परा गुलशन कुमार	112
22. हर्ष के रूपकों में राजा उदयन का पुरुषार्थ शशिकुमार सिंह, भूपेन्द्र लोधी	116
23. दृढसमाधानम् रामहेत गौतम	122
24. रत्नावली का नाट्यशास्त्रीय विवेचन सुषमा देवी	131
25. हर्ष के रूपकों में प्रतिबिम्बित लास्य हलीमा खान	141
26. रत्नावली नाटिका की नाट्यशास्त्रीय परख पूनम यादव	148
27. प्रियदर्शिका का नाट्यशास्त्रीय समीक्षा विजय शंकर द्विवेदी, निकिता शर्मा	155
28. रत्नावली नाटिका का नाट्यविमर्श पुष्कर आनन्द	164
29. हर्ष के रूपकों की सत्यासत्य समीक्षा रूपा कुमारी	168
30. प्रियदर्शिका नाटिका में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि विमलेश कुमार सिंह यादव	172

31. प्रियदर्शिका एवं रत्नावली का नाटयशास्त्रीय मूल्यांकन त्रिलोक चन्द अवस्थी	176
32. नाटयशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में हर्ष की नाटकत्रयी हर्षित मिश्र	184
33. श्रीहर्ष के रूपकों में नायिका विमर्श प्रतिभा आर्या	188
34. हर्ष के रूपकों में नायक संजीव कुमार सिंह	193
35. हर्ष के रूपकत्रय में नायिका की भूमिका : नाटयशास्त्रीय सिद्धांतों के आलोक में प्रिया मजूमदार	197
36. हर्षदेव के नाटको के प्रमुख स्त्रीपात्रों का शास्त्रीय स्वरूप एवं व्यावहारिक स्थिति देवराज	204
37. हर्ष के नाटकत्रय में हास्य रस स्वागतिका दास, ओम जी	212
38. रत्नावली नाटिका में शृंगारेत्तर रसों का अनुप्रयोग कृपा भास्कर सचदेव	216
39. हर्षवर्धन के रूपकत्रय में रस विमर्श विष्णु कुमार मिश्र	221
40. हर्ष कृत रूपकों में रस चिन्तन सुचित्रा भारती, रंजन कुमार त्रिपाठी	226
41. रत्नावली नाटिका में कविसमयगत प्रसिद्धियाँ कामेश्वर शुक्ल	234
42. हर्ष के रूपकों में औचित्यविधान स्मिता कुमारी	240
43. श्री हर्षदेव कृत रूपकों में रीति तत्त्व मिथिलेश कुमार पाण्डेय	248
44. रत्नावली में अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्थाओं का अनुप्रयोग ललित कुमार	253
45. रत्नावली का व्याकरण-सौन्दर्य करुणा आर्या	260
46. हर्षदेव की नाट्यकृतियों का सूक्तिसौन्दर्य नौनिहाल गौतम	268

47. हर्षदेव के रूपकों में छन्द विधान सौरभ मिश्र	272
48. रत्नावली नाटिका के श्लोकों का काव्यप्रकाश में सन्निहित संदर्भ रंजन कुमार त्रिपाठी	278
49. श्री हर्ष की रत्नावली में तिङन्तपदावली किरण आर्या	285
50. हर्ष के रूपकों में कविता एवं शैली राकेश कुमार मिश्र	289
51. हर्षवर्धन की काव्यप्रतिभा भोलाशंकर व्यास	292
52. नाटिका का नाट्य शास्त्रीय विवेचन नन्दिता आर्या लेखक परिचय	296 302

1

श्रीहर्ष : जीवन और नाट्य साहित्य

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

भारत के गौरवशाली राजनैतिक इतिहास में महाराजा हर्षवर्धन के पराक्रमी व्यक्तित्व और कुशल शासक होने का अविस्मरणीय इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित है। जहां तक उनके संस्कृत प्रेम और साहित्यिक जीवन का प्रश्न है तो उनकी नाट्य कृतियां संस्कृत नाट्य-परंपरा की अमूल्य निधियां हैं। वास्तव में हर्षवर्धन का रचनात्मक अवदान उनकी कीर्ति का अक्षुण्ण आधार है। संस्कृत की नाट्य-लेखन-परंपरा में हर्ष की नाट्य कृतियों का विशेष महत्त्व है। डॉ. श्रीकृष्ण त्रिपाठी की पुस्तक 'रत्नावली नाटिका' के तीसरे पृष्ठ पर एक कथन उद्धृत है - “वे भारत के उन गिने-चुने महाराजाओं में से थे, जिन्होंने देश के आकार को ही परिवर्तित कर देने का पर्याप्त सफल प्रयास किया था।” (भूमिका, पृष्ठ 6) रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका जैसे श्रेष्ठ नाटकों के रचयिता राजा हर्षवर्धन कौन थे? भारत के राजनैतिक इतिहास-ग्रंथों में प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन के लिए अनेक नाम प्रयुक्त हुए हैं। जैसे हर्ष, श्रीहर्ष, हर्षदेव। ये सभी नाम हर्षवर्धन के लिए ही प्रयुक्त किए गए हैं। श्रीहर्ष के वास्तविक परिचय के संबंध में विद्वानों ने विचार-विमर्श किया है। अनेक विद्वानों द्वारा श्रीहर्ष के सृजनधर्मी होने पर भी उंगली उठाई गई। यह भी कहा गया कि उन्होंने अपने किसी आश्रित कवि को अर्थ - प्रलोभन देकर अपने नाम से नाटकों की रचना करवाई। ऐसे ही अनेक आरोपों पर सुधी अध्ययताओं ने उपलब्ध तमाम ऐतिहासिक और साहित्यिक साक्ष्यों पर विचार किया और अंतिम रूप से श्रीहर्ष की काव्य और नाट्य प्रतिभा को स्वीकार किया है। फिर भी, हम यहां हर्ष विषयक कतिपय प्रमुख शंकाओं और उनके समाधान को उद्धृत करना चाहेंगे। संस्कृत विद्वानों ने श्रीहर्ष नामधारी जिन पांच व्यक्तियों का उल्लेख किया है उनमें नैषधीयचरित महाकाव्य के रचयिता श्रीहर्ष (कान्यकुब्ज के राजा के सभापंडित, ईसा की 12वीं शताब्दी), काव्यप्रदीप के रचयिता मैथिल गोविंद ठाकुर के लघु भ्राता (15वीं शताब्दी), मुंज के पिता (10वीं शताब्दी) एवं राजा भोज के पितामह धारानगरी के राजा, कश्मीर के एक राजा हर्ष (1146 वि.सं. से 1158 तक) तथा बाणभट्ट कृत हर्षचरित्र में उल्लिखित थानेश्वर के राजा प्रमुख हैं। परंतु विद्वानों ने उपलब्ध ऐतिहासिक और साहित्यिक साक्ष्यों तथा हर्ष नामधारी सभी राजाओं के कालक्रम का सूक्ष्म परीक्षण कर थानेश्वर के राजा हर्ष को ही 'नागानंद' नाटक का सृजनकर्ता माना है। वास्तव में यही हर्ष 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' नाटक के भी रचयिता हैं। इन तीनों नाट्य कृतियों का उल्लेख राजा मुंज की राजसभा के पंडित धनंजय कृत 'दशरूपक' में मिलता है। 'ध्वन्यालोक' में आनन्दवर्धन ने नागानंद एवं रत्नावली का नामोल्लेख किया है। कश्मीर के महाराजा जयापीड के मंत्री दामोदर गुप्त ने अपने ग्रंथ 'कुट्टनीमत' में रत्नावली का एक श्लोक उद्धृत किया है -

“उदयनगान्तरितमियं प्राची..... हृदयस्थितं रमणी ।।” स्पष्ट है कि थानेश्वर के महाराजा प्रभाकरवर्धन के द्वितीय पुत्र श्रीहर्ष ही नागानंद, रत्नावली आदि नाटिकाओं के लेखक हैं जिसकी प्रामाणिकता के संदर्भ में चीनी यात्री ह्वेनसांग और इत्सिंग की भारत यात्रा प्रसंग का उल्लेख किया जाता है। श्रीहर्ष को प्राप्त ‘शिलादित्य’ उपाधि का जिक्र ह्वेनसांग ने ‘रिकार्ड्स आफ बुद्धिस्टिक रिलीजन’ (सन् 691) में किया है। इस निष्कर्ष तक पहुंचने के अंतराल में विद्वानों की अनेक असहमतियों का भी जायजा लिया जा सकता है। परंतु यहां न अवकाश है और न ही कोई भ्रम पैदा करना हमारा उद्देश्य है।

महान् पराक्रमी और समर्थ शासक

श्रीहर्ष प्रभाकरवर्धन और यशोमति के द्वितीय पुत्र थे। इनके अग्रज राज्यवर्धन और छोटी बहन राज्यश्री थीं। हर्षदेव अपने बड़े भाई राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद 606 ई. में सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उस समय उनकी उम्र मात्र 16 वर्ष की थी। मालव नरेश देवगुप्त द्वारा एक युद्ध में हर्ष के बहनोई कन्नौज के महाराजा ग्रहवर्मा की हत्या कर दी गई और बहन राज्यश्री को बंदी बना लिया गया। इस घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप हुए युद्ध में हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्धन द्वारा मालवनरेश देवगुप्त की हत्या कर दी गई। लेकिन बाद में देवगुप्त के अनन्य राजनैतिक मित्र बंगाल के राजा शशांकदेव द्वारा राज्यवर्धन की हत्या कर दी गई। इन्हीं घटनाओं से आहत श्रीहर्ष में प्रतिशोध की भावना प्रबल हो उठी। उन्होंने बंग नरेश शशांक का वध कर अपने भाई की हत्या का बदला ले लिया। अपने राज्य का भार संभालते ही हर्ष ने शत्रु राजाओं के खिलाफ युद्ध अभियान शुरू किया। सर्वप्रथम उन्होंने बंदीगृह से भागकर विंध्याचल की घाटी में शरण लेने वाली अपनी बहन राज्यश्री की खोज की। हर्ष एक विशाल सेना लेकर विजययात्रा पर निकल पड़े। शत्रु राजाओं को जीतते हुए हर्ष विंध्याचल पहुंचे जहां निराश और दुखी राजश्री आत्मदाह के लिए तैयार हो गई थी। हर्ष ने अपनी बहन को आत्मदाह से बचाया और अपने साथ कन्नौज वापस ले आये। प्रजा के बहुत आग्रह और बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की सम्मति से हर्ष ने कन्नौज का राज्यभार ग्रहण किया। उन्होंने यहीं से अपने साम्राज्य विस्तार को दिशा दी। संपूर्ण उत्तर भारत पर एकाधिकार करने के उपरांत उन्होंने 620 ई. के आसपास दक्षिण विजय हेतु एक विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया। किंतु, दक्षिण में चालुक्य पुलकेशी द्वितीय के पराक्रम के सम्मुख हर्षदेव टिक नहीं पाए। उन्हें दक्षिण विजय अभियान छोड़ना पड़ा था। हर्ष ने वल्लभी नरेश द्वितीय श्रीधर सेन को पराजित कर अपने नियंत्रण में कर लिया। आगे चलकर श्री हर्ष का साम्राज्य विस्तार हिमालय से लेकर नर्मदापर्यंत और आसाम से लेकर सौराष्ट्र तक व्याप्त हो गया था। इस क्षेत्र के समस्त सामंतों ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अपनी विजय के उपलक्ष्य में हर्ष ने एक नये संवत्सर का प्रवर्तन किया था। आगे चलकर युद्धोपरांत हर्ष ने शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने का निर्णय लिया। वे जीवनपर्यंत अविवाहित बने रहे। बाणभट्ट ने लिखा है कि “गृहीतब्रह्मचर्यमालिंगितं सरस्वत्याः ।” ‘स्त्री पर इति सरस्वत्या’ (द्वितीय उच्छ्वास)। ‘अहिंसा परमो धर्मः’ के वे कायल हो गए थे और उन्होंने जीवन का अंतिम समय बहुत शांति से व्यतीत किया था।

धार्मिक सहिष्णुता

श्रीहर्ष धार्मिक सहिष्णुता के मूर्तिमान स्वरूप थे। वे महान हिन्दू राजा थे। सूर्यदेव उनके कुलदेवता थे। इस बात का संकेत उनके ‘नागानंद’ नाटक में मिलता है - ‘एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः ।’ (3/18) अपने धर्म के प्रति उनकी गहन आस्था थी। शिवोपासक के रूप में भी हर्ष की पहचान है। किंतु, अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में हर्ष ने बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण कर लिया था। इसके बावजूद, हिंदू धर्म के प्रति उनका श्रद्धा भाव सदैव अक्षुण्ण बना रहा है। शैवोपासक होकर भी वे विष्णु के प्रति आदरभाव

रखते हैं। उन्होंने कन्नौज में अनेक हिन्दू मंदिरों का निर्माण करवाया था जिनमें शिव, सूर्य और बुद्ध की एक साथ पूजा होती थी। हर्ष की स्वभावगत उदारता और धार्मिक समन्वयवादी चेतना का प्रभाव उनके व्यक्तित्व में नाटक 'नागानंद' के बरक्स परिलक्षित किया जा सकता है। इस नाटक के मंगलाचरण में बुद्ध की स्तुति की गई है। भिक्षु दिवाकर मित्र से भी हर्षदेव की मित्रता जगजाहिर थी। इन तथ्यों के आधार पर उन्हें बौद्ध धर्मावलंबी मान लिया जाता है। कवि-नाटककार हर्ष विषयक विचार-विमर्श में शामिल विद्वानों में कुछ ने हर्ष को बौद्ध धर्मावलंबी मान लिए जाने की दुराग्रही दृष्टि से बचने की बात भी कही है। वास्तविक रूप से विद्वानों ने श्रीहर्ष को मूलतः सहिष्णु व उदारमना हिंदू ही स्वीकार किया है। अपनी धार्मिक समन्वयवादी दृष्टि के कारण हर्ष जनता में बहुत लोकप्रिय हुए थे। दरअसल वर्धनवंश के हिंदू धर्मावलंबी होने के मूल में धर्मसहिष्णुता का गहरा भाव समाहित था। वे परम त्यागशील और दानी व्यक्ति थे। दीन-दुखियों और गरीबों के प्रति उनमें करुणा का भाव था। इस बात का प्रमाण यह है कि उन्होंने सन् 643 में कन्नौज में एक विशाल जन सभा का आयोजन किया जिसमें अपना सारा धन दीन ब्राह्मणों और बौद्ध भिक्षुओं को अर्पित कर दिया था। यह दान का क्रम उनके द्वारा प्रत्येक पांचवें वर्ष में दुहराया जाता था। ह्वेनसांग ने लिखा है कि "श्रीहर्ष इसी तरह प्रत्येक पंचम वर्ष में अपना सारा कोष गरीबों को दान दे दिया करते थे।" विद्वानों का मान्य सत्य यह है कि हर्षवर्धन ने व्याजस्तुति के माध्यम से 'नागानंद' नाटक में अपने आदर्शमय व्यक्तित्व को नायक जीमूतवाहन के रूप में चरितार्थ किया है।

महान् संस्कृतज्ञ और कवि-नाटककार

श्रीहर्ष अपने समय के महान् राजा ही नहीं थे वरन् महान् संस्कृतज्ञ और श्रेष्ठ कवि-नाटककार भी थे। अपना राज-काज संभालते हुए उन्होंने अपने दरबार में कवियों और विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। इस तथ्य की पुष्टि इत्सिंग के इस कथन से होती है - "श्रीहर्ष साहित्य के बहुत शौकीन थे। उनके संरक्षण में रहने वाले प्रमुख कलाकारों के कुछ नाम हैं - बाण, मयूख, मातंग, दिवाकर तथा धावक।" हर्ष की सभा के मूल्यवान् रत्न बाणभट्ट ने 'हर्षचरितम्' में हर्ष की यशोगाथा का सार्थक वर्णन किया है। बाणभट्ट के श्वसुर मयूरभट्ट भी हर्ष के अतिप्रिय थे। उन्होंने लालित्यपूर्ण भाषा में 'सूर्यशतक' की रचना की थी, जिसका स्मरण आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में किया है। पंडित दिवाकर का नाम भी हर्षदेव की परिषद् में बड़े सम्मान के साथ लिया गया है। उपर्युक्त प्रसंग का उल्लेख राजशेखर और पद्मगुप्त ने अपने ग्रंथों में यथास्थान किया है। राजशेखर के अनुसार - **अहो प्रभावो वाग्देव्याः यन्मातंगदिवाकरः । श्रीहर्षस्यऽभवत् सभ्यःसमो बाणमयूरयोः ।।**

श्रीहर्ष के सृजनकर्ता होने पर भी उंगली उठाई गई है। उनके द्वारा रचित नाटकों का सृजनकर्ता होने पर संदेह किया गया है। 'काव्यप्रकाश' की इस पंक्ति 'श्रीहर्षदेर्धावकादीनामिव धनम्' से भ्रम की स्थिति बनी और उन पर आरोप लगाया गया कि ये रचनाएं धन देकर अपने राजाश्रयी किसी कवि से लिखा ली गई हैं। यह अनर्गल आरोप सर्वथा बेबुनियाद है। इतिहास गवाह है कि भारत देश में हर समय में छोटे-बड़े, हिंदू-मुसलमान राजाओं/सम्राटों के दरबार में कवि-कलाकारों, संगीतकारों आदि को आश्रय और धन-दौलत देकर सम्मानित करने की समृद्ध परंपरा रही है। हिंदी साहित्य के इतिहास का समूचा रीतिकाल किसी न किसी राजदरबार में आश्रय पाने वाले कवियों के साहित्यिक अवदान से भरा हुआ है। इसी तरह अपने राजाश्रय में रहने वाले कवियों के मान-सम्मान और सुख सुविधाओं की चिंता करने वाले महाराजा हर्ष भी एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व थे। वे स्वयं भी एक समर्थ कवि थे। सोहल ने अपनी 'अवतिसुंदरीकथा' में हर्ष के कवितानुराग की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु, नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।

गीहर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः।।

श्रीहर्ष के कवि रूप से बाणभट्ट बहुत प्रभावित हुए थे। जयदेव ने प्रसन्नराघव नाटक में हर्ष को कविता कामिनी का हर्ष कहा है। हर्ष में अद्भुत नाट्य प्रतिभा थी। हर्ष के जिन तीन रूपों की चर्चा विद्वानों ने की है और वे तीनों कृतियां हमें उपलब्ध होती हैं। निर्विवाद रूप से रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका श्रीहर्ष के चर्चित रूपक हैं। आज इस मुद्दे पर किसी विवाद की गुंजाइश नहीं रह गई है।

‘नागानंद’ पांच अंकों का नाटक है जिसकी कथा ‘बृहत्कथा’ पर आधारित है। मूलकथा में पर्याप्त मात्रा में परिवर्तन कर हर्ष ने उसे एक अभिनवता प्रदान की है। परंपरा से पृथक् रहकर नायक का शील निरूपण नाटक के आकर्षण का केंद्र है। ‘नागानंद’ में परोपकार हेतु अपने जीवन की आहुति देने वाले नायक जीमूतवाहन के पुनर्जीवन की पृष्ठभूमि स्वरूप वैदिक और बौद्ध धर्म की समन्वित चेतना का प्रभाव महत्वपूर्ण है। ‘रत्नावली’ चार अंकों की नाटिका है। इसमें रत्नावली यानी सागरिका और राजा उदयन की प्रेमकथा निरूपित है। रत्नावली अपने समय की सर्वाधिक सुंदर राजकन्या है। सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री रत्नावली को महामात्य यौगन्धरायण की कूटनीति का शिकार होकर महारानी वासवदत्ता की सेवा में रहना पड़ता है। वासवदत्ता के मन में यह डर बराबर बना रहता है कि कहीं रत्नावली के रूप-सौंदर्य पर उदयन की दृष्टि न पड़ जाए और वे उसके रूपपाश में फंस न जायें। वासवदत्ता का उदयन के प्रति प्रेम और समर्पण कम नहीं है। फिर भी वासवदत्ता राजा की नजर से रत्नावली को छिपाने का हर संभव प्रयास करती है। वह अत्याचार का रास्ता भी अपनाती है। वासवदत्ता द्वारा किए गए अत्याचार और अपमान को बर्दाश्त कर रत्नावली चुप बनी रहती है। उसके मन में महाराजा उदयन से मिलने की कल्पना जग गई थी। और एक दिन उदयन और रत्नावली की मुलाकात हो जाती है। दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो गये। उदयन के बिना जीना रत्नावली के लिए बहुत मुश्किल हो गया था। वह अपने प्रेम को पाने के लिए लाख विपत्तियां सह लेती है और अंत में उसे आत्महत्या करने का दृढ़ निश्चय करने के लिए विवश होना पड़ता है। किंतु, महाराज उदयन को देखते ही उसके हृदय में जीने की अभिलाषा पुनः जागृत हो उठती है। वह स्वयं की रक्षा के लिए चिल्ला उठती है। महारानी को जब ज्ञात होता है कि वह उसके मामा की बेटी है तब वह प्रायश्चित्त करना चाहती है। उसके कहने पर उदयन अग्निकांड में घिरी रत्नावली की रक्षा करते हैं। अंततः उदयन और रत्नावली का विवाह करने में वासवदत्ता ही अपनी भूमिका निभाती है।

गुणाढ्य कृत ‘बृहत्कथा’ से गृहीत एक कथा से प्रेरित हो ‘प्रियदर्शिका’ चार अंकों की नाटिका है जिसमें वत्सराज उदयन के अंतःपुर में घटित एक प्रेम कहानी वर्णित है। यह कथा क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा मंजरी में भी मिलती है। राजा दृढ़वर्मा कलिंगराज के साथ युद्ध में पराजित होकर बंदी बना लिया जाता है। उसकी पुत्री प्रियदर्शिका को उसका एक सेवक उदयन से मिलाने के लिए ले जाता है। किंतु, मार्ग में ही कुछ ऐसा घटनाक्रम घटित होता है कि प्रियदर्शिका विपन्नावस्था में अंतःपुर में पहुंच जाती है। वहां वह आरण्यका के नाम से पहचानी गई। अभिनय के माध्यम से आरण्यका और राजा उदयन की भेंट होती है। अभिनय के माध्यम से आरण्यका और राजा उदयन की भेंट होती है। अनेक उतार-चढ़ाव के बाद उदयन और आरण्यका का मिलन संभव होता है। वासवदत्ता की भूमिका सहयोग की रहती है।

सामाजिक और सांस्कृतिक वैभव

श्रीहर्षदेव के नाटक अपने समय और समाज के परिप्रेक्ष्य से अछूते नहीं हैं। नायक और नायिका की प्रेमकथाओं में, पात्रों के व्यावहारिक जीवन में लेखक ने तद्युगीन समाज और संस्कृति की झलक दिखलायी है। स्त्री-पुरुष-संबंध का खुलापन यानी विचारों की उन्मुक्तता का सम्मान रहा है। नाटकों में चित्रित पात्रों के मनोविज्ञान को समझाने की चेष्टा नाटककार के नाट्य-कौशल का प्रमाण है। मानव-जीवन में संवेदनशीलता का आग्रह कवि की उन्नत सामाजिक चेतना का प्रमाण है। भारतीय ज्ञान-परंपरा की दृष्टि से हर्ष की नाटिकाओं का मूल्य है। सामाजिक और नैतिक मूल्य की प्रतिष्ठा तथा पुरुषार्थ चिंतन लेखक का उद्देश्य है। राजधर्म, मानवाधिकार, पर्यावरण, स्त्री विमर्श आदि के संदर्भ और विचार सूत्र भी हर्ष की कृतियों में उपलब्ध होते हैं। हर्ष का लोक चिंतन भी उनकी वैचारिक सोच का उत्कृष्ट एवं उदात्त पक्ष है। राजनीति विषयक चिंतन भी उपादेय है। प्रेम और सौंदर्य का श्रेष्ठ निदर्शन सामाजिक जीवन का स्वस्थ और सार्थक प्रयास है। यदि हम चाहें तो शैक्षणिक तत्त्व भी तलाश सकते हैं। कवि का दार्शनिक चिंतन भी कृतियों को महत्त्व प्रदान करता है। सामाजिक जनजीवन में कवि की गहरी आस्था है। कुल मिलाकर नाट्य का वस्तुपक्ष पर्याप्त समृद्ध और युगसापेक्ष है।

शृंगार रस का निर्वहन होते हुए भी विप्रलंभ का आग्रह महत्त्वपूर्ण है। अन्य रसों-अद्भुत, करुण, वीर आदि की योजना में नाटककार को सफलता मिली है। अपने नाटकों में प्रेमाभिव्यक्ति के साथ प्रकृति चित्रण के लिए हर्ष को अवकाश मिल जाता है। यह प्रकृति नायक-नायिका यानी राजा एवं रानी के प्रणय व्यापार में उद्दीपन रूप में तथा उदयन और सागरिका के मिलन की भावी घटनाओं के संकेतक रूप में प्रस्तुत हुई है। पात्रों के मनोभावों की घटना- प्रसंगानुसार व्यंजना कवि की समर्थ लेखनी से संभव हुई है।

शिल्प - वैशिष्ट्य :

श्रीहर्ष रचित नाटिकाओं की कथा का अपना वैशिष्ट्य है। उनके नाट्य साहित्य की भाषागत सरलता, सुबोधता, कोमलता, स्पष्टता तथा प्रसादगुण संपन्नता उल्लेखनीय है। नाटकों में शास्त्रीयता के तत्त्वों, समासबद्धता से बचने की प्रवृत्ति को रेखांकित किया जाता है। हर्ष की माधुर्य, सरल एवं प्रसादगुण संपन्न शैली और भाषा की चित्रात्मकता एवं ध्वन्यात्मकता विशिष्ट है। अलंकारिकता के अनावश्यक प्रभाव से नाट्य भाषा मुक्त है। शास्त्रीय सैद्धांतिक निकष पर 'रत्नावली' नाटिका सार्थक सिद्ध हुई है। लोकोक्तियां भी अपना प्रभाव छोड़ती हैं। रीतितत्व, औचित्य, छंद, शैली, विन्यास, नाट्यशास्त्रीयता आदि अनेक दृष्टियों से हर्षदेव के नाटकों पर विचार उपयुक्त सिद्ध होता है।

समग्रतः श्रीहर्षदेव के प्रखर राजनैतिक व्यक्तित्व एवं साहित्यिक प्रतिभा तथा सामाजिक और सांस्कृतिक चिंतन ने उन्हें श्रेष्ठ राजाओं की पंक्ति में आसीन कर दिया है। वे हमारी सांस्कृतिक चेतना के भी अग्रदूत हैं। उनकी सामाजिक समन्वयवादी दृष्टि और धार्मिक सहिष्णुता वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक है। यह हर्ष का पुरुषार्थ कहा जायेगा कि उन्होंने अपना राज-काज दृढ़तापूर्वक संभालते हुए न केवल राज्य का विस्तार किया, अपितु समाज को एकता के सूत्र में भी आबद्ध रखा था। स्वस्थ चित्त और चिंतनपूर्वक साहित्य सृजन की चुनौती को स्वीकार करना उनकी सामर्थ्य का परिचायक है। सच कहें तो हर्षवर्धन ने अपने पौरुष शक्ति, साहित्यिक प्रतिभा, राजनीतिक सूझबूझ से राजसत्ता और सृजनात्मकता की ऐसी सुन्दर जुगलबंदी की जिसे भारतीय इतिहास में बहुत विरल और अविस्मरणीय कहा जायेगा।

2

संस्कृत साहित्य में हर्ष का स्थान

ऋचा मुक्ता, सन्त कुमारी

प्राचीन टीकाकारों की टीकाओं में हर्ष के कवित्व के विरुद्ध कथन होने पर भी और आधुनिक विद्वानों द्वारा इस कथन की पुष्टि में खोजे गये अन्य प्रमाणों के रहते भी हर्ष द्वारा रचित कहे गये तीनों रूपकों में कुछ ऐसे अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हैं, जो इस विषय में प्रचलित सब भ्रान्तियों को विच्छिन्न कर देते हैं और जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि रत्नावली आदि रूपक एक ही लेखनी से प्रसूत हैं और यह राजा हर्ष की ही कृतियाँ हैं।

डॉ. पिशल ने प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द का तुलनात्मक अध्ययन करके यह मत प्रकट किया है कि ये तीनों रचनायें किसी एक ही लेखक की कृतियाँ हैं; क्योंकि उनमें अनेक स्थलों पर भाव, शब्दावली और घटना-संयोगों की ऐसी समानताएं पाई जाती हैं, जो एक ही लेखक की कृतियों में सम्भव है। तीनों रूपकों की प्रस्तावना में उन्हें श्रीहर्ष की रचना बतलाया गया है और प्रस्तावना का वह भाग जिसमें कवि और उसकी रचना का निर्देश किया गया है, शब्दावली और वाक्य-विन्यास की दृष्टि से अत्यधिक समान है। 'श्रीहो निपुणः कविः' इत्यादि श्लोक तीनों रूपकों में समान रूप से पाया जाता है। प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों के भरतवाक्य लगभग एक समान हैं, उनके केवल पिछले दो चरणों में कुछ शब्दों का हेर-फेर है। प्रियदर्शिका और नागानन्द में भी दो पद्य समान हैं। प्रियदर्शिका और रत्नावली में तो पात्रों और घटना-संयोगों की इतनी अधिक समानता है कि एक कृति दूसरी का संशोधित संस्करण प्रतीत होती है। इसलिये जब तक प्रियदर्शिका आदि रूपकों की प्रस्तावना का वह भाग जिसमें उन्हें हर्ष की रचना बतलाया गया है, प्रक्षिप्त अथवा असत्य न प्रमाणित कर दिया जाय, जो साहस अभी तक किसी विद्वान् ने नहीं किया है, तब तक उन्हें राजा हर्ष की कृति ही माना जाता रहेगा।

हर्ष की रचनाएँ

तीन रूपक जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द ये तीन रूपक हर्ष की कृतियाँ हैं। इनमें से प्रियदर्शिका और रत्नावली नाटिका हैं, और उनका विषय वत्स देश के राजा उदयन का प्रसिद्ध बाख्यान है। नागानन्द नाटकों की श्रेणी में आता है। इसका नायक जीमूत-बाहन है जिसने दया से आप्लावित होकर नाग की रक्षा के लिये स्वयं को समर्पित कर दिया था।

बौद्ध धर्म सम्बन्धी स्तोत्र- इन तीन रचनाओं के अतिरिक्त हर्ष के रचित दो स्तोत्र भी कहे जाते हैं। इन रचनाओं का विषय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। **सुप्रभातस्तोत्र** में 24 श्लोकों में जो अधिकतर मालिनी छन्द में हैं, अवलोकितेश्वर बुद्ध की स्तुति की गई है। इसकी पुष्पिका में श्रीहर्ष नाम आया है। दूसरा स्तोत्र **अष्टमहाश्री चैत्यसंस्कृतस्तोत्र** आठ बौद्ध चैत्यों की प्रशंसा में लिखा गया है। यह केवल चीनी अनुवाद में ही सुरक्षित है। चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार यह स्तोत्र भारतीय राजा का लिखा हुआ है और उसे चीनी भाषा में 'शील का सूर्य' कहा गया है जो 'शीलादित्य' नाम का अनुवाद जान पड़ता है। बौद्ध-साहित्य में, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हर्ष शीलादित्य के नाम से प्रसिद्ध है। ये दोनों रचनायें हर्ष की ही हैं, यह इस बात से भी सम्भव प्रतीत होता है कि हर्ष का जीवन के अन्तिम भाग में बौद्ध धर्म की ओर अधिक मुकाव हो गया था।

अन्य फुटकर रचनायें - इनके अतिरिक्त संस्कृत के सुभाषित-ग्रन्थों (anthologies) में हर्ष के नाम से प्रसिद्ध लगभग एक दर्जन ऐसे श्लोक भी हैं, जो उसके वर्तमान नाटकों में नहीं पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने कुछ अन्य रचनायें भी की थीं।

हर्ष के नाटकों की रचना का कालक्रम - यद्यपि हर्ष के उपलब्ध नाटकों की रचना के काल-क्रम के विषय में कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, लेकिन फिर भी तीनों नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से पाठक को यह अनुभव हो सकता है कि इनमें प्रियदर्शिका उसकी पहली कृति है, क्योंकि प्रियदर्शिका में वस्तु-योजना की वैसी चुस्ती, काव्य-गुणों की वैसी प्राञ्जलता और छन्दों की वैसी विविधता नहीं पाई जाती जो रत्नावली और नागानन्द में पाई जाती है। रत्नावली और नागानन्द के पौर्वापर्य का प्रश्न तनिक जटिल है। कोई विद्वान् काल क्रम की दृष्टि से अन्तिम रचना रत्नावली को मानते हैं और कोई नागानन्द को।

रामास्वामी का विचार है कि प्रियदर्शिका और रत्नावली की अत्यधिक समानता को देखते हुए यह असम्भव जान पड़ता है कि कवि ने इन दो रचनाओं के बीच में कोई अन्य रचना की हो। दूसरे नागानन्द पर बौद्ध धर्म की छाप को देखते हुए भी यही सम्भव जान पड़ता है कि नागानन्द रचना उन दिनों की होगी जब हर्ष का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हो गया था। रामास्वामी का यह भी विचार है कि हर्ष ने नायिका की आत्महत्या की चेष्टा का प्रयोग पहले रत्नावली में किया होगा, क्योंकि रत्नावली में आत्महत्या का प्रयास घटना-संयोग के विकास में अवसरोचित प्रतीत होता है। रत्नावली में नायिका की आत्महत्या की चेष्टा के नाटकीय प्रभाव से हर्ष कदाचित् इतना आकृष्ट हो गया था कि रत्नावली के अनुकरण पर नागानन्द में भी नायिका को आत्महत्या की घटना की योजना कर डाली, यद्यपि नागानन्द में उन परिस्थितियों सृष्टि नहीं की गई जो नायिका को आत्महत्या के लिये विवश करती।⁵

इसके विपरीत, प्रो. ब्रह्म और परांजपे ने नायिका द्वारा आत्महत्या चेष्टा की घटना से इससे विरुद्ध परिणाम निकाला है। उनका कहना है नागानन्द की मूल कथा में नायिका का आत्महत्या का प्रयत्न वर्णित किया गया है, इसलिये हर्ष ने नायिका की आत्महत्या की चेष्टा की योजना पहले नागानन्द में की होगी। बाद में इसके प्रभाव से मुग्ध होकर हर्ष ने रत्नावली में विवश करने वाली परिस्थितियों की सृष्टि करके नायिका की आत्महत्या के प्रयत्न की घटना की योजना की।⁶

इन परिस्थितियों में रत्नावली और नागानन्द में से कौन रचना पहली और कौन बाद की है, यह निर्णय करना कठिन है। लेकिन वस्तु-विन्यास के सुश्लिष्ट गठन और नाटकीय गत्यात्मकता को यदि किसी कवि की अंतिम रचना होने की कसौटी माना जाय तो तब सम्भवतः साक्ष्य रत्नावली अन्तिम रचना होने के पक्ष में जायेगा।

संस्कृत साहित्य में हर्ष का स्थान

प्राचीन कवियों की दृष्टि में हर्ष ने उच्चकोटि के कवि और उदार विद्या प्रेमी के रूप में अपने समय में तथा उत्तरवर्ती कुछ शताब्दियों में ही आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। हर्ष के राजसभा के पण्डित बाण ने हर्ष के कवित्व और त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।⁷ जयदेव ने उसे कविता-कामिनी का हर्ष कहा है⁸ और सोड्डल ने उसे गीर्हषं बतलाया है।⁹

हर्ष को अपनी कवि-प्रतिभा पर आत्म-विश्वास था। तीनों नाटकों में पाये जाने वाले एक श्लोक में उसने स्वयं को निपुण कवि कहा है।¹⁰ प्रस्तावना में उसने सूत्रधार के मुख से अपनी रचना को अपूर्ववस्तुरचनानाकृत कहलाया है।¹¹

हर्ष कवि के रूप में यद्यपि संस्कृत के पण्डित हर्ष के केवल रूपकों से ही परिचित हैं और उनके आधार पर ही हर्ष का साहित्य में मूल्याङ्कन करते हैं क्योंकि उसका अन्य कोई ग्रन्थ पठन-पाठन में प्रचलित नहीं है और नहीं काव्य की दृष्टि से अन्य ग्रन्थों का इतना महत्त्व है, फिर भी हर्ष के रूपकों के नाट्य-गुणों के अतिरिक्त काव्य-गुणों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि हर्ष का कवित्व उच्चकोटि का है। भाषा और शैली की सुबोधता तथा भावाभिव्यक्ति की सरलता में उसने अपने समकालीन बाण के पथ का अनुसरण न करके अपने पूर्ववर्ती कवि कालिदास के मार्ग को अपनाया है। साथ ही उसके नाटक भास के नाटकों के समान काव्य-गुणों से भी शून्य नहीं हैं। उसके नाटकों में काव्य और नाट्य गुणों का सुख-दायक समन्वय हुआ है। हर्ष के नाटकों में यथास्थल नगर, प्रासाद, प्रभात, सन्ध्या, मध्याह्न, वन, आश्रम, पर्वत और युद्ध आदि प्रायः उन वस्तुओं के सुन्दर एवं मार्मिक वर्णन हुए हैं, जिनका बहुधा संस्कृत काव्य समावेश पाया जाता है। हर्ष एक साथ प्रणय के कोमल एवं युद्ध और भया के उत्कट चित्र उतारने में सफल रहा है। उसकी भाषा भावों और विषय के अनुरूप होती है। चित्रपट में लिखित नायिका के चित्र को देख नायक के हृदय पर हुए प्रभाव को कवि ने कैसे सरल शब्दों में किया है-

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः।

मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ।। रत्ना. 2/9

लेकिन युद्ध के वर्णन में हर्ष की पदयोजना एकदम दूसरे ही प्रकार होती है। उसमें लम्बे समासों और उपयुक्त संयुक्ताक्षरों की योजना होती है-

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत् कृतोत्तमाङ्ग क्षणं

व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वलद्विनि ।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभव-

न्नेकैर्नैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।। रत्ना. 4/6

हर्ष ने श्लेष और अनुप्रास अलङ्कारों का समुचित उपयोग किया है। उत्तरवर्ती कवियों की भाँति उसका अलङ्कारों का प्रयोग कविता की गति बाधक नहीं हुआ है।

नाटककार के रूप में - हर्ष के नाटकों में यद्यपि कथा-वस्तु मौलिकता नहीं है और उसके नाटकों में घटना-संयोग, वस्तु-योजनात पदावली पर कालिदास और भास का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। हर्ष ने पुराने आख्यान में नाटकीय व्यापार के लिये अपेक्षित परिवर्तन का वस्तु-विन्यास में जो संश्लिष्टता और गति उत्पन्न कर दी है, वह सर्व प्रशंसनीय है। बाद के नाट्यशास्त्रियों ने नाट्य अंगों के उदाहरण के स्तर पर बहुधा हर्ष की

‘रत्नावली’ और भट्टनारायण के ‘वेणी-संहार’ नाटक को चुना। उसकी रत्नावली में नाट्य अंगों के प्रायः सब उदाहरण मिल जाते हैं।

परन्तु भट्टनारायण के वेणी-संहार की भांति हर्ष की रत्नावली नाट्य अंगों के सचेष्ट समावेश से भारी-भरकम नहीं हुई है। उसकी कथा-वस्तु उन स्थितियों का सहज विकास हुआ है जो किसी रूपक को नाटकीय कृति प्रदान करती हैं।

वस्तुविन्यास की दृष्टि से हर्ष की प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों नाटिकायें अत्यधिक सफल कही जा सकती हैं। रत्नावली में ऐन्द्रजालिक का दृश्य बड़ा विनोदपूर्ण और गतिमान है। अन्तःपुर में अग्निकाण्ड की घटना की योजना करके कवि ने सागरिका की पहचान के लिये सर्वथा नाटकोचित अवसर की सृष्टि की है। सागरिका के पिंजरे से निकलने, सागरिका और सुसंगता के बचनों को दुहराने तथा राजा द्वारा सुने जाने की कल्पना अनूठी है जो मूल घटना तथा नाट्य-व्यापार को गति देने में सहायक सिद्ध होती है। विषय-परिवर्तन करके सागरिका का अभिसरण और संकेत-स्थान पर होने वाली भ्रान्तियाँ बड़ी ही स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण हैं। प्रियदर्शिका में गर्भाङ्क की योजना भी प्रियदर्शिका को दो प्रणय कथाओं में परिणत करके दर्शक और पाठक को मुग्ध करने वाली है।

हर्ष की तीसरी रचना ‘नागानन्द’ नाटक विषय की दृष्टि से पहली दो कृतियों से सर्वथा भिन्न है। उसका उद्देश्य जीवन की उदात्तता का प्रकाशन है। वस्तु-योजना की दृष्टि से उसे सफल नाटक नहीं कहा जा सकता। पहले तीन अङ्कों का विषय गन्धर्व-कुमार जीमूतवाहन और सिद्ध-कन्या मलयवती की प्रणय कथा है, पिछले दो अङ्कों में जीमूतवाहन के आत्मोत्सर्ग एवं पक्षि-राज गरुड के अनुता। की कथा है। पहले तीन अङ्कों का पिछले दो अङ्कों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि नागानन्द नाटक तीन अङ्कों में ही समाप्त कर दिया जाता तो, वह भी प्रियदर्शिका और रत्नावली के समान प्रणय-कथा मात्र रह जाता।

हर्ष पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव - हर्ष साहित्य-प्रेमी था, इसलिये स्वाभाविक रूप से उसने पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का आस्वादन किया होगा और उनसे प्रेरणा प्राप्त की होगी। आलोचकों ने हर्ष और कालिदास की रचनाओं की तुलना करके हर्ष पर कालिदास के प्रभाव का विस्तार में विवेच किया है। कालिदास के मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय का हर्ष प्रियदर्शिका, नागानन्द पर, और यहाँ तक कि रत्नावली पर भी, अत्यधिक प्रभाव कहा जाता है।¹²

हर्ष की अन्य कवियों से तुलना - कुछ आलोचकों ने कालिदास और भवभूति की तुलना में हर्ष को केवल द्वितीय कोटि का कवि घोषित किया। हर्ष निश्चित रूप से विशाखदत्त और भट्टनारायण से उच्चतर कोटि के नाटककार हैं। डॉ. कीथ ने अपने ग्रन्थ ‘संस्कृत ड्रामा’ में कहा है कि कालिदास के साथ तुलना किये जाने के कारण ही हर्ष को उतनी प्रशंसा प्राप्त नहीं हो सकी जितनी उसके नाटकों के कारण मिलनी चाहिये थी। अन्तःपुर की गुप्त प्रणय-लीला के चित्र अङ्कित करने में हर्ष सम्भवतः कालिदास से भी बढ़कर है। हर्ष प्रेम के गम्भीर पक्ष का उद्घाटन करने में भी असफल नहीं कहा जा सकता। सागरिका के प्रति पति की काम-चेष्टाओं से क्रुद्ध होकर वासवदत्ता के चले जाने पर जब उदयन को यह विचार आता है कि प्रेम के स्खलन के कारण वासवदत्ता कहीं आत्म-हत्या न करले तो उसे अपनी चञ्चलता पर बड़ा पश्चात्ताप होता है और वह गुप्त प्रेम-लीला में सहायक विदूषक की भर्त्सना करते हुए कहता है- “पहले न किये गये इस अपराध को मेरे द्वारा किया गया देखकर न सहन करने वाली प्रिया आज निःसन्देह प्राण त्याग कर देगी, क्योंकि उत्कट प्रेम का स्खलन असह्य होता है।”¹³

संदर्भ-

1. लेकिन यह ध्यान रहे कि पिशल ने इन तीनों कृतियों को उनमें उपलब्ध समानताओं के आधार पर धावक की रचना माना है।
2. प्रियद. 3.3 - नागा. 401; प्रियद. 3010 - नागा. 1014
3. तीनों रचनाओं में उपलब्ध समानताओं की अधिक जानकारी के लिये देखो, प्रियशिका कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 'रत्नावली' देवधर और सुरु संपादित, 1625।
4. देखिये, एटिंगहाउसन: हर्षवर्धन पृ. 172-74 और 178-76।
5. रत्नावली, Introduction pp. 24-25
6. वही, पृ. 5
7. वही, पृ. 6
8. वही, पृ. 9
9. वही, पृ. 11
10. श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्रहिणी। रत्नावली 105।
11. अस्मत्त्वाभिना श्रीहर्षदेवेनापूर्वबस्तुरचनालङ्कृता रत्नावली नाटिका कृता, पृ. 6
12. रत्नावली 2/6
13. रत्नावली 4/6
14. रत्नावली, 3/15

3

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी नाटकों पर हर्ष के रूपकों का प्रभाव

अंकित दुबे

संस्कृत नाटकों की परंपरा ईसा की पहली सदी में अश्वघोष से प्रारंभ होती है। इसके बाद वर्तमान की इक्कीसवीं सदी तक यह परंपरा न्यूनाधिक गति से निरंतर चलती रही है। संस्कृत साहित्य में एक ओर कालिदास, भास, भवभूति, विशाखदत्त जैसे महान नाट्यशिल्पी हुए तो वहीं दूसरी ओर शूद्रक, राजा भोज, यशोवर्मा जैसे राजाओं ने भी संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया। इसी कड़ी में हर्षदेव का नाम भी आता है जिन्होंने 'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली', और 'नागानन्द' जैसे तीन अत्यंत महत्वपूर्ण नाटकों की रचना की। 'प्रियदर्शिका' हर्षदेव द्वारा रचित पहला नाटक है। यह चार अंकों की नाटिका है। इसके ऊपर कालिदास कृत 'मालविकाग्निमित्र' का प्रभाव स्पष्ट तौर से दिखाई देता है। प्रियदर्शिका अंगदेश के राजा दृढ़वर्मा की पुत्री थी। राजा ने अपनी पुत्री का विवाह वत्स उदयन के साथ करने का वचन दिया था। किन्तु कलिंग नरेश इस निर्णय से सहमत नहीं था। उसने प्रियदर्शिका को पाने के लिए अंगदेश पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में राजा दृढ़ वर्मा को बंदी बना लिया गया। लेकिन आक्रमण की भगदड़ में प्रियदर्शिका किसी तरह से बचकर वत्स के महल में पहुँच गई। वहाँ वो नाम बदलकर रानी की दासी बनकर रहने लगी। एक दिन राजा वत्स उदयन की दृष्टि उस पर पड़ी और दोनों को प्रेम हो गया। रानी को जब इस बारे में पता चला तो उसने प्रियदर्शिका को बंदीगृह में बंद करने की सजा दे दी। बहुत सारे कष्ट झेलने के बाद अंत में यह राज खुल गया कि बंदीगृह में बंद दासी राजकुमारी प्रियदर्शिका है। इसके बाद रानी ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और राजा के साथ रहने की अनुमति भी दे दी। हर्ष का दूसरा नाटक 'रत्नावली' है। ये भी चार अंकों की नाटिका है। कई विद्वानों ने इसे 'प्रियदर्शिका' का ही संशोधित और परिमार्जित रूप माना है। दोनों नाटकों का कथानक लगभग समान है। पहले नाटक में आक्रमण के दौरान राजकुमारी प्रियदर्शिका बचकर वत्स उदयन के पास पहुँच जाती है तो दूसरे नाटक में रत्नावली जिस जलयान से उदयन के पास जा रही थी, वो समुद्र में डूबकर नष्ट हो जाता है। इसके बाद भी राजकुमारी रत्नावली बच जाती है और उदयन के पास पहुँच जाती है। वहाँ वो नाम बदलकर रानी की दासी बनकर रहने लगती है। यहाँ भी रत्नावली का रहस्य उसी तरह से खुल जाता है जिस तरह प्रियदर्शिका का रहस्य पहले नाटक में खुलता है।

'नागानन्द' नाटक इन दोनों नाटकों से भिन्न है इसलिए बहुत से विद्वान इसे हर्ष का नाटक नहीं मानते हैं। इस नाटक में कुल पाँच अंक हैं। इस नाटक में बौद्ध धर्म का प्रभाव देखने को मिलता है। नाटक की

कथा अनुसार सम्राट जीमूतकेतु वृद्ध होने के कारण अपने पुत्र जीमूतवाहन को राजकाज सौंपकर वन जाना चाहते हैं। किन्तु जीमूत वाहन को अपने पिता की सेवा करने में अत्यंत आनंद आता था इसलिए वो राजकाज स्वीकार ना करके अपने एक मित्र को साथ लेकर पिता के साथ ही जंगल चला जाता है। वहाँ वह सिद्धराज की सुंदर पुत्री मलयवती को देखता है और उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। किन्तु जब मलयवती का भाई जीमूत वाहन के पास अपनी बहन के विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचता है तो वो उसे अस्वीकार कर देता है क्योंकि वो इस बात से अनभिज्ञ था कि उसके लिए मलयवती के विवाह का प्रस्ताव आया है। मलयवती के स्वप्न में गौरी देवी ने कहा था कि विद्याधरों के भावी सम्राट से उसका विवाह होगा। इसलिए जब उसे प्रस्ताव अस्वीकार होने की बात पता चलती है तो वो इससे व्यथित होकर अपना जीवन समाप्त करने का प्रयास करती है। लेकिन जीमूतवाहन सही समय पर पहुँचकर उसका जीवन बचा लेता है। नाटक के चौथे अंक में जीमूत वाहन अपने मित्र मित्रावसु के साथ समुद्र के किनारे ज्वार-भाटा देखने निकलता है। वहाँ पहुँचने पर उसे हड्डियों का एक विशाल ढेर दिखाई देता है। हड्डियों के बारे में पूछने पर पता चलता है कि उन नागों की हड्डियाँ हैं जिन्हें गरुण भगवान अपना भोज बना चुके हैं। आगे बढ़ने पर उसे शंखचूड़ नामक नाग दिखाई पड़ता है, जिसे गरुण के पास ले जाने के लिए तैयार किया गया था। उसकी वृद्ध माता को रोता हुआ देखकर जीमूत वाहन का हृदय करुणा से भर आता है। वो शंखचूड़ के स्थान पर स्वयं गरुण के पास जाने का निर्णय लेता है। इधर उसके पिता व पत्नी उसके घर ना लौटने से परेशान हैं। ढूँढने पर पता चलता है कि वो शंखचूड़ के स्थान पर स्वयं की बलि देने गया है। सब उसे खोजते हुए गरुण वाले पर्वत-शिखर पर पहुँच जाते हैं। वहाँ पहुँचकर वे देखते हैं कि जीमूतवाहन एकदम मृतप्राय अवस्था में है। अपने माता-पिता को देखकर वो उन्हें प्रणाम करके सदा के लिए आँखें मूँद लेता है। इसके बाद भगवती गौरी प्रकट होती हैं और जीमूतवाहन समेत सभी नागों को प्राण दान देती हैं।

संस्कृत नाटकों के पश्चात हिन्दी नाटकों का उद्भव हुआ इसलिए हिन्दी नाटकों पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव बखूबी देखा जा सकता है। नेवाज के ‘शकुंतला’ से राधावल्लभ त्रिपाठी के नाटक ‘कथा शकुंतला की’ तक हिन्दी नाटकों की परंपरा संस्कृत नाटकों के प्रभाव से अछूती नहीं रही है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत मुनि ने रूपकों के दस भेद माने हैं, इन्हें दशरूपक की संज्ञा दी गई है। इन दशरूपकों में नाटक सबसे महत्वपूर्ण रूपक है। एक तरह से नाटक ही रूपक का पर्याय हो गया है।

“नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।

ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।” (साहित्यदर्पण सूत्र 6.3)

हर्ष ने अपने नाटकों में जिन रूपकों का प्रयोग किया है, उन्हें इक्कीसवीं सदी के नाटकों में भी देखा जा सकता है। हर्ष चित्रों के शिल्पी हैं। उनके तीनों नाटकों में ये विशेषताएं स्पष्ट तौर पर परिलक्षित होती हैं। ‘रत्नावली’ नाटिका में एक स्थान पर विदूषक कहता है-

“अहा हा! आश्चर्य ! आश्चर्य ! वाह रे श्रीखंड दास धर्मात्मा वाह! जिसके द्वारा दिए गए उस दोहद से नावमालिका इस प्रकार की हो गई कि निरंतर विकसित होने वाले पुष्प-गुच्छों से शोभित शाखाओं वाली (नव-मालिका) महारानी द्वारा अपनाई गई माधवीलता का मानो उपहास कर रही हो।”² यहाँ प्रकृति अपने सजीव रूप में संवाद कर रही है। नाटककार ने प्रकृति का बोलत हुआ चित्र बना दिया है। ठीक इसी प्रकार ‘कथा शकुंतला की’ नाटक में वसंतक कहता है-

“सचमुच घना जंगल है, अनमना धिनौना जंगल है... ये वटवृक्ष कितनी मोटी-मोटी इनकी जड़ें लटक रहीं हैं, ऐसा लगता है जड़ें नहीं कोड़े हैं, जो हमारी पीठ पर अभी बरसने लग जाएंगे... पता नहीं कब कौन-सी कँटीली झाड़ी हमें अपनी कँटीली शाखाओं में फंसा ले... बड़ी विपत है भाई... तिस पर राजा की इस तरह लुप्त हो जाना..”³

ये दोनों संवाद अलग-अलग समय में लिखे गए हैं, किन्तु दोनों में प्रकृति अपने जीवित स्वरूप में उपस्थित होती दिखाई दे रही है। प्रकृति का ऐसा ही सजीव चित्रण सुमन केशरी के नाटक ‘हिडिंबा’ और त्रिपुरारी शर्मा के नाटक ‘सीता पुनर्नवा’ में भी दिखाई पड़ता है। हालांकि संस्कृत और हिन्दी के नाटकों में एक मूलभूत अंतर रहा है वो गद्य और पद्य का है। “शताब्दियों पीछे लौटकर देखें तो यह तथ्य सामने आता है कि संस्कृत परंपरा के नाटक गद्य में न होकर पद्य में ही निबद्ध रहे हैं और उनका वास्तविक संयोजन काव्य की शर्तों पर ही हुआ है। कालिदास, भास, भवभूति आदि के विख्यात नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मेघदूत, स्वप्न वासवदत्ता और उत्तर रामचरित नाटक बाद में हैं, वे काव्य पहले हैं।”⁴ हालांकि गद्य और पद्य का अंतर होने के बाद भी रूपकों की समानता कई स्थानों पर दिख जाती है। ‘नागानन्द’ नाटक के प्रारंभ में मंगलाचरण में भगवान बुद्ध की स्तुति की गई है-“तत्त्व ज्ञान के निमित्त समाधि-स्थित बुद्ध भगवान तुम्हारी रक्षा करें।”⁵ हालांकि इसके बाद पूरे नाटक में बौद्ध धर्म का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है। नाटक के प्रारंभ में बौद्ध की स्तुति को वैदिक और बौद्ध धर्म के समन्वय के रूप में देखा गया। इधर इक्कीसवीं सदी में लिखे गए नाटक ‘सम्राट् अशोक’ में बौद्ध धर्म का प्रभाव खूब दिखाई देता है। नाटक के सत्रहवें दृश्य में सम्राट् अशोक कहते हैं- “हम चाहते हैं कि बौद्ध समवाय अद्वितीय हो। जैसा न पहले हुआ हो, और न भविष्य में हो सके।”⁶ बौद्ध धर्म का यह प्रभाव सदियों के पार भी नाटकों में बखूबी दर्ज हो रहा है।

दशरूपकों के भेद में एक भेद ‘इहामृग’ माना गया है। इसके अनुसार नायक मृग के समान नायिका को प्राप्त करने की कामना करता है। हर्ष के दो नाटकों ‘प्रियदर्शिका’ और ‘रत्नावली’ में नायक के विवाहित होने के बाद भी किसी अन्य स्त्री से प्रेम व्यापार करता है और अंततः उसकी पहली पत्नी उसे दूसरा विवाह करने की अनुमति दे देती है। इस प्रकार का एक दृश्य ‘स्वयंदीपा’ नाटक में भी है जहाँ आचार्य शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह ययाति से होता है किन्तु विवाह के कुछ समय बाद ही ययाति देवयानी के साथ महल में दासी बनकर आई दैत्य राज की पुत्री शर्मिष्ठा पर मोहित हो जाते हैं और उससे गंदर्भ विवाह कर लेते हैं। लेकिन यहाँ पर देवयानी इस विवाह को हर्ष के नाटकों की नायिकाओं की भांति स्वीकार नहीं करती है। वो कहती है- “राजर्षि ययाति के साथ अपना दाम्पत्य जीवन भरपूर समर्पण और निष्ठा से जिया। छक कर घूँट-घूँट रस पिया मैंने। प्रेम का रंग समझ कर जिस पर इठला रही थी, क्या पता था मृगमरीचिका निकलेगा! कई वर्ष बीतनी के बाद पता चला की मैं धोखे के संसार में जी रही थी।”⁷ यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि समय के साथ हमारा समाज भी बहुत बदल गया है। इसमें व्याप्त कई सारी कुप्रथाएं अब समाप्त हो गई हैं या समाप्त होने की ओर हैं। इनमें से एक बहुपत्नी प्रथा भी है। जिस प्रथा को हर्ष ने अपने नाटकों में समर्थन किया है, उसी प्रथा को इक्कीसवीं सदी के नाटककार एक सिरे से झुठला रहे हैं, उसके विरोध में अपना स्वर मुखर रहे हैं। ‘नागानन्द’ नाटक भगवती गौरी कहती हैं-

“हंसों से उपयुक्त स्वर्ण-कमलों की धूलि के संसर्ग से होने वाले कीचड़ से रहित, मेरे मनरूपी मानसरोवर से उत्पन्न, महापवित्र, स्वेच्छा से बनाए गए मणियों के घड़ों में रखे तथा स्वेच्छा से प्राप्त हुए जलों से

अभिषेक करके यह मैं प्रसन्नता से तुम्हें क्षण-भर में विद्याधरों का चक्रवती राजा बनाती हूँ।”⁸ शुभकार्य हेतु पवित्रता के यह सब प्रतीक इक्कीसवीं सदी के नाटकों में भी देखने को मिलते हैं।

हर्ष के नाटकों में शृंगार रस के साथ वीर रस को प्रधानता दी गई है। ‘नागानन्द’ नाटक में तो दया और अहिंसा धर्म की स्थापना करने का प्रयास किया गया है। जब जीमूत वाहन का मित्र उसे शत्रुओं के आक्रमण की सूचना देता है तो वो कहता है- “यदि तुम मेरे लिए अच्छी बात करना चाहते हो, तो राज्य के लिए क्लेशों का दास बने हुए बेचारे मतंग पर दया करो।”⁹ इक्कीसवीं सदी में लिखे गए नाटकों विशेष तौर बापू पर लिखे गए नाटकों में अहिंसा पर बल दिया गया है। ‘बापू’ नाटक में बापू कहते हैं- “कांग्रेस के विधान में था कि ‘स्वराज’ के लिए ‘उचित और ‘शांतिपूर्ण’ उपाय कए जाएंगे- मैंने कहा कि ‘उचित’ और ‘शांतिपूर्ण’ की जगह अब ‘सच्चे’ और ‘अहिंसक’ कर लेना चाहिए।”¹⁰ बापू अहिंसा के इतने बड़े समर्थक थे कि इसके लिए वे कांग्रेस छोड़ने तक को तैयार हो गए। अहिंसा की यही सीख ‘पाकिस्तान में गाँधी’, ‘कस्तूरबा के गाँधी’ व ‘गोडसे@गाँधी.कॉम’ जैसे नाटकों में भी दी गई है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि हर्ष के नाटकों के कई रूपक इक्कीसवीं सदी के नाटकों में स्पष्ट तौर पर देखे जा सकते हैं। इनमें प्रकृति के तत्व पेड़-पौधे, जंगल, पशु-पक्षी विशेष रूप से हैं। इसके अलावा इनके नाटकों में पौराणिक पात्रों व मान्यताओं का भी बखूबी प्रयोग किया गया है। ये सब वर्तमान समय के नाटकों में भी दिखाई देता है। इसके अलावा शृंगार रस, वीर रस, शांत रस, दया व अहिंसा का भाव जो हर्ष के नाटकों में मौजूद हैं वह भी वर्तमान समय के हिन्दी नाटकों में दिखलाई देता है। जब तक हिन्दी साहित्य में नाटकों की परंपरा रहेगी तब तक हर्ष के रूपकों का प्रभाव न्यूनाधिक रूप में बना रहेगा।

संदर्भ -

1. आधुनिक भारतीय रंगलोक, जयदेव तनेजा, वाणी प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2023, पृष्ठ सं. 13
2. रत्नावली नाटिका, व्याख्याकार डॉ. बालगोविंद झा, चौखंबा कृष्णदास अकादमी, चतुर्थ संस्करण, 2011, पृष्ठ सं 79
3. कथा शकुंतला की, राधावल्लभ त्रिपाठी, राधाकृष्ण पेपरबैक, पहला संस्करण, 2020, पृष्ठ सं. 73
4. रंग विमर्श, ज्योतिष जोशी, नयी किताब प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2024, पृष्ठ सं. 15
5. नागानन्द नाटक, संपादक डॉ. संसार चन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण, 1986, पृष्ठ सं. 1
6. सम्राट अशोक, दया प्रकाश सिन्हा, वाणी प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण 2019, पृष्ठ सं. 103
7. स्वयंदीपा, माधुरी सुबोध, विजया बुक्स, प्रथम संस्करण, 2014, पृष्ठ सं.61
8. नागानन्द नाटक, संपादक डॉ. संसार चन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण, 1986, पृष्ठ सं.219
9. नागानन्द नाटक, संपादक डॉ. संसार चन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, संस्करण, 1986, पृष्ठ सं. 118
10. बापू, नन्दकिशोर आचार्य, नटरंग पत्रिका, अंक-77, मार्च, 2006, पृष्ठ सं. 8

4

रत्नावली में सांस्कृतिक एवं सामाजिक जनजीवन

धनञ्जय मणि त्रिपाठी

‘रत्नावली’ नाटिका में श्री हर्षकालीन लोक-जीवन का दिग्दर्शन होता है। इस नाटिका में लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कुछ इस प्रकार है -

साहित्य तथा कला- श्री हर्ष के रूपकों में संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के प्रयोग में व्याकरण संबंधी कोई भूल नहीं हुई है। नाट्य-कला की उन्नत स्थिति निपुण कवि, गुण ग्राही परिषद, लोकहारि चरित और नाट्यदक्षता का उल्लेख भी इस नाटिका में देखने को मिलता है। गीत, नृत्य, वाद्य, चित्र आदि अन्य ललित कलाओं की उन्नति के संकेत भी स्थान-स्थान पर देखने को मिलते हैं। नान्दी, प्ररोचना, नायक द्वारा नायिका की सौन्दर्य प्रशंसा इत्यादि से साहित्य पर महाकाव्यों एवं पुराणों का पर्याप्त प्रभाव प्रमाणित होता है।³ स्त्रियाँ चित्रकला में भी रुचि रखती थीं। सागरिका द्वारा उदयन का चित्र और सुसंगता द्वारा सागरिका का चित्र बनाया जाता है। इन दोनों के चित्र अत्यन्त कलात्मक एवं सजीव जैसे प्रतीत होते हैं। इनमें मनोभावों का भी अंकन किया गया है। यथा -यद्यपि मेऽतिसाध्वसेन वेपतेऽयमतिमात्रमग्रहस्तस्तथापि तस्य जनस्यान्यो दर्शनोपायो नास्तीति यथातथालिख्यैनप्रेक्षिष्ये।⁴ यद्यपि अत्यन्त घबराहट से मेरा हस्ताग्र भाग काँप रहा है तथा उस प्रियतम के दर्शन का कोई अन्य उपाय नहीं है। अतः जैसे-तैसे चित्र आदि उपाय से इनको देखूँगी। सागरिका उदयन का चित्र बनाती है। उस चित्र को देखकर सुसंगता उदयन के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र बना देती है। यादृशस्त्वया कामदेव आलिखितस्तादृशी मया रतिलिखिता।⁵ जैसे तुमने कामदेव को चित्रित किया, उसी प्रकार मैंने रति को (कामदेव की पत्नी) चित्रित कर दिया है। स्त्रियाँ अनेकविध श्रृंगार करती थीं। केशों को विविध प्रकार से बांधकर उसमें पुष्प रचना करती थीं। चरणों में लाक्षारस, हाथों में कंगन, कानों में कर्णाभरण, गले में रत्नावली तथा पैरों में नुपुर धारण करती थीं। सागरिका की रत्नमाला बहुमूल्य एवं रत्नों की माला है जिससे उसकी पहचान होती है।

राजनैतिक स्थिति - श्री हर्ष के समय में युद्ध में हाथी, घोड़ा, पैदल, सिपाहियों का वर्णन आया है।⁶ इनके समय में स्वामिभक्त सेवक, बुद्धिमान मंत्री, समित्र, अनुरक्त प्रजा, युद्ध कुशल शूरवीर तथा साहसी राजा और सेनापति एवं अन्य राजाओं से लाभप्रद सम्बन्ध ये सभी बातें राजनीतिक महत्त्व रखती थीं। रुम्पवान और यौगन्धरायण के कथनों से सेवकवर्ग पर राजा का प्रताप भली-भाँति प्रकट होता है। यथा -

राज्यं निर्जीतशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः। सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।।⁷

राज्य के सारे शत्रुओं को जीत लिया है। राज्य का सारा भार योग्य मंत्रियों पर रख दिया है। प्रजायें जिनके उपद्रव शान्त कर दिए गये हैं, सम्यक्तया रक्षित होकर वृद्धि को प्राप्त हो रही हैं। इस नाटिका के चतुर्थ अङ्क में राजा उदयन स्वयं कहता है – नीतो विक्रमबाहुरात्म समतां प्राप्तयमुर्वी तले, सारं सागरिका ससागर मही प्राप्येक हेतुः प्रिया। देवी प्रीति मुपागता च भगिनी लाभाज्जिताः कोसलाः, किं नास्ति त्वयि सत्यमात्य वृषभे यस्मै करोमि -स्पृहास्।⁸

विक्रमबाहु को आत्मीय बना लिया। पृथ्वीतल की सारभूत सागर समेत सारी पृथ्वी की प्राप्ति की एकमात्र कारणभूत यह प्रिया सागरिका को प्राप्त कर लिया। बहिन के मिल जाने से महारानी वासवदत्ता सन्तुष्ट हो गई और कोसलदेश को भी जीत लिया। तुम सरीखे श्रेष्ठ मन्त्री के होने पर मेरे पास क्या नहीं है, जिसकी मैं इच्छा करूं ?

आर्थिक स्थिति :- भारत की आर्थिक स्थिति श्री हर्ष के समय में उत्कृष्ट थी। द्वीप -द्विपान्तरों से जलयानों द्वारा व्यापार होता था।⁹ श्री हर्षकालीन आर्थिक समृद्धि का अनुमान रत्नावली के प्रथम अङ्क में वर्णित वसंतोत्सव में पुरजनों के प्रमोद और कौशांबी के शोभा वर्णन से द्योतित होता है। इस नाटिका में राजकीय जीवन, सांस्कृतिक संपन्नता, राजमहलों, दरबारों और उत्सवों का वर्णन अत्यंत भव्य और समृद्ध है। हर्षवर्धन के काल में व्यापार के माध्यम से राजकोष सम्पन्न था। नाटिका में संगीत, नृत्य और उत्सवों का सुंदर वर्णन यह दिखाता है कि कला और संस्कृति को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। इसके अतिरिक्त उत्सवों में आभूषणों और शाही परिधानों का विस्तृत वर्णन हुआ है। हाथी दांत की अटारी¹⁰, मरकत मणियों की शिलाओं के फर्श¹¹, रेशमी वस्त्रों का जोड़ा¹², स्फटिक शीला मंडप¹³, चित्रशाला¹⁴ इत्यादि का वर्णन मुख्यतः आर्थिक संपन्नता को ही द्योतित करते हैं।

धार्मिक स्थिति :- रत्नावली में शिव और विष्णु भक्ति की उपासना के प्रचलन के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म के पुनरभ्युदय का भी पता चलता है और प्रियदर्शिका में जहाँ धर्मभावना, उपवास, गुरुपूजा, ब्राह्मण-सत्कार, सत्संगति की वांछनीयता, स्वस्ति वाचन, अर्घ्यदानादि तक सीमित है वहीं रत्नावली में उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत कहीं अधिक व्यापक है। इस नाटिका में वसंतोत्सव का उल्लासपूर्ण वर्णन किया गया है। यह हिन्दू समाज में त्योहारों और ऋतु आधारित धार्मिक आयोजनों की महत्ता को दर्शाता है। स्मृतिवाक्यों का पर्याप्त प्रभाव श्रीहर्षकालीन समाज पर दिखाई पड़ता है। 'सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्' का अक्षरशः पालन द्वितीय अङ्क में राजा और विदूषक कृत वासवदत्ता-समाश्वसन में हुआ है। ब्राह्मणों का आदर इस नाटिका में प्रयुक्त नान्दी, कुसुमायुध पूजा सागरिका द्वारा विदूषक (ब्राह्मण) को रत्नमालादान और भरतवाक्य आदि में स्पष्ट हुआ है। विवाहित स्त्रियाँ धार्मिक स्वभाव की हुआ करती थीं। वे व्रत-उपवास आदि धार्मिक कृत्यों का पालन करती थीं। उपवास के पश्चात् वे स्वस्तिवाचन के रूप में ब्राह्मणों को दान दिया करती थीं। उपर्युक्त संकेत ब्राह्मण धर्म के व्यापक प्रभाव को ही इंगित करते हैं।

सामाजिक स्थिति :- तत्कालीन समाज में लोग कर्मफलवादी, कुलीनतावादी एवं मंत्र -तंत्र, कर्मकाण्ड आदि में विश्वास करते थे।

कर्मफल एवं कुलीनतादी धारणा :- रत्नावली नाटिका में आए 'घटयतति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः'¹⁵ कथन भाग्य (कर्मफलवादी) धारणा को तथा 'इत्थं नः सहजाभिजात्य जनिता सेवैव देव्याः परम्'¹⁶ कुलीनतावादी धारणा को प्रकट करने वाले वचन हैं।

मंत्र-तंत्र में विश्वास :- रत्नावली नाटिका के द्वितीय अङ्क के प्रवेशक में निपुणिका नामक दासी बताती है- 'वत्सराज ने श्रीपर्वत से आये खंडदास नामक किसी धार्मिक पुरुष से वृक्षों एवं लताओं में अकाल में ही पुष्प उत्पन्न करने की विद्या सीखी है, जिसके द्वारा अपनी प्रिय नवमालिका में पुष्पोद्गम करेंगे।' ¹⁷ इसी प्रसङ्ग में इस नाटिका में राजा उदयन मंत्र, मणि व औषधियों के अचिन्त्य प्रभाव का वर्णन करता है। 'अचिन्त्यो हि मणिमंत्रौषधीनां प्रभावः' ¹⁸ इसी नाटिका के चतुर्थ अङ्क में उज्जयिनी से आया सर्वसिद्धि नामक ऐन्द्रजालिक वत्सराज व वासवदत्ता के समक्ष इन्द्रजाल के दृश्य प्रस्तुत करता है। उसकी प्रतिज्ञा है कि अपने गुरु से सीखे मंत्रों के प्रभाव से सबकुछ दिखा सकता है। मम प्रतिज्ञैषा यद्यद् हृदयेनेहसे संद्रष्टुम्। तत्तद्दर्शयाम्यहं गुरोर्मन्त्रप्रभावेण। ¹⁹ राजप्रासाद में लगी आग वस्तुतः ऐन्द्रजालिक दृश्य है ²⁰ जिसके पीछे यौगनन्धरायण की योजना कार्य करती है।

खाद्य पदार्थ :- खाद्य पदार्थों में मोदक ²¹, दधिभक्त ²², सस्य ²³ और खांड का उल्लेख मिलता है। इतने से ही लोगों के भोजन में दूध, दही, घी, चीनी, भात और अनाज का उपयोग प्रमाणित हो जाता है। उत्सव प्रसंग में आसव, मदिरा आदि का उल्लेख भी तीनों रूपकों ²⁴ में मिलता है।

उत्सवों का महत्त्व :- रत्नावली नाटिका में मदनमहोत्सव का वर्णन आया है। इस सामाजिक उत्सव में स्त्री-पुरुष स्वच्छन्द रूप से भाग लेते हैं। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि उस समय भी समाज में अनेक उत्सव प्रचलित थे, जो सामूहिक रूप से मनाए जाते थे। स्त्री और पुरुष स्वच्छन्दतापूर्वक एक साथ भाग लेते थे। उस युग में मदनमहोत्सव एक प्राचीन उत्सव था। जिसे वर्तमान समय में वसंत पंचमी तथा होलिकोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस नाटिका में मदनमहोत्सव का रमणीय वर्णन किया गया है। ²⁵ कौशाम्बी नगरी चारों तरफ अबीर और गुलाल से पीली-पीली सी दिखलाई देती है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे पर पिचकारी से रंग डालते हैं जिससे फर्श लाल रंग से रंगा हुआ प्रतीत होता है।

कीर्णैः पिष्टातकौधैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरैः हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैडिकरातैः। एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविशता शेष वित्ते कोशा कौशाम्बी शातकुम्भद्वयखचितजनेवैकपीता विभाति। ²⁶

अर्थात् केसर रज से पीले, प्रातःकालीन छटा को उपस्थित करने वाले बिखरे गये सुगन्धित चूर्ण (अबीर, गुलाल), स्वर्णाभूषणों की कान्ति वाले अशोक पुष्पों के भार से झुकी हुई चोटियों, सोने के पानी से पुती व्यक्तियों (पीतवस्त्राभूषण युक्त) एवं वेष-भूषा से अभिलक्ष्य अपने वैभव से कुबेर के सम्पूर्ण खजाने को जीते हुए यह कौशाम्बी नगरी पील-पीली सी दिखाई दे रही है।

स्त्रियाँ नगरपुरुषों पर पिचकारी लेकर रंग डालती थीं तथा चारों ओर सिन्दूर की कीचड़ से फर्श लाल हो जाते थे-

पर्दा प्रथा :- पर्दा या अवगुंठन नारी की विनयशीलता और लज्जा का सूचक माना जाता था। रत्नावली नाटिका में एक सामाजिक प्रथा के रूप में नहीं अपितु यथावसर स्त्रियों में अवगुंठन का प्रयोग प्रचलित था। ²⁷

बहुविवाह प्रथा : राजाओं के रति-लम्पट स्वभाव का संकेत हर्ष ने भी अपनी नाटिकाओं में किया है। इनकी दोनों ही नाटिकाओं (प्रियदर्शिका तथा रत्नावली) में वासवदत्ता अपने पति की रासलीला से आतंकित दिखाई देती है। उस समय बहुविवाह की परम्परा थी। पुरुष को अधिकार था कि वह अनेक पत्नियाँ रख सकता था। उदयन के अनेक विवाह हो चुके थे तब भी वह रत्नावली को अपनी पत्नी बनाने का इच्छुक था और अंत में वह उसे अपनी पत्नी बना लेता है।

रत्नावली में विदूषक सागरिका की सखी सुसङ्गता से मिलकर राजा और सागरिका के एकान्त मिलन की योजना बनाता है। इस योजना के अनुसार वह प्रदोषकाल में चित्रशाला के द्वार पर आकर क्रमशः वासवदत्ता और काञ्चनमाला का वेष बनायी हुई सागरिका और सुसङ्गता को माधवीलता में स्थित राजा से मिला देगा। परन्तु वासवदत्ता को चेटी के द्वारा इनके षड्यंत्र का पता लग जाता है और वह काञ्चनमाला के साथ स्वयं संकेत स्थान पर पहुँच जाती है। राजा और विदूषक वासवदत्ता को उसके वेश में सागरिका समझते हैं। राजा वासवदत्ता को सागरिका समझकर अपना प्रेम प्रकट करता है।²⁸ राजा की इस धूर्तता को वासवदत्ता सहन नहीं कर पाती और क्रोध में आकर स्वयं को प्रकट कर देती है। प्रेमिकाओं से छुपछुपकर मिलने से, पुरुषों की धूर्तता भरे व्यवहार से स्त्रियों के हृदय को कितनी ठेस पहुँचती होगी इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। परन्तु कोमल हृदय वाली स्त्रियाँ पति का अन्य स्त्री से प्रेम होने पर भी अपने पति से प्रेम करती थीं। क्या यह उनकी सामाजिक विवशता थी अथवा सदाशयता-कहना कठिन है। इसी नाटिका में अग्निकाण्ड का दृश्य उपस्थित होने पर हम वासवदत्ता के दयालु हृदय की सच्ची झलक देखते हैं। राजा के अग्निप्रवेश पर एक सच्ची सती साध्वी पत्नी की तरह वह भी उसका अनुगमन करके दूसरों के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है।²⁹

इस प्रकार श्रीहर्ष की रत्नावली नाटिका में समकालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक जन-जीवन की पुष्टि होती है। यह नाटिका उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को न केवल प्रदर्शित करती है, बल्कि इसे एक आदर्श रूप में प्रस्तुत भी किया गया है। इसमें न केवल उस युग का प्रतिबिम्ब है, बल्कि आज भी हमें तत्कालीन भारतीय समाज की सांस्कृतिक गरिमा और सामाजिक चेतना से परिचित कराती है। यह नाटिका उत्कृष्ट नाट्यकला का सुंदर उदाहरण है। इसमें एक आदर्श नाटिका के सारे गुण विद्यमान हैं। हम कह सकते हैं कि हर्ष की रत्नावली ही सर्वप्रथम सफल नाटिका है।

सन्दर्भ -

1. दशरूपक 1/16	2. साहित्यदर्पण 6/42	3. रत्नावली 1/1
4. रत्नावली 2/पृ. -60	5. रत्नावली 1/पृ. -52	6. रत्नावली 4/पृ. 179
7. रत्नावली 1/9	8. रत्नावली, 4/21	9. रत्नावली 1/पृ. 14
10. रत्नावली 3/ पृ. 120	11. रत्नावली 3/पृ. 135	12. रत्नावली 4/पृ. 167
13. रत्नावली 4/पृ. 170	14. रत्नावली 3/पृ. 137	15. रत्नावली 2 /6
16. रत्नावली 3/18	17. रत्नावली 2/पृ. 42	18. रत्नावली 2/पृ. 56
19. रत्नावली 4/9	20. रत्नावली 4/पृ. 170	21. रत्नावली 4/22
22. रत्नावली 1/पृ. 16	23. प्रियदर्शिका 2/20	24. रत्नावली 1/16
25. रत्नावली 1/पृ. 17	26. रत्नावली 1/पृ. 10-18	27. रत्नावली 3/पृ. 113
28. रत्नावली, तृतीय अङ्क	29. रत्नावली 4/पृ. 160	

5

श्रीहर्ष के रूपकों में मानवाधिकार-बोध एवं तज्जन्य प्रवृत्तियाँ

दशरथ कुमार चौधरी

शासक श्री हर्ष ने प्रजा को सदैव धार्मिक सहिष्णुता की प्रेरणा दी।¹ श्री हर्ष ने अशोक की धर्म-परायणता, समुद्रगुप्त की साहित्यिक अनुरक्ति तथा दिग्विजय महत्त्वकांक्षा तथा अकबर की वाल्यात्प्रभूति कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए विशाल साम्राज्य निर्माण एवं उत्तमशासनप्रवन्ध क्षमता, धार्मिक सहिष्णुता, विद्यानुराग इत्यादि गुणों का अनुपम समन्वय था।²

उन्होंने अपने साम्राज्य में मांसाहार और पशुवध वन्द करा दिया था। उन्होंने ऐसी धर्मशालाएँ स्थापित की थी जिनमें बिना मूल्य भोजन एवं औपधियों का प्रवन्ध था।³

कर्मणा मृतसा वाचा कर्तव्य प्राणिभि, हर्षणैतत्समाख्यातं धर्मर्जिन्मनुत्तमर्हितम्।

वे न्याय और कर्तव्यनिष्ठ शासक थे। सत्कार्य-सम्पादन में भूख, निद्रा को भी भूल जाते थे। अच्छे राजाओं से उनकी मित्रता थी, किन्तु दुष्टों से वे बात तक नहीं करते थे।⁴ हेनसांग के अनुसार श्री हर्ष की दिनचर्या के तीन समय विभाग थे, जिनमें से एक भाग शासन-कार्य के लिए और दोभाग धार्मिक कृत्यों के लिए थे।⁵ परार्थ में संलग्न मानसिक एवं शारीरिक परिश्रम के कारण वे जीवन के साठ वर्ष पूर्ण न कर पाये और देश के सर्वतोमुखी विकास के लिए अनवरत प्रयत्न किया। वे निःसन्देह भारत के सबसे महान शासकों में से एक थे।⁶

शासक का महत्त्व

छठीं शताब्दी के बाद एकतन्त्रीय शासन-पद्धति ही प्रमुख शासन प्रणाली थी और समुद्रगुप्त की हरिषेणकृत प्रशस्ति के विष्णु प्रतिनिधि 'न्यायावतार' आदि शब्दों से प्रकट है, राजा का ईश्वरीय अधिकार मात्र था, परन्तु बाण ने मर्त्य राजाओं के दैवी अधिकार के इस अभिमान को उनके पतन का कारण बतलाते हुए राजा का जो आदर्श निरूपित किया है, उसी में वस्तुतः राजा का महत्त्व है। बाण के अनुसार आदर्श राजा वह है।⁷ जो अपने दायित्वों और कर्तव्यों को अन्तरात्मा से पालन करता हुआ मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रयत्न करे।

चीनी यात्री देनसांग ने श्री हर्ष द्वारा इस आदर्श के कार्यान्वित होने का साक्ष्य दिया है।⁸ श्रीहर्ष की आय का कोई आधा भाग विद्या और धर्म के कार्यों पर व्यय होता था। हेनसांग ने लिखा है कि हर्ष के अनुकरण पर बहुत से हिन्दू राजा भी साधु, विद्वान, अनाथ, विधवा और दीन-दुःखियोंको बहुत दान दिया करते थे। हेनसांग के वर्णनानुसार श्री हर्ष की शासन-व्यवस्था उत्तम थी। कर हलके थे। जनता पर कोई अत्याचार

नहीं होता था। विपत्ति या बेगार की प्रथा गुप्तकाल से ही चली आ रही थी, किन्तु उसका उपयोग बहुत कम होता था। साधारणतः श्रम का मूल्य दिया जाता था। मार्ग कम निरापद थे। अतः आवश्यकतावश दण्ड विधान कठोर करना पड़ा था, किन्तु जनता सुखी थी और उसे एक अच्छे शासन के सभी लाभ प्राप्त थे।⁹

श्री हर्ष द्वारा रचित नाटिका 'प्रियदर्शिका' में शासक के अधिकार एवं कर्तव्य की चर्चा की गई है। प्रियदर्शिका के प्रथम अंक में कञ्चुकी ने शोक द्वारा शासक के प्रति अपनी वेदना पूर्ण वचनों से अभिव्यक्ति की है, क्योंकि बहुत दिनों तक जीते रहने से अपने प्रिय राजा की बड़ी-बड़ी दुर्दशाएँ मुझे देखने को मिली, राजाओं को विपत्ति का सामना करना पड़ा, उसे बन्धुओं के वियोग का दुःख भोगना पड़ा। देश निकाला हुआ, दुर्गम मार्ग का कष्ट उठना पड़ा।¹⁰

राज्ञाविपद्बन्धुवियोगदुःखं देशच्युतिदुर्गममार्गखेदः । आस्वाद्यतस्याः कटुनिष्फलायः रंजीवितायाः ।

वत्सराज अतिदृढ़ कारागार से मुक्त होकर प्रद्योत की कन्या वासदत्ता को प्राप्त करने से उत्कर्षशाली हो धराधाम पर प्रताप से तप रहे हैं। कलिङ्ग को वन्दी बनाये जाने पर कड़े संघर्ष के उपरान्त कारागार से मुक्त होना और शासक का उत्तरदायित्व सम्भालना राजा की श्रेष्ठ मेधा का परिचायक है।¹¹ मेरी अनुपस्थिति में भी नौकरों की अविकृत भाव से कार्यतत्परता देख लो, मन्त्रियों की बुद्धिमानी का पता पा लिया, मित्रों का परिचय हो गया, खासकर पुरवासियों के स्नेह का ज्ञान हो गया, युद्ध में अपेक्षित साहस की उपलब्धि हो गई और स्त्री-रत्न की प्राप्ति भी हो गई।¹²

अन्तः पुराणां विहित व्यवस्थः, पदे पदेदहं स्वलितानि रक्षम ।

जरातुरः सम्प्रति दण्डनीत्या, सर्व नृपस्यानुकरोमि वृत्तम् ।। 3 ।।

उधर रत्नावली में राजा उदयन राज्य-भरण पोषण का सम्पूर्ण भार योग्य मंत्री को सौंपकर भली-भाँति लालन-पालन की हुई प्रजाएँ सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित हैं, फिर प्रद्योत पुत्री (वासवदत्ता) वसन्त समय और तुम हो, इसलिए कामदेव (मदन महोत्सव इस) नाम से भले ही सन्तोष प्राप्त कर ले, किन्तु मैं समझता हूँ कि यह महान उत्सव मेरा है, मेरा मानवीय मूल अधिकार है।¹³ नागानन्द नाटक में जीमूतवाहन शासक अपने मित्र विदूषक से वार्तालाप द्वारा मुस्कराता हुआ कहता है कि प्रजा न्याय के मार्ग में लगा दी है; सज्जन पुरुषों को सुख-पूर्वक अपने अपने स्थानों में बिठा दिया है, बन्धु-बान्धवों को अपने वरावर ही बना डाला है, राज्य की रक्षा कर दी है, इच्छा से अधिक फल देने वाला कल्प-वृक्ष भी याचकों को दे डाला है। इससे अधिक मेरे करने योग्य मानव हित कौन सी बात मन में बैठी हुई है।¹⁴

न्याय्ये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता, नीतो बन्धुजनस्तथात्मसमतां राज्ये च रक्षा कृता ।

दत्तो दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽप्यर्थिने, किं कर्तव्यमतः परं कथय वा यत्ते स्थित चेतसि ।। 8 ।।

ऐसे शासक देश के लोकतन्त्र में अदृश्य हैं। जीमूतवाहन का कहना है कि जो तुम्हारे मरने पर मर जाने वाली है और तुम्हारे जीते रहने पर जीवित रहती है, उस माँ को यदि तुम जीवित रखना चाहते हो, तो मेरे प्राणों से अपने को सुरक्षित रख लो।¹⁵

ममैतदस्वार्पय वध्यचिद प्रावृत्य यावद्धि नता उत्तम जाय ।

पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयि तुं ददामि ।।

अपने शरीर को देकर साँप की रक्षा करते हुए मैंने आज जो पुण्य कमाया है, उससे जन्म-जन्म में प्रोपकार के लिए ही मुझे शरीर प्राप्त होवे। इस प्रकार की विचारधारा रखने वाला शासक दया एवं दान दो प्रकार का वीर कहलाता है।¹⁶

पति का कर्तव्य एवं अधिकार

महारानी वासवदत्ता, दृढ़ वर्मा द्वारा बन्दीगृह में भेज देने के उपरान्त राजा उदयन विदूषक से पूछता है कि तुमने केवल अन्धकारपूर्ण कारागृह ही देखा और तुम्हें बेड़ी के शब्द से पीड़ा हुई, किन्तु उसकी मीठी आवाज तुमने नहीं सुनी तुमने केवल बन्धन के ही दोष देखे हैं, प्रद्योत पुत्री वासवदत्ता के गुण नहीं देखे। अर्थात् पत्नी के प्रति पति का कर्तव्य दृष्टिगोचर होता है।¹⁷

दृष्ट चारकमन्धकारगहनं ना तन्मुखेन्दुद्यतिः, पीड़ा ते निगलस्वनेन मधुरास्तस्या गिरो न श्रुताः।

क्रूरा बन्धनरक्षिणोऽथ मनसि स्निग्धाः कटाक्षा नते, दोषान्पश्यसि बन्धनस्य न पुनः प्रद्योतपुत्या गुणान्।। 17।।

नायक अपनी प्रियतमा नायिका को भ्रमरों द्वारा सताये जाने पर उसे कहता है कि अरी, ओ भोली, विपाद का त्याग करो। सुगन्धि से लुभाये गये ये भ्रमर तुम्हारे मुख पक्ष पर आ रहे हैं, फिर भी यदि तुम इनके भय से आँखें इधर-उधर फैलाओगी तो भला ये तुम्हें कैसे छोड़ेंगे अर्थात् तुम मुझे पकड़ लो। नायक का नायिका के प्रति दया भाव के साथ स्वयं के अधिकारों का प्रयोग किया गया है।¹⁸

पत्नी के कर्तव्य एवं अधिकार

सागरिका राजा को देखकर कह रही है कि स्वामी तुम्हें देखकर मुझे सचमुच जीने की इच्छा पुनः होने लगी, अथवा इन्हें देखकर कृतार्थ होकर इस प्रकार से प्राण त्याग दूँगी। मुझे स्वामी छोड़ दे, छोड़ दे। इस पराधीन जन को मरने के लिए फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। सागरिका को राजा देखकर हे प्राणेश्वरी? तुम यह अत्यधिक साहस मत करो। तुम इस लतापाश को शीघ्र छोड़ दो। मेरे चल चुके हुए भी जीवन को रोकने के लिए मेरे इस गले में (अपना) बाहुपाश क्षण भर के लिए डाल दो। अर्थात् पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे के लिए प्राणों को न्योछावर करने के लिए तैयार रहते थे। इससे बढ़कर मानवाधिकार दाम्पत्य के लिए अन्य राष्ट्रों में देखने को नहीं मिलता।²⁰ नागानन्द नाटक में नायिका द्वारा आत्महत्या का प्रयत्न करने पर नायक जीमूतवाहन उसका हाथ पकड़ लेता है और कहता है कि जिस गले में लता सी मोतियों की माला पहनानी चाहिए, उस पर तुमने जिस हाथ से फाँस डाली है, वह हाथ अपराध करते पकड़ा गया है। इसलिए मैं इसे नहीं छोड़ सकता। अतः एक पति के कर्तव्य का निर्वाह किया है।²¹

माता-पिता का कर्तव्य एवं अधिकार

नागानन्द रूपकारम्भ में ही नारी व सूत्रधार ने माता-पिता की सेवा कार्य को महत्त्व दिया है। सूत्रधार का कहना है कि तुम नाटक के आरम्भ में रुदन कर अपशुक्न क्यों करना चाहती हो। नारी का कथन है कि सासजी एवं श्वसुरजी जिन्हें बुढ़ापा आया समझकर हाल ही में वैराग्य हो गया था, तपोवन चले गये थे, यह समझकर कि तुम अब कुटुम्ब का भार सम्भालने योग्य हो गये हो। अतः उन्होंने अपने कर्तव्य का निर्वाह कर गृहस्थ जीवन का भार तुम्हें सौंप दिया। भारतीय संस्कृति में पिता अपने रहते पुत्र को जीवित देखना चाहता है। अतः जीमूतकेतु अश्रु प्रवाह करते हुए कहता है कि यह अपना है और यह पराया है। इस तरह दया का क्रम एक व्यवस्था है, किन्तु मैं बहुतेरों की रक्षा करूँ अथवा एक की रक्षा करूँ, यह विचार तुम्हें क्यों नहीं हुआ? अपना जीवन परित्याग करते हुए तुमने गरुड़ से नाग को बचाने के लिए अपने आपको, अपने माता-पिता को तथा अपनी वधू तक को भूल गये अर्थात् माता-पिता का कर्तव्य है कि अपना पुत्र सुरक्षित रहे और उनका यह अधिकार भी है कि वृद्ध होने पर वह उनकी सेवा करेगा।²²

आत्मीयः पर इत्ययं खलु कुतः सत्यं कृपयाः क्रमः, कि रक्षामि वदन् किमेकमिति ते जाता न चिन्ता कथमूह
ताक्षयतिश्रातुमहिं स्वजीवितपरित्यागं त्वया कुर्वता, येनात्मा पितरो वधुरिति हतं निःशेषमेतत्कुलम्।।

माँ का अधिकार

शंखचूड़ के लिए उसकी माँ के हृदय से वात्सल्य आवेग उमड़ रहा है अर्थात् वह पुत्र वियोग में मूर्छित हो जाती है और विलाप करती हुई कहती है कि मैं तुम्हें कहाँ देखूंगी। निर्दयी गरुड़ ने अच्छा नहीं किया। वह पुत्र की रक्षा के लिए चारों दिशाओं में नेत्र दृष्टि को दौड़ाती है।²³ वृद्ध माँ अचानक घबराहट में पुत्र को चादर से ढक लेती है और घुटने टेककर गरुड़जी, मुझे मारो, मुझे ही नागराज ने आपका भोजन बनाकर भेजा है, परन्तु मेरे पुत्र को जीवित रहने दो। मुझे जीवित नहीं रहना। पुत्र पर कितना अधिक प्रेम होता है। ‘पुत्र कुपुत्र भले ही माता न कुमाता’ इस प्रकार पुत्र के प्रति वात्सल्य को देखकर सर्पों का शत्रु गरुण वृद्धा की विफलता कठोर हृदय में भी दया की भावना आविर्भूत हुई होगी।²⁴

वृद्ध माँ पुत्र की मृत्यु से डरी हुई सम्पूर्ण संसार को ही गरुणमय देख रही हैं। आज से शताब्दियों पूर्व भी प्रत्येक भारतीय नारी हर-एक-दूसरे के पुत्र को अपने पुत्र समान ही समझती थी। उदाहरणार्थ जब जीमूतवाहन वृद्धा से अपने पुत्र की रक्षा के लिए वध्य चिट्ठन मांगता है तो वह कहती है कि तुम मेरे लिए शंखचूड़ से भी अधिक प्रिय हो। पुत्र! मेरे लिए पाँचों अंगुलियाँ बराबर हैं। एक में जितना कष्ट होता है तो दूसरी में भी उतना ही होता है। अतः मैं पुत्र शंखचूड़ के बदले तुम्हारा शरीर गरुड़ को नहीं दे सकती, ऐसी अमंगलपूर्ण बात मत करो, अर्थात् यह वास्तविक मानवाधिकार है।²⁵

ममैतदम्बार्पय वध्यचिह्न प्रावृत्य यावद्विनताऽऽत्मजाय । पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयितुं ददामि ।।

पुत्र का कर्तव्य एवं अधिकार

उधर जीमूतवाहन यह कहता हुआ कि यह यौवन काम-वासना का घर है और मैं भली प्रकार से जानता हूँ कि यह क्षणभङ्गुर नहीं है, परन्तु इस संसार में कर्तव्य और अकर्तव्य के विवेचनों में सदैव प्रतिकूल ही रहा करता है। इन्द्रियों के अधीन रहने वाला यह यौवन मुझे तभी आनन्द दे सकता है, यदि भक्तिपूर्वक माता-पिता की सेवा करते हुए मेरा जीवन इस तरह ही बीतता जाए। “मातृदेवो भवः पितृ देवो भवः।” अर्थात् इनसे बढ़कर कोई देवता नहीं है।²⁶

मित्र का कर्तव्य एवं अधिकार

मनोरमा अपनी सखी अरण्यका के प्रति अपना कर्तव्य पालन कर रही है और कहती है कि श्वांस की तरह दिन-रात निकलने वाला तुम्हारा यह अनुराग सत्त गिरने वाले कामशर समुदाय में प्रवृत्त हुए शब्द की तरह कह रहा है। यह समय उलाहना देने का नहीं है। अतः सरोवर से कमल के पते लाकर रखती है, आरण्यका के लिए और कहती है कि धीरज रखो। हमारी संस्कृति में मित्र भाव भी एक मानवाधिकार का अंग है और साथ ही में यह रिश्ते से भी जोड़ दिया गया है।²⁷ राजा अपने मित्र विदूषक से कहता है कि हे मित्र! मैं ऐसा सोचता हूँ कि किसी ने प्रेम वश अपने प्रियतम का चित्र बनाकर उसे सखी के सामने कामदेव के बहाने छिपा दिया। उसकी सखी ने भी उसके अधिकार को पहचानकर अपने कर्तव्य का पालन किया है और वह निपुणता से वहीं उसका भी चित्र रति के बहाने बना दिया।²⁸

मंत्री का अधिकार

मंत्री यौगन्धरायण ने अपने स्वामी से अधिकारपूर्वक कहा कि जब देवी ने मेरे कहने से पति वियोग स्वीकार किया तब मैंने महाराज का दूसरी स्त्री से विवाह स्थिर करके देवी को कष्ट पहुँचाया और स्वामी चक्रवर्ती सम्राट होंगे, यह सत्य है, परन्तु मैं लज्जा से अपना मुख महारानी को नहीं दिखा सकता।²⁹ परन्तु स्वामिभक्ति का प्रण अत्यन्त माननीय के प्रति भी ऐसा निरपेक्ष व्यवहार करा देता है। अतः मैंने आपको बिना

बताये जो किया है, उसे क्षमा करें।³⁰ स्वामी! सुनिए। सिंहलेश्वर की इस पुत्री के बारे में सिद्धों ने भविष्यवाणी की थी कि जो इसका पाणि-ग्रहण करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। किन्तु उन्होंने महारानी वासवदत्ता की मनोव्यथा को बचाते हुए जब इसे नहीं दिया।³¹ प्रत्येक काल में मानव एक-दूसरे की भावना का सम्मान तो करता ही था। श्वर महारानी की वेदना को समझते हुए ही अपनी कन्या उसे देना नहीं चाहते थे। अर्थात् रत्नावली नाटिका में भी मानवाधिकारों की रक्षा की गई है।

सेवक का अधिकार

राजा उदयन का सेवादि कार्य करते हुए यौगन्धरायण कहता है कि सिंहलराज कुमारी का समुद्र में नौका के टूट जाने से डूबकर ऊपर उठने पर एक लकड़ी का तख्ता पा जाना और कहाँ सिंहल द्वीप से लौटते हुए कौशाम्बी के व्यापारी के द्वारा विपत्ति में पड़ी हुई उस राजकुमारी को आश्वासन देना और राजकुमारी को महारानी वासवदत्ता के हाथ में सम्मानपूर्वक सौंपकर उचित ही किया है, सो इस प्रकार स्वामी का कार्य करीब-करीब सिद्ध हो जाने पर भी मुझे धैर्य नहीं बँधा रहा है। इसलिए यह दासता निश्चय ही कष्टप्रद होती है।³²

सन्दर्भ -

1. BanasKadambard (Bombay Sanskrit Series) P. 208
2. An advanced History of India. P. 160
3. Ibid P. 286
4. Ibid pp. 343-44
5. Walters Volume 1 Page 344
6. बलदेव उपाध्याय-संस्कृत साहित्य का इतिहास (949) पृ. 60
7. कादम्बरी शुकनासोपदेश।
8. An Advanced History of India P. 194.
9. Ancient India., Majumdar P. 266
10. प्रियदर्शिका 1/4 टीकाकार : पण्डित रामचन्द्र मिश्र (श्री हर्ष देव प्रणीत)
11. प्रियदर्शिका 1/5, वही
12. प्रियदर्शिका 1/6, वही
13. प्रियदर्शिका 1/10 रत्नावली नाटिकाय टीकाकार तारिणीशङ्गा
14. नागानन्दम् 1/8
15. नागानन्दम् 4/17
16. नागानन्दम् नाटक 4/26
17. प्रियदर्शिका 1/7
18. प्रियदर्शिका 2/8
19. रत्नावली 4/पृ. 259
20. रत्नावली 3/47
21. नागानन्दम् नाटक 2/11
22. नागानन्दम् 5/21
23. नागानन्दम् 4/9
24. नागानन्दम् 4/42
25. नागानन्दम् नाटक 4/14
26. नागानन्दम् नाटक 1/6
27. प्रियदर्शिका 3/पृ. 46
28. रत्नावली 2/पृ. 101
29. रत्नावली 4/20
30. रत्नावली 4/पृ. 257
31. रत्नावली 4/पृ. 257
32. रत्नावली 1/पृ. 20

6

नागानन्द नाटक में सांस्कृतिक संदर्भ

श्रुति राय

संस्कृत के महान् नाटकों में एक श्रीहर्षवर्धन कृत 'नागानन्द' नाटक है। यह पाँच अंकों का नाटक है, जिसका कथानक बौद्ध धर्म से लिया गया है। इसका नायक 'जीमूतवाहन' अपने आदर्श चरित्र के लिए प्रसिद्ध है। कथानुसार नायक जीमूतवाहन विद्याधरों का राजकुमार है, गरुड़ देवता को खुश करने के लिये नागों की बलि देने से रोकने के लिये राजकुमार जीमूतवाहन अपना शरीर त्याग कर आत्मबलिदान देता है। इस घटना से गरुड़ को आत्मग्लानि होती है, और वह मृत्युशय्या पर आसन्न जीमूतवाहन से अहिंसा का उपदेश ग्रहण करके पश्चातापस्वरूप सभी नागों को पुनः जीवित कर देता है। अन्त में ईश्वरीय कृपा से जीमूतवाहन भी पुनः जीवन प्राप्त कर लेता है। वास्तव में यह नाटक अध्यात्मपरक भारतीय संस्कृति के आदर्श स्वरूप का उत्कृष्ट उदाहरण है। संस्कृत के अन्य नाटकों की तुलना में इस नाटक का यही विलक्षण वैशिष्ट्य है। तात्पर्य यह है कि नाट्यशास्त्र की दृष्टि से इस नाट्यग्रन्थ की महत्ता तो है ही, साथ में यह भारतीय संस्कृति की मूलभूत अवधारणाओं को भी कथानक एवं पात्रों के माध्यम से जीवन्त कर देता है। इस नाटक की कथावस्तु, नायक एवं अन्य पात्रों की संकल्पना आदि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित है। सम्पूर्ण कथा भारतीय संस्कृति की मूलभूत अवधारणाओं जैसे- अहिंसा, माता-पिता की सेवा, अतिथिसत्कार, निःस्वार्थभाव से दान एवं परोपकार की भावना इत्यादि से प्रेरित है। परोपकार के लिए आत्म-त्याग की भावना का पूर्ण परिपाक हमें यहाँ दिखाई देता है। एक विशिष्ट तथ्य यह भी है कि यह नाटक भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप का आदर्श प्रतीक हैं, बौद्ध एवं सनातन धर्म अलग-अलग नहीं है, अपितु एक ही वृक्ष की दो शाखाएं सिद्ध होती हैं। अतः बौद्ध 'सनातनीय बौद्ध' है, न कि हिन्दू धर्म से विशिष्ट बौद्ध।

श्रीहर्षवर्धन के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नागानन्द की कथावस्तु में :

हर्षवर्धन के वास्तविक जीवन के समान नागानन्द नाटक में भी सनातन तथा बौद्ध धर्म का सौहार्दपूर्ण धार्मिक समन्वय स्पष्ट रूप से दिखता है। नागानन्द नाटक में उन्होंने मङ्गलाचरण में बुद्ध की उपासना की है।¹ इस नाटक का नायक जीमूतवाहन बोधिसत्त्व अर्थात् तत्त्वज्ञानी है, जिसकी कथा संसार में पहले से ही प्रसिद्ध है।² कथानक के मध्यान्तर में पात्रों के द्वारा सनातन धर्म की देवी देवताओं की भी स्तुति की गयी है। नाटक की नायिका स्वयं गौरी की भक्त है, तथा सुयोग्य वर के लिये उनकी पूजा-अर्चना करती है।³ नागानन्द नाटक के तृतीय अङ्क के 18वें श्लोक में सनातन धर्म के प्रति इन्होंने आस्था व्यक्त की है।⁴ तपोवन

में प्रसन्नचित्त मुनिगण संदिग्ध वेदवाक्यों पर विचार कर रहे हैं। अध्ययनरत ब्रह्मचारी गीली-गीली समिधाओं को तोड़ रहे हैं। मुनि कन्याएं पौधों में पानी डाल रही हैं। इसी प्रकार नागानन्द की कथावस्तु भी विद्याधर नामक किसी जातक से प्रेरित है। नागानन्द की रचना के पूर्व तक यह जातक मौखिक रूप से प्रचलित रहा। अतः नागानन्द इसका प्रथम अभिनयरूप नाट्य है।¹ इस नाटक में शान्त रस की योजना की गयी है। मोक्ष और अध्यात्म की भावना से इस रस की उत्पत्ति होती है। जब मनुष्य मोह-माया को त्याग कर सांसारिक कार्यों से मुक्त हो जाता है और वैराग्य धारण कर परमात्मा के वास्तविक रूप का ज्ञान होता है तो मनुष्य के मन को जो शान्ति मिलती है, उसे शांत रस कहते हैं।² शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद होता है, जिसका आशय उदासीनता से है। इस नाटक के प्रथम अङ्क में नायक राज्य छोड़कर माता-पिता की सेवा करने के लिये वन चला जाता है। उसमें वैराग्य की भावना स्पष्टतः परिलक्षित होती है। नाटक के नायक के वाचिक, मानसिक, कायिक आचरण से स्पष्टतः शान्तरस की प्रतीति होती है। अतः इस रूप में भी आध्यात्मिकता को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। मुख्य रस के अङ्गरूप में शृङ्गार रस की भी योजना है।

भारतीय संस्कृति के अन्य महत्त्वपूर्ण अवधारणा 'अतिथिसत्कार' को भी विशेष महत्ता दी गयी है। इस ग्रन्थ में अतिथि-सत्कार से सम्बन्धित एक मन्त्र भी दिया गया है कि अतिथि सबके पूज्य होते हैं- "सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।" अतः प्रकृति भी आये हुए अतिथियों का सत्कार करती है। ये पेड़ भौरों के गुंजार से मानो मधुर स्वागत कर रहे हैं, फल भार से झुके शाखारूपी सिरो से मानो प्रणाम कर रहे हैं। फूलों की वर्षा करते हुए मानो पूजा का उपहार सौंप रहे हैं। लगता है कि तपोवन के पेड़ों को भी अतिथि-सत्कार की शिक्षा दी गयी है। राजकुमारी द्वारा भी अतिथि-सत्कार का वर्णन है।

जीमूतवाहनः भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि :

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता, सहिष्णुता तथा उदारता के लिये प्रसिद्ध है। जीमूतवाहन इनका पर्याय है। जीमूतवाहन विद्याधर राजा जीमूतकेतु का पुत्र है। जीमूतवाहन शक्ति, क्षमा, दृढता, स्थिरता, उदारता, आत्मसम्मान, परोपकार एवं मातृपितृभक्ति की भावना से आप्यायित है, अतः नाट्यशास्त्र के दृष्टिकोण से वह धीरोदात्त कोटि का नायक है।³ जीमूतवाहन अपने सद्गुणों के कारण प्रख्यात है। उसकी पत्नी 'मलयवती' का भाई मित्रवसु उसकी प्रशंसा करता है कि जीमूतवाहन विद्याधरों के राजवंश का भूषण है, बुद्धिमान है, सत्पुरुषों में समादृत है, सुन्दरता में अद्वितीय, पराक्रम का धनी, विद्वान्, विनम्र एवं नौजवान है, इसीलिये पत्नी के रूप में अपनी बहन को उसके हाथों में समर्पित करने में हर्ष का अनुभव होता है किन्तु प्राणियों की रक्षा के लिये दयावश वह अपनी जान भी दे सकता है।⁴ जीमूतवाहन का चरित्र इतना महान् है कि अज्ञानतावश उसके मांस को खाने वाला गरुड वास्तविकता जानकर जीमूतवाहन के लिये प्रलाप करता है।⁵ मित्रवसु के समान गरुड भी जीमूतवाहन की प्रशंसा करता है कि सुमेरु पर्वत पर, मन्दारचल की गुफाओं में, हिमालय की चोटी पर, महेन्द्राचल पर, कैलास की चट्टानों में, मलयाचल के पठारों में तथा अन्य स्थानों में लोकालोक पर्वत पर घूमने वाले चारुणगण जिस जीमूतवाहन की यशोगाथा गाते हैं, तथा उसे गाते मैने अनेक बार सुना है।⁶ जीमूतवाहन के निःस्वार्थ त्याग और परोपकार की भावना से प्रभावित होकर गरुड का हृदय करुणा से भर गया और उसका हृदयपरिवर्तन हो गया। वह पश्चाताप की अग्नि में जलने लगा। अन्ततः अमृत वर्षा करके सारे नागों को जीवित कर दिया। इस प्रकार जीमूतवाहन प्रेरक के रूप में गरुड के हृदयपरिवर्तन का कारण बनता है तथा सम्पूर्ण नागजाति का रक्षक बन जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जीमूतवाहन का चरित्र नाटकविधा के

अन्य नायक से विलक्षण है, जिसने निःशस्त्र होकर गरुड के मानसिक विकारनामक मानवता के शत्रु का नाश किया। तथ समस्त जगत् को अहिंसा का पाठ पढ़ाया एवं धर्म की स्थापना की। नायक जीमूतवाहन गृहस्थ होते हुए भी स्वभावतः वैरागी है। पत्नी एवं माता-पिता के प्रति प्रेम उसके कर्तव्यमार्ग का बाधक नहीं बनता है। वह त्याग, परोपकार का अत्युत्तम प्रतिमान है। जीमूतवाहन अध्यात्म पर आधारित भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का साकार स्वरूप है। अतः जीमूतवाहन एक महान नायक है।

बोधिसत्त्व :

नाटक में जीमूतवाहन बोधिसत्त्व हैं। बोधिसत्त्व बौद्ध सम्प्रदाय की मूल अवधारणा है। बौद्ध दर्शन में जिसको तत्त्वज्ञान होता है, वह बोधिसत्त्व कहलाता है।¹¹ बोधिसत्त्व वह व्यक्ति होता है जो केवल अपने लिये निर्वाण या मोक्ष की इच्छा नहीं करता, किन्तु प्राणिमात्र को कल्याण के मार्ग पर लाना चाहता है। यह केवल अपने दुःख की निवृत्ति नहीं चाहता, किन्तु सबको दुःखों से छुड़ाना चाहता है। इसी प्रकार बोधिसत्त्व का ज्ञान उसे संसार से निवृत्त नहीं करता, अपितु परोपकार की भावना से युक्त होकर संसार में अनासक्त भाव से रहता है। अतः स्वयं को पीड़ा देकर किसी की सहायता करने में उसे प्रसन्नता होती है। जीमूतवाहन में बोधिसत्त्व के उपरोक्त सभी लक्षण विद्यमान हैं। यही कारण है कि ऐसे महान् बोधिसत्त्व जीमूतवाहन जो रक्तवर्ण के वस्त्र से आच्छादित है, उसका दर्शन न करते हुए, स्पर्शमात्र से गरुड को यह भान हो जाता है कि उसके पंजे से दबा हुआ प्राणी नाग जाति का नहीं है, अपितु कोई बोधिसत्त्व है। वह जीमूतवाहन के विषय में कहता है कि “यह निश्चय ही कोई महासत्त्व है। (क्योंकि घायल होने की अवस्था मंत भी) पीडित होने की अपेक्षा वह प्रसन्न अधिक दिख रहा है।”¹²

जीमूतवाहन जीवन के पारमार्थिक सत्य को समझता है। अतः वह पाञ्चभौतिक शरीर को कोई महत्त्व नहीं देता है। जीमूतवाहन की दृष्टि में देह मेदा, हड्डी, मांस, मज्जा तथा रक्त का समूह ही तो है। केवल ऊपर से चमड़ा ढका है। यह हमेशा वीभत्स है, घृणोत्पादक है। भला ऐसे शरीर में भी कहीं शोभा या सुन्दरता हो सकती है क्या?¹³ अतः ऐसे मूत्र-विष्टादि सारी अपवित्र वस्तुओं का घर कृतघ्न और विनाशवान् इस शरीर के लिये मूर्खजन पाप करता है।¹⁴ यह देह विनाशशील है¹⁵, अतः इसके लिये मोह करना व्यर्थ है। इस सत्य को अनुभव करने के बाद भी वह जगत् के सभी प्राणियों के परोपकार के लिये एक नवीन शरीर को धारण करने की इच्छा व्यक्त करता है। वह यह कामना करता है कि अपनी जान देकर सांप की रक्षा करते हुए मैंने आज जो पुण्य कमाया है, उससे अपने जन्म-जन्म में परोपकार के लिये ही मुझे देह मिले।¹⁶ शरीर उसके लिये परोपकार करने का माध्यममात्र है। और ऐसा शरीर मूल्यवान है, जो किसी दूसरे के परोपकार करने का माध्यम बनता है।

आदर्श राजा :

यद्यपि अलौकिक दृष्टि से जीमूतवाहन बोधिसत्त्व है, किन्तु वह लौकिक जगत् के प्रति कर्तव्यपरायण भी है। राजा होने के नाते जीमूतवाहन इस व्यवहारिक सत्य को भली-भांति समझता है कि राज्य का भौगोलिक विस्तार से राजा की शक्ति का आंकलन होता है। तथापि इस मायावी विचार से वह अछूता है और इसीलिये बड़ी ही सरलता से वह अपना राज्य अपने शत्रु मतंग को देने के लिये प्रसन्नतापूर्वक सन्नद्ध हो जाता है। किन्तु इसका तात्पर्य कथमपि नहीं है कि वह निर्बल या बुद्धिहीन है। उसके विचार में मतंग दयनीय स्थिति में है, जो कि राज्य जैसी तुच्छ वस्तु को पाने के लिए लालायित है। वास्तव में जीमूतवाहन अकारण किसी प्रकार के रक्तपात के विरुद्ध है। उसकी दृष्टि में अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं है। हृदय से निर्मल होने के कारण

सांसारिक इच्छाओं को मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु मानता है। जीमूतवाहन के अनुसार मानसिक दोषजन्य अन्तःक्लेशों को छोड़कर कोई अन्य स्वयं का शत्रु नहीं होता है।¹⁷ इस प्रकार शरीर हो या राज्य दोनों ही जीमूतवाहन के लिये एक तुच्छ वस्तु है। किन्तु इसका यह तात्पर्य कतई नहीं है कि वह राज्य की उपेक्षा करता है। उसे ज्ञान है कि युद्ध करके हिंसा के द्वारा दूसरे राज्य पर अधिकार करना आदर्श राजा का कर्तव्य नहीं है। सांसारिक सुख क्षणभंगुर है, अतः अपनी प्रजा को न्याय-मार्ग पर लगाना उसे ज्यादा उचित प्रतीत होता है। न्यायमार्ग पर चलने वाली प्रजा अनायास सज्जनता का ग्रहण कर लेती है, परिणामतः सुखपूर्वक रहती है। जीमूतवाहन के राज्य में सबका समान स्थान है। परिवार में भी बन्धु-बान्धवों को अपने बराबर का स्थान दिया जाता है।

अहिंसा का उपासक :

जैसा कि हर्षवर्धन बौद्ध तथा सनातन दोनों ही परम्पराओं से प्रभावित है, और दोनों ही परम्परा में अहिंसा का पारमार्थिक एवं लौकिक दोनों दृष्टिकोणों से प्रमुख स्थान दिया गया है, जीमूतवाहन भी इसका साक्षात् मूर्तस्वरूप है। जीवन के शाश्वतिक मूल्यों की शृंखला में अहिंसा का प्रमुख स्थान है। यह निर्मल चेतना की अनुभूति है। यह भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का प्राणतत्त्व है। अतः इसकी अभिव्यक्ति भारतीय धर्म, दर्शन, सामाजिक जीवन तथा राजनीतिक क्रियाकलापों में सरलता से देखा जा सकता है। लौकिक तथा लोकोत्तर दोनों के प्रसंग में अहिंसा का महत्त्व है। यह विश्वबन्धुत्व की भावना का पोषक है। अतः जीमूतवाहन ने इस अनुभूति को अपने जीवन में चरितार्थ किया है। वह अहिंसा को भी बहुत महत्त्व देता है। अतः राज्य को तुच्छ वस्तु मानकर प्राणिवध जैसे क्रूरकर्म को करने में वह अपनी अनिच्छा व्यक्त करता है।¹⁸ यहां तक कि मृत्युशय्या पर होते हुए भी पश्चात्ताप करने वाले 'गरुड' को अहिंसा का उपदेश देता है-

“सदा के लिये प्राणि हिंसा बन्द कर दो। पहले किये गये पापों के लिये अनुताप करो। सभी प्राणियों को अभयदान देकर पुण्य संगृहीत करो, जिससे प्राणियों की हिंसा से उत्पन्न, फलोन्मुख तुम्हारा पप इसमें डूबकर इस तरह न फले जैसे कि झील के भीतर अगाध जलराशि में डाला गया मुट्ठी भर नमक।”¹⁹ इसके बाद सदा के लिए जीमूतवाहन अपनी आँखें बन्द कर लेता है। गरुड अहिंसा व्रत ग्रहण कर मृत जीमूतवाहन एवं लिए स्वर्ग से अमृतवृष्टि करवाने चले जाते हैं। सर्पों को जीवित करने के लिये वह आकाश से अमृतवृष्टि करता है। एवं मरे हुए सारे नाग पुनर्जीवित होकर नागलोक को चले जाते हैं।

मातृ-पितृ भक्त :

संसार में सुख, शान्ति भी तभी सम्भव है जब अध्यात्म तथा लौकिकता का संतुलित समन्वय हो। अतः अध्यात्मप्रधान भारतीय संस्कृति में भी लौकिकता का अपना यहां विशिष्ट स्थान है। चतुर्पुरुषार्थ, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था इसी संतुलित दृष्टि का परिणाम है। लौकिकता के सुनियन्त्रण के लिये धर्म संचालक की भूमिका निभाता है। धर्म की नींव के आधार पर सामाजिक मानदण्डों का निर्धारण होता है। जीमूतवाहन इस व्यवस्था का भलीभाँति पालन करता है, अतः वह आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत आयु के तीसरे भाग में अपने माता-पिता को वन जाने से तो नहीं रोकता है, किन्तु सन्तान होने के अपने कर्तव्य का भी पालन करने में पीछे नहीं हटता है। माता-पिता की सेवा सन्तान का परम कर्तव्य है और उससे बढ़कर कोई और सुख नहीं है, अतः वह उनकी सेवा में सदैव तत्पर रहता है। उसके लिये यौवनावस्था का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि वह क्षणभंगुर तथा कामवासना का आश्रयस्थल है, यह मनुष्य को किंकर्तव्यविमूढ बनाती है एवं दिग्भ्रमित करती है। यह यौवनावस्था तभी आनन्ददायक हो सकती है, जब उसकाल में भक्तिपूर्वक माता-पिता की सेवा

की जाये।²⁰ मां-बाप की सेवा से ज्यादा भला कार्य कोई नहीं है। राज्यसिंहासन भी शोभनीय नहीं है, उसमें परिश्रम ही परिश्रम है। पिता का पैर दबाना, उनका झूठा खाने में जो आनन्द है, वह त्रिभुवन का राजा बनने में भी नहीं है।

परम दानी :

जीमूतवाहन शास्त्रों का ज्ञाता तथा लौकिक व्यवहार में निपुण है। वह करुणावान, त्यागी, परोपकारी तथा सत्कर्मी है। अतः वह दानशील भी है। वह यह भलीभांति जानता है कि ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये मानवता की सेवा आवश्यक है। और इस उद्देश्य की पूर्ति में दान एक उत्तम साधन सिद्ध होता है। आवश्यकतानुसार दान देने से समाज में समानता आती है। अतः बिना किसी उद्देश्य के निष्काम भाव से दूसरे का कष्ट दूर करने के लिये वह दान देता है। उसने इच्छा से भी अधिक देने वाला कल्पवृक्ष को भी उसने अपनी प्रजा के सुख के लिये दान दे दिया।²¹ यहां तक कि अपने शत्रु मतङ्ग को भी अपना राज्य दान देने से वह संकोच नहीं करता है। याचक के न मिलने पर वह अधीर हो जाता है, उसे अपना जीवन व्यर्थ लगने लगता है।

निष्कर्ष

वास्तव में जीमूतवाहन के चरित्र की ऐसी अप्रतिम संकल्पना में रचनाकार हर्षवर्धन ने सम्पूर्ण भारतीयसंस्कृति के मूल तत्त्वों का दर्शन करा दिया है। निःसन्देहहर्षवर्धन स्वयं भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक मूल्यों के प्रकाण्ड विद्वान हैं। इनका नागानन्द नाटक भारतीय संस्कृति के मूल्यों एवं आदर्शों का प्रतिबिम्ब कहना चाहिये। इस नाट्य की सबसे प्रमुख विशेषता है- सहिष्णुता एवं उदारता तथा अहिंसा की भावना। यह भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता का परिणाम है कि हिन्दू होते हुए भी हर्ष की दृष्टि बौद्ध धर्म के प्रति उदार रही और जब उन्होंने बौद्ध धर्म का ग्रहण किया तो हिन्दू धर्म के प्रति भी ताटास्थ्य भाव से जीवनपर्यन्त उदार बना रहा। अतः उनकी दृष्टि समन्वयात्मक रही। ऐसी समन्वयात्मक दृष्टि के कारण ही उदारता भी उनके चरित्र का विशेष गुण बना और वह दानशील राजा के रूप में विख्यात हुए और उनके नाटक का नायक उन्हीं के समान सहिष्णु, दयालु, दानी बना। इन अनुकूल परिस्थितियों में अहिंसा का स्थान अनायास बन जाता है। अतः इस नाटक की सांस्कृतिक चेतना इतनी प्रभावशाली है कि समाज के प्रत्येक वर्ग और सम्प्रदाय को जागृत करके सांस्कृतिक चेतना को जोड़ने में महती भूमिका का निर्वहन किया है।

सन्दर्भ -

1. नागानन्द, 1.1-2 : ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं ।
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्राताऽपि नो रक्षसि ।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान्
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बोधो जिनः पातुः वः ॥.1
कामेनाकृष्य चापं हतपटुपटहावलिभिर्मारवीरै-
भूमङ्गोत्कम्पजृम्भास्मितचलितदृशा दिव्यनारीजनेन ।
सिद्धैः प्रह्वोत्तमाङ्गैः पुलकितवपुषा विस्मयाद् वासवेन
ध्यायन् बोधेरवाप्तावचलित इति वः पातु दृष्टो मुनीन्द्रः ॥.2
2. वही., 1.3 : लोके हारि च बोधिसत्त्वचरितं नाटये च दक्षा वयम् ।....
3. वही., पृ. 47

4. वही., 3.18 : एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः ।
5. वही., प्रथम अङ्क, पृ. 6 : यत्तदस्मत्स्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनाऽलङ्कृतं विद्याधरजातकप्रतिबद्धं नागानन्दं नाम नाटकं कृतमित्यस्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुतं, न च प्रयोगतो दृष्टम् ।
6. नाट्यशास्त्र, 6.83 : न यत्र दुःखं न सुखं न द्वेषो नापि मत्सरः । समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः ।
7. नागानन्द, भूमिका, पृ. 4
8. वही., 2.10 : यद्विद्याधरराजवंशतिलकः प्राज्ञः सतां सम्मतो रूपेणाप्रतिमः पराक्रमधनो विद्वान् विनीतो युवा ।
यच्चासूनपि सन्त्यजेत् करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यत-
स्तेनास्मै ददतः स्वसारमतुला तुष्टिर्विषादश्च मे । ।
9. वही., पञ्चम अङ्क, पृ. 236 : किं बहुना! बोधिसत्त्व एवायं व्यापादितः ।
10. वही., 5.19
11. बौद्ध दर्शन, पृ. 106
12. नागानन्द, पञ्चम अङ्क, पृ. 228 : जन्मनः प्रभृति भुजङ्गपतीनश्नता नेदमाश्चर्य्यं मया दृष्ट पूर्व, यदयं महासत्त्वो न केवलं न व्यथते प्रत्युत प्रहृष्ट इव किमपि दृश्यते ।
13. वही., 5.24 : मेदोऽस्थिमांसमज्जाऽसृक्सङ्घातेऽस्मिंस्त्वचाऽऽवृते ।
शरीरनाम्नि का शोभा सदा बीभत्सदर्शने?
14. वही., 4.7 : सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।
शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ।
15. वही., 4.11
16. वही., 4.26 : संरक्षता पन्नगमद्य पुण्यं मयाऽर्जितं यत् स्वशरीरदानात् ।
भवे भवे तेन ममैवमेवं भूयात् परार्थः खलु देहलाभः-
17. वही., पृ. 148 : अपि च क्लेशान् विहाय मम शत्रुबुद्धिरेव नान्यत्र ।
18. वही., 3.17 : स्वशरीरमपि परार्थो यः खलु दद्यादयाचरितः कृपया ।
राज्यस्य कृते स कथं प्राणिवधक्रौर्यमनुमन्ये ।
19. वही., 5.25 : नित्यं प्राणाभिधातात् प्रतिविरम कुरु प्राक्कृते चानुतापं ।
यस्मात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम् ।
मग्नं येनात्र नैनः फलति परिमितप्राणिहिंसात्तमेतद्
दुर्गाधापारवारेर्लवणपलमिव क्षिप्तमन्तर्हृदस्य ।
20. वही., 1.6 : रागस्यास्पदमित्यवैमि न हि मे ध्वंसाति न प्रत्ययः । कृत्याकृत्यविचारणासु विमुखं को वा न वेत्ति क्षितौ ।
एवं निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं भक्त्या याति यदीत्थमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे । ।
21. वही., 1.8

7

नागानन्द नाटक में नैतिक मूल्य

सुजाता शाण्डिल्य

नागानन्द नाटक बहुजन हिताय परोपकार की कथा से सम्बद्ध है। जिसमें महाकवि हर्ष ने 'सर्वलोकहिताय' परम कल्याण के लिए निःश्रेयस् फल को देने वाले और परहित सम्पादक पवित्र एवं प्रातः स्मरणीय चरित्र का चित्रण कर इस नाटक को अनमोल बना दिया है। इस नाटक में नैतिक मूल्यों की प्रचुरता है जिससे हमारी भारतीय संस्कृति व सभ्यता का संपोषण होता है।

नैतिक मूल्य - 'नीति' शब्द से ठक् प्रत्यय करने पर "नैतिक" शब्द की उत्पत्ति होती है। "नित्या ज्ञायते इति नैतिक" जो नीति को जानता है। वही "नैतिक" है। नीति का आदर्श स्वरूप नैतिक विचार है, जिसका उद्देश्य मानवीय चरित्र का निर्माण करना है। भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्य के सत्यवादिता, दयालुता, निष्कपटता, सदाचार, सन्तोष, पारस्परिक सहयोग आदि आधार बिन्दु है और यही नैतिक मूल्य हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान है।

आचार्य मनु ने अपने ग्रन्थ मनुस्मृति में नैतिक मूल्यों से ओत प्रोत श्लोकों का लेखन बहुत ही स्पष्ट व विस्तृत रूप में किया है।

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्। गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते।। 2।।

सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः। अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः।। 3।।

महाभारत के शान्तिपर्व के 226 वे अध्याय में भी कहा गया है।

तस्मात् पितृ वचः कार्यं न विचार्ये कदाचन।

पातकान्यपि पूयन्ते पितुः शासनकारिणः।। 4।।

नागानन्द में नैतिक मूल्य -

श्रीहर्ष द्वारा रचित नागानन्द नाटक नैतिक शिक्षा का विशाल भण्डार समाहित किए हुए है। नाटक के प्रारम्भिक अङ्क में ही जब वृद्ध विद्याधर राजा जीमूतकेतु अपने युवा पुत्र जीमूतवाहन के सशक्त कन्धे पर राज्यभार सौंप कर वन चले जाते हैं। तब जीमूतवाहन को पितृचरण सेवा में जो आनन्द आता है, वह राज्यपालन में नहीं है ऐसा जानकर कि मुझे अकेले छोड़ कर मेरे माता-पिता जो तपोवन चले गये हैं, मुझे अब यहां रहकर क्या करना मुझे माता-पिता की सेवा के लिए वन में जाना चाहिए क्योंकि माँ-बाप के चरणों की सेवा का सुख छोड़कर घर में अब क्या रखा है।

विधातुं पितृशुश्रूषां त्यक्तैश्वर्यं क्रमागतम् । वनं याम्यहमद्यैव यथा जीमूतवाहनः ।। 15 ।।

वंशानुक्रम से प्राप्त ऐश्वर्य को लात मारकर माँ-बाप की सेवा करने के लिए आज ही उसी तरह वन जाना चाहता हूँ, जैसे जीमूतवाहन गए। और फिर जीमूतवाहन पिता की सेवा हेतु अपने मित्र आत्रेय विदूषक को साथ लेकर राज्य छोड़कर जंगल के लिए प्रस्थान करता है।

रागस्यास्पदमित्यवैमि न हि मे ध्वंसाति न प्रत्ययः, कृत्याकृत्यविचारणासु विमुखं को वा न वेत्तिक्षितौ ।

एवं निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं, भक्त्या याति यदीत्यमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे ।। 16 ।।

जीमूतवाहन अपने मित्र आत्रेय से कहता है कि हे मित्र आत्रेय! यह यौवनावस्था तो कामवासना का घर है- यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह क्षणभंगुर है। यह संसार में कर्तव्य और अकर्तव्य के विवेचनों में सदा ही प्रतिकूल रहा करता है। फिर भी इन्द्रियों के अधीन रहने वाली यह यौवनावस्था मुझे आनन्द प्रद हो सकती है, यदि भक्तिपूर्वक इसी तरह माता-पिता की सेवा करते हुए बीत जाय।

पिता के आगे जमीन पर बैठा हुआ बेटा जिस तरह शोभा पाता है, वैसा क्या वह कभी राज्य सिंहासन पर शोभा पा सकता है? पिता के पैर दबाने में जो सुख है, वह क्या राज्य पाने में सुख है? पिता का जूठा खाने में जो मजा आता है, क्या वह आनन्द त्रिभुवन के पालन करने तथा भोग्य-वस्तु के मिलने में है क्या? सच तो यह है कि माता-पिता को छोड़कर राज्य करने में मुझे केवल परिश्रम ही परिश्रम दिख पड़ता है। भला उसमें कौन सी भलाई है? माता-पिता की सेवा करने के लिए मुझे पिता द्वारा जो जिम्मेदारी सौंपी गई है उसे भी मैंने बड़ी ही कर्तव्य निष्ठा के साथ पूर्ण कर दिया है।

न्याये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता, नीतो बन्धुजनस्तथात्मसमतां राज्ये च रक्षा कृता ।

दत्तो दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽप्यर्थिने, किं कर्तव्यमतः परं कथय वा यत्स्थितं चेतसि ।। 17 ।।

मैंने प्रजा को न्याय मार्ग में लगा दिया है। सज्जनों को सुखपूर्वक रखा है। बन्धु-बान्धवों को अपने बराबर ही बना डाला है। राज्य की पूरी रक्षा की है। इच्छा से भी अधिक फल देने वाला कल्पवृक्ष भी याचकों को दे डाला है। अब कहो - हे मित्र इससे अधिक मेरे करने योग्य बात तुम्हारे मन में कौन-सी बैठी हुई है? इस प्रकार स्पष्टीकरण देता हुआ पिता की सेवा के लिए व्याकुल होता है तथा पिता के निवास हेतु उपयुक्त स्थान की खोज में वह मलयाचल पर्वत पर पहुँच जाता है। जीमूतवाहन नैतिकतापूर्ण व्यवहार के साथ ही कहते हैं कि अपनी देह से लेकर सब कुछ जो मेरे पास है, परोपकार के लिए ही रख छोड़ा है। जो मैं स्वयं नहीं दे रहा हूँ। उसका कारण पिताजी का अनुरोध, उनकी इच्छा का अनुसरण ही है, इसलिए ऐसे तुच्छ लाभ की चिन्ता भला मैं क्यों करूँ? पूज्य पिताजी की आज्ञा का पालन हो जाये, इतना भर ही तो मैं चाहता हूँ। पिताजी ने मुझसे कहा है कि जीमूतवाहन, बहुत दिनों तक उपभोग करने से इस स्थान में यज्ञ की लकड़ी, कुश, फूल, सब साफ हो गये हैं। फल, मूल, कन्द, धनधान्य प्रायः समाप्त है। अतः यहाँ से मलयपर्वत पर जाकर रहने योग्य कोई जगह ढूँढ़ते हैं इस प्रकार कहते हुए पिता के निवास हेतु उपयुक्त स्थान की खोज में वह मलयाचल पर्वत पर पहुँच जाता है।

और फिर जीमूतवाहन का विवाह मलयवती के साथ सम्पन्न हो जाता है तभी मित्रवसु ने बताया कि शत्रु मातंग ने राज्य पर चढ़ाई कर दी है। मित्रवसु ने जीमूतवाहन से शत्रु विनाश की अनुमति मांगी। किन्तु जीमूतवाहन ने मितावसु को हिंसा करने की अनुमति न देकर शान्त बने रहने का उपदेश दिया। वे कहते हैं कि-
स्वशरीरमपि परार्थो यः खलु दद्यादयाचितः कृपया । राज्यस्य कृते स कथं प्राणिवधक्रौर्यमनुमन्ये ।। 18 ।।

जो बिना माँगे हुए भी दयावश दूसरों के हित के लिए अपनी जान तक दे सकता है, वह जीमूतवाहन सामान्य राज्य के लिए प्राणिवध जैसे क्रूर कर्म की अनुमति कैसे दे सकता हूँ?

साथ ही यह भी तो बात है कि मानसिक दोषजन्य अन्तः क्लेशों को छोड़कर दूसरे किसी को भी मैं शत्रु मानता ही नहीं हूँ। यदि तुम मेरे लिए कुछ भलाई करना चाहते हो, तो राज्य के लिए मानसिकता का दास बने हुए बेचारे मतंग पर दया करो। इस प्रकार के अहिंसा रुपी नैतिक भाव जीमूतवाहन के मन में व्याप्त रहते हैं।

जीमूतवाहन मित्रवसु के साथ घूमने के लिए समुद्रतट पर जाता है वहाँ हड्डियों का पहाड़ देखकर जीमूतवाहन ने मित्रवसु से उसके बारे में जानना चाहा तो मित्रवसु ने उन्हें बताया कि कहते हैं 'पहले गरुड़ अपने पंखों के पवन से समुद्र के समस्त जल को हटाकर वेग के साथ पाताल से नागों को उठाकर हर रोज खा जाया करते थे। तब सभी नागों के विनाश की आशंका करते हुए वासुकि ने गरुड़ से कहा। उन्होंने कहा तुम्हारे आक्रमण के भय से हजारों नाग-पत्नियों के असमय गर्भ गिर जाते हैं और हजारों नाग-शिशु भी मौत के मुँह में चले जाते हैं। इस तरह हमारी सन्तति के विनाश से तुम्हारा वह स्वार्थ भी तो जाता रहेगा, जिसके लिए तुम नागलोक आया करते हो। इसलिए यहाँ से प्रतिदिन मैं एक-एक नाग खुद भेजा करूँगा।

जिह्वासहस्रद्रवितयस्य मध्ये नैकाऽपि सा तस्य किमस्ति जिह्वा।

एकाहिरक्षार्थमहिद्विषेऽद्वय दत्तो मयात्मेति यया ब्रवीति।।9।।

करुणा के भाव से जीमूतवाहन ने कहा खेद है कि नागराज ने नागों को इस तरह बचाया - क्या दो हजार जीवों में से एक भी ऐसी जीव नहीं थी, जिससे वह कहता कि एक साँप की रक्षा के लिए मैंने गरुड़ के सामने अपने आपको समर्पित कर दिया। और वासुकि द्वारा ऐसी व्यवस्था किये जाने पर जिन-जिन नागों को ये गरुड़ लाया करते हैं, उनकी हड्डियों के हिमालय जैसे ये ढेर दिन-प्रतिदिन बढ़ते गये, बढ़ते रहे हैं और बढ़ते रहे। इस प्रकार की स्थिति को देखकर जीमूतवाहन के मन में यह विचार आता है। कि नागों की यह विपत्ति कभी समाप्त होने वाली नहीं है क्या? यदि अपनी जान देकर एक भी नाग की जिन्दगी मैं बचा सकूँ तो कितना अच्छा होगा। इस प्रकार के परोपकारी भावों के द्वारा हम जनमानस में एक अच्छे विचारधारा का प्रस्फुटन कर सकते हैं। और इसी प्रकार के नैतिक भावों के द्वारा ही जीमूतवाहन नागों की विपत्ति के कारण को जाने के लिए लालायित होता है। और शङ्खचूड़ को देखकर जानने की चेष्टा करता है कि वह इस तरह से रो रही हूँ। तब उसे ज्ञात होता है कि वासुकि ने इन्हें मरने के लिए उत्सर्गित किया है।

**मूढाया मुहुश्चसन्ततिमुचः कृत्वा प्रलापान् बहून्, कस्त्राता तव पुत्रकेति कृपणं दिक्षु क्षिपन्त्या दृशम्।
अङ्के मातुरवस्थितं शिशुमिमं त्यक्त्वा घृणामश्नतः, चञ्चुर्नैव खगाधिपस्य हृदयं वज्रमन्ये कृतम्।।10।।**

आश्चर्य है कि गरुड़ कितना निष्ठुर है। मूर्च्छित हुई लगातार विलपती हुई, आँसुओं की झड़ी लगाती हुई और हे बेटे, तुम्हें बचाने वाला कौन है। यह कहकर रक्षा पाने की तलाश में चारों ओर दृष्टि दौड़ाने वाली माँ की गोद में बैठे इस बालक को खाते हुए गरुड़ की चोंच ही नहीं, दिल भी पत्थर का है। तथा उसी समय पुत्र शङ्खचूड़ अपनी माँ की ऐसी व्याकुलता को देखकर कहता है। कि जिन दयालु पुरुषों ने याचकों की प्रार्थना कभी बेकार नहीं जाने दी, जिन्होंने दयावश बिना किसी स्वार्थ के जिनका मन दूसरों के दुःख से सदैव दुःखी रहा है - ऐसे सज्जन तो चल बसे। माँ, निरन्तर बहते इन आँसुओं को अब तो रोको, किसके आगे रोती हो।

इसी प्रकार के परस्पर वार्तालाप को सुनकर जीमूतवाहन ने मन में यह निश्चय किया कि-

आर्त्तं कण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबन्धुभिः । त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः? ।।11।।

यदि अपने बन्धुओं से त्यागे गये, मरणासन्न इस कातर को मैं नहीं बचाता हूँ, तो फिर मेरी इस विनाशशील देह से लाभ ही क्या है? इस प्रकार निश्चय कर जब जीमूतवाहन वृद्धा से कहता है कि माताजी डरो मत । मैं यहाँ तुम्हारे बेटे की रक्षा के लिए ही आया हूँ ।

ममैतदम्बार्पय वध्यचिह्नं प्रावृत्य यावद्विनताऽऽत्मजाय ।

पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयितुं ददामि ।।12।।

माताजी, मुझे ये वध्यचिह्न स्वरूप दोनों लाल कपड़े झटपट दे डालो, ताकि उसे ओढ़कर तुम्हारे बेटे को बचाने के लिए अपनी देह गरुड को मैं खाने के लिए दे सकूँ ।'

विश्वामित्रः श्वमांसं श्वपच इव पुराऽभक्षयद् यन्निमित्तं

नाडीजङ्घो निजघ्ने कृततदुपकृतिर्यत्कृते गौतमेन ।

पुत्रोऽयं कश्यपस्य प्रतिदिनमुरगानन्ति ताक्षर्यो यदर्थं

प्राणांस्तानेष साधुस्तृणमिव कृपयायः परार्थं ददाति ।।13।।

जिन प्राणों की रक्षा के लिए विश्वामित्र ने चाण्डाल की तरह कुत्ते का मांस खाया था, जिस जिन्दगी को बचाने के लिए गौतम ने नाड़ी जङ्घ नामक अपने उपकारी बगुले को ही मारकर खा लिया था तथा जिस पेट की आग को बुझाने के लिए काश्यप का पुत्र यह गरुड प्रतिदिन साँपों को मारकर खा जाता है, उस जिन्दगी को इस महापुरुष ने दूसरों के लिए केवल दयावश तृण की तरह छोड़ने जा रहा है । मेरे जैसे तुच्छ जीव तो रोज ही जन्म लेते हैं और मरते रहते हैं किन्तु उपकारार्थ कमर कसे हुए आपकी तरह लोगों का जन्म कहाँ होता है? इस प्रकार जीमूतवाहन ने सहर्ष कपड़े लेकर उन्हें झटपट पहनकर वध्य शिला पर जा बैठा इसी बीच गरुड आकर उसे चौंच से उठाकर मलयपर्वत पर ले जाते है । इस त्याग से प्रसन्न होकर देवों ने दुन्दुभि बजाई और पुष्पवृष्टि की । तब ही जीमूतवाहन के मन में सन्तोष होता है कि-

संरक्षता पन्नगमद्र्य पुण्यं मयाऽर्जितं यत् स्वशरीरदानात् ।

भवे भवे तेन ममैवमेवं भूयात् परार्थः खलु देहलाभः ।।14।।

अपनी जान देकर साँप की रक्षा करते हुए मैंने आज जो पुण्य कमाया है, उससे जन्म-जन्म में परोपकार के लिए ही मुझे देह मिले । किन्तु जब गरुड जीमूतवाहन पर प्रहार करते हुए रुक जाता है । और मन ही मन आश्चर्य करता है कि इस दशा में भी यह कैसे इतनी ओज भरी बातें कर रहा है । अरे ओ धैर्यवान् मैंने तो अपनी चौंच से तुम्हारे हृदय से केवल खून ही निकाला हैपर तूने तो अपने धैर्य से हमारा दिल ही निकाल लिया है । तब जीमूतवाहन कहता है कि तुम बहुत भूखे हो इसलिए इस समय तुम मेरी बात सुनने लायक नहीं हो । मेरे मांस और लहू से पहले तुम खूब तृप्त हो लो । लेकिन उसी समय शङ्खचूड़ वहाँ आकर गरुड को यह विश्वास दिलाता है कि यह नाग नहीं है जिसे तुम मार रहे हो वह राजकुमार जीमूतवाहन है । गरुड इस बात को जानकर कहता है कि हाय मैं तो सब तरफ से पापरूपी पंक में बुरी तरह फँस गया हूँ । इस दयालु महापुरुष ने हमारा भोजन बने हुए इस नाग के लिये अपनी जान दे दी है । इन्हें मारकर मैंने बहुत बुरा किया है । अधिक मैंने तो महात्मा बोधिसत्त्व को ही मार डाला है । इस महान् पाप के लिए आत्मदाह के अतिरिक्त और कुछ प्रायश्चित्त नहीं है । लेकिन जीमूतवाहन ने उसे आत्मदाह करने से रोककर गरुड को पाप के प्रतिकूल धर्म का नैतिकपूर्ण उपदेश दिया ।

नित्यं प्राणाभिधातात् प्रतिविस्म कुरु प्राक्कृते चानुतापं
यस्मात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वाभीतिम् ।
मग्नं येनात्र नैनः फलति परिमितप्राणिहिंसात्तमेतद्
दुर्गाधापारवारेर्लवणपलमिव क्षिप्तमन्तर्हृदस्य ।।15।।

सदा के लिए प्राणि-हिंसा बन्द कर दो । पहले किये गये पापों के लिए अनुताप करो । सभी प्राणियों को अभयदान देकर पुण्य संगृहीत करो, जिससे प्राणियों की हिंसा से उत्पन्न, फलोन्मुख तुम्हारा पाप इसमें डूबकर इस तरहन फले जैसे कि झील के भीतर अगाध जलराशि में डाला गया मुट्ठी भर नमक ।

अतः नैतिकता हमें दयालुता, पारस्परिक सहयोग, निष्कपटता, सदाचार आदि बिन्दुओं का ज्ञान कराती है । यह सभी बिन्दु महाकवि श्रीहर्ष द्वारा रचित नागानन्द नाटक में प्रचुर मात्रा में उल्लेखित है जिस प्रकार जीमूतवाहन ने माता-पिता की सेवा का निर्णय कर एक आदर्श पुत्र का कर्तव्य निभाया तथा गरुड के प्रचण्ड से नाग जाति को संरक्षित कर स्वयं को गरुड के समक्ष प्रस्तुत कर दिया और अंत में गरुड को सदाचार का उपदेश देकर कृतज्ञ करवाया कि आज से मैं प्राणि - हिंसा नहीं करूँगा । यह सभी कार्य हमें नैतिकता का बोध कराते हैं ।

संदर्भ -

1. नाट्यशास्त्र -भरतमुनि -1/17
2. मनुस्मृति - 2/233
3. मनुस्मृति- 2/234
4. महाभारत -शान्तिपर्व -226/12
5. नागानन्द-श्रीहर्ष-1/5
6. नागानन्द-श्रीहर्ष-1/6
7. नागानन्द-श्रीहर्ष-1/8
8. नागानन्द-श्रीहर्ष-3/17
9. नागानन्द-श्रीहर्ष- 4/5
10. नागानन्द-श्रीहर्ष- 4/9
11. नागानन्द-श्रीहर्ष- 4/11
12. नागानन्द-श्रीहर्ष- 4/14
13. नागानन्द-श्रीहर्ष- 4/15
14. नागानन्द-श्रीहर्ष- 4/26
15. नागानन्द-श्रीहर्ष- 5/25

8

हर्ष के नाट्य-साहित्य में प्रकृति-सौन्दर्य

उमेश चन्द्र तिवारी

संस्कृत नाट्य-साहित्य में सभी नाटककारों ने अपनी नाट्य कृतियों में प्रकृति के मनोरम स्वरूप का चित्रण किया है। महाकवि हर्ष की दोनों नाटिकाओं रत्नावली एवं प्रियदर्शिका की कथावस्तु मुख्यरूप से अन्तःपुर की प्रणय कथा से सम्बद्ध है फिर भी इनकी प्रणय कथाओं के स्वच्छन्द वातावरण के निर्माण हेतु प्रकृति के विविध स्वरूपों, यथा- उद्यान, उपवन, वापी, सरोवर, वृक्ष, लताओं आदि का मनोरम चित्रण किया गया है। नागानन्द नाटक कथावस्तु मलयगिरि के परितः ही दिखाई देती है इस कारण इसमें तपोवन, मलयपर्वत, समुद्रतट आदि प्राकृतिक दृश्यों के सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है।

हर्षदेव ने प्रियदर्शिका और रत्नावली में विभिन्न उद्यानों का सुन्दर वर्णन किया है। प्रियदर्शिका में धारागृहोद्यान का अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव वर्णन प्रस्तुत किया गया है- “पश्य अविरतपतद्विविध कुसुमसुकुमार शिलातलोत्सङ्गस्य परिमनीलीन मधुकर भरभग्नबकुल मालतीलताजाल कस्य कमलगन्ध ग्रहणोद्दानमारुतपर्यव बुद्धबन्धकबन्धनस्यातिविरलतमालतरुपिहितातपप्रसारस्यास्य धारागृहोद्यानस्य सश्रीकताम्।”² राजा उदयन इस उद्यान की शोभा का वर्णन करते हुए कहता है-

वृन्तैः क्षुद्रप्रवालस्थगितमिव तलं भाति शेफालिकानां गन्धः सप्तच्छदानां सपदि गजमदामोदमोहं करोति ।
एते चोन्निप्रपद्मच्युतबहलरजः पुंजपिङ्गङ्गरागा गायन्त्यव्यक्तवाचः किमपि मधुलिहो वारुणापानमत्ताः ।।³

इसी प्रकार से रत्नावली नाटिका में महाकवि ने मकरन्दोद्यान का बहुत ही मनोरम वर्णन किया है- “भो वयस्य प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व । एतत् खलु तन्मलयमारुतान्दोलनप्रफुल्लत्सहकारमंजरीरेणु- पटलप्रतिबद्धपटवितानं मत्तमधुकरझंकारमिलितमधुकरकोकिलारावसंगीतश्रुतिसुखं तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यानं लक्ष्यते।”⁴ राजा उदयन मकरन्दोद्यान की रमणीयता का आश्चर्यजनक रूप से वर्णन करते हुए कहते हैं कि यहाँ के वृक्ष वसन्त के अवसर पर पुष्परस के कारण उन्माद को प्राप्त करके मतवाले की भाँति सुशोभित हो रहे हैं-

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं विभ्रतो, भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः ।

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहुः, भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसंगमधुना मत्ता इवामी दुमाः ।।⁵

महाकवि हर्ष रात्रि के अन्धकार में मकरन्दोद्यान का सजीव व सुन्दर वर्णन करते हुए वहाँ के पुष्पों की सुगन्ध को इस प्रकार वर्णित करते हैं- पालीयं चम्पकानां नियतमयमसो सुन्दरः सिन्दुवारः, सान्द्रा वीथी तथेयं बकुलविटपिनां पाटलापंक्तिरेषा । आग्रायाग्राय गन्धं विविधमधिगतैः पादपैरेवमस्मिन्, व्यक्तं पन्थाः प्रयाति द्विगुणतरतमनोनिहनुतोऽप्येश चिन्हैः ।।⁶

नागानन्द के तृतीय अंक में कुसुमाकरोद्यान की शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि हर्ष लिखते हैं-

निशपन्दश्चन्दनानां शिशिरयति लतामण्डपे कुट्टिमन्ता- नाराद् धारागृहाणां ध्वनिमनु तनुते ताण्डवं नीलकण्ठः । यन्त्रोन्मुक्तश्च वेगाच्चलति विटपिनां पूरयन्नालवाला- नापातोत्पीडेहलाहृतकुसुमरजः पिंजरोऽयं जलौघः ।।⁷

महाकवि हर्ष ने प्रकृति के विविध रूपों का यथार्थ निरूपण अपने नाट्य-साहित्य में किया है। प्रियदर्शिका में मध्याह्न का अतीव मनोहर वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य आकाश के मध्य में आ गया है जिसके कारण सभी जीव सन्तप्त हो रहे हैं-

आभात्यर्काशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्तनैर्दोधिकाम्भ, श्लव्वाभं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति । छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुषैत्यालवालाम्बुलुब्धः, सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।।⁸

सन्ध्याकाल का सुन्दर वर्णन करते हुए महाकवि हर्ष ने रत्नावली में उल्लिखित किया है कि मदनोत्सव के कारण सन्ध्या का कब आगमन हुआ इसका भान ही नहीं हुआ। दिन अब अवसान की ओर चला गया है-

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम् । परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ।।⁹

इसी प्रकार से रत्नावली में सूर्य के अस्ताचल की ओर उन्मुख होने का सुन्दर एवं प्राकृतिक वर्णन करते हैं- “एष खलु गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयः सन्ध्यावधूदत्तसंकेत इवास्तगिरिशिखर काननमनुसरति भगवान्सहस्ररश्मिः ।”¹⁰ अस्ताचल के शिखर पर अपनी किरणों को स्थापित करके सूर्य विरहिणी कमलिनी को किस प्रकार से सान्त्वना देता है इसका सुन्दर वर्णन करते हैं-

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष, सुता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः, सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ।।¹¹

चन्द्रोदय का अतीव मनोरम वर्णन करते हुए महाकवि हर्ष ने रत्नावली में लिखा है-“एष खलु पूर्वदिशात् उद्गच्छति भगवान्मृगलांछनः ।”¹² इसी प्रकार अन्यत्र वर्णन करते हैं कि कुपित कामिनी के कपोल के समान यह भगवान् चन्द्रमा पूर्व दिशा में अवस्थित हैं- “एष खलु कुपितकामिनीकपोलसन्निभः पूर्वदिशं प्रकाशयन्नुदितो भगवान्मृगलांछनः ।”¹³

वर्षाऋतु की समानता का उदाहरण देते हुए वर्णन करते हैं कि सप्तपर्ण वृक्ष से निरन्तर झड़ते हुए पुष्प वर्षा के अन्त हो जाने पर भी पत्तों के बीच से टपकते हुए जलबिन्दुओं के समान प्रतीत हो रहे हैं- “य एषोऽविरलपतत्कुसुमनिकरोऽद्यापि पत्रान्तरगलद्वर्षावसानसलिलबिन्दुरिव लक्ष्यते सप्तपर्णपादपः ।”¹⁴

मलयवायु के झोकों से झूमते हुए वृक्ष मतवाले से लग रहे हैं। मलयानिल प्रातःकाल मलय के सुगन्ध को बिखेरता हुआ धीरे-धीरे जब बहता है तथा अमुकुलित आम्र तरु को मंजरियो से युक्त कर देता है। महाकवि हर्ष मलयानिल का मनोहर वर्णन रत्नावली में इस प्रकार करते हैं-

कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलायितबहुचूतकः । शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिणपवनकः ।।¹⁵

प्रकृति की सुन्दरता मधुमास अर्थात् वसन्त ऋतु में अत्यन्त मनोहर एवं रमणीय हो जाती है। संस्कृत साहित्य में इस मास का विशद वर्णन प्राप्त होता है। वसन्त का मौसम ऋतुराज कहा जाता है। इस ऋतु की रमणीयता को देखकर सहृदयों का हृदय द्रवित हो जाता है तथा काम की मधुधारा हृदय से प्रवाहित होने लगती है। मधुमास का वर्णन महाकवि हर्ष इस प्रकार करते हैं- इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि । पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रस्रैः कुसुमबाणैः ।।¹⁶

प्रकृति की अलौकिक सुषमा के केन्द्र में हमेशा वृक्ष रहे हैं वे ही प्रकृति को चारों ओर से ढककर उसकी शोभा को अतिशयित कर देते हैं। महाकवि हर्ष ने अपने नाट्य-साहित्य में विभिन्न वृक्षों एवं लताओं का सुन्दर वर्णन किया है। रत्नावली एवं प्रियदर्शिका में अशोक वृक्ष, कदलीवन, तमालवृक्ष, मौलसिरी का पेड़, आम्रवृक्ष, मदन वृक्ष, मलय वृक्ष, नवमालिका लता, माधवी लता, कमलिनी आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अशोक के वृक्ष कामदेव का प्रतीक माना जाता है, महाकवि रत्नावली में उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं-

स्पृष्टस्त्वयैष दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन । उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोकः ।।¹⁷

महाकवि हर्ष ने नागानन्द में मलयगिरि का मनोरम व सुन्दर वर्णन किया है। उसकी रमणीयता का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि उस पर्वत पर रहने वाले दिग्गज गजों के गण्डस्थलों के घर्षण से टूटे हुए चन्दन वृक्षों से रस चू रहा है। समुद्र की लहरों से ताड़ित होने के कारण यहाँ की गुफाएं शब्द कर रही हैं। यहाँ की शिलाएं अंगनाओं के महावरों के कारण लाल हो गयी हैं-

माद्यद्दिग्गजगण्डभित्तिकषणैर्भग्नस्रवच्चदनः । क्रन्दत्कन्दरगह्वरो जलनिधेरास्फालितो वीचिभिः ।।¹⁸

मलयपर्वत की चोटियां हिमालय पर्वत की चोटियों की शोभा को धारण कर रहीं हैं इसका मनोरम वर्णन करते हुए कहते हैं- 'पश्य शरत्समयपाण्डुभिः पयोदपटलैः प्रावृताः प्रालेया- चलशिखरश्रियमुद्रहन्त्येते मलयसानवः ।'¹⁹ नागानन्द में प्राकृतिक सौन्दर्य का विस्तृत विवेचन किया गया है क्योंकि उसकी कथा मलयगिरि एवं उसके आस-पास के प्राकृतिक वातावरण में ही निष्पन्न हुई है। समुद्र में उठने वाले ज्वार-भाटा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन इस प्रकार किया गया है-

उद्गर्जज्जलकुंजरेन्द्रभसास्फालानुबन्धोद्धतः, सर्वाः पर्वतकन्दोदरभुवः कुर्वन् प्रतिध्वानितानीः ।

उच्चैरुच्चरति ध्वनिः श्रुतिपथोन्माथी यथाऽयं तथा, प्रायः प्रेङ्खदसङ्ख्यशङ्खवलया वेल्लेयमागच्छति ।।²⁰

समुद्रतट पर फैला हुआ जलौघ किस प्रकार का लगता है इसका वर्णन कवि ने अपने शब्दों में इस प्रकार किया है- कवलितलवङ्गपल्लवकरिमकोद्गारसुरभिणा पयसा । एषा समुद्रवेला रत्नद्युतिरंजिता भाति ।।²¹

संस्कृत नाट्य-साहित्य में प्रकृति को मानव की सहचरी के रूप में प्रदर्शित किया गया है। नायक ने जब भी नायिका की सुन्दरता का वर्णन किया है उसने प्रकृति के उपमानों का ही आश्रय ग्रहण किया है। नायिका के रूप सौन्दर्य तथा उसके शारीरिक अवयवों की तुलना प्रकृति के विविध रूपों से की गयी है। हर्षदेव रत्नावली नाटिका में राजा द्वारा सागरिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते समय प्रकृति के विविध सौन्दर्य उपादानों का प्रयोग करते हुए कहते हैं कि उसका मुख चन्द्रमा के समान, नयन नील कमल के सदृश तथा कर कमल नाल के समान कोमल हैं-

शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ, रम्भागर्भनिभं तथोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लादकराखिलांगि रभसान्निःशंकमालिङ्ग्य, मामंगानि त्वमनंगतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ।¹²²

इसी प्रकार से प्रियदर्शिका में राजा उदयन अरण्याका के सौन्दर्य का वर्णन करते समय उसके मुख आदि को प्राकृतिक उपादानों से अलंकृत करते हुए कहते हैं कि तुम कुमुद की शोभा को फैलाने वाली हो-

अयि विसृज विषादं भीरु भृंगास्तवैते, परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति ।

विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी, कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति ।।²³

निष्कर्षतः महाकवि हर्ष ने अपनी तीनों नाट्य कृतियों में प्रकृति के सौन्दर्य का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने प्रकृति के स्वरूप का वर्णन वस्तुतः अपने कथानक के उपयोग हेतु किया है, परन्तु उससे कथानक में

रमणीयता बढ़ गयी। उन्होंने प्रकृति के सभी रूपों यथा-पर्वत, नदी, समुद्र, उद्यान, लता, वृक्ष, वायु, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, अरुणोदय आदि का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होंने कथानक के अनुरूप ही प्रकृति का विवेचन किया है जिसके कारण प्रकृति चित्रण स्वाभाविक और मनोहर लगता है। विभिन्न उद्यानों के वर्णन में सजीवता व रोचकता का मंजुल समन्वय स्थापित करके उसको और भी रमणीयता प्रदान की है। मलयगिरि का इतना सुन्दर वर्णन किया है कि नायक उसमें रम सा जाता है। उद्यान लताओं के प्रसंग मधुर और आनन्दित करने वाले हैं। कोमल लताओं एवं वृक्षों का चित्रण सजीव सा जान पड़ता है। नाटक में प्रकृति का वर्णन रसोत्पत्ति में सहायक होता है तथा कथानक में सजीवता व जीवंतता ला देता है। निश्चय ही महाकवि हर्ष प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप से भली-भाँति भिन्न थे। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण व अनुभव किया था जिसके कारण ही वे अपने तीनों रूपकों में यथावसर प्रकृति का यथार्थ चित्रण किया है। प्रकृति के सौन्दर्य का यथावत् निरूपण उनकी कृतियों को श्रेष्ठ बनाता है।

सन्दर्भ -

1. नाट्यशास्त्र-1/15	2. प्रियदर्शिका, पृष्ठ-22
3. प्रियदर्शिका, 2/2	4. रत्नावली, पृष्ठ-35
5. वही-1/17	6. वही, पृष्ठ-140
7. नागानन्द-3/7	8. प्रियदर्शिका-1/12
9. रत्नावली-1/24	10. वही, पृष्ठ-132
11. वही-3/6?	12. वही, पृष्ठ-146
13. वही, पृष्ठ-152	14. प्रियदर्शिका, पृष्ठ-24
15. रत्नावली-1/13	16. वही-1/15
17. वही-1/21	18. नागानन्द, पृष्ठ-21
19. वही, पृष्ठ-142	20. वही-4/3
21. वही-4/4	22. रत्नावली-3/11
23. प्रियदर्शिका-2/8	

9

हर्ष की कृतियों में राजनैतिक चिन्तन

नितीश उपाध्याय, अवधेश प्रताप सिंह

भारतीय राजनीति का प्राचीनतम रूप आज भी प्रासंगिक है और हर्ष के कृतियों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि महाकवि हर्ष प्राचीन राजनीति विद्या के एक अच्छे ज्ञाता रहे थे।

रत्नावली -

देश देशान्तर से आये नृपतियों के स्वागत का स्वरूप अत्यन्त स्नेहिल रूप में कवि हर्ष ने प्रस्तुत किया है। इससे ज्ञात होता है कि महाराज हर्ष वास्तव में एक सम्राट थे। जैसा कि अनेक ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी स्पष्ट होता है। हर्षचरितम् का कथन भी कुछ ऐसा ही है। हर्ष ने रत्नावली नाटिका के एक पात्र (सुत्रधार) से यह बात कहलवाते हुए कहते हैं कि-

‘सबहुमानमाहूय नानादिदेशागतेन राज्ञः श्रीहर्षदेवस्य पादपद्मोपजीविना राजसमूहेनोक्तो यथा।’

अर्थात् अनेक दिशावर्ती देशों से आये हुए महाराज श्री हर्षदेव के चरण कमल के आश्रित नृपसमूह ने बहुत आदर के साथ बुलाकर मुझसे कहा। राजनीति में सम्राट ही एकछत्र राज्य करने वाला राजा होता है जिसके शासन के प्रभाव में अनेक छोटे-छोटे राजा आश्रय धारण करते हैं। अतः यहाँ सम्राट का स्वरूप स्पष्ट होता है। जिससे प्रतीत होता है कि महाकवि हर्ष के समय में भी सम्राट की अवधारणा प्राप्त हो ही जाता है। रत्नावली के वाक्यांशों से यह ज्ञात होता है कि हर्षकालीन शासन-व्यवस्था में एक देश से दूसरे देश में व्यापार व्यवस्था तथा परस्पर एक दूसरे देशों में आपसी सहयोग तथा सौमनस्य की भावना भी परिव्याप्त थी। क्योंकि हर्ष ने सिंहल देश और कौशाम्बी देशों के मध्य होने वाले व्यापारार्थ गमनागमन का अथवा विनिमयन व्यवस्था का सङ्केत भी इस प्रकार प्रस्तुत किया है- सिंहलेश्वर दुहितुः समुद्रे यानभंगनिमग्नायाः फलकास्मादनंक्वच कौशाम्बीयेन वणिजा सिंहलेभ्यः प्रत्यागच्छता तदवस्थायाः सम्भावनम् रत्नमाला चिन्हायाः प्रत्यभिज्ञाना दिहायनं च।²

यह सन्दर्भ उक्त तथ्यों का सत्यापन प्रस्तुत करता है। जो राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को समेटे हुए है। ऐतिहासिक राजा उदयन का वर्णन करते हुए महाकवि हर्ष कहते हैं कि - स्वामी उदयन के अभ्युदय के कारणभूत इस कार्य में भाग्य के द्वारा इस प्रकार हाथ के सहारा दिये जाने पर सफलता में कोई सन्देह नहीं है। यह सत्य है। तथापि अपनी इच्छा से कार्य करने वाला अपने स्वामी से भयभीत ही रहता हूँ।

इस प्रकार इस नाटिका में मंत्री पात्र (यौगन्धरायण) का कथन है। राजनीति में राजा का भय और प्रेम दोनों ही जन सामान्य और राजा के अधिकारीगण में होना आवश्यक होता है इसीलिए दण्ड विधान शासन

के लिए आवश्यक समझा जाता है। उक्त पद्य भी यही संकेत प्रस्तुत करता है कि तत्कालीन राजा और उसका शासन जितना ही सहज था उतना ही न्यायप्रिय और अपने कार्यों के प्रति सत्यनिष्ठ रहा था। यह पद्य उदयन बोलता है जो उदयन के प्रधानमंत्री पद पर अधिष्ठित है।

प्रारम्भेऽस्मिन्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवेनेत्यं दत्तहस्तावलम्बे।

सिद्धेर्भान्तिनास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः।।^१

महाकवि हर्ष के कथनों से ऐसा ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में प्रजा के प्रसन्नता और राजा तथा प्रजा के आपसी सौहार्द को बनाये रखने हेतु किसी न किसी प्रकार का महोत्सव मनाया जाता था। शासन व्यवस्था में प्रजानुरञ्जना हेतु यह महोत्सव एक महत्वपूर्ण राजनीति का अंग था। रत्नावली नाटिका में हर्ष ने इसीलिए मदनमहोत्सव पर राजा और प्रजा के संयोजन का उपकल्प प्रस्तुत किया है। मदन महोत्सव एक प्रकार से सम्पूर्ण प्रजा और राजा के परस्पर सम्पर्क का एक सुन्दर माध्यम सिद्ध होगा यह लेखक का सुंदर प्रणयन है। जिनसे प्रजा अपने राजा के वर्तमान परिस्थितियों से भिन्न हो सके। इस अवसर पर अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र और करतल ध्वनि का प्रयोग किया जाता था।

यौगन्धरायण- अये! मधुरभिह्वयमान-मृदुमृदङ्गानुगतसंगीतमधुरः पुरः पौराणां समुच्चरित चर्चरीध्वनिस्तथा तर्कयामि यदेनं मदनमहमहीयांस पुरजनप्रमोदमत्रलोकयितुं प्रासादाभिमुखं प्रस्थितो देव इति।^४

अर्थात् धीरे-धीरे बजाये जाते हुए कोमल मृदङ्ग का अनुकरण करने वाले संगीत से मधुरनागरिकों के करतलध्वनि सामने हो रही है, इससे अनुमान करता हूँ कि मदनमहोत्सव के कारण बहुत बड़े-चड़े नागरिकों के प्रमोद को देखने के लिए महाराज राजभवन की ओर प्रस्थान कर चुके हैं। यहाँ राजनय का सुंदर समायोजन प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय राजनीति और राजशासन की सुन्दरता शान्तिप्रिय शासन एवं अनुशासित नगर एवं नागरिक माने जाते हैं। प्राचीन राजनीति की उपदेशक मनुस्मृति, अर्थशास्त्र तथा याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्रनीति आदि ग्रन्थ भी यही शिक्षा देते हैं। यही नहीं लोकप्रिय राज्य के लोकप्रिय राजा का मन्त्री आदि अधिकारी भी लोकप्रिय एवं प्रबुद्ध होने चाहिए। अधोलिखित श्लोक इन तथ्यों से पूर्णतः समीकरण रखता है। जिसका सुन्दर वर्णन इस प्रकार है-

सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं,

कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः।।^५

अर्थात् - जिसके शत्रु पराजित कर दिए गये हैं, ऐसा राज्य है। राज्य कार्य का समस्त भार योग्य मंत्री (यौगन्धरायण) पर सौंप दिया गया है। अच्छी प्रकार से लालित-पातित प्रजाएँ सभी उपद्रवों से रहित कर दी गयी हैं, प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता मेरी पत्नी है। वसन्त समय और तुम मेरे मित्र हो, इस तरह कामदेव (मदनमहोत्सव) इस अपने नाम के द्वारा भले ही सन्तोष प्राप्त कर ले, किन्तु मैं समझता हूँ, कि यह महान् उत्सव मेरा ही है न कि कामदेव का।

कवि हर्ष ने तत्कालीन राजा और उसके राजमहल का परिदृश्य भी यत्र-कुत्रचित दिखलाया है। वे तत्कालीन राजा के राज परिवेश तथा आन्तरिक वातावरण का वर्णन भी इस नाटिका में करते हैं। मदन महोत्सव मनाये जाने के अवसर पर राजवृन्द के मनोविदनार्थ एक ऐसे प्रकरण की झांकी प्रस्तुत किया है जिसमें

किसी चित्र एवं चित्रपट की चर्चा आता है। उसके राजा और उसके ज्ञातिजनो में कौतूहल उत्पन्न करने वाला किसी व्यक्ति का चित्र है जो पूरे राजमहल के एक समय विशेष में चर्चा का विषय बनकर रहता है। तत्कालीन राजमहल में राजा और राजवृन्द के मनोविनोदार्थ ऐसे अनेक कार्यक्रम भी किये जाते थे। यह नाटिका इस घटना से परिचय कराती है। साथ ही इसी प्रसंग में उत्तम वर के लिए उत्तम कन्यारत्न का होना एक सर्वमान्य व्यवहार के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा राजा स्वयं विदूषक से वार्ता करता हुआ कहता है—

राजा- वयस्यं तर्कयामि । कयापि हृदयवल्लभोऽनुरागादालिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽपहतः । तत्सख्यापि प्रत्यभिज्ञाय वैदग्ध्यादसावपि रतिव्यपदेशेन तत्रैवाऽऽलिखितेति ।

विदूषक- ईदृशस्य कन्यारत्नस्यावश्यमेवेदृशे वरेऽभिलाषेण भवितव्यम् । इति ।⁶

अर्थात्—मित्र मैं ऐसा समझता हूँ कि किसी कामिनी ने अनुरागवश अपने प्राणप्रिय को लिखकर उसे सखी के सामने कामदेव के बहाने छुपाया। तब सखी ने भी उस रहस्यको समझकर चतुरता से वहीं रति के बहाने उसे भी चित्रित कर दिया। ऐसे कन्यारत्न की अभिलाषा ऐसे ही वर में होने चाहिए। यहाँ राजमहल में राजा के मनोरंजनादि का सुन्दर चित्रण किया गया है जो तत्कालीन राज्यव्यवस्था के आन्तरिक परिदृश्य को अङ्कित करता है।

इसी प्रकार श्री हर्ष ने रत्नावली में अनेक ऐसे तथ्योंका वर्णन किया है जिससे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का बोध होता ही है यथा- कौशाम्बी जैसे राज्य को प्राप्त करने की उपलब्धि का वर्णन - **विदूषक ही ही भो, कौशाम्बीराज्यलाभनापि न तादृशः प्रियव्यस्यस्य परितोष आसीद्यादृशोद्य मत्सकाशाद् प्रियवचनं श्रुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि ।⁷** अर्थात् मैं समझता हूँ कि कौशाम्बी का राज्य पाने से भी प्रिय मित्र को उतना हर्ष नहीं हुआ। जितना आज मुझे प्रिय वचनसुनकर हुआ। विदूषक के द्वारा राजसभा में जय-जयकार का वर्णन - भो। वयस्य दिष्ट्य या वर्धसे त्वं समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्धया ।

अर्थात्- प्रिय मित्र की जय हो, जय हो। हे मित्र! अभीष्ट से अधिक कार्यसिद्ध हो जाने के कारण आप को बधाई हो। देशान्तर (दूसरे देश) से मनोरंजनार्थ ऐंद्रजालिक जादूगर को बुलाया जाना-

काञ्चनमाला - आज्ञप्तास्मि देव्या यथा- इममैन्द्रजालिकमार्यपुत्रस्य दर्शय इति । जयतु जयतु भर्ता । भर्तुःदेवी विज्ञापयति - एष खलुज्जयिनीतः सर्वसिद्धिर्नामैन्द्रजालिक आगतः । तत्प्रेक्षतामेनमार्य पुत्र इति ।⁸

अर्थात्- मुझे महारानी ने आज्ञा दी है कि साजी काञ्चनमाला जाओ इस ऐन्द्रजालिक को महाराज का दर्शन कराओ ये ही तो स्वामी हैं।... महारानी निवेदन करती है कि यह सर्वसिद्धि नामक ऐन्द्रजालिक उज्जयिनी से आया है। इसलिए आर्यपुत्र इसे दर्शन दें। इससे ज्ञात होता है कि राजा के मनोरंजन हेतु देश प्रदेश से कुशलकलाकारों को आहूत किया जाता था। इस प्रकार रत्नावली के अनेक तथ्य यह प्रकट करते हैं कि हर्ष को उनके समय में राजनैतिक गतिविधियों का पर्याप्त ज्ञान था यही कारण है कि राजनीतिपरक बातों का उनके कृतियों में भरमार है। पद-पद और वाक्य-वाक्य में राजनीतिक क्रियाकलापों का संकेत मिल ही जाता है।

प्रियदर्शिका -

विष्कम्भक समाप्ति के पश्चात् प्रियदर्शिका के प्रथम अंक में श्लोक संख्या छः के अन्तर्गत जिन बातों की चर्चा कवि हर्ष करते हैं उससे स्पष्ट पता चलता है कि राजमहल अथवा राजव्यवस्था का चाक चौबन्द हर्ष के समकाल में अत्यन्त सुदृढ़ थी। सेना एवं सेवक को विश्वास पात्र बनाया जाता था। उनके सुख दुःख तथा मन्तव्यों पर भी पूर्ण ध्यान दिया जाता था। मंत्रिपरिषदों में अधिष्ठित होने वाले मंत्रियों की पहले ही परीक्षा कर

लिया जाता था कि उनसे बौद्धिक क्षमता आदि कैसी है? मित्रों अर्थात् मित्र राजाओं और देशों के सत्य निष्ठता आदि का ज्ञान कर लिया जाता था। प्रजा में राजा के प्रति लोकप्रियता है या नहीं तथा साथ ही साथ युद्ध प्रारंभ करने पर हम विजय प्राप्त कर सकते हैं अथवा नहीं। इस प्रकार अनेक राजनैतिक एवं आवश्यक विषयों पर पूर्णतः ध्यान दिया जाता था।

श्री हर्ष ने स्वयं प्रियदर्शिक में राजा पात्र के माध्यम से अभिव्यक्त है कि- मैंने सेवकों की (अपने प्रति) दृढ़ निष्ठा जान लिया, मंत्रियों के बुद्धि की भी परीक्षा हो चुकी। मित्रों को भी देख लिया। प्रजा का अधिक अनुराग ज्ञात हो गया रण में साहस करने का मेरा व्यसन पूरा हो गया। स्त्री रत्न (वासवदत्ता) की भी प्राप्ति हो गयी तथा निष्काम धर्माचरण के द्वारा मैंने कारागृह से क्या नहीं पाया?⁹ इसी प्रकार से हर्ष अनेक ऐतिहासिक राजाओं की चर्चा करते हैं जिनमें से कोई वत्स देश का प्रतिनिधित्व करता है तो कोई विन्ध्यकेतु है तो कोई विजयसेन है। यहाँ पर सभी तत्कालीन राजनीतिक व्यक्तित्व हैं।

कवि हर्ष ने सेना के विभिन्न अंगों को अपने नाटिका विधाओं में वर्णन किया है। वे स्वयं राजा से कहलवाते हैं कि- विजयसेन विन्ध्यकेतु का समाचार कहो। तब पुनः राजा विस्तार से सुनने की इच्छा करते हैं कि विन्ध्यकेतु का विस्तृत समाचार जानना चाहता है, तब विजयसेन व विन्ध्यकेतु का समाचार सुनाता है कि - देव सुनि। यहाँ से महाराज के चरणों की आज्ञा ग्रहण कर आज्ञा परिपालक हाथी, घोड़े तथा पैदल सैन्य के साथ हम लोग अत्यन्त दीर्घ मार्ग को भी तीन दिनों में ही अतिक्रमण कर झुंभात के समय अचानक विन्ध्यकेतु पर टूट पड़े।¹⁰ यहाँ पर कवि चतुरङ्ग सेना का वर्णन ही अभिव्यक्त करता है कि- तत्कालीन सैनिक व्यवस्था पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। प्रथम अंक के अंत में श्री हर्ष कलिंग विनाश की चर्चा करते हुए कहते हैं कि रुमण्वान्! उठो। भीतर चलकर अन्दर ही आवश्यक कर्म समाप्त कर तथा विजयसेन का सत्कार कर उसे कलिंग का विनाश करने के लिए भेजें।¹¹ नाटिका अथवा नाटक में कंचुकी अन्तःपुर का व्यवस्था करता है यह एक वृद्ध एवं चतुर ब्राम्हण होता है। अन्तःपुर राजसभा का ही एक आवश्यक अंग होता है जिसका वर्णन श्री हर्ष इस प्रकार करते हैं- कंचुकी अन्तःपुर की व्यवस्था करने वाला, पद-पद पर हुई गलतियों को बचाता हुआ इस समय वृद्धावस्था के कारण दुरुखी दंडनीति के द्वारा नृपति के सम्पूर्ण चरित्र की अनुकरण करता हूँ।¹² परिणामतः ऐसा ज्ञात होता है कि राजशासन में कंचुकी एक महत्वपूर्ण कड़ी होता था। इस प्रकार प्रियदर्शिका नाटिका भी हर्षकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का विशद वर्णन करता प्रतीत होता है।

नागानन्द -

नागानन्द नाटक में महाकवि हर्ष ने एक स्थल पर राज्य को पितृसेवा से अवरमाना है। प्रश्नात्मक रीति से वे कहते हैं कि- 'पिता के आगे जमीन पर बैठा हुआ पुत्र जिस तरह शोभा पाता हैवैसा क्या वह राज्य-सिंहासन पर शोभा कभी पा सकता है? पिता के चरणों को दबाते हुए जो सुख मिलता है वह क्या कभी राज्य में मिल सकता है? माता-पिता के जूठन खाने में जो सन्तोष होता है। वह क्या कभी तीनों ही लोकों के (भोग सुखों के) भोग करने में मिल सकता है? माता-पिता को छोड़कर केवल राज्य करना क्लेश ही है। भला उसमें कौन ही भलाई?

तिष्ठन् भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा?

यत् संवाहयतः सुखं तु चरणौ तातस्य किं राजके?

किं भुक्ते भुवनप्रये धृतिरसौ भुक्तोज्झिते या गुरोः?

आयासः खलु राज्यमुज्झित गुरोस्तत्रास्ति कश्चिद् गुणः?¹³

पिता अपने दामाद के रूप में राजा को स्वीकार करते हुए अपना सम्पूर्ण राज्य भी सुरक्षादि के दृष्टि से परस्पर संबंधों को ढाल बनाता हुआ जोड़ लेता था यह शासन व्यवस्था अथवा धर्मशास्त्रों में बताए गए कूटनीति के रूप में भी जानी जाती है और यह प्रायः संधि-विग्रहादि के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है। ऐसा उदाहरण महाकवि हर्ष के नागानन्द नाटक का नायक है। नायिका का भाई मित्रवसु स्वयं इस सन्देश को नायक और वसुमती नायिका के समक्ष कहता है कि- 'तात! अस्ति में मलयवती नाम कन्या जीवितमिवास्य सर्वस्यैव सिद्धराजान्वयस्य। सा मया तुभ्यं प्रतिपाद्यतेप्रतिगृह्यताम् इति'।

अर्थात्- पुत्र-सिद्धों के सम्पूर्ण राजवंश की प्राण जैसी मलयवती नाम की एक कन्या है उसे मैं तुम्हे दे रहा हूँ उसे स्वीकार कीजिए। यहाँ पर राजा के साथ कन्या का विवाह कर राजनीति में सन्धि कार्य को रणनीतिक रूप देते हुए बुद्धिपूर्ण सम्बन्ध जोड़े जाने की ज्वलंत प्रमाण मिलता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि महाकवि हर्ष का राजनीतिक ज्ञान अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म था। यही कारण है कि इनकी प्रत्येक कृतियों में पदों एवं वाक्यों का सुमनोहर राजनीतिक पुट अवश्य दृष्टिगोचर हो जाता है। राजनीति के क्षेत्र में श्री हर्ष द्वारा प्रदर्शित युक्तियाँ भूरिशः शोध की अपेक्षा रखती हैं। यह आज के सन्दर्भ में भी सार्थक सिद्ध हो सकती हैं। इनके कृतियों में राजनीतिपरक तथ्यों को इतने सावधानी से नाटकीय स्वरूप प्रदान किया गया है कि इससे तत्कालीन राजनीतिक परिवेश समझ भी आ जाता है और नाटकीय स्वरूप भङ्ग भी नहीं होता है।

संदर्भ -

1. रत्नावली, प्रथम अंक, (व्या.) डॉ. जयमंगल पाण्डेय, पृ. 9
2. रत्नावली, 1/8
3. रत्नावली, 1/8
4. रत्नावली, प्रथम अंक, (व्या.) डॉ. जयमंगल पाण्डेय, पृ. 15
5. रत्नावली, 1/10
6. रत्नावली, 2/60
7. रत्नावली, द्वितीय अंक, (व्या.) डॉ. जयमंगल पाण्डेय, पृ. 56
8. रत्नावली, चतुर्थ अंक, (व्या.) डॉ. जयमंगल पाण्डेय, पृ. 147
9. प्रियदर्शिका, 1/6
10. प्रियदर्शिका, प्रथम अंक, (व्या.) गंगाधर इंद्रकर, पृ. 6
11. प्रियदर्शिका, प्रथम अंक, (व्या.) गंगाधर इंद्रकर, पृ. 8
12. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, (व्या.) गंगाधर इंद्रकर, पृ. 23
13. नागानन्द, 1/7

10

हर्ष के रूपकों में लोकपरकता

पंकज कुमार मिश्र

हर्ष, भारतीय इतिहास के सुविख्यात सम्राट और साहित्यकार थे। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज और संस्कृति को एक नई दिशा दी। वे केवल एक सफल शासक नहीं थे, प्रत्युत एक संवेदनशील और गहन विचारक भी थे। उनके नाटकों में राजकीय जीवन के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का गहन चित्रण मिलता है। उनकी रचनाएँ केवल राजदरबार या अभिजात्य वर्ग तक सीमित नहीं थीं, बल्कि उन्होंने लोकजीवन और समाज की विविधताओं को भी अपने साहित्य में समाहित किया। विशेष रूप से, उनके रूपकों में लोकपरकता का विशिष्ट स्थान है, जो उनके नाटकों को एक गहरे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्थापित करता है। साहित्यिक दृष्टि से उनकी कृतियाँ मुख्य रूप से शृंगार और वीर रस से परिपूर्ण होती हैं, किन्तु उनके नाटकों में सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विषयों का भी गहन चित्रण देखने को मिलता है।

हर्ष द्वारा रचित तीनों नाटक - नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका - लोकजीवन से प्रभावित हैं। उनके रूपकों में लोकजीवन के विभिन्न पक्षों का समावेश होता है, जो उनके साहित्य को उस समय के समाज से जोड़ता है। इन नाटकों में हमें समाज की विभिन्न परतों और वर्गों का चित्रण देखने को मिलता है। ये नाटक मात्र राजाओं की शौर्यगाथाएँ या प्रेमकथाएँ नहीं हैं, बल्कि वे समाज के समस्त वर्गों को समाहित करते हुए लोकजीवन का सजीव चित्रण करते हैं। रत्नावली में ऐन्द्रजालिक के समावेश के अतिप्राकृत तत्त्व के प्रति आस्था दिखाकर उन्होंने लोकगत स्वच्छन्दता का भी परिचय दिया है। प्रियदर्शिका में सर्पदंश, रत्नावली में अग्निदाह और नागानन्द में नायक का गरुड द्वारा खाया जाना अन्तिम झटके हैं, जहाँ सामाजिक स्वयं को खड़ा पाते हैं, उस लोकजीवन का अकाट्य अंग बन जाते हैं। तद्यथा-

1. **नागानन्द: धर्म और लोकधर्म का समन्वय** - नागानन्द हर्ष के तीन नाटकों में से एक है, जिसमें बोधिसत्त्व की करुणा और त्याग की कथा प्रमुखता से उभरकर सामने आती है। यह नाटक बौद्ध धर्म के धार्मिक सिद्धांतों पर आधारित है और इसमें जीवों के प्रति करुणा और लोकधर्म का गहन चित्रण किया गया है। हर्ष के इस नाटक में न केवल धार्मिक मान्यताओं का, बल्कि सामान्य जनता की आस्थाओं और उनके जीवन के संघर्षों का भी चित्रण मिलता है। बोधिसत्त्व के रूप में एक नायक के माध्यम से हर्ष ने समाज की धार्मिक और सामाजिक चिंताओं को प्रस्तुत किया है, जो लोकपरकता का एक प्रमुख उदाहरण है।

बोधिसत्त्व, जो जीवों की रक्षा के लिए अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं, लोकधर्म और लोकपरकता के सर्वोत्तम आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। नागानन्द में लोकपरकता का तात्पर्य समाज के प्रत्येक जीव के प्रति करुणा और दया भाव से है। बोधिसत्त्व की कथा लोकजीवन की संवेदनशीलता और धार्मिक आस्थाओं को प्रतिबिम्बित करती है। यथा-

गरुड़ जब नायक को खाना बन्द कर देते हैं तब मरणासन्न होने पर भी वह कहता है कि रक्त शिराओं से रक्त अभी भी निकल रहा है, मेरे शरीर में अभी भी मांस शेष है, आपके मुख पर तृप्ति के लक्षण भी नहीं दिखायी पड़ते, तो आप भोजन से विरत क्यों हो गये हैं?

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणान्नं विरतो गरुत्मन् ।³

गरुड़ के प्रहार से मृतप्राय जीमूतवाहन को देखकर उसके पिता का करुण विलाप अत्यन्त मार्मिक है-

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः, क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह विरता दानपरता ।

हतं सत्यं सत्यं ब्रजतु च कृपा क्वाद्य कृपणा, जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय, लोकान्तरगते ।⁴

अर्थात् हे पुत्र, तुम्हारे परलोक-गमन से धैर्य, विनय, क्षमा, दानशीलता, सत्य, कृपा आदि सभी गुण निराश्रित हो गये, सारा संसार सूना हो गया।

यह बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय की परोपकार भावना का उत्कृष्ट चित्रण है। इस नाटक में लोकपरम्परा का सजीव रूप नागजाति की कथा के माध्यम से दिखाई देता है। इसमें गौतम बुद्ध की करुणा और त्याग की भावना का समन्वय करते हुए, नागराज और जीवन की रक्षा के सिद्धांतों पर आधारित एक व्यापक रूपक प्रस्तुत किया गया है। **धर्मः सर्वोत्तमं धनम् ।⁵ प्राणस्य रक्षणं कर्तव्यमिति धर्मः ।⁶**

2. रत्नावली: सामाजिक समानता और प्रेम की विजय

रत्नावली हर्ष के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक है, जिसमें सामाजिक समानता और प्रेम की विजय को प्रमुखता से दर्शाया गया है। इस नाटक में रत्नावली नामक एक साधारण परिचारिका रानी बन जाती है, जो समाज में सामाजिक समानता के तत्त्व को दर्शाता है। इस नाटक में एक साधारण परिचारिका रत्नावली के रानी बनने की कथा है, जो समाज में व्यक्ति की योग्यता और संघर्ष का प्रतीक है। रत्नावली की कहानी सामाजिक वर्गों की सीमाओं को तोड़ते हुए सामाजिक उत्थान और समानता के संदेश को प्रस्तुत करती है। हर्ष के इस नाटक में न केवल राजसी वैभव का चित्रण मिलता है, बल्कि सामान्य जनजीवन की झलक भी साफ दिखाई देती है। रत्नावली की प्राकृत भाषा में संवाद और उसका सहज स्वभाव लोकपरकता का उदाहरण है, जो सामान्य जनमानस को नायकत्व प्रदान करता है।

महाकवि कालिदास ने अपनी अमरकृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् के षष्ठ अंक में सार्वभौमिक सत्य का झुकटीकरण करते हुए कहा है कि **उत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः ।⁷** इस परम्परा का अपने लोकजीवन का अंश मानते हुए महाकवि हर्ष ने इसी रत्नावली में वसन्तोत्सव के रूप में चित्रित किया है।

रत्नावली के पात्रों के माध्यम से हर्ष ने तत्कालीन समाज की नैतिकता, कर्तव्य और प्रेम के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है। **धर्मस्य मूलं प्रेम ।⁸ प्रियेण विना राज्यं निरर्थकम् ।⁹** यह नाटक तत्कालीन समाज की प्रेम और राजनीति के बीच संबंधों का रूपकात्मक निरूपण है, जिसमें प्रेम को राजधर्म से उच्च स्थान दिया गया है।

3. प्रियदर्शिका: प्रेम, त्याग और सांस्कृतिक धारणाएँ

प्रियदर्शिका में प्रेम और त्याग का गहन चित्रण किया गया है। इस में हर्ष ने समाज की सांस्कृतिक धारणाओं और परम्पराओं का समाह्वान करते हुए एक नयी दृष्टि प्रस्तुत की है। प्रियदर्शिका में मुख्य पात्रों के बीच का प्रेम संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक सीमाओं और बन्धनों से जुड़ा हुआ है। हर्ष ने इस नाटक में समाज के विभिन्न वर्गों की मानसिकता और उनके पारस्परिक सम्बन्ध इस नाटक की विशेषताएँ हैं। यह नाटक प्रेम के माध्यम से सामाजिक धारणाओं और परम्पराओं को तोड़ता है और समाज में स्वतन्त्रता और समानता की नई अवधारणा प्रस्तुत करता है। वैदर्भी शैली का आश्रय लेने के कारण हर्ष के वर्णन सहज-ग्राह्य हैं, अपना पुष्कल प्रभाव सामाजिकों पर छोड़ते हैं। प्रियदर्शिका में ग्रीष्मकाल का वर्णन देखें-

आभात्यांशुतापक्वथदिवशफरोद्धर्तनैर्दीर्घिकाम्भःछत्राभं नृत्तलीलाशिशिलमपिशिखी बर्हभारं तनोति ।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।¹⁰

सरोवरों में मछलियाँ गर्मी से उछल रही हैं मानों सूर्य ताप से वे खौल रहे हैं, नाच करने से शिथिल पंखों को भी मोर सिर पर छाते के समान धारण कर रहे हैं, प्यासा हरिण-शावक थाले के जल के लोभ से वृक्षों की छाया में जा रहा है और भौंरा हाथी के कपोल को छोड़कर (गर्मी के कारण) उसके कान में घुस रहा है।

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में लोक जीवन के इन पशु-पक्षियों का तटस्थ वर्णन यहाँ किया गया है इससे यह अभिव्यक्त होता है कि ये किस प्रकार लोकजीवन के अभिन्न अंग थे।

इस नाटिका में हर्षवर्धन ने स्त्री शक्ति और सामाजिक न्याय का अद्भुत सामंजस्य दिखाया है। इसमें नायक-नायिका के प्रेम के माध्यम से समाज में नारी की स्थिति, अधिकार और स्वतंत्रता की झलक मिलती है। इस नाटक में हर्ष ने स्त्रियों की भूमिका को न केवल प्रेम की दृष्टि से देखा है, बल्कि उन्होंने समाज में स्त्री की स्वतंत्र पहचान और प्रतिष्ठा पर भी बल दिया है। नारी की गरिमा और समाज में उसकी स्वतंत्र भूमिका को प्रकट करने का प्रयास किया है। हर्ष ने मनुप्रवर्तित यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः¹¹ के केन्द्रीय भाव का अभिज्ञान किया बल्कि न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति¹² का सर्वथा प्रतिरोध कर उभरते जनमानस का समर्थन भी किया है। एक ओर स्त्रियों की शक्ति का अभिज्ञान करते हुए वे कहते हैं कि स्त्रियों की शक्ति उत्तम है- स्त्रीणां शक्तिरुत्तमा¹³, तो दूसरी ओर स्त्रियों के स्वतंत्र जीवन का अभिभाषण करते दिखते हैं- स्वतन्त्रं स्त्रीणां जीवनम्¹⁴ हर्ष के रूपकों में लोकपरकता के प्रमुख तत्त्व

हर्ष के नाटकों में लोकपरकता के विभिन्न आयाम देखने को मिलते हैं। इसे केवल किसी भी एक रूपक के सन्दर्भ में नहीं देखा जा सकता है, बल्कि इनकी सारी कृतियों की समग्रता में देखा जाना चाहिए। उनके रूपकों में धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोणों का समावेश प्रमुख रूप से होता है।

धार्मिक और आध्यात्मिक चेतना : हर्ष के नाटकों में धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्वों का गहरा प्रभाव है। विशेष रूप से नागानन्द में बौद्ध धर्म के करुणा और त्याग के सिद्धान्तों का सजीव चित्रण मिलता है। लोकपरकता के इस आयाम में समाज की धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों को प्रमुखता दी गई है। हर्ष के नाटक इस बात को स्पष्ट करते हैं कि समाज की धार्मिक चेतना उसके जीवन के हर पहलू में व्याप्त रहती है, और यह लोकजीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करती है। यह नाटक लोकजीवन की धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। इसमें नागों की रक्षा के लिए बोधिसत्त्व जीवों के प्रति करुणा प्रकट करते हैं, जो लोकधर्म की उच्च भावना का परिचायक है। नागानन्द में बोधिसत्त्व का त्याग लोकजीवन की उच्चतम संवेदनाओं का प्रतीक है, जो हमें धार्मिक और सामाजिक एकता का संदेश देता है।

सामाजिक समानता और समरसता : हर्ष के नाटकों में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच समानता और समरसता को प्रमुखता से दर्शाया गया है। रत्नावली जैसी साधारण परिचारिका का रानी बनना इस बात का प्रतीक है कि समाज में योग्यता और क्षमता के आधार पर व्यक्ति उन्नति कर सकता है। हर्ष के नाटकों में यह दृष्टिकोण समाज की उस अवधारणा को चुनौती देता है, जिसमें व्यक्ति का वर्ग और उसकी सामाजिक स्थिति उसकी सफलता का निर्धारक तत्व माने जाते हैं। हर्ष का यह दृष्टिकोण उनके नाटकों में लोकपरकता के तत्त्व को और अधिक गहरा बनाता है।

समाज की सांस्कृतिक विविधता : हर्ष के नाटकों में सांस्कृतिक विविधता का भी प्रमुख स्थान है। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों और संस्कृतियों का समावेश अपने नाटकों में किया है। उनके नाटकों में केवल अभिजात्य वर्ग की संस्कृति का चित्रण नहीं मिलता, बल्कि सामान्य जनजीवन और उसकी परंपराएँ भी उभरकर सामने आती हैं। उदाहरण के लिए, प्रियदर्शिका में समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन का सजीव चित्रण किया गया है, जो समाज की सांस्कृतिक विविधता और उसकी जटिलता को उजागर करता है।

लोकजीवन की समस्याएँ : हर्ष के नाटकों में केवल अभिजात्य जीवन का चित्रण नहीं मिलता, बल्कि समाज की वास्तविक समस्याओं और संघर्षों को भी स्थान दिया गया है। हर्ष ने अपने नाटकों में युद्ध, सामाजिक असमानता, धार्मिक संघर्ष और व्यक्तिगत त्रासदियों जैसे मुद्दों को प्रमुखता से उभारा है। उनके नाटकों में नायक और खलनायक की भूमिका केवल व्यक्तिगत संघर्षों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह समाज के व्यापक संदर्भों में भी देखी जा सकती है। समाज की समस्याओं का यह चित्रण उनके नाटकों में लोकपरकता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

भाषा और शिल्प में लोकपरकता : हर्ष ने अपने नाटकों में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषा का भी प्रयोग किया है, जो उस समय के सामान्य जनजीवन की भाषा थी। प्राकृत भाषा का प्रयोग उनके नाटकों में लोकपरकता का एक और प्रमाण है, जिससे समाज के निम्न वर्गों के जीवन को भी महत्व दिया गया है। प्राकृत भाषा के माध्यम से उन्होंने अपने नाटकों को और अधिक सहज और प्रभावी बनाया, जिससे समाज के सभी वर्ग उनके नाटकों से जुड़ सके।

प्रकृति और लोक जीवन का समन्वय : हर्ष के नाटकों में प्रकृति का चित्रण भी गहनता से किया गया है। उनका साहित्य न केवल मनुष्य के जीवन को चित्रित करता है, बल्कि उसे प्रकृति के साथ समन्वय में रखता है। समाज और प्रकृति के बीच का यह संबंध लोकपरकता का एक प्रमुख तत्त्व है, जो उनके नाटकों को और अधिक गहराई प्रदान करता है। उनके नाटकों में ऋतु, वन्य जीवन और प्राकृतिक परिवेश का चित्रण यह दर्शाता है कि समाज की गतिविधियाँ और उसका जीवन पूरी तरह से प्रकृति से जुड़े हुए हैं।

हर्ष की लोकपरकता की विशिष्टता

हर्ष के रूपकों में लोकपरकता का जो विशिष्ट तत्त्व है, वह उनके समकालीन नाटककारों से उन्हें अलग बनाता है। हर्ष ने अपने नाटकों में समाज के सभी वर्गों—चाहे वे राजाओं के हों या सामान्य नागरिकों के—जीवन का समावेश किया है। उनके नाटकों में सामाजिक समानता, धार्मिक आस्थाएँ, सांस्कृतिक विविधता और समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। हर्ष के नाटकों में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं, जो उनकी लोकपरकता को अन्य नाटककारों से भिन्न बनाती हैं :

सामाजिक और धार्मिक जीवन का संतुलन : हर्ष ने अपने नाटकों में समाज के धार्मिक और सामाजिक जीवन का संतुलित चित्रण किया है। नागानन्द जैसे नाटक में धार्मिक आस्थाओं का चित्रण समाज के हर वर्ग के जीवन से जुड़ा हुआ है।

सामाजिक समानता का चित्रण : रत्नावली में सामाजिक समानता की भावना को प्रमुखता से प्रस्तुत किया गया है। हर्ष ने समाज के हर वर्ग को उनके गुणों और कृत्यों के आधार पर चित्रित किया है, न कि उनके सामाजिक स्तर के आधार पर।

विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व : हर्ष के नाटकों में केवल राजाओं और उच्च वर्ग का चित्रण नहीं मिलता, बल्कि समाज के अन्य वर्गों- निचले वर्गों, सेवकों और सामान्य जनता का भी चित्रण है।

निष्कर्ष

हर्ष के रूपकों में लोकपरकता का तत्त्व उन्हें समकालीन अन्य नाटककारों से भिन्न और विशेष बनाता है। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों, आस्थाओं, परम्पराओं और जीवनशैली को अपने नाटकों में समाहित किया, जिससे उनके नाटक उस समय के समाज का सजीव चित्रण करते हैं। उनके नाटक न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि सामाजिक और धार्मिक चेतना को भी जाग्रत करने का प्रयास करते हैं। हर्ष के नाटकों की लोकपरकता उन्हें अपने समय के अन्य नाटककारों से विशिष्ट बनाती है और उन्हें भारतीय साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। किं बहुना, आचार्य भरत ने नाट्य-वैशिष्ट्य की उद्भावना में निम्न भाव का प्रवर्तन किया होगा तो निस्सन्देह साहित्य में उक्त लोकपरकता की सम्भावना की होगी, जिसका अपवाद हर्ष की नाट्यत्रयी कदापि नहीं है, तद्यथा-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।¹⁵

सन्दर्भ -

1. अभिनवकाव्यालंकार सूत्रम्, 1/1/1	2. मालविका. 1/4	
3. 5/16	4. 5/30	5. नागानन्द, अं. 5
6. नागानन्द, अं. 3	7. अभिज्ञान., अं. 68	. रत्नावली, अं. 2
9. रत्नावली, अं. 3	10. 4/6, (1/12)	11. मनु., 3/56
12. वही, 9/3	13. प्रियदर्शिका, अं. 4	14. प्रियदर्शिका, अं. 3
15. 7/2		

हर्ष की कृतियों में पर्यावरणीय चिंतन

धनंजय कुमार

भारतीय प्राचीन वाङ्मय और भारतीय समाज व्यावहारिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से प्रकृति के इतना नजदीक प्रतीत होता है कि इस समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति के प्रत्येक आवश्यक जीवनदायक तत्त्वों को देवता के रूप में स्वीकार करता हुआ उससे अपना श्रद्धा-भाव जोड़ लेता है। इसीलिए हमारे प्राचीन एवं आधुनिक वाङ्मय में पर्यावरण के सुरक्षार्थ अनेकशः परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप में युक्तियों को बतलाया गया है। वृक्षादि लगाने को धर्म, उनके पूजन इत्यादि को धर्म-क्रिया तथा वृक्षादि को काटने उन्हें नष्ट करने जैसे कृत्यों को पाप-कृत्य माना गया है। ऋग्वेद के अरण्यानी सूक्त का एक ऋचा में भी यह सङ्केतव्य है कि देवदार वृक्षों की सुरक्षा पर ध्यान नहीं देने से वे सूख जाते हैं। अतः ऋषि वहाँ की वनदेवी से वृक्षों की रक्षा करने की प्रार्थना करता है। जो हमें पर्यावरण सन्तुलन बनाए रखने हेतु इस प्रकार से प्रेरित करता है-

गामङ्गैषावयतिदावाङ्गेषोअपावधत् । वसन्नरण्यान्यांसममकुक्षदितिगन्धते ।।¹

भारत में प्रकृति और सभी जीवित प्राणियों का ध्यान रखना कोई नई बात नहीं है, हमारी सभी परम्पराएँ इन्हीं जीवन मूल्यों पर आधारित हैं। महाराज हर्ष भी प्रकृति से प्रेम करते थे ऐसे उनके अपने शासन व्यवस्था में किए गये लोक कल्याणकारी कार्यों से स्वयमेव ज्ञात होता है। इसी प्रकार सम्राट अशोक के शिलालेखों में भी कहा गया है कि जीवन के सभी रूप हमारे कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह बात लगभग चौथीसदी ई. पूर्व की ही है। भारतीय वाङ्मय के आधारग्रन्थ चारों वेदों में पर्यावरण से संबंधित अनेक संदर्भ भरे पड़े हैं। जो अशोक से बहुत प्राचीन हैं। हमारे काव्य साहित्य में अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं जिनमें यह स्पष्ट होता है कि कितनी शालीनता और शान्ति से भी किसी महोत्सव को मनाया जा सकता है न कि केवल पटाखों के साथ ही अपितु पर्यावरण संरक्षण और प्रकृतिको ध्यान में रखते हुए मनाया जा सकता है। महाकवि हर्षरत्नावली में कहते हैं कि-**प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं, कामः काममुपत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ।।¹** अर्थात्- अच्छी प्रकार से लालित-पालित प्रजाएं सभी उपद्रवों से रहित कर दी गयीं हैं, प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता मेरी पत्नी है। वसन्त समय और तुम मेरे मित्र हो, इस तरह कामदेव (मदनमहोत्सव) इस अपने नाम के द्वारा भले ही सन्तोष को प्राप्त करले किन्तु मैं समझता हूँ कि यह (मदनमहोत्सव) नामक महान् उत्सव मेरा ही है। यहाँ पर वसन्त समय और मदनमहोत्सव एक प्राकृतिक वातावरण को अभिव्यंजित करता प्रतीत होता है। जिसमें धीरे-धीरे बजाए जाते हुए कोमल मृदङ्ग का अनुकरण करने वाले सङ्गीत से मधुर, करतल ध्वनि सामने हो रही है।

इस तथ्य में ध्वनि प्रदूषण के अनुकूलन का संकेत प्रतिलक्षित होता है। अन्यत्र भी प्राकृतिक वातावरण को अभिव्यक्त करते हुए एक ऐसे उत्सव का स्वरूप यहाँ अनुभव किया जा सकता है। जब कि विदूषक कहता है कि मधुपान से उन्मत्त कामिनियों द्वारा अपने हाथों से धारण की गयी पिचकारियों के जलप्रहार से नाचते हुए नागरिकों के कौतुक से युक्त चारों ओर बजते हुए ढोलों मृदङ्गों के कारण प्रचण्ड करतल ध्वनि से बजती हुई तथा गलियों से शोभायमान और उड़ाए गये गुलाल के पुंज से दशों दिशाओं के मुख को पीला कर देने वाले मदनमहोत्सव की शोभा को देखिए।

मधुमत्तकामिनीजनस्वयं ग्राहगृहीतशृङ्गकजलप्रहार- नृत्यं न्नागरजनजनित कौतूहलस्य समन्ततः शब्दायमान-मर्दलोद्गम-चर्चरीशब्द — मुखस्यसश्रीकतां मदन महोत्सवस्य ।³

यहाँ वाद्य यंत्रों के संयमित वादन, मधुर व्यवहार तथा आपसी सौहार्दपूर्ण उत्सव का प्रयोजन एक सुमनोहर पर्यावरण एवं वातावरण का संकेत करता है। जो अद्यतन मनाए जाने वाले उत्सवों हेतु संयम एवं सौहार्द का शिक्षा देता है। प्रकृति में वनस्पतियाँ फूल-फल अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं रत्नावली में ऐसे अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जो तत्कालीन प्राकृतिक पर्यावरण एवं वातावरण में अनुकूलता का संकेत देते हैं। अधोलिखित श्लोकों के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है जिन्हें श्री हर्ष के नाटक में चेटियों के द्वारा भाषित कराया गया है यथा -

**कुसुमायुध प्रियदूत को मुकुलायित बहुचुतकः । शिथिलतमान ग्रहणको वाति दक्षिण पवनकः । ।
विकसित बकुला शोककः काङ्क्षित प्रियजन मेलकः । प्रतिपालना समर्थकस्ताम्यति युवतिसार्थकः । ।**

इह प्रथम मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि ।

पश्चादिह वध्यति कामो लब्ध प्रसरैः कुसुमबाणैः ।⁴ (1.13-14) पृ. 27

अर्थात् कामदेव का प्रिय दूत अनेक आम्रवृक्षों को मुकूलित करने वाला तथा (कामिनियों के) प्रणयमान को शिथिल करने वाला, मलयानिल बह रहा है। मौलसिरी और अशोक को विकसित करने वाली (पुष्पित करने वाली), प्रियजनों से मिलन की अभिलाषा करने वाली और (प्रिय समागम की) प्रतीक्षा करने में असमर्थ रमणियों की मण्डली (समूह) व्याकुल हो रही है। यहाँ मधुमास पहले तो लोगों के हृदय को कोमल बनाता है, पश्चात् कन्दर्प (कामदेव) अवसर पाये हुए पुष्पबाणों से उनके हृदयों को बिंध देता है।

इन श्लोकों को देखने से ज्ञात होता है कि महाकवि हर्ष को प्राकृतिक पर्यावरण से इतना प्रेम था कि उनके कृतियों में फूल, फल, प्राकृतिक महोत्सव, वन्य औषधियों का पद-पद पर उदाहरण मिल जाते हैं। जो एक प्राकृतिक वातावरण का अनायास ही बोध कराने लगते हैं। रत्नावली में महाकवि हर्ष ने मकरन्दोद्यान का कई बार उल्लेख तो किया ही है उसका प्रयोग भी अपने नाटकीय पात्रों द्वारा बार-बार कराया है। मकरन्दोद्यान एक ऐसे बगीचे के रूप में संकेतव्य है जहाँ तरह-तरह के पुष्प और पेड़ पौधे विद्यमान हैं। महाकवि हर्ष चेट नामक पात्र से कहलाते हैं कि-‘एवं देवी विज्ञापयति- अद्य खलु मया मकरन्दोद्यानं गत्वा रक्ताशोक पादप तल संस्थापितस्य भगवतः कुसुमायुधस्य पूजा निवर्तितव्या ।’ अर्थात् महारानी इस प्रकार निवेदन करती हैं कि आज मुझे मकरन्द नामक उद्यान में जाकर, लाल अशोक वृक्ष के नीचे प्रतिष्ठापित भगवान् कामदेव की पूजा करनी है।⁵ हर्ष ने कहीं बकुल के वृक्ष उसके जड़ों, भ्रमर के समूहों, अशोक वृक्ष तथा मधुर ध्वनि के रूप में नुपुर ध्वनि का उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक ही श्लोक के अन्तर्गत इनका समायोजन हम इस प्रकार देख सकते हैं-

मूलेगण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या,

मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यधभान्ति ।

आकर्यातरशोकपादाहतिषु च रणतां निर्भर नुपुराणां,

झंकारस्यानुगीतैः अनुरणकमिवारभ्यते भृङ्गसाथैः ।।⁶

(1.12) पृ. 37

अर्थात् - मौलसिरी वृक्ष के जड़ों में (सुन्दरियों द्वारा) मुख की पीच से सीचें गये मद्य को मानो फूलों की वर्षा से सुरभित कर रहे हैं। युवती के मुख चन्द्र के कुछ लालिमायुक्त होने पर आज चिरकाल के बाद चम्पक पुष्प सुशोभित हो रहे हैं। भ्रमरों के झुण्डों ने अशोक वृक्ष पर (सुन्दरियों) के चरण प्रहार से अत्यन्त बजते हुए नुपुरों की झंकार सुनकर अपने गुंजनों से उनका अनुकरण प्रारंभ कर दिया है। महाकवि हर्ष मणि, मंत्र और औषधियों के प्रभाव को तो असीमित घोषित करते प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार इन प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग करके अनेक कार्यों का समाधान किया जा सकता है। श्री हर्ष राजा से कहलवाते हैं कि-

‘कः सन्देहः अचिन्त्यो हि मणिमौषधीनां प्रभावः ।’

अर्थात्- मणि और औषधियों के प्रभाव असीमित हैं इसमें कोई संदेह नहीं है। यहाँ आयुर्वेदीय औषधिमय एवं आरोग्यवर्धक परिस्थितियों की ओर सङ्केत किया गया है। जो इकोफ्रेण्डली होता है, उसका किसी प्रकार की नकारात्मक परिणाम भी नहीं होता।

नागानन्द में महाकवि हर्ष ने प्रकृतिमय वातावरण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि “ये वृक्ष भ्रमरों के झंकार शब्द से मानो मधुर स्वागत कह रहे हैं, फलों से झुके हुए शिरों से नमस्कार कर रहे हैं और पुष्पों की वर्षा करते हुए पूजा का उपहार दे रहे हैं, देखो तो किस तरह वृक्षों को भी अतिथि सत्कार की शिक्षा दिया गया है।

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशकैः, नतिमिव फलनग्नैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।

मम ददत इवार्थ्य पुष्पवृष्टीः किरंतः, कथमतिथिसपर्या शिक्षिताः शाखिनोऽपि ।।⁷

इसी प्रकार प्रकृति चित्रण करते हुए हर्ष कहते हैं कि- ‘ये मृग दातों के बीच पड़े हुए घास के कौर के चबाने का शब्द रोक करके अंग को टेढ़ा किए हुए ऐसा गीत सुन रहे हैं जिसमें हृदय कण्ठ आदि स्थानों में प्राप्त होने के कारण स्पष्ट प्रतीत हुए गमकों वाली मंद्र और तार की व्यवस्था है, अच्छी बजने वाली वीणा के तारों का भ्रमर झंकार जैसा शब्द मिला हुआ है तथा सुन्दर पद एकदम स्पष्ट है।⁸ प्राकृतिक आयुर्वेदिक उपचारका प्रमाण इनके कृतियों में जिसे इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए हर्ष कहते हैं कि- ‘अथवा क्यो न रोयेगी, इसके हृदय का सन्ताप इसे और अधिक पीडा दे रहा है। तो इस समय मुझे क्या करना चाहिए। हाँ! शीघ्र ही चन्दनलता के कोपलों का रस इसके हृदय पर लगाती हूँ। ‘अधिकोस्या हृदयस्य सन्तापोऽधिकतरं बाधते। तत् किमिदानीमत्र करिष्ये! तत् यावच्चंदनलतापल्लवरसमस्य हृदये दास्ये।’ इस प्रकार यहाँ आयुर्वेदीय इकोफ्रेण्डली (प्रकृति के अनुकूल) औषधि का सुष्ठु प्रयोग दृष्टव्य है। हर्ष का कुसुमाकर उद्यान पर्यावरणीय तथा प्रकृतिमय वातावरण में अत्यन्त मनोहर परिदृश्य का चित्र इस प्रकार प्रदर्शित करता है-

नायक - कुसुमाकर उद्यान की कैसी बड़ी शोभा है - क्योंकि यहाँ-चन्दन वृक्षों का बहता हुआ रस तथा मण्डप के कुट्टिमों-फर्शों के प्रेदेशों को शीतल बना रहा है। कनारों से छोड़ा गया पास ही में मयूर जलयंत्रों के शब्द को लक्ष्य करके (मेघभ्रम से) नृत्य कर रहा हैय फव्वारों से छोड़ा गया तथा गिरकर बहने से अनायास ही अपने साथ बहाये हुए फूलों की धूलि से पीला-पीला बना यह जल समूह वृक्षों के थावलों (थाल्हों) को भरता हुआ वेग से चल रहा है। महाकवि हर्ष के ये वाक्य मनमोहक वातावरण को अध्येता के अंतर्मन में अनायास ही उतार देता है जिससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन वातावरण अद्यतन समय के अपेक्षा पर्यावरणीय दृष्टि से आधिक अनुकूल रहा था।

नायक- अहो नु सुकुमारोद्यानस्य परा श्रीः! इह हि -

निष्यन्दश्चन्दनानां शिशिरयति लतामंडपेकुट्टिमान्ता, नाराद् धारागृहाणां ध्वनि तनुते तान्दवं नीलकण्ठः ।

यंत्रोन्मुक्तश्चवेगद् चलति विटपिनां पूरयन्नालवाला- नापातोत्पीडहेलाहत कुसुमरजः पिञ्जरोऽयं जलौघः ।¹⁰

इसी प्रकार भ्रमरों में गीत गायन का मानवीकारण दिखाते हुए कहते हैं कि - ये भ्रमर गीतों को आरंभ करके लतामण्डपों के भूमियों को गुंजाते, स्पष्ट दिखाई देने वाले कुंकुम चूर्ण को धारण किए तथा अपनी संगिनी भ्रमरियों के साथ छक कर मकरन्द पीते हुए चारों तरफ पानोत्सव का आनन्द ले रहे हैं।¹¹ यहाँ पर महाकवि हर्ष जंगल के वानस्पतिक वातावरण का अंकन करते प्रतीत होते हैं जिसका अद्यतन वातावरण में अतीव आवश्यकता है। महाकवि हर्ष ने प्रियदर्शिका नाटिका के प्रथम अंक के श्लोक संख्या 10 में कमलवन की शोभा, चक्रवाक पक्षी, सूर्य की लालिमा तथा तालाब (सरोवर) का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हुए पर्यावरणीय परिदृश्य प्रस्तुत कर दिया है। वे राजा पात्र के सहारे कहते हैं कि-

‘राजा- यह दिन श्री (सूर्य की) प्रियतमा की तरह कमलवन की शोभा को हरण करके चली गयी इस सूर्य की विम्ब में मेरे चित्त की तरह अधिक राग (लाल रंग) दिखाई दे रहा है। चक्रवाक पक्षी मेरी तरह सहचरी (चक्रवाकी) का ध्यान करता हुआ नलिनी (तालाब) के किनारे पर बैठा है। मेरे मन की तरह संसार की दिशाएँ सहसा अंधकारयुक्त हो गयीं हैं।¹² यहाँ प्रकृति के अंगभूत सूर्य के प्राकृतिक महत्त्व तथा पर्यावरण में उसके महत्त्व को अनुभव किया जा सकता है। आक्सीजन की पूर्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अनेक जंगली वनस्पतियों, पुष्पों, फलों आदि का भी इन्होंने वर्णन किया है प्रियदर्शिका में सघन-तमालवृक्ष, शेफालिका-पुष्प, सप्तपर्ण-वृक्ष की सुगंध, गजमद की सुगंध, कमल-पराग-पुंज, शिरीष-पुष्प, हरी-घास के मैदान, बन्धूक-पुष्प आदि का वर्णन बड़े सहृदयता से करते हैं।¹³

इसी प्रकार श्री हर्ष प्रियदर्शिका के भरतवाक्य में भी जलवृष्टि से परिपूर्ण पृथिवी, तथा संपूर्ण सामाजिक कष्टों के परिश्रान्ति का इच्छा प्रकट करते हुए एक अनुकूल एवं शान्त वातावरण की कल्पना किया है। वे कहते हैं कि-‘इन्द्र आवश्यक जलावृष्टि कर पृथिवी को धनधान्य से समृद्ध बना दे, प्रियवर्य यज्ञों के द्वारा देवताओं को विधिवत सन्तुष्ट करें। कल्पान्त पर्यन्त सज्जनों की स्थिर तथा उचित संगति प्राप्त हो और असह्य वज्रलेप की तरह दुर्जनों की वाणी नामशेष हो जाय।¹⁴ इस भारत वाक्य में ‘वसुधैव कुटुंबकम्’ तथा ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया’ जैसे सूक्तियों का अनुकरणवत् प्रतीति होता है जो बन्धुतापूर्ण संतुलित वातावरण को बनाए रखने में अपना असीमित नैतिक एवं सदाचारपूर्ण भावनात्मक योगदान प्रदान करता है। इसी प्रकार वेदने वयु को साक्षात् ‘विश्वभेषज’ कहा है। अथर्ववेद में तो सूर्य को चक्षु, वायु को प्राण, अंतरिक्ष को आत्मा तथा धरती को शरीर माना गया है- सूर्यो मेचक्षुर्वातः प्रयणोऽन्तिरक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् । अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधेद्यावापृथिवीभ्यां गोपीथाय ।।¹⁵

भारतीय मनीषा में पर्यावरण का प्रतिनिधित्व करने वाले भूरिशः संदर्भ भरे पड़े हैं। जो जन-जन को संदेश देते हैं फिर भी इन संदर्भों पर अमल करना तो यहाँ जीवों और मुख्यतः मनुष्यों का काम होना चाहिए।

निष्कर्षतः अनेक अनुशीलनों के उपरान्त ज्ञात होता है कि महाकवि हर्ष ने अपने कृतियों में उन अनेक आवश्यक तत्त्वों का वर्णन किया है जो वैदिक काल से लेकर आज तक पर्यावरण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनके सामाजिक मूल्यों पर दृष्टिपात करने से समाज के प्रति अनुकूल सोच उभरकर सामने आता है।

वस्तुतः जैव विविधता को एक बड़ी सीमा तक पारम्परिक समाजों ने ही संभालकर रखा हुआ है। जैव विविधता के नाश से समाज की बहुत बड़ी क्षति होती लेकिन भारत में अनेक पेड़ पौधों और जीव-जन्तुओं को

प्राचीनकाल से ही पवित्र मानकर उनकी पूजा की जाती है जैसे तुलसी, पीपल, गाय, सर्प, और प्रकृति के अन्य तत्त्व भी यहाँ इसी प्रकार आदर सत्कार के पात्र समझे जाते हैं। यही कारण है कि हर्ष आदि के कृतियों में इनका भूरि-भूरि वर्णन नैकाधिक रूपों में प्राप्त होता है। पर्यावरणीय सन्दर्भ और उनके घटक तत्त्वों के ज्ञान हेतु भारतीय वाङ्मय में शोध कार्य अत्यन्त आवश्यक कार्य है। यह भारत के पर्यावरण संतुलन में जनसंख्या के एक बड़े भाग को मानोभावनात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। अतः इस दिशा में किया गया प्रयास सराहनीय हो सकता है।

संदर्भ -

1. ऋग्वेद-अरण्यानीसूक्त, 10/146.
2. रत्नावली, प्रथमअंक, श्लोक-10, पृ. 17, व्याख्याकार, डॉ. जयमंगलपाण्डेय
3. रत्नावली, प्रथमअङ्क, पृ. 18, व्याख्या. डॉ. जयमंगलपाण्डेय
4. रत्नावली, अङ्क -1, पृ. 22 व्याख्या. डॉ. जयमंगलपाण्डेय
5. रत्नावली, अंक-1 पृ 028, पृ. 22 व्याख्या. डॉ. जयमंगल पाण्डेय
6. रत्नावली. अंक-1, श्लोक -19, पृ. 30 व्याख्या. डॉ. जयमंगल पाण्डेय
7. नागानन्द, अंक 1, पृ. 22, संपादक संसारचंद्र, मोतीलाल बनारसीदास।
8. नागानन्द, अंक 1 पृ. 24, संपादक संसारचंद्र, मोतीलाल बनारसीदास।
9. नागानन्द, अंक-2, पृ. 54, संपादक संसारचंद्र, मोतीलाल बनारसीदास।
10. नागानन्द, अंक-3, श्लोक 7, पृ. 104, संपादक संसारचंद्र, मोतीलाल बनारसीदास।
11. नागानन्द, अंक-3, श्लोक 8, पृ. 104-5, संपादक संसारचंद्र, मोतीलाल बनारसीदास।
12. प्रियदर्शिका-अंक 1, पृ. 16, श्लोक 10, व्याख्या. गंगाधर इंद्रकर, हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग।
13. प्रियदर्शिका-अंक 1, पृ. 10, व्याख्या. गंगाधर इंद्रकर, हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग।
14. प्रियदर्शिका-अंक 4, पृ. 44, श्लोक 12, व्याख्या. गंगाधर इंद्रकर, हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग।
15. अथर्ववेद 5/9/7

हर्षकृत रत्नावली नाटिका पर दर्शनपरक विषय अत्यंत विरल है जबकि विषय विवेचनार्थ सामग्री सहजतया उपलब्ध होता ही है। अतः सामग्री की सुलभता तथा रत्नावली में दर्शनपरक शोधकार्य की न्यूनता इस शोधपत्र के शोध शीर्षक चयन का कारण है। साथ ही इस क्षेत्र में शोध की न्यूनता इसकी औचित्य एवं महत्व को प्रशस्त करता है। हर्ष की भारतीय दर्शन के प्रति झुकाव कितना रहा था इस मूल्य को परखना और उनकी आदर्शपूर्ण विचारों एवं उपदेशों उनके अनुभवों को सुधीजन तक पहुँचाना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

प्रेमीयुगल के मिलन पर होने वाले स्वाभाविक औत्सुक्यपूर्ण स्थितियों का एक दूरदर्शितापूर्ण समायोजन और सङ्केत हर्ष शिव-पार्वती रूपों से करते हैं। हर्ष ने एक सामान्य मानव में उपलब्ध होने वालेयुवावस्था या प्रेमातिरेक के स्वाभाविक दर्शन को इस प्रकार से स्पष्ट किया है-

पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां, शंभोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराम्ये ।

होमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया, विश्लिष्यन्कुसुमाञ्जलिगिरिजया क्षिप्तोऽन्तर पातुवः ।।'

जनकल्याणार्थ आशीर्वादात्मक कामना से प्रतीत होता है कि महाराज हर्ष के मत में जनकल्याण के लिए एक अनुकूल परिस्थिति का होना आवश्यक है क्योंकि हर्ष स्वयं कहते हैं कि 'चन्द्रमा सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पीड़न से मुक्त हो, पृथिवी समृद्ध धान्य वाली हो, तथा राजा चन्द्रमा के समान सुन्दर शरीर वाला तथा प्रतापवान् हो। **जितमुडुपतिना.....चंद्रवपुर्नरिंदः ।।'** हर्ष के द्वारा कहे गए इन चारों तथ्यों में तत्कालीन समाज की चहुमुखी समृद्धता की दार्शनिकतापूर्ण सोच को दर्शाता प्रतीत होता है। क्योंकि चन्द्रमा की सर्वोत्कृष्टता उस राज्य के औषधीय व्यवस्था की ही सर्वोत्कृष्टता मानी जाती है तथा ऐसा लोकसामान्य से ज्ञातव्य है कि यदि उस स्थान की शिक्षा या बौद्धिक पक्ष प्रभावहीन या नष्ट हो जाय तो वहाँ की सभी व्यवस्थाएँ नष्ट होने लगती हैं इसी तथ्यों से जन सामान्य को सावधान करते हुए हर्ष ने ब्राह्मण के उत्पीड़न का निषेध किया है क्योंकि तत्कालीन ब्राह्मण राज्य की बौद्धिक संपदा समझा जाता था। इसीलिए इस तर्कपूर्ण वाक्य में उनकी दूरदर्शिता स्पष्ट होती है।

इसी प्रकार पृथिवी का धन धान्य होना भी खुशहाल जन जीवन का प्रतीक है तथा यदि हमारा राजा प्रतापवान् हो तो सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ समझी जाती है तथा वह राज्य दीर्घजीवी हो जाता है। इस प्रकार हर्ष के दूरदर्शिता को कोई भी राज्य या राजा तत्कालीन व्यवस्था से शिक्षा प्राप्त कर सकता है। हर्ष का विचार है कि

अनपेक्षित व्यवस्थाओं एवं स्थितियों के होने पर भी सत्कर्मों की संबल पाकर भाग्य की अनुकूलता और प्रतिकूलता जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सत्कर्मपूर्ण भाग्य अलभ्य एवं अगम्य प्रतीत होने वाले अभीष्ट फल को लभ्य बना देती है। अतः मानव मात्र को कभी भी अकारण निराश नहीं होना चाहिए संभवतः अकारण निराश होने से हम एक भावी सत्फल की प्राप्ति से वंचित हो सकते हैं। जब व्यक्ति कर्म किए बिना और भाग्य पर विचार किए बिना निराश होकर कर्म करना ही छोड़ देगा तब तो किसी भी फल से वंचित रहेगा अग्रलिखित पद्य ऐसा स्पष्ट करता है -

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिर्धोदशोऽप्यन्तात् ।

आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।।³

दार्शनिकता की दृष्टि से सत्यनिष्ठ सेवा धर्म को हर्ष ने कठिनता से सवहन किए जाने योग्य बतलाया है जो आज भी वास्तविकता का दर्शन कराता है। क्योंकि सेवा धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसके प्रभाव से हीन व्यक्ति भी प्रभुवर्ग (राजा, ईश्वर) इत्यादि की सत्यनिष्ठता से सेवा कार्य (भक्ति कार्य) करके श्रेष्ठ यश की प्राप्ति कर सकता है। किन्तु सेवा धर्म निस्वार्थ पालन कोई बिरला ही कर सकता है। महाकवि भर्तृहरि भी कहते हैं।

सेवाधर्मोपरम गहनः योगिनामप्यगम्यम् ।⁴

महाकवि हर्ष भी कहते हैं कि - तदेवं निष्पन्नप्रायमपि प्रभुयोजनं न मे धृतिमावहतीति कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः । कुतः प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवेनेत्यं दत्तहस्तावलम्बे । सिद्धेर्भान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः ।।⁵

महाकवि हर्ष मानव जीवन में आने वाली एक दैनिक यथार्थपूर्ण तथ्य का वर्णन सूर्य और चन्द्रमा के दैनिक गतियों से कहते हैं कि- 'समस्त कान्ति को अस्ताचल पर डाल चुके हुये सङ्केतित करते हुए सूर्य के आकाश के पार पहुँच जाने पर अब सायङ्काल के समय एक साथ राजसङ्घ भा की ओर मिलकर जाता हुआ यह राज समूह चन्द्रमा के समान नेत्रों को आनन्द का अतिशय उत्पन्न करने वाले तुझ उदयन के कमलों की कान्ति को चुराने वाले चरणों की सेवा करने के लिये ऊपर प्रतीक्षा कर रहा है -

अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा,

वास्थानीं समये समं नृपजनः सायन्तने सम्पतन् ।

संप्रत्येष सरोरुहद्यु तिमिषः पादांस्तवासेवितुं,

प्रीत्युत्कर्षकृती दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ।।⁶

कवि ने सुख के बाद दुःख और पुनः दुःख के बाद सुख का चक्रगति चलता रहता है इसलिए व्यवहार दशा के परिस्थितियों को स्वीकार करते हुए अनुकूलता तथा प्रतिकूलता के प्रति सचेत रहने हेतु उपकल्प सुझाने का प्रयास किया है।

एक स्थल पर तो हर्ष की दार्शनिकता एवं तार्किकता का प्रत्यक्ष झलक देखा जा सकता है। कवि हृदय और उसके अभिलाषा को संबोधित करते हुए कहते हैं कि - इस दुर्लभ जन की अभिलाषा के हठ से जिसका केवलमात्र फल दुःख है क्या लाभ? और फिर जिसके देखने मात्र से तुझे इतना सन्ताप बढ़ रहा है, फिर भी तू उसे ही देखने की अभिलाषा कर रहा है। आश्चर्य है तेरी मूढ़ता! और अति क्रूरजन्म से लेकर साथ बड़े हुये इस जन को छोड़कर क्षण-भर के दर्शन से परिचित जन का अनुगमन करते तू लज्जित क्यों नहीं होता?

अन्यच्च, येनैव दृष्टेन त ईदृशः सन्तापो ननु वर्धते पुनरपि तमेव प्रेक्षितुमभिलषसीत्यहो ते मूढता ।
कथं चातिनृशंस जन्मतः प्रभृति सहसंवधितमिमं जर्न परित्यज्य क्षगमात्रदर्शनपरिचितंजनमनुगच्छन् लज्जसे ।⁷

जैसा कि भारतीय संस्कृति भी घोषित करता है कि नारी सम्मान हमारे संस्कृति और व्यवहार की प्राथमिकता होना चाहिए यथा-

यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः ।।⁸

इसी दार्शनिकता का परिदर्शन उनके कथ्यों से भी होता है। हर्ष अपने रत्नावली नाटिका के एक स्त्री पात्र सागरिका से कहलवाते हैं कि 'हे कामदेव! सभी सुरों एवं असुरों को जीतने वाले होकर भी तुम स्त्रीजन पर प्रहार करते हुए लज्जा का अनुभव नहीं करते हो तो तुम एक धृष्ट व्यक्ति हो यथा-

भगवान्, कुसुमायुध निर्जित सकल सुरासुरो भुत्वा स्त्री जनप्रहरन् कथं न लज्जसे अथवानङ्गोसि ।⁹

रत्नावली नाटिका में अनेक ऐसे सूक्ति वाक्य उपलब्ध होते हैं जो अपने शिक्षा एवं उपदेशपरक दर्शनमय बातों से जनसामान्य को शिक्षित करते हैं। रत्नावली नाटिका के प्रत्येक अंक में ऐसे सुवचनपद-पद में प्राप्त हो जाते हैं। द्वितीय अंक में कवि हर्ष ने इस नाटिका के एक स्त्री-पात्र जिसका नाम है सागरिका से कहलाते हैं कि -**मरणं शरणं न वरमेकं ।¹⁰**

इस वाक्य की दार्शनिकता और शिक्षापरक तात्पर्य हर उन व्यक्तियों के लिए अमृत का कार्य करती है जो किसी कार्य को अनेक बार अथवा एक बार करते हैं तथा उस कार्य के फल पर वे इतना निर्भर रहते हैं कि अन्ततः उस कार्य का फल नकारात्मक आने पर अपना आपा खो बैठते हैं। उसी दशा में यह वाक्य अपने सुन्दर तात्पर्य से हारे हुए व्यक्ति को भी एक उर्जापूर्ण सम्बल प्रदान करता है। जिससे निराश व्यक्ति भी नई स्फूर्ति का अनुभव करता हुआ सकारात्मकता की ओर अग्रसर होने लगता है। तात्पर्य यह है कि मरना या प्राण देना ही किसी कार्य का अन्तिम हल नहीं हो सकता अपितु उस कार्य से उत्तम फलवाप्ति हेतु भूरिशः एवं सार्थक प्रयास आवश्यक होता है तथा इसके लिए प्रथमतया जीवित रहना एवं स्वस्थ रहना आवश्यक है। महाकवि कालिदास भी कहते हैं कि- **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं**। किसी भी कार्य या धर्म को करने हेतु हमारा शरीर ही प्रथम साधन है। प्राचीन बौद्धिक सम्पदाओं में मंत्र, धन-धान्यों में माणिक्य और औषधियों का जो निस्सीम प्रभाव होता है उसी का प्रवचन करवाते हुए श्री हर्ष इस नाटिका के राजा नामक पात्र से एक अत्यन्त कीमती बात कही है कि -**‘अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः ।’**

अर्थात् मणि मंत्र और औषधियों का प्रभाव इतना अधिक होता है कि उसका कल्पना तक नहीं किया जा सकता है।¹² इसी तथ्य का पुनः उदाहरण भी महाकविहर्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि-

कण्ठे श्रीपुरुषोत्तमस्य समरे दृष्ट्वा मणि शत्रुभिर्नष्टं मन्त्रबलाद्वसन्ति वसुधामुले भुजङ्गा हताः ।

पूर्वं लक्ष्मणवीरवानरभटा ये मेघनादाहताः, पीत्वा तेऽपि महौषधेर्गुणनिधेर्गन्धं पुनर्जीविताः ।।¹³

अर्थात् युद्ध में भगवान् विष्णु के कण्ठ में (कौस्तुभमणि) को देखकर उसके शत्रु भाग खड़े हुए। मंत्र के प्रभाव से शक्तिहीन हुए सर्प पृथ्वी के मूल पाताल में रहते हैं। पहले जो लक्ष्मण और वीर वानर योद्धा मेघनाद ने मार दिये थे वे भी गुणों की निधान महौषधि की गन्ध का पान करके पुनर्जीवित हो गये। ऐसी ही मणि, मंत्र एवं औषधियों का दुष्कल्प्य प्रभाव होता है।

भारतीय दर्शन में मानव मन का परिभाषा स्पष्ट किया गया है, भारतीय दर्शन किसी कल्पना पर नहीं अपितु वास्तविक लोकव्यवहारिता पर आधारित है। लोकव्यवहारतयामन को परिभाषित किया है कि - चलनात्मकं मनः। अर्थात् मन गतिशील(चंचल) स्वभाव वाला होता है। इसी प्रकार तर्कसंग्रहकार अन्नम्भट्ट कहते हैं कि- **सुख दुःखाद्युपलब्धि साधनमिन्द्रियं मनः ।¹⁴**

अर्थात् सुख दुःख आदि प्राप्ति के साधनभूत इन्द्रिय को मन कहते हैं। तर्कसंग्रहकार ने मनस्तत्त्व के व्यवहारिक गतिविधि के अनुकूल ही लक्षण दिए हैं। इसी तरह सदानन्दाचार्य वेदान्तसार में कहते हैं कि -

मनोनाम सङ्कल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः ।¹⁵

अर्थात् अन्तःकरण की जो सङ्कल्प-विकल्प अर्थात् ऊहापोह करने वाली भाँति-भाँति की इच्छाओं को उद्भूत करने वाली जो संशयात्मिका वृत्ति है उसी को हमें शरीर के इन्द्रियों में से मन इन्द्रिय के रूप में जानना चाहिए। महाकवि हर्ष नाटिका का भले ही साहित्यपरक निर्माण किया नाटक विधा में रत्नावली है पुनरपि इनके दार्शनिकता और उपदेशपरकता को नहीं छोड़ा जा सकता। क्योंकि भारतीय दर्शन में मन का स्वभाव जैसा निश्चित किया गया है ठीक उसी का पुनर्कथन अथवा दैववसात् कहे दोनों का अर्थ और तात्पर्य समान ही ज्ञापित होता है। महाकवि हर्ष मनस् तत्त्व को स्पष्ट करते हुए करते हैं कि- **मनश्चलं प्रकृत्यैवदुर्लक्ष्यं च तथापि मे । कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ।।¹⁶**

अर्थात् - मनस् स्वभाव से ही चञ्चल और दुर्भेद्य है पुनरपि कामदेव ने कैसा मेरा यह मन एक साथ सब बाणों से बींध दिया है। महाकवि हर्ष ने स्वाभाविक एवं सत्यनिष्ठ प्रेम की उत्कृष्टता स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए कहते हैं कि - **प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषयं हि भवति ।।¹⁷**

अर्थात् क्योंकि उत्कट प्रेम का स्खलन असह्य होता है। कवि हर्ष की लोक व्यवहारिक अनुभव अत्यन्त उच्च कोटि की है ऐसा रत्नावली में प्रस्तुत दर्शनपरक सूक्तियों एवं उनके हर्षकालीन कथनों से स्पष्ट होता है। जो समाज के व्यवहार का यथार्थ रेखांकन करता प्रतीत होता है। यही नहीं हर्ष के द्वारा कथित एक-एक वाक्य सूक्तिमयता का स्वरूप धारण कर लेते हैं। इसी प्रकार श्री हर्ष रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में स्वामी और भक्त के अत्यन्त प्रगाढता को उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि- **ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरुगोधवृत्तिः स्वामिभक्तिव्रतम् ।** अर्थात् यह स्वामिभक्ति का व्रत ही ऐसा है, जिसमें अत्यन्त माननीय जनों के प्रति भी रूखा व्यवहार करना ही पड़ता है। इसी प्रकार महाकवि हर्ष ने अनेक ऐसे वाक्य एवं वाक्यांशों का संयोजन किया है जो वास्तव में लोकव्यवहारिकता, दार्शनिकता, दूरदर्शिता, एवं बुद्धिपूर्ण अनुभव का प्रतिनिधित्व करते हुए ज्ञात होते हैं। यथा- कांचनमाला नामक स्त्री पात्र कहती है- **घुणाक्षरमपि कदापि संभवत्येव ।** अर्थात् कभी संयोगवश भी हो सकता है। यहाँ हर्ष ने भाग्यवादिता को भी प्रासङ्गिक मानने का प्रयास किया है। आत्माकिल दुःखमालिख्यत् । अर्थात् अपना चित्र कठिनाता से बनाया जा सकता है। **दुरवगाहागतिर्दैवस्य ।¹⁸** अर्थात् दैवगति जानी नहीं जा सकती। पुनः महाकवि हर्ष कहते हैं कि- **“किं पुनः साहसिकानां पुरुषाणां न संभाव्यते” ।**

अर्थात् साहसिक पुरुषों से भला क्या संभव नहीं है। तात्पर्यतः कहा जा सकता है कि साहस से सब कुछ संभव है।¹⁹ क्योंकि पंचतंत्र का कथन है **‘क्रियासिद्धिसत्वे भवति महतांनोपकरणे’** क्रिया की सिद्धि बड़े उपकरणों से नहीं अपितु साहस और क्रिया को करने से ही हो सकता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महाकवि हर्ष की दार्शनिकता, व्यवहारपरकता, उपदेशपरक शिक्षाएं उत्कृष्ट कोटि की हैं। जिसका बीज भारतीय वाङ्मय के साथ ही साथ सामान्य जनजीवन के गतिविधियों में भी प्रतीत होता है। हर्ष की दूरदर्शिता का अनेक सूक्तिमय उदाहरण हम केवल रत्नावली में ही नहीं अपितु उनके द्वारा विरचित अन्य कृतियों में भी आसानी से पद-पद पर ही उपलब्ध हो जाते हैं। जो एक आदर्श जीवन के निर्वाह में उपयोगी सिद्ध होने की क्षमता रखते हैं। इसीलिए हर्ष एवं उनकी कृतियों के सूक्तिमय वाक्य आज भी जीवन में प्रासङ्गिक प्रतीत होते हैं।

संदर्भ -

1. रत्नावली, अंक प्रथम, श्लोक 1, पृ.2, व्याख्या.- डॉ. शिवराज शास्त्री, साहित्य भंडार, शुभाष बाजार, मेरठ।
2. रत्नावली, अंक - प्रथम, श्लोक 4, पृ.6,
3. रत्नावली, अंक - प्रथम, श्लोक 6, पृ.8,
4. नीतिशतकम्, दुर्जन-पद्धति, श्लोक-48, पेज-78, व्या.-तारिणीश झा
5. रत्नावली, अंक प्रथम, श्लोक 7, पृ.10,
6. रत्नावली, अंक प्रथम, श्लोक 24, पृ.38,
7. रत्नावली, अंक द्वितीय, पृ.44,
8. मनुस्मृति, अध्याय 3, श्लोक 56।
9. रत्नावली, अंक द्वितीय,
10. रत्नावली, अंक द्वितीय, श्लोक 1,
11. कुमारसंभव महाकवि कालिदास
12. रत्नावली, अंक द्वितीय, श्लोक 5, पृ.56,
13. रत्नावली, अंक द्वितीय, श्लोक 5 पृ.56,
14. तर्कसंग्रह, पृ. 49, व्या. डॉ. अनीता सेन गुप्ता।
15. वेदांतसार, सदानंदाचार्य
16. रत्नावली, अंक 3, श्लोक 2 पृ.92,
17. रत्नावली, अंक 3,
18. रत्नावली, अंक 4, पृ.156,
19. रत्नावली, अंक 3, पृ.110,

13

हर्षवर्धन के रूपकों में लोक संवेदना

भूपेन्द्र कुमार राठौर

लोक चेतना से तात्पर्य समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिकविषमताओं, विसंगतियों और समस्याओं के प्रति जनमानस की जागरूकता से है। नागानन्द नाटक में परोपकार की भावना को ही प्रमुखता प्राप्त हुई है जो नायक के जीवन का ध्येय है- एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहित करणायैव यस्यप्रयासः।¹ वन में सभी प्राकृतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी परोपकार के अवसर के अभाव में उसका मन नहीं लगता है, वह कहता है -

इत्यप्रार्थितलभ्य सर्वविभवे दोषोऽयमेको वने। दुष्प्रापार्थिनि यत्परार्थं घटना बन्धैवृथा स्थीयते।²
उसकी परोपकारमयी वृत्ति की शंखचूड़ भी इस प्रकार प्रशंसा करता है- प्राणास्तानेव चित्रं तृणमिव कृपया चः परार्थे जहाति। सूत्रधार द्वारा द्विजपरिजनबन्धुहिते³ कहकर पत्नी का परोपकारी विनम्र एवं सहयोगी स्वभाव पतिव्रताधर्मिणी होने की अभिव्यक्ति है। जीमूतवाहन का भौतिक सम्पत्ति के प्रति अनासक्त भाव एवं माता-पिता के प्रति सेवा में प्रवृत्ति अनुकरणीय है- पित्रेर्विधातु शुश्रूषा व्यक्तैश्वर्य क्रमागतम्⁴ अनुकरणीय है। भक्त्या याति यदीत्यमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य में⁵ नायक माता पिता की भक्तिपूर्वक सेवा में यौवनकाल व्यतीत करना सामाजिक परवर्तीजनों के लिए शैक्षिक संकेत है। सर्वस्याभ्यागतो गुरुः अर्थात् अतिथि सबका गुरु होता है, सामाजिक शिक्षा का उद्घोष है। इस शरीर की रक्षा के लिए लोग व्यर्थ ही प्राणियों की हिंसा रूप पाप कृत्य करते हैं। वस्तुतः यह उनकी मूर्खता का परिचायक है - शरीरकस्यापि कृते मूढः नश्वर शरीर की निरर्थकता का अवबोध श्रीमद्भगवद्गीता की भावाभिव्यक्ति है- धात्रीव जननी पश्चात् तदा शोकस्य कः क्रमः।⁶ पुत्र वात्सल्य के सन्दर्भ में माँ की व्याकुलता नागानन्द नाटक में वर्णित है कि-

मूढाया मुहश्च सन्ततिमुचः कृत्वा प्रलापान् बहून्, कस्त्रा मम पुत्रकेति कृपणं दिक्षु क्षिपन्त्या दृशम्।
अङ्के मातुरवस्थितं शिशुमिमं त्यक्त्वा घृणामज्जत, श्चुनर्नैवं खगाधिपस्य हृदयं वज्रेण मन्येकृतम्।⁷
शंखचूड़ माता से असीम प्रेम करता है। वह पुनः उसी के पुत्र के रूप में जन्म लेने की भगवान से प्रार्थना करता है - समुत्पत्स्यामहे मातर्यस्यां यस्या गतौ वयम्। तस्यां तस्यां प्रियसुते ! माता भूयास्त्वमेव।⁸
अहिंसा का सन्देश नागानन्द नाटक में नायक की उक्ति से द्रष्टव्य है-

नित्यं प्राणातिपातात् प्रति विरम कुरु प्राक्कते चानुतापं, यत्नात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनुदिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम्।

मग्नं येनात्र नैनं फलति परिमित प्राणिहिंसात्तमेतद्, दुर्गाधापारवारे लवण पलमिव क्षिप्तमन्तहृदस्य।⁹

प्राणियों की हिंसा का परित्याग, जीवन की रक्षा हेतु जो भी प्राणीहिंसा हुई है उसके लिए अन्तर्मन से पश्चाताप करो। इस संसार के सभी प्राणियों को अभयदान प्रदान करते हुए यत्नपूर्वक पुण्य के प्रवाह का सञ्चय करें। जिससे अथाह एवं पार न करने योग्य जल वाले तालाब में डाले गये नमक के समान थोड़ी सी जीवहिंसा से उत्पन्न हुआ पाप इस पुण्य प्रवाह में डूबकर फल न दें सकें। निश्चय ही नागानन्द नाटक भी उस पौराणिक उद्घोष का अनुमोदन करता है, जिसमें कहा गया है कि- परोपकारः पुण्याप पापाय परपीडनम्। हर्ष का उद्देश्य इस नाटक में जनता के मध्य महायान की लोकोपकारिणी प्रवृत्तियों का प्रचार करना है।

श्री हर्ष ने रत्नावली नाटिका में नाट्यशास्त्रीय परम्पराओं लौकिक व्यवहारों एवं मानव समाज की अनुभूतियों को अपने स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया है- उस समय सामूहिक रूप में उत्सव मनाने की प्रथा थी और उत्सवों में स्त्री पुरुषों को सम्मिलित होने का पूर्ण अधिकार था -

मधुमत्त कामिनी जन स्वयं ग्राह गृहीत शृङ्गकजलप्रहारनृत्यन्नागर जनजनित कौतूहलस्य समन्ततः शब्दाय मानमर्द लोदूदाम चर्चरी शब्द, मुखरस्थ्यामुख शोभित प्रकीर्णपटवास पुञ्ज पिञ्जरितदशदिशा मुखस्य सश्रीकतां मदन महोत्सवस्य ।⁹

नाटिका में पर्दा प्रथा का वर्णन है, स्त्रियाँ प्रायः पर्दा करती थी, विवाहित स्त्रियाँ धार्मिक स्वभाव की थी, वे व्रत उपवास आदि धार्मिक कृत्यों का पालन करती थी, उपवास के वे स्वस्तिवाचन के रूप में ब्राह्मणों को दान दिया करती थी। कवि उपवास से युक्त वासवदत्ता के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं-

कुसुमसुकुमार मूर्तिदधती नियमेन तनुतरं मध्यम्। आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।¹⁰

हर्षकालीन समाज में स्त्रियों को पूर्णरूपेण आदर था गृहिणी के रूप में सदैव पूजनीया रही थी। उस समय सिद्ध एवं महात्मा सम्मान के पात्र होते थे, उनकी कथित वाणी जनता में विश्वसनीय थी। रत्नावली नाटिका में वासवदत्ता का रत्नावली के प्रति प्रेम, उदारता और अपूर्व त्याग की कथा वर्णित है। वासवदत्ता अपनी बहन रत्नावली को न पहचानने के कारण जो कष्ट देती है उस पर दुःखी होती है। उसमें क्षमायाचना का गुण विद्यमान है।

वासवदत्ता-एहयेह्यति निष्ठुरे, इदानीमपि तावत् स्नेहं दर्शय। इति कण्ठे गृह्णाति। रत्नावली स्खलितं नाट्यति। (अपवार्य) आर्यपुत्र। लज्जे खल्वनेनात्मनो नृशंसत्वेन। तदपनयास्या बन्धनम्।

वासवदत्ता- (एहि रत्नावली। एहि। एतावदपि तावन्मे भगिनिकानुरूपं भवतु ।¹¹

भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम् की ओर कवि संकेत करता है-

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेदिशोऽप्यन्तात्। आनीय झटिति घटयति विधि रभिमतमभि मुखीभूतः ।।¹²

जीवमात्र के प्रति स्नेह एवं पशु पक्षियों के प्रति स्वभाविक व्यवहार को देखकर पालतू मर्कट की चंचलता का चित्रण है - **प्रभृष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतमन्दिर मन्दुरायाः।** सागरिका एवं सुसंगता का वार्तालाप भी यहाँ द्रष्टव्य है - **प्रिय सखि ! महती खलु मे लज्जा।**

सखि ! मा लज्जस्व ! अताऽव्यधिकतरं मे सन्तापो वर्धते ।¹³

यहाँ नारी के लज्जाशीलस्वरूप का चित्रण है, किन्तु काम पीड़ा की उदात्तभावना भी यहाँ चित्रित है-

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा। प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ।¹⁴

यस्मान्मधुरं स्त्री स्वभावतः अर्थात् स्त्री स्वभाव से मधुर है कहकर कवि नारी के स्वाभाविक निश्छल हृदय की ओर संकेत कर रहा है। मनश्चलं प्रकृत्यैव दुर्लक्ष्यं उक्ति दार्शनिकता की अभिव्यक्ति है। दिष्ट्या वर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्धया भाग्यवादिता का संकेत निहित है। प्रकृति का मानवीकरण करके हर्ष ने उसे मानव की चिर-सहचरी के रूप में प्रस्तुत कर नवीन आयाम प्रदान किया है-

अध्वानं नैक चक्रः प्रभवति भुवन भ्रान्तिदीर्घ विलङ्घ्य, प्रातः प्राप्तुं स्थौं में पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्तातिभारः
सन्ध्यामृष्टावशिष्टस्वकरपरिकर स्पष्टहेमारपंक्ति, व्याकृष्यावस्थितोऽस्तक्षितिभृति नयती वैष दिक्चक्रमर्कः ।।¹⁵

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष, सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

कृत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः, सूर्योऽस्तमस्तक निविष्टकरः करोति ।।¹⁶

इस प्रकार वियोग दुःखी नायिका के सिर पर हाथ रखे हुए सूर्य के समान ओजस्वी नायक पद्मिनी नायिका को मानो सान्त्वना दे रहा है । साहसिकानां पुरुषाणां किं न संभाव्यते उत्साही जीवन का सुन्दर उद्घोष है । दुःखगाहागतिदैवस्य अर्थात् भाग्य की गति नहीं जानी जाती कथन भाग्य की प्रबलता का संकेत है । स्त्रियों की तत्कालीन स्थिति का ज्ञान भी रत्नावली नाटिका से प्राप्त होता है । उस सम बहुविवाह की परम्परा थी पुरुष को अनेक पत्नियां रखने का अधिकार था । उदयन का चरित्र इस सन्दर्भ में निदर्शन है -

अम्भोजगर्भ सुकुमारतनुस्तदाऽसौ, कण्ठग्रहे प्रथमरागधने विलीय ।

सद्यः पतन्मदनमार्गणरन्ध्रमार्गे, मन्ये मम प्रियतमा हृदयं प्रविष्टा ।।¹⁷

रत्नावली नाटिका में राजनैतिक लोकव्यवस्था का चित्रण भी प्राप्त होता है । प्रशासन की सार्वभौमिकता राजा पर अवलम्बित थी । सम्पूर्ण कानून व्यवस्था राजा की इच्छा पर आधारित थी । सेनापति रुमण्वान और विजयसेन उदयन को विन्ध्यदुर्ग में स्थित कौशल राज्य पर विजय का समाचार सुनाते हैं ।

अस्त्रव्यस्त्र शिरस्त्र शस्त्रकषणोत्कृतोत्तमाङ्गे क्षणं, ब्यूढा सृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वलद्वहिनी ।

आहूयाजिमुखं स कौशलः पतिर्भङ्ग प्रतीपी भव- न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्यो हतः ।।¹⁸

अभिनवतत्त्वों में से गर्भाङ्क की योजना हर्ष की संस्कृत साहित्य को अमर देन है, जिसके बल पर प्रियदर्शिका अमर रहेगी । प्रियदर्शिका में नायक और नायिका का परस्पर आंगिक स्पर्श दिखाया गया है । वासवदत्ता का चरित्र उदात्त है, मनोरमा का व्यक्तित्व मनस्विनी का है । राजनीति के क्षेत्र में मुद्राराक्षस में जो कुछ चाणक्य चन्द्रगुप्त के लिए करता है वैसा ही शृंगार के क्षेत्र में मनोरमा उदयन के लिए करती है । युद्ध का वर्णन कवि के अतिशय प्रेम को व्यक्त करता है- पादातं पतिरेव प्रथमतरमुरः पेशमात्रेण पिष्ट्वा, दूरान्नीत्वा शरौघैर्हरिण कुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः ।¹⁹ अङ्कान्त में सन्ध्या का वर्णन पर्यावरण चिन्तन का संकेत है । प्रियदर्शिका में स्नान-भू का वर्णन मिलता है-

लीलामज्जनमंगलोपकरणयस्नानीसम्पादिनः, सर्वान्तःपुरवार विग्रमवतीलोकस्यते सम्प्रति ।

आयासस्खलदंशुकाव्यवहितच्छायावदातैःस्तनै, रुक्षिप्तापरशातकुम्भकलसेवालंकृता स्नान भूः ।।²⁰

प्रियदर्शिका में गर्भाङ्क की घटना भी नायिका प्रियदर्शिका को दो प्रणय कथाओं में परिणत करके सामाजिकों तथा पाठकों के हृदय को सहसा आकर्षित कर लेती है । हर्ष वासवदत्ता के प्रणय कोष का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करते हैं कि प्रयत्नपूर्वक रोका गया क्रोध छिप नहीं रहा है । आंखों में लाली है, वाणी में अस्पष्टता एवं छाती में कम्पन है -

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापिद्युति, माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद् गदा वागियम् ।

निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः, कोपस्ते प्रकट प्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।²¹

ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक वर्णन प्राकृतिक संरक्षण का ग्रीष्म ऋतु क स्वाभाविक उद्देक है -

आभात्यर्काशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्तनैदीर्घिकाम्य, शृङ्गाभं नृत्तलीलाशियिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति ।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः, सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।।²²

भाग्य के विपरीत होने पर कोई भी कामना पूर्ण नहीं होती है, इसको कवि भ्रमर के निदर्शन से व्यक्त किया है- संजातसाद्रमकरन्दरसां क्रमेण, पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृङ्ग । दग्धा निपत्य सहसैव हिमेनयासौ, वामे विधौ हि न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि ।²³ अपने प्रति वर्णनों में हर्ष नैसर्गिक दृश्य को पात्र के मनोभावों से रंगकर प्रस्तुत करते हैं । प्रियदर्शिका में संध्या का वर्णन करते हुए कहता है-

हत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता, रामोऽस्मिन् मम चेतसीव सवितुर्विम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।

चक्राहवोऽहमिव स्थितः सहचर्यौ ध्यायन् नलिन्यास्तटे, सज्जातासहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।²⁴

श्रीहर्ष नगर सभ्यता व अन्तःपुर के जीवन का चित्रण जितनी विदग्धता के साथ करते हैं, उतनी गहरी सांस्कृतिक दृष्टि के साथ वे तपोवनों के आध्यात्मिक वैभव तथा नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्रण भी करते हैं-

मधुरमिव वदन्तः स्वागत भृङ्गः शब्दैः, नतिमिव फलनग्नैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।

मम ददत इवार्थं पुष्पवृष्टिं किरन्तः, कथमतिथि सपर्या शिक्षिताः शाखिनोऽपि ।²⁵

वनस्पतियों को आध्यात्मिक गौरव से मण्डित करते हुए श्रीहर्ष ने वृक्षों को भी अतिथि सत्कार की शिक्षा दी गई है । प्रियदर्शिका के निम्नलिखित संवादों में मुहावरेदार शैली तथा कहावतों का विन्यास बड़ा रोचक है-

- ♦ त्वमेव पुत्तलिकां भङ्गस्त्वेदानीं रोदिषि ? स्वयं ही अपनी गुड़िया को तोड़कर स्वयं रो रहे हो ?
- ♦ सर्वस्य वल्लभो जामाता भवति । अपना जमाई सबको प्यारा होता है ।
- ♦ रत्नाकरादृते कुतश्चन्द्रलेखाया प्रसूतिः । सागर के अतिरिक्त चन्द्रकिरण और कहाँ से जन्म लेगी ।
- ♦ शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते । शरीर के लिए भी मूर्ख लोग पाप करते हैं ।²⁶

संवाद का यह विन्यास अतिशय सरस होता है । इसकी चर्चा में जो विश्रब्धि की कल्पना होती है, वही अनन्यसिद्ध रस की निर्झरिणी प्रवाहित करती है । नागानन्द नाटक के भरत वाक्य में राष्ट्रीय चेतना का सन्निवेश है । राष्ट्र की स्वाधीनता के प्रति सभी को संवेदनशील रहने का भी सन्देश भरतवाक्य में निहित है । हमारे देश के सभी आबालवृद्ध लोगों को राष्ट्र भक्त होना चाहिए, संस्कृत एवं संस्कृति का संरक्षण कर पारस्परिक कलह को त्यागकर राष्ट्र के कल्याण में प्रवृत्त होना चाहिए- शिवमस्तु सर्वजगतां परहित निरता भवन्तु भूतगणाः । दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।²⁷ सम्पूर्ण संसार के कल्याण की मंगलकामना नाटक का प्रमुख उद्देश्य रही है । 'सर्वजन हिताय' 'सर्वजन सुखाय' का मानवीय उद्घोष- विन्वानाः सुकृतानि वीतविपदो निर्मत्सरैर्मानसैः । मोदन्तां घनबद्ध बान्धव सुहृद् गोष्ठो प्रमोदाः प्रजाः । ।²⁸

अर्थात् पुण्यों को एकत्र करती हुई, विपत्तियों से रहित, प्रगाढ रूप से प्रेम में बंधे-बन्धुओं एवं मित्रों की गोष्ठियों में आनन्दित भुजाएं प्रमुदित हों। सर्वत्र आनन्द, राष्ट्र समृद्ध, शक्ति सम्पन्न एवं विश्व में प्रिय राष्ट्रिय चेतना का केन्द्रभूत लक्ष्य है जो नागानन्द नाटक के भरत वाक्य से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । रत्नावली नाटिका के भरतवाक्य में राष्ट्रिय भावना का स्पर्श रहा है । यहाँ कवि लिखता है कि- आनन्द को बढ़ाने वाला सज्जनों का साथ प्रलयकाल तक होता रहे । वज्रलेप के समान दुष्ट पुरुषों की वाणियाँ पूर्णरूपेण शान्त हो । सभी की उन्नति में ही राष्ट्र कल्याण निहित है- निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः ।

अपने राष्ट्र की जनता, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवन दर्शन आदि के प्रति लोगों के मन में गरिमा एवं महिमा का जो एक नैसर्गिक स्वाभिमान रहा करता है और जिसकी प्रबल प्रेरणा से अपने राष्ट्र की भौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा की रक्षा हेतु एक अदम्य एवं क्रियाशील नैष्ठिक भाव

सदा जागरूक रहता है तथा जिससे सम्पूर्ण राष्ट्र अनेकता में भी एकता की एक अभेद्य एवं हार्दिक अनुभूति करता है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने राष्ट्र को स्वर्ग से भी अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं और उसकी उपमामाता से देते हैं, यह निश्चित रूप से राष्ट्रिय भावना है। हर्ष अपने पात्रों में प्रणय की प्रथम अनुभूतिप्रायः प्रकृति के मधुर एवं कोमल परिवेश में कराते हैं। प्रवृत्ति सर्वत्र ही सहायिका बनकर सदैव उपस्थित रहती है। इसी कारण प्रणय एवं प्रकृति के वर्णन में हर्ष की कला विशेष रूप से परिष्कृत है। नागानन्द में कुसुमाकर उद्यान की अद्भुत शोभा श्रृंगार की उद्दीपन बन जाती है -

**निष्यन्द चन्दनानां शिशिरपति लतामण्डपे कुट्टिमान्ता, नाराद धारागृहाणां ध्वनिमनु तनुते ताण्डवं नीलकण्ठः ।
यन्त्रोन्मुक्तश्च वेगाद् चलति विटपिनां पूरयन्नालवाला, नापातोत्पीडहेलाहत्तकुसुमरजः पिजरोऽयं जलोदधः ।।²⁹**

रत्नावली एवं प्रियदर्शिका दोनों के नायक वत्सराज उदयन हैं। एक में रत्नावली के साथ और दूसरे में प्रियदर्शिका के साथ परिणय वर्णित है। प्रियदर्शिका नाटिका में विजयसेन प्रियदर्शिका को विन्ध्यकेतु की पुत्री समझकर उसे उदयन को सौपता है तो उदयन उसे गीत नृत्य तथा वाद्य आदि विशिष्ट कलाओं की शिक्षा के लिए प्रेरित करता है- **गीतनृत्तवाद्यादिषु विशिष्टकन्य कोचित सर्व शिक्षयितव्या ।³⁰**

प्राचीन काल से ही नारी की स्थिति एवं रचनात्मक भूमिका समस्त सामाजिक सम्बन्धों के मूल में अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। हर्ष ने सामान्यतया सोद्देश्य नाट्य- शास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर नारी पात्रों के अन्तर्गत उत्तम कोटि की नाटिकाओं को अनेक गुणों से अभिमण्डित किया है। सागरिका, प्रियदर्शिका, रत्नावली नायिका विविध गुणों से युक्त हैं। नाटक के अन्त में पूर्ण विवरण जानने के पश्चात् हर्ष की नायिकाएं प्रेमिका को राजा के हाथों में समर्पित करती हैं। हर्ष के नारी पात्र अपने सुसंस्कृत, आचार-विचार कर्म में निरत हैं। राजकीय अन्तःपुरों की वासवदत्ता, प्रियदर्शिका जैसी रानियों में न केवल एकनिष्ठ प्रणय की सिद्धि में प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति व्याप्त थी। अपितु राजनैतिक क्षेत्र में एकक्षत्र स्वामिनी बनने की अभिलाषा थी। इन्दीवरिका, निपुणिका, परिचारिका मधुकरिका से भी राजा एवं रानी से निस्तर सम्पर्क रहने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक वातावरण को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी। नारी पात्रों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों उजागर किया है। रत्नावली अत्यन्त ही सौम्यदर्शना, लज्जावती, उदारशीला शालीनता सम्पन्न और अपनी सखियों से अनुराग करने वाली है। प्रेम और सौहार्द की साक्षात् मूर्ति, भावुकता से पूर्ण, सहिष्णु सर्वथा नाम की अन्वर्थकता को प्राप्त है। वासवदत्ता एक बुद्धिमती, नीतिकुशल, व्यवहारपटु, पतिपरायण स्नेहिलहृदय प्रौढा राजमहिषी है। नागनन्द नाटक की नायिका संगीतज्ञ, देवीभक्त, भावुकतापरायण, आज्ञाकारिणी एवं पश्चात्तापमयी वृत्ति से युक्त है। प्रियदर्शिका आदर्श नारी के रूप में चित्रित हुई है।

सन्दर्भ -

1. नागानन्द नाटक - अंक 3/18 ।	2. उपरोक्त - अंक 4/21 ।
3. नागानन्द नाटक पृ.- 62 ।	4. उपरोक्त - अंक 4/14 ।
5. उपरोक्त - पृ. 153 ।	6. उपरोक्त -167 ।
7. उपरोक्त - 4/8 ।	8. उपरोक्त - अंक 4/9 ।
9. उपरोक्त - अंक 4/19 ।	10. उपरोक्त अंक 5/25 ।
11. रत्नावली पृ.- 55 ।	12. रत्नावली 1/20 पृ. -73 ।

13. उपरोक्त पृ. - 22 ।
14. उपरोक्त- अंक 1/31
15. उपरोक्त पृ. 88 श्लोक 2/11 ।
16. उपरोक्त पृ. 130, श्लोक - 2/5 ।
17. उपरोक्त पृ. 167, श्लोक - 4/2 ।
18. उपरोक्त पृ. 167, श्लोक - 4/2 ।
19. रत्नावली अंक 4/6 पृ. 174 ।
20. प्रियदर्शिका अंक-1/9 ।
21. उपरोक्त अंक - 3/13 ।
22. उपरोक्त अंक - 1/12 ।
23. उपरोक्त अंक 4/8 ।
24. उपरोक्त अंक 3/10 ।
25. उपरोक्त अंक - 3/11 ।
26. उपरोक्त अंक 1/24 ।
27. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी पृ. - 333-334 ।
28. नागानन्द नाटक पृ. 195 अंक 5/41 ।
29. नागानन्द नाटक पृ. 195 अंक 5/40 ।।
30. नागानन्द नाटक अंक 3/71 ।
31. रत्नावली अंक 1/181 ।
32. उपरोक्त अंक 1/24 ।
33. प्रियदर्शिका अंक 1/12 ।
34. रत्नावली अंक- 3/71 ।
35. प्रियदर्शिका पृ. - 84 ।

14

हर्ष की कृतियों में आत्मोत्सर्ग की भावना

ममता त्रिपाठी

आत्मोत्सर्ग की भावना भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। हर्ष के नाटकों रत्नावली, नागानन्द एवं प्रियदर्शिका के पात्रों का जीवन आत्मत्याग की भावना से आप्लावित है। प्राप्ति का हठ नहीं अपितु त्याग का वरण अपने उत्कर्ष पर यहाँ दिखायी पड़ता है। यह एक ऐसी भावना है जहाँ व्यक्ति में निहित आत्मीय मूल्य अहमन्यता के आगे नतमस्तक होते हैं। हर्ष के नाटकों के विभिन्न प्रसंगों से यह परिलक्षित होता है कि यहाँ नैतिक मूल्यों तथा मानवीय भावों व प्राप्ति की कामना के संघर्ष में नैतिक मूल्य व मानवीय भावों को विजय प्राप्त हुयी है। हर्ष के नाटकों में प्रीति एवं करुणा जैसे मानवीयभाव अपने आधारभूत तथा निश्छल रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। मानव-मनोविज्ञान के आकर के रूप में श्रीहर्ष के नाटकों के पात्रों के जीवन व गतिविधियों को देखा जा सकता है।

स्त्री-पुरुष के प्रेम-प्रसंग की बात करें तो श्रीहर्ष के नाटकों में कुछ भी बलात् अथवा सायास नहीं है अपितु इस प्रकार के प्रसंगों में भी स्वाभाविकता और मौलिकता है। यही कारण है कि रत्नावली नाटिका में सागरिका के मन में उदयन के प्रति उत्पन्न प्रेम सहज है। उदयन के हृदय में भी सागरिका के प्रति उत्पन्न स्नेह भी सहज-स्फूर्त है। नाटककार ने इसे अत्यन्त सहजता के साथ अभिव्यक्त भी किया है। दोनों के प्रेम में बलात् प्राप्ति की अभिलाषा भी नहीं है तथा साथ ही त्याग की एक प्रबल भावना भी है। यह भावना जिसमें व्यक्ति कामना को छोड़कर आगे बढ़ने तथा अपनी इहलीला समाप्त करने पर विचार करता है एवं उसक लिये उद्यत होता है, यह वास्तव में बहुत बड़ी और महनीय भावना है। यह कोई साधारण भाव अथवा भीरुता व कायरता नहीं है। अपितु महान साहस का कार्य है।

श्रीहर्ष के रत्नावली नाटिका में सागरिका (रत्नावली) इस बात से परिचित हैं कि वह अपने पिता सिंहलाधिपति विक्रमबाहु द्वारा राजा उदयन को समर्पित कर दी गयी हैं और उदयन के पास ही उसके पिता ने उसे अमात्य वसुभूति के साथ भेजा था। मार्ग में दुर्घटनावश वह बिछुड़ गयी फिर येनकेनप्रकारेण दैव योग से रानी वासवदत्ता के पास आ गयी। इतना जानने पर भी जब सागरिका के रूप में रत्नावली राजा का प्रथम दर्शन करती है तो वह दर्शनमात्र से ही स्वयं को कृतार्थ मानती है-

‘कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता। तत्परप्रेषणदूषितमपि मे जीवितमेतस्य दर्शनेनेदानीं बहुमतं संवृत्तम्।’¹

यहाँ रत्नावली का संयम तथा उसके संस्कार परिलक्षित होते हैं। यहाँ रत्नावली राजा को प्रसन्नतापूर्वक सस्पृह होकर देखती तो है तथा अपनी स्थिति पर दुःखी भी होती है परन्तु प्राप्ति की अभिलाषा नहीं रखती। जानकर भी प्राप्ति की उत्कण्ठा का न होने में ऐसी त्याग की भावना छिपी हुयी है जो प्राप्ति से बढ़कर है।

सागरिका कुञ्ज से रानी के प्रस्थान पर राजा को अधिक समय तक न देख पाने की अपनी अभिलाषा न पूर्ण हो पाने पर स्वयं को धिक्कारती भी है। यहाँ अभिलाषा एवं उसे त्यागने की भावना तथा उससे उत्पन्न दुःख व विवशता समवेत हो उठती है-

‘कथं प्रस्थिता देवी । भवतु । तदहमपि त्वरितं गमिष्यामि । (राजानं सस्पृहं दृष्ट्वा निःश्वस्य) हा धिक्, हा धिक् । मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः ।’²

राजा उदयन को देखकर सागरिका अपने मन में उत्पन्न अभिलाषा के कारण अपने व्याकुल मन को धिक्कारती है तथा कहती है कि तुम जन्म से मेरे साथ हो और क्षण भर जिसे देखा आज उसका अनुगमन कर रहे हो। सागरिका अनेक प्रकार से अपने मन पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहती है। इसी क्रम में वह राजा का चित्र बनाकर अपने मन को नियन्त्रित करने का प्रयास करती है।

‘...यद्यपि मेऽतसाध्वसनवेपतऽयमतिमात्रमग्रहस्तस्तथापि तस्य जनस्यान्य दर्शनोपायो नास्तीति यथातथाऽऽलिख्यैनं प्रेक्षिष्ये ।’³

इस सन्दर्भ में सागरिका और सुसङ्गता के मध्य हुआ वार्तालाप भी बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें सुसङ्गता द्वारा सागरिका से राजा उदयन के चित्र के सन्दर्भ में पूछने पर सागरिका द्वारा उदयन को कामदेव बताने पर सुसङ्गता रति के रूप में सागरिका को चित्रित करती है तथा सागरिका के कुपित होने पर उससे समस्त वृत्तान्त बताने के लिये कहती है -

‘सागरिका- (विलोक्य सासूयम्) सुसङ्गते, कस्मात्त्वयात्रहमालिखिता ।

सुसङ्गता- (विहस्य) सखि, किमकारणं कुप्यसि । यादृशस्त्वया कामदेव आलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखिता । तदन्यथासम्भाविनि, किं तवैतेनालिपितेन । कथय सर्व वृत्तान्तम् ।’⁴

पुनः सागरिका द्वारा अपने मन की व्यथा, अभिलाषा व अवस्था को सखी सुसङ्गता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिसे गृहीताक्षरा सारिका न सुन पाये ऐसा सुसङ्गता कहती है पर सारिका सुन लेती है।

सागरिका के हृदय में राजा के प्रति बढ़ी हुयी अभिलाषा और उसकी पूर्ति न हो पाने की अवस्था में उत्पन्न सन्ताप को दूर करने के लिये सुसङ्गता द्वारा कमलिनी के पत्रों तथा मृणाल वलयों से उसका उपचार किये जाने पर सागरिका कहती है कि हृदय के ताप को मिटाने के लिये ये समर्थ नहीं हैं। सागरिका कहती है कि मुझे ऐसे व्यक्ति से प्रेम हुआ है जो दुर्लभ है। अपने प्रेम को व्यक्त करने में मुझे लज्जा का अनुभव हो रहा है क्योंकि वह मेरे कुलाचार के अनुकूल नहीं है। मेरा शरीर भी पराधीन है क्योंकि यहाँ वह राजकुमारी नहीं अपितु दासी के रूप में है। वह सखी से कहती है कि यह प्रेम विषम है, प्रतिकूल है। ऐसे में मृत्यु की शरण ही श्रेष्ठ है।

‘दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा ।

प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ।’⁵

यहाँ पहली बार सागरिका के रूप में रत्नावली अपने प्राणत्याग की बात करती हैं। वह राजा उदयन को प्राप्त करने के लिये कोई उपाय व प्रयास किये बिना ही अपना उत्सर्ग करना चाहती है।

अनन्तर विदूषक और राजा जब सागरिका के मुख से सागरिका द्वारा कही गयी बात सुनते हैं तो राजा सागरिका के वचन की विदूषक से व्याख्या करते हैं कि यह वाक्य किसी ऐसी नवयौवना के द्वारा कहा गया है जो अपने प्रियतम को नहीं पा सकती है तथा जो जीवन की आशा छोड़ चुकी है।

‘वयस्य, कयापि श्लाघ्ययौवनया प्रियतममनासादयन्त्या जीवितनिरपेक्षयोक्तम् ।।’⁶

इसके पश्चात् जब विदूषक चित्र देखता है तब कहता है कि मैंने पहले ही कहा था कि कामदेव के रूप में राजा ही चित्रित किये गये हैं। चित्र में चित्रित सागरिका को देखकर राजा उदयन अनुरक्त हो जाते हैं और सागरिका के सौन्दर्य को लक्ष्मी से बढ़कर बताते हैं, जो राजहंसी के समान उनके मन में प्रवेश कर रही है-

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः । मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ।।⁷

इसके बाद जब विदूषक वसन्तक राजा से चित्र के विषय में बात कर रहा होता है तब सागरिका व सुसङ्गता का निकुञ्ज में प्रवेश होता है तथा वे दोनों का वार्ताल्लाप सुनती हैं जिससे उन्हें ज्ञात होता है कि सागरिका सारी बात बता चुकी है। आगे जब सागरिका विदूषक का राजा से यह प्रश्न सुनती है कि क्या चित्र में चित्रित रमणी को देखने से राजा को सुखानुभूति हुयी? सागरिका राजा का उत्तर सुनने की प्रतीक्षा में मन में सोचती है कि राजा का उत्तर क्या होगा? वस्तुतः उसकी स्थिति जीवन-मरण जैसी है। यदि राजा ने उसे स्वीकार किया तो जीवन अन्यथा मरण। यहाँ भी सागरिका द्वारा प्राणत्याग की भावना दिखायी पड़ती है। यहाँ प्राप्ति की चेष्टा नहीं अपितु राजा के नकारात्मक उत्तर की कल्पना ही सागरिका के लिये यह विचारने के लिये पर्याप्त है कि वह आत्मत्याग करे। उसके जीवन का राजा की अस्वीकृति के बाद कोई अर्थ नहीं है।

‘किमेष भणिष्यतीति यत् सत्यं जीवितमरणयोरन्तरे वर्ते ।।’⁸

राजा उदयन तो चित्र में सागरिका के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मन्त्रमुग्ध थे अतः वे कहते हैं कि इस अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन से सुख प्राप्त होना तो अवश्यंभावी है तथा साथ ही वे सागरिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं।⁹ इसके साथ ही राजा उदयन व विदूषक वसन्तक चित्र की गहन-मीमांसा करते हैं। चित्र पर सागरिका के नेत्र से गिरे अश्रु विशेष मनोदशा के अभिव्यञ्जक हैं। वस्तुतः सागरिका ने यह चित्र अपने मनःशान्ति के लिये बनाया था। राजा उदयन को साक्षात् देखकर भी उसके हृदय में प्रीति उत्पन्न होने पर सागरिका अपने हृदय को राजा से दूर करने का निश्चय कर चुकी थी। इसी क्रम में अपन मनोभावों की शान्ति के लिये तथा चित्र में प्रिय के दर्शन के उद्देश्य से उसने यह चित्र बनाया था।

राजा एवं विदूषक के मध्य वार्तालाप को सुनकर सुसङ्गता वहा चित्रफलक लेने जाती है तथा विदूषक को बताती है कि वह समस्त वृत्तान्त जानती है और महारानी वासवदत्ता से जाकर बतायेगी। इस पर रणजा चित्रफलक को क्रीडामात्र बताते हैं तथा सुसङ्गता से कहते हैं कि वह महारानी का अकारण ही मन दुःखित न करे। ‘राजा-...सुसङ्गते, क्रीडामात्रमेवैतत् । अकारण त्वया देवी न खेदयितव्या ।।’¹⁰

तृतीय अंक में सागरिका जब यह जानती है कि उसके द्वारा रानी वासवदत्ता का रूप धारणकर राजा से मिलन की बात रानी वासवदत्ता जान चुकी हैं तो वह रानी द्वारा तिरस्कृत होने की अपेक्षा फाँसी लगाकर प्राणत्याग को अच्छा समझती है।

‘सागरिका - (विमृश्य) वरमिदानीं स्वयमेवात्मानमुद्बध्योपरता न पुनर्ज्ञातसंकेतवृत्तान्तया देव्या परिभूताऽस्मि । तद्यावदहमशोकपादपं गत्वा यथासमीहितं करिष्यामि ।।’

यहाँ सागरिका ने रानी वासवदत्ता द्वारा समस्त वृत्तान्त जानने तथा उसके फलस्वरूप तिरस्कृत होने की अपेक्षा अपने जीवन को समाप्त करने का मार्ग चुना। यहाँ भी राजा से मिलन के समीप पहुँचकर भी

सागरिका के मन में किसी प्रकार की हठधर्मिता नहीं दिखायी पड़ती अपितु वह स्वयं की स्थिति पर लज्जित होती है। इस स्तर पर आकर उसके आत्मत्याग की भावना इस बात की भी द्योतक है कि वह रानी वासवदत्ता का बहुत सम्मान करती है तथा उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती। परन्तु अपने मनोभावों के कारण व राजा के प्रति आसक्ति के कारण उसने ऐसा कार्य कर दिया है जिससे कि वह रानी वासवदत्ता की दृष्टि में स्थानच्युत हो गयी है। यहाँ सागरिका को अपनी अवस्था व अपने द्वारा किये गये अप्रीतिकर व्यवहार का भान है। इसीलिये वह माता-पिता का स्मरण कर अपने गले में पाश डाल लेती है-

‘हा तात! हा अम्ब! एषेदानीमहमनाथाऽशरणा विषये मन्दभागिनी।’¹²

राजा उदयन के मन में यह आशंका उठती है कि वासवदत्ता का उनके द्वारा जैसा अपमान किया गया है उससे दुःखी होकर वे प्राणत्याग न कर दें। उसी समय उनको किसी द्वारा वृक्ष में पाश लगाकर आत्मत्याग का पता चलता है। वे यह सोचकर कि रानी वासवदत्ता ही होंगी जो उनके द्वारा अपमानित होने से दुःखी होकर ऐसा कर रही हैं, शीघ्रता से अशोक वृक्ष के निकट जाकर माधवी लता का पाश बाँधकर स्वयं को समाप्त करने हेतु उद्यत सागरिका को (जो कि वासवदत्ता के वेश में थी और) वासवदत्ता समझकर बचाते हैं तथा कहते हैं कि इतना दुःसाहसी कृत्य क्यों किया जा रहा है?

मम कण्ठगताः प्राणाः पाशे कण्ठगते तव।

अतः स्वाथं प्रयत्नोऽयं त्यज्यतां साहसं प्रिये।¹³

यहाँ सागरिका को वासवदत्ता समझकर राजा बचाते हैं तथा सागरिका के बोलने पर उन्हें यह पता चलता है कि यह तो उनकी प्रिया सागरिका है। सागरिका भी राजा को देखकर आश्चर्य व प्रसन्न होती है।

दूसरी ओर रानी वासवदत्ता को इस बात पर पश्चाताप व आत्मग्लानि होती है कि पैरों में पड़कर क्षमा माँगते हुये राजा उदयन के साथ उन्होंने इस प्रकार निष्ठुरता दिखायी। इसलिये वे अपने मान व क्रोध का परित्याग कर राजा को अनुनयपूर्वक मनाने का विचार करती हैं।

‘वासवदत्ता- हज्जे काञ्चनमाले, तं तथा चरणनिपतितमार्यपुत्रमवधीर्यागच्छन्त्या मयातिनिष्ठुरं कृतम्। तदिदानीं स्वयमेव गत्वाऽऽर्यपुत्रमनुनेष्यामि’¹⁴

इस प्रसंग में महारानी का त्याग दर्शनीय है। यह त्याग अपने शरीर का त्याग नहीं अपितु अपने मान का त्याग है। यह बात किसी भी साधारण स्त्री के लिये स्वीकार करना सरल नहीं है कि उसका पति परकीया के प्रति आसक्त हो और उसकी आसक्ति की वह प्रत्यक्ष साक्षी हो। फिर यह तो रानी वासवदत्ता हैं। ऐसे में रानी द्वारा इस बात के लिये अपने पति को क्षमा करना कोई साधारण बात नहीं है। इस क्षमा में रानी का अनेकविध त्याग छिपा हुआ है। जिसमें कि सर्वप्रथम मान का त्याग है। यह राजा के प्रति रानी का अतुलित प्रेम ही है जिसके कारण रानी वासवदत्ता को राजा उदयन की स्थिति पर सद्यः पश्चाताप हुआ तथा साथ ही उनका मन द्रवित भी हो उठा। इसी भावना के कारण वे राजा को अनुनयपूर्वक मनाने जाने हेतु उद्यत हुयीं। अतः रत्नावली में केवल रत्नावली का ही आत्मोत्सर्ग नहीं है अपितु रानी वासवदत्ता का त्याग भी दर्शनीय है। रानी का त्याग अद्भुत है। सागरिका का राजा के प्रति प्रेम सहज है। इसीलिये वह रानी वासवदत्ता के विषय में भी चिन्तित है। अतः वह राजा से कहती है कि वे अपनी प्राणों से प्रिय रानी वासवदत्ता के प्रति अपने इस कार्य अर्थात् सागरिका के प्रति आसक्ति से स्वयं को रानी के प्रति अपराधी क्यों बना रहे हैं?

‘भर्तः! किमेतेनालीकदाक्षिण्येन जीवितादप्यधिकवल्लभाया देव्या आत्मानमपराधिनां करोषि।¹⁵

रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में आग लगने की घटना के अन्तर्गत जब वासवदत्ता के सागरिका को द्वारा बचाने की बात कहे जाने पर उदयन को पता चलता है कि वासवदत्ता द्वारा जंजीर से बाँधी गयी सागरिका जल रही है। तो वे विदूषक के रोकने पर भी सागरिका को बचाने के लिये आग में यह कहते हुये कूद पड़ते हैं कि तुम्हें धिक्कार है। सागरिका मर रही है। क्या आज भी प्राण धारण किये जायँ? **‘धिङ् मूर्ख सागरिका विपद्यते। किमद्यापि प्राणा धार्यन्ते।’**¹⁶ यहाँ राजा द्वारा सागरिका को बचाने के लिये प्राण की परवाह न करते हुये आग की ज्वाला में प्रवेश भी राजा के सच्चे प्रेमवशात् आत्मत्याग के निश्चय की पुष्टि करता है। राजा के इस प्रकार आग में कूद जाने पर महारानी वासवदत्ता भी उनका अनुगमन करने का निश्चय करती हैं। यह भी आत्मत्याग की भावना ही है-

‘कथं मम दुःखभागिन्या वचनादेवमध्यवसितमार्यपुत्रेण। तदहमप्यार्यपुत्रमेवानुगमिष्यामि।’¹⁷

तदन्तर राजा द्वारा अग्नि में प्रवेश की बात जानकर विदूषक वसन्तक भी उनका अनुगमन करने का निश्चय करते हैं। **‘भवति/अहमपि ते पथ्युपदेशको भवामि।’**¹⁸ विदूषक का यह कदम भी अपने स्वामी के प्रति समर्पण की भावना से वशीभूत होकर आत्मत्याग की प्रवृत्ति का उदाहरण है। इसके बाद सिंहलाधिपति के मन्त्री वसुभूति भी यह बात जानकर और यह कहकर कि जिसने राजपुत्री की विपत्ति अर्थात् मृत्यु देख ली है, उसका इसी अग्नि में अपनी आहुति दे देना उचित है। अपने प्राणों की आहुति देना चाहते हैं-

‘कथं प्रविष्ट एव ज्वलनं वत्सराजः। तन्ममापि दृष्टराजपुत्रीविपत्तेर्युक्तमिहैवात्मानमाहुतीकर्तुम्।’¹⁹

तदन्तर बाभ्रव्य भी अपने स्वामी का अनुगमन करने का विचार करते हैं। इस प्रकार यहाँ मात्र सागरिका का ही आत्मत्याग नहीं अपितु उसके लिये राजा का आत्म त्याग, राजा के लिये रानी वासवदत्ता तथा अपने स्वामी के लिये विदूषक वसन्तक का आत्मत्याग, राजपुत्री वासवदत्ता के लिये उसके मामा के मन्त्री वसुभूति का आत्मत्याग के लिये उद्यत होना तथा समस्त भरतकुल के प्रति भक्ति के लिये बाभ्रव्य का आत्मत्याग का विचार भी दर्शनीय है। अग्नि की ज्वाला देखकर सागरिका को मन में बहुत सन्तोष होता है कि यह अग्नि अब उसके दुःखों का अन्त कर देगी। इसीलिये वह अग्नि को देखकर भी निश्चल खड़ी रहती है मानों स्वेच्छया मृत्यु की प्रतीक्षा कर रही हो। **‘अद्य हतवहो, दिष्ट्या करिष्यति मे दुःखावसानम्।’**²⁰ सागरिका के रूप में रत्नावली की यह अवस्था व उसकी यह मनोदशा वास्तव में बहुत विचारणीय व व्यथा उत्पन्न करने वाली है। इस मनोदशा में जो पीड़ा, त्रस, निराशा व जीवन को समाप्त करने की उत्कट इच्छा है वह असाधारण है। त्याग की भावना के परिपाक के बिना तथा प्रेम में पूर्ण समर्पण व सर्वस्व न्यौछावर के भाव के बिना ऐसी मनोदशा उत्पन्न ही नहीं हो सकती। यह प्रेम का वह उत्तरदायी स्वरूप है जिसमें प्राप्ति बलात् नहीं है और जहाँ प्राप्ति ही अभीष्ट नहीं है। प्रेम की पूर्णता जहाँ अभीष्ट नहीं है अपितु प्रेम के पाश में रहकर अपना प्राणत्याग कर देने की भावना जहाँ प्राप्ति की अपेक्ष गरीयसी है। जहाँ स्वयं को मिटा देने में पूर्णता और आनन्द है।

यहाँ एक बात और भी महत्वपूर्ण है कि राजा उदयन को चक्रवर्ती सम्राट बनाने की इच्छा से रानी वासवदत्ता ने मन्त्री यौगन्धरायण की बात मानी तथा बाद में सागरिका के रूप में रत्नावली को वसुभूति द्वारा पहचान लिये जाने पर उन्होंने राजा के हाथ में रत्नावली को समर्पित कर दिया। यह एक बड़ा त्याग है जिसमें पति के निरन्तर उत्कर्ष की कामना से पत्नी द्वारा किया गया ऐसा व्यवहार परिलक्षित होता है जो प्रायः दुर्लभ है। पति का हित चाहने के कारण एवम् उनसे असीम प्रेम के कारण रानी वासवदत्ता ने इस प्रकार का वियोग व विरहवेदना का स्वयम् अंगीकरण किया।

रत्नावली नाटिका में रत्नावली के आत्मोत्सर्ग की भावना के पीछे वासवदत्ता की प्रसन्नता व अपने कुल की मर्यादा भी अभिप्रेत है। तो यहाँ रत्नावली, वासवदत्ता, उदयन, वसन्तक, वसुभूति, बाभ्रव्य आदि सभी पात्रों द्वारा अपने जीवन की कामना को छोड़कर आत्मोत्सर्ग की बात करना मात्र स्वान्तःसुखाय नहीं अपितु परतः व प्रकृति के सुख के लिये है। इसमें अपनी अनुकूलता से अधिक दूसरे की अनुकूलता निहित है। यह आत्मत्याग का उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्री हर्षदेव के प्रियदर्शिका नाटिका में भी नायिका अंगदेश के राजा दृढवर्मा पुत्री राजकुमारी प्रियदर्शिका को आरण्यिका के रूप में वत्सराज उदयन से प्रेम तो होता है परन्तु वह प्रत्यक्ष प्रकट नहीं करती अपितु प्रेम की ज्वाला में जलती रहती है। ठीक यही स्थिति आरण्यिका के रूप में प्रियदर्शिका का प्रथम दर्शन करते ही राजा उदयन की होती है।

आबद्धमुखमीदं कण्टकितं कमलकाननं तस्याः ।

सुकुमारपाणिपल्लवसंस्पर्शसुखं कथयतीव ।।²¹

रंगशाला में सांकृत्यायिनी द्वारा तैयार ‘उदयन-चरित’ नामक रूपक के मञ्चन में जब वत्सराज की भूमिका में परिचारिका मनोरमा के स्थान पर स्वयं वत्सराज उदयन अभिनय करते हैं तथा वे जब वासवदत्ता की भूमिका में स्थित आरण्यिका के अत्यन्त निकट आते हैं तो रानी को उनका यह नैकट्य असह्य होता है तथा वे उठकर चली जाती हैं और वसन्तक को देखकर तथा उसके व मनोरमा के मध्य वार्तालाप सुनकर उनके सामने समस्त रहस्य स्पष्ट हो जाता है। रानी क्रोधवशात् वसन्तक को बाँधने का आदेश देती हैं तथा आरण्यिका को बन्दी बना लेती हैं। यह कथानक रत्नावली के कथानक से साम्य रखता है। यहाँ आरण्यिका के रूप में प्रियदर्शिका विष खाकर अपने प्राण त्यागना चाहती है।

‘एषा खल्वारण्यिका कल्याण्यपदेशेनानीतं विषं पीत्वा प्राणसंशये वर्तत इत्येवं मया निवेदितम् । तत्परित्रायतां भट्टिनी ।’²² यहाँ आरण्यिका इस बात को जानती है कि उसके पिता अंगराज दृढवर्मा ने उसका विवाह वत्सराज उदयन से करने का निश्चय किया था-**‘अयं खलु स महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता ।’²³**

इसी निश्चय के साथ वह कंचुकी विनयवसु के द्वारा वत्सराज के पास लायी जा रही थी परन्तु मार्ग में विन्ध्यकेतु के यहाँ उसे छोड़कर विनयवसु अगस्त्य तीर्थ में स्नान करने चले गये, उसी समय युद्ध में विन्ध्यकेतु का राज्य नष्ट हो गया। पुनः प्रियदर्शिका विजयसेन द्वारा वत्सराज के यहाँ आरण्यिका के रूप में पहुँचायी गयी जिसे विन्ध्यकेतु की कन्या समझा गया। **‘...शून्यभते तत्स्थाने “हा तात हा तात” इति कृतकृपणप्रलापा विन्ध्यकेतवश्मन्याभिजात्यानुरूपा कन्यका “तद्गहिता” इत्यस्माभिरनीता द्वारि तिष्ठति ।’²⁴** प्रियदर्शिका ने यह सब वृत्तान्त जानते हुये भी तथा राजा के प्रति प्रीति होते हुये भी राजा को प्राप्त करने के लिये किसी भी प्रकार प्रयत्न नहीं किया तथा बन्दी अवस्था में विष द्वारा अपना जीवन समाप्त करना चाहा। यह प्रियदर्शिका नाटिका में प्रियदर्शिका का आत्मत्याग है जिसमें संयम, मर्यादा, कुलीनता आदि के दर्शन होते हैं। श्रीहर्ष के नागानन्द में सर्वप्रथम माता-पिता की सेवा के लिये जीमूतवाहन का राजत्याग दिखायी पड़ता है।

तिष्ठन् भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा?

यत् संवाहयतः सुखं तु चरणौ तातस्य किं राजके?

किं भुक्ते भुवनत्रये धृतिरसौ भुक्तोज्झिते या गुरों?

आयासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद् गुणः?²⁵

तदन्तर नायिका मलयवती के हृदय में स्वप्न में गौरी के वचन जानने²⁶ तथा विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन को देखने के बाद राजकुमार के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। राजकुमार भी जब गौरीमन्दिर में वीणावादन करते हुये राजकुमारी मलयवती को देखते हैं तो उनके हृदय में भी राजकुमारी के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। **‘अन्यतोऽपि ब्रजन्त्या मे हृदये निहितं पदम्।’**²⁷ नागानन्द के दूसरे अंक में राजकुमार जीमूतवाहन राजकुमारी मलयवती का चित्र बनाते हैं। जिसे देखकर राजकुमारी को लगता है कि किसी अन्य का चित्र बनाया जा रहा है। उसी समय राजकुमारी मलयवती का भाई मित्रवसु राजकुमार जीमूतवाहन के पास अपनी बहन से विवाह हेतु प्रस्ताव लेकर आता है जिसे राजकुमार यह न जानते हुये कि मलयवती ही वह राजकुमारी है जिसे वे प्रेम करते हैं, मना कर देते हैं। **‘क इह नेच्छेद् भवद्भिः सह श्लाघ्यमीदृशं सम्बन्धम्? किन्तु न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यतः प्रवर्तयितुं, ततो नाहमेनां प्रतिगृहीतुमुत्सहे।’**²⁸

मलयवती यह सब सुनकर बहुत दुःखी होती है और वह फाँसी लगाकर आत्मघात का प्रयास करती है। **भगवति गौरी! त्वया इह न कृतः प्रसादः, तत् जन्मान्तरे यथा न ईदृशी दुःखभागिनी भवामि तथा करिष्यसि। इत्यभिधाय कण्ठे पाशमर्पयति**²⁹ उसकी सखी द्वारा बचाने की गुहार पर जीमूतवाहन उसे बचाता है और फिर परस्पर वार्तालाप से यह रहस्य उद्घाटित होता है कि राजकुमार ने वस्तुतः राजकुमारी का ही चित्र बनाया था और मित्रवसु जिस बहन का विवाह प्रस्ताव लेकर आया था वह बहन वस्तुतः मलयवती ही है। इस प्रकार विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन पिता की स्वीकृतिपूर्वक सिद्ध राजकुमारी मलयवती से विवाह करते हैं।

नागानन्द के चौथे अङ्क में जब जीमूतवाहन मित्रवसु के साथ समुद्र में ज्वार-भाटा देखने जाते हैं और वहाँ पर अस्थि कंकाल का एक ढेर देखते हैं तो उनके मन में उसके विषय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है और जब वे जानते हैं कि यह अस्थिकंकाल गरुड़ द्वारा प्रतिदिन खाये जाने वाले नागों का है तो वे कारुणार्द्र हो उठते हैं। उन्हें इस प्रकार की विनाशक हिंसा रास नहीं आती। इसी समय वे शंखचूड़ नामक नाग का रुदन सुनते हैं जिसे गरुड़ की वध्यशिला की ओर ले जाया जा रहा होता है। नाग की वृद्धा माता का करुण विलाप जीमूतवाहन के हृदय को झकझोर देता है। उनका हृदय द्रवित हो उठता है और वे नाग के स्थान पर स्वयं को बलि हेतु प्रस्तुत करने का आग्रह करते हैं। **‘अहो! कष्टमनवसानेयं विपत्तिर्नागानाम्। (आत्मगतम्) अपि शक्नुयाहमहं स्वशरीरसमर्पणेन एकस्यापि नागस्य प्राणपरिरक्षां कर्तुम्!’**³⁰ जीमूतवाहन लाल वस्त्र पहनकर वध्यशिला पर स्वयं बैठ जाते हैं गरुड़ आता है और उन्हें उठाकर शिखर पर ले जाता है।

पाँचवें अंक में जब जीमूतवाहन बहुत देर होने पर भी घर नहीं पहुँचता तो अपशकुन की शंका माता-पिता को सताने लगती है। उसीसमय जीमूतवाहन की रक्तरंजित चूड़ामणि उनके माता-पिता के समक्ष गिरती है जिसे देखकर सभी भयभीत हो जाते हैं। सभी जब उन्हें खोजने जाते हैं तो शंखचूड़ के माध्यम से ज्ञात होता है कि आज उसके स्थान पर किसी विद्याधर ने गरुड़ के लिये अपनी बलि दी है।

‘विद्याधरेण केनापि करुणाऽऽविष्टचेतसा। मम संरक्षिताः प्राणा दत्त्वात्मानं गरुत्मते।।’³¹

गरुड़ को जब शंखचूड़ के माध्यम से यह पता चलता है कि वह विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन (विद्याधरवंशतिलको जीमूतवाहनः) को खा रहा है तो उसे बहुत पश्चात्ताप होता है कि उसके हाथ से एक एक प्रसिद्ध महात्मा मारा गया। जीमूतवाहन जिसके थोड़े प्राण शेष थे माता-पिता को प्रणाम कर प्रयाण कर देते हैं। गरुड़ अमृत की वर्षा करवाने के लिये स्वर्ग जाते हैं। इसी मध्य भगवती गौरी प्रकट होकर कमण्डलु से अमृत छिड़ककर जीमूतवाहन को जीवित कर देती हैं तथा इसी समय आकाश से अमृत-वृष्टि द्वारा समस्त मृत नाग पुनर्जीवित हो उठते हैं।

नागानन्द नाटक का नामकरण नागों के पुनर्जीवन और उनके आनन्द से हुआ है। नागानन्द में नायिका मलयवती का आत्मत्याग के लिये उद्यत होना तो है ही जो उनके प्रेम व एकनिष्ठा को दर्शाता है परन्तु इसके साथ-साथ राजकुमार जीमूतवाहन द्वारा नाग के स्थान पर स्वयं की बलि सबसे बड़े त्याग का उदाहरण है। ऐसा उदाहरण दुर्लभ है। जीमूतवाहन द्वारा नागों की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग दया, करुणा तथा कर्तव्यपालन का एक उत्कृष्ट व अद्वितीय उदाहरण है। इसी प्रकार की करुणावृत्ति के कारण भारतीय संस्कृति विलक्षण है जहाँ व्यष्टि से पहले समष्टि के कल्याण की भावना निहित है।

हर्ष के नागानन्द में राजकुमार जीमूतवाहन के हृदय में उत्पन्न करुणा अद्भुत है। यह करुणा भारतीय संस्कृति का केन्द्रबिन्दु है। यही वह भाव है जिसके कारण भारतीय संस्कृति विश्व की विभिन्न संस्कृतियों व सभ्यताओं में विलक्षण है तथा उसका प्रवाह अजस्र व अक्षुण्ण है। जीमूतवाहन के आत्मोत्सर्ग की भावना में केवल प्राणत्याग नहीं अपितु गरुड़ से नागों के संरक्षण की भी भावना है।

इस प्रकार, श्री हर्षदेव के तीनों नाटकों रत्नावली, प्रियदर्शिका व नागानन्द में नायक व नायिकाओं तथा विभिन्न पात्रों में अपने कर्तव्यपालन व निष्ठा के लिये आत्मत्याग की भावना देखी जा सकती है। यहाँ 'मैं' के स्थान पर 'हम' की प्रधानता दिखती है। श्रीहर्ष के नाटकों में प्रत्येक पात्र ने अपने सुख के स्थान पर दूसरे के सुख व विचारों को प्रधानता दी है।

सन्दर्भ -

1. रत्नावली, प्रथम अङ्क	2. वही
3. रत्नावली, द्वितीय अङ्क	4. वही
5. रत्नावली, 2.1	6. वही
7. वही, 2.9	8. वही
9. वही, 2.11	10. वही
11. रत्नावली, 3.16	12. वही
13. वही, 3.16	14. वही, 3.18
15. वही, 3.18	16. वही, 4.15
17. वही, 4.16	18. वही
19. वही	20. वही
21. प्रियदर्शिका, 2.9	22. वही, चतुर्थ अङ्क
23. वही, द्वितीय अङ्क	24. वही, प्रथम अङ्क
25. नागानन्द 1.7	26. वही
27. वही, 1.20	28. वही, द्वितीय अङ्क
29. वही	30. वही
31. वही, 5.11	

15

हर्ष के रूपकों में राजधर्म

सज्जय कुमार

संस्कृत नाट्य परम्परा में महाकवि हर्ष का प्रमुख स्थान है। उन्होंने अपने रूपकत्रय में अनेक शास्त्रीय विषयों को प्रस्तुत करते हुए धर्मशास्त्र का विधिवत प्रतिपादन किया है, जिसमें विशेष रूप से राजधर्म का वर्णन इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि हर्ष स्वयं एक राजा थे। राजा प्रजा का भाग्य विधाता है। वह प्रजा के योग-क्षेम का नियामक होता है। इतिहास ग्रन्थों में हर्ष के राज्य के विषय में समृद्धशाली तथा उपद्रव रहित स्वरूप का वर्णन मिलता है। हर्ष के शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है कि सम्राट हर्ष एक महान वीर तथा बुद्धिमान राजा थे। मालगुजारी के अतिरिक्त राज्य में नाममात्र के अन्य कर लिये जाते थे तथा विद्वानों को राज्य की ओर से आश्रय मिलता था।¹ ध्यातव्य है कि बाणभट्ट और मयूरभट्ट जैसे लोग हर्ष के दरबार के सम्मानित कवि थे। जिनका साहित्य और चिन्तन सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसलिए हर्ष सुशासन के साथ विद्वानों के संरक्षण-संवर्धन के प्रति भी दत्तचित्र दिखलाई पड़ते हैं। राजधर्म या राजा के कर्तव्य की जब बात की जाती है उसमें प्रजा ही मुख्य होती है। इसलिए रत्नावली के प्रारंभ में ही राज्य के समृद्धि की कामना की गयी है-

जितमुडुपतिना नमः सुरेभ्यो द्विजवृषभा निरुपद्रवा भवन्तु।

भवतु च पृथिवी समृद्धसस्या प्रतपतु चन्द्रवपुनरेन्द्रचन्द्रः।²

अर्थात् चन्द्रवंशीय राजाओं की जय हो, देवताओं के लिए प्रणाम है। श्रेष्ठ ब्राह्मण उपद्रव रहित हों, पृथ्वी शस्य से सम्पन्न बने। राजाधिराज हर्ष चन्द्रमा के समान सुन्दर एवं सौम्य प्रकृति के होते हुए प्रताप का विस्तार करें। यानि यहाँ पर सर्वप्रथम राजा के विजय की कामना की गयी है। सदैव विजय को अंगीकार करने वाला राजा ही लोक में यशस्वीय होता है। राजा का जीवन यशवर्धन के लिए ही होता है। पुनः यहाँ देवताओं को प्रणाम किया गया है, जिससे विदित होता है कि राज्य को धार्मिक रूप से भी समृद्धशाली होना चाहिए। जहाँ धर्म होता है वही सुख भी मिलता है। सुखी प्रजा के रहने पर ही राज्य नीरापद रहता है। विद्वानों के संरक्षण या उपद्रव रहित से यह संकेत मिलता है कि हर्ष के शासन काल में साधुजन दुःखी नहीं होते थे और पृथिवी धन्य-धान्य से युक्त थी। चारों-ओर समृद्धि ही एक राजा के जीवन का लक्ष्य होता है। राजा का कर्तव्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। लेकिन उसमें प्रजा का हित ही राजा का हित स्वीकार किया गया है। श्रीहर्ष राजा के साथ-साथ स्वयं कवि भी हैं- श्रीहर्षो निपुणः कविः।³ उस हर्ष कवि के द्वारा रूपकत्रय की रचना की जाती है-

रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका। कवि के द्वारा राजा उदयन को महिमा मण्डित किया गया है। यद्यपि उदयन धीर ललित नायक है। उसे प्रजा पालन की कोई चिन्ता नहीं है। जिसका कारण यहाँ बताया गया है कि सभी कार्य उसके योग्य मन्त्री करने में ही सक्षम हैं। उदयन स्वतंत्र प्रकृति का राजा है। राजा उदयन स्वयं कहता है-

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः। सम्यक्पालनललितोः प्रशमिताशंषोपसर्गाः प्रजाः।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेतिनाम्ना धृतिं। कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः।।⁴

अर्थात् राज्य के सभी शत्रुओं को पराजित कर दिया है। सम्पूर्ण राज्य भार योग्य सचिव को सौंप दिया है। भलीभांति पाली-पोषी गई प्रजा सभी प्रकार के उपद्रवों से मुक्त हो चुकी है। राजा प्रद्योत की पुत्री वसन्तसेना मेरी पत्नी है। सुखदो वसन्तकाल है तथा तुम (वसन्तक) जैसे मेरे मित्र हैं यानि मैं समझता हूँ कि सब प्रकार वह मदन महोत्सव मेरा ही है। मदन का तो नाममात्र है। यद्यपि प्रजापालन का कार्य बहुत महत्वपूर्ण होता है लेकिन उदयन को इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। सभी कार्य मन्त्री करते हैं। हर्ष इतने बड़े राजा थे और वे उदयन की चरित्र सृष्टि करते हैं जो आमोद-प्रमोद में ही व्यस्त रहता है। ठीक इसके विपरीत नागानन्द में नायक सब कुछ छोड़कर माता-पिता की सेवा के लिए अरण्यवासी बन जाता है। वृद्ध विद्याधर राजा जीमूतकेतु अपने युवा पुत्र जीमूतवाहन को राज्य के दायित्व को सौंपकर वानप्रस्थ ग्रहण कर लेते हैं परन्तु जीमूतवाहन राज्य संचालन की अपेक्षा माता-पिता की सेवा को अधिक सुखप्रद मानता है। जिसके विषय में हर्ष लिखते हैं-

पित्रेर्विधातं शुश्रूषां त्यक्त्यैश्वर्यं क्रमागतम्। वनं याम्यहमद्यैव यथा जीमूतवाहनः।।⁵

अर्थात् आज ही मैं जीमूतवाहन कुलक्रम से प्राप्त ऐश्वर्य को त्यागकर माता-पिता की सेवा के लिए वन में जाता हूँ। नायक के द्वारा राजसुख की तुलना में माता-पिता के सानिध्य का सुख सर्वोपरि माना गया है। इस सम्बन्ध में यहाँ इस प्रकार कहा गया है-

तिष्ठन् भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा। यत् संवाहयतः सुखं तु चरणौ तातस्य किं राजके? किं भुक्ते भुवनत्र्ये धृतिरसौ भुक्तेज्जिते या गुरोः? आयासः खलुः राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद् गुणः?।⁶

अर्थात् पिता के समाने पृथिवी पर बैठा हुआ पुत्र जिस प्रकार सुशोभित होता है। वैसा क्या सिंहासन पर शोभा पाता है। पिता के चरणों को दबाते हुए जो सुख मिलता है। क्या वह राज्य में मिल सकता है? पिता का जूठा खाने में जो संतोष प्राप्त होता है। वह क्या तीनों लोको के उपभोग में प्राप्त हो सकता है। माता-पिता को छोड़कर प्राप्त हुआ राज्य वस्तुतः आयास मात्र है। क्या उसमें कोई गुण है? यहाँ हर्ष राज्य को सुख का साधन मानते हैं लेकिन राज्य सुख का साधन नहीं है। वह न्याय का स्वरूप है। भवभूति अपने उत्तररामचरितम् में कहते हैं- **सतां के नापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रते। यत्पूरित हि तातन मा च प्राणांश्च मुञ्जता।।⁷** अर्थात् चाहे जो कुछ भी हो प्रजा को प्रसन्न रखना ही राजाओं (स्वज्जन) का कर्तव्य है, जिसको पिता जी ने मुझे तथा अपने प्राणों को छोड़कर पूरा किया है। तो कहने का भाव यह है कि राजा का जीवन सुख भोगने के लिए नहीं होता है। उसका जीवन तो बहुत कष्टकारी होता है। जो राजा अपने पद का ठीक से निर्वाह नहीं करता है तो राजा और राज्य दोनों के लिए हितकर नहीं होता है। यहाँ पर नायक प्रजा पालन के रूप में दण्ड व्यवस्था से आश्वस्त है। महर्षि वाल्मीकीय अपने रामायण में या कालिदास के द्वारा जो रघुवंशीय राजाओं की प्रतिष्ठा की गयी है हर्ष का लाकर उसे मन्त्रियों के भरोसे छोड़ देना समकालीन भारतीय राजाओं की ओर संकेत करता है। उस समय राजा लोग अपने सभी कार्य मन्त्रियों के भरोसे ही छोड़ देते थे। राजा के अन्दर सुख एवं विलास की

भावना जागृत हो गयी थी या कुछ लोग प्रजा पालन से दूर आध्यात्मिक जीवन यापन करने लगे थे। कहने का तात्पर्य यह कि राजा उस समय अपने कर्तव्य को छोड़ बाकी वह सब करता था जिसे उसे नहीं करना चाहिए थे। हर्ष यहाँ पर उदयन और जीमूतवाहन को इसीलिए नायक बनाया है क्योंकि वस्तुतः राजाओं का कार्य यह नहीं है। राजा का मुख्य कार्य प्रजापालन ही है। राजा जब-जब अपने कर्तव्य से विचलित हुआ है तब-तब शत्रु अपने योजना में सफल हुआ है। इसलिए राजा को कभी भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। राजा को देश और राष्ट्र की स्वयं चिन्ता करनी होगी। अन्यथा राज्य को शत्रु के हाथ में जाने से कोई रोक नहीं सकता है। कवि अपनी बात को काव्य में दो तरह से उपदेशित करने का प्रयास करता है। एक तो वह सुपरिणाम दिखलाता है, दूसरे में दुष्परिणाम दिखलाता है। सुपरिणाम का पाठक अनुकरण करता है और दुष्परिणाम का त्याग करता है। यही काव्य की अन्वय और व्यतिरेक विधा है। भाव या अभाव के माध्यम से कवि सुपरिणाम और दुष्परिणाम को रेखांकित करता है। कवि हर्ष अपने के समय राजाओं को उदयन और जीमूतवाहन के ही रूप में देखते हैं जो अपने कर्तव्य से दूर हो गये थे। जिसका परिणाम भी आपके सामने हैं। अनेक युद्धों में भारतीय राजाओं की पराजय उनकी निश्चितता और परनिर्भरता के कारण हुई थी। जब राज्य पराधीन हो जाता है तो राजा और राज्य में रहने वाले लोगों की क्या स्थिति हो जाती है, उसे आप प्रियदर्शिका में देख सकते हैं-

राज्ञो विपद्बन्धुवियोगदुःखं देशच्यूतिर्दुर्गममार्गखेदः ।

आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाः फलं मयैतच्चिरजीवितायाः ।।⁸

अर्थात् राजा की विपत्ति, बन्धुवियोगजन्य दुःख, देश से निकाला जाना, अगम्य मार्ग में चलने से कष्ट में अपना कड़वी तथा व्यर्थ इस चिरजीविता का फल चख रहा हूँ। मैं बहुत दिनों तक जीता रहा, मेरा यह जीना नितान्त कटु तथा निष्फल रहा क्योंकि बहुत दिनों तक जीते रहने से अपने प्रिय राजाओं की बड़ी-बड़ी दुर्दशाएं मुझे देखने को मिली। राजा को विपत्ति का सामना करना पड़ा, उसे बन्धुओं का वियोग दुःख भोगना पड़ा, देश निकाला हुआ, और दुर्गम मार्ग में कष्ट उठाना पड़ा। इस सब कारण है राजधर्म का सम्यक् पालन न करना। आचार्य मनु कहते हैं कि सबके सो जाने पर भी दण्ड जागता रहता है। वह शासन करता है। दण्ड का सम्यक् पालन करना चाहिए, दण्ड धर्म स्वरूप है। इसलिए दण्ड व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करना चाहिए। यद्यपि प्रियदर्शिका में राजा के तीन शक्तियों पर विचार करते हुए कहा गया है- **तादृशस्यापि नामाप्रतिहतशक्तित्रयस्य रघु दिलीप नल तुल्यस्य देवस्य दृढवर्मणः⁹** अर्थात् अभिहित मन्त्रशक्ति प्रभुशक्ति तथा उत्साहशक्ति से युक्त रघु, दिलीप और नल के समान महाराज दृढ़वर्मा को कलिंग नरेश विपत्ति डाल दिया। यह राजा तीन शक्तियां उसके राज्य और स्वयं के लिए कवच के समान होती हैं। जिसके सम्यक् परिपालन से राज्य की सदैव रक्षा होती है। स्वामी और सेवक के कर्तव्य विशेष को हर्ष प्रकट करते हुए इस प्रकार लिखते हैं-

सुखनिर्भरोऽन्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजनः । किं पुनरिबलविघटननिर्व्यूढप्रभुनियोगभरः ।।¹⁰

अर्थात् बैठे हुए सानन्द रहने वाले भृत्य भी स्वामी को देखकर आनन्द विभोर हो जाते हैं फिर उन भृत्यों के आनन्द के विषय में क्या कहना है जो शत्रु सैन्य के विनाश द्वारा अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करके लौटे हैं। यानि राजा के लिए शत्रु सैन्य बल का विनाश अत्यन्त आह्लादकारी होता है। सामान्य रूप से सभी भृत्य अपने राजा को देखकर प्रसन्नचित होते हैं लेकिन युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला सैनिक तो अपने राजा को देखकर अत्याधिक प्रसन्नचित हो जाता है। ऐसे ही भृत्य और राजा के सम्बन्ध से राज्य उन्नति को प्राप्त करता है। जहाँ राजा को देखकर भृत्य दुःखी या भयभीत हो जाता है वहाँ राजा के दुर्दर्शिता के अभाव

का भान होता है। ऐसी स्थिति में राजा एवं राज्य दोनों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो जाता है। नागानन्द में राजा के गुणों की बात करते हुए हर्ष लिखते हैं-

न्याय्ये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता, नीतो बन्धुजनास्तथात्मसमतां राज्ये च रक्षा कृता।

दत्तो दत्त मनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽस्यर्थिने, किं कर्तव्यमतः परं कथय वा यत्ते स्थितं चेतसि।।¹¹

अर्थात् प्रजाओं को न्याय के मार्ग में लगा दिया है। सज्जनों को सुखी कर दिया है। बन्धुजन वैसे ही अपने समान बना दिये गये हैं और राज्य में रक्षा प्रबन्ध पूर्ण कर दिये गये हैं। याचकों के लिए कामना से अधिक फल देने वाला कल्पवृक्ष भी दे दिया गया है अथवा इससे अधिक क्या करने योग्य है? जो तुम्हारे मन में स्थित है। यानि हर्ष यहाँ पर बतलाते हैं कि जीमूतवाहन माता-पिता की सेवा के लिए जंगल में इसलिए जाना चाहता है क्योंकि उसके राज्य में किसी प्रकार की समस्या नहीं थी। वह राज्य और प्रजा से सब प्रकार से आश्वस्थ है और अपने मन्त्रियों पर भरोसा भी करता है।

हर्ष अपने राजधर्म में मन्त्री को बहुत महत्व दिये हैं। वे मन्त्री के रूप में यौगन्धरायण की सृष्टि करते हैं। यौगन्धरायण उदयन का प्रधान अमात्य है। वह अपने स्वामी उदयन का सब प्रकार से उत्कर्ष चाहता है। वह अपने राजा को चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिए रत्नावली से विवाह के लिए उपक्रम रचता है। जिसका उद्घाटन स्वयं यौगन्धरायण ही करता है-

“देव श्रूयताम्। इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्या पाणिं ग्रहीस्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति। ततस्तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थं बहुशः प्रार्थ्यमानेनापि सिंहलेश्वर देव्या वासवदत्तायाश्चित्तखेदं परिहरता यदा न दत्ता।¹²

अर्थात् महाराज सुनिये। इस सिंहलराज की पुत्री रत्नावली के विषय में किसी सिद्ध पुरुष ने बतलाया कि जो व्यक्ति इसका पाणिग्रहण करेगा वह सार्वभौम राजा होगा। तब उस सिद्ध पुरुष की वाणी के विश्वास से हमने आपके हित के लिए बार-बार सिंहलेश्वर विक्रमवाहु से उसके विवाह के लिए प्रार्थना की परन्तु सिंहलनेश ने महारानी वासवदत्ता के चित्त के खेद को मिटाने के लिए जब उसका विवाह आपसे नहीं किया तो।

“तदा लावाणकेन वह्निना देवी दग्धोति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं बाभ्रव्यः प्रहितः”।¹³

अर्थात् तब लावाणक गाँव में लगी आग से देवी वासवदत्ता जल गई। यह प्रसिद्ध करके सिंहलेश्वर के पास मैंने विवाह का सन्देश लेकर बाभ्रव्य कंचुकि को भेजा। यौगन्धरायण चाणक्य के समान बुद्धिमान है। अपने राजा का अनन्य शुभचिन्तक है। जिसके कार्य पर राजा उदयन हर्षित हो कह उठता है कि इससे बढ़कर और क्या प्रिय हो सकता है-

नीतो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुर्वीतले, सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्येकहेतुः प्रिया।

देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाजिताः कोसलाः, किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभेयस्मै करोमि स्पृहाम्।।¹⁴

अर्थात् विक्रमवाहु को अपने समान बना लिया यानि अपना सम्बन्धी बना लिया, पृथ्वी तल की तत्त्व समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का एकछत्र राज्य प्राप्त करने का एक मात्र कारण प्रिया (रत्नावली) को पा लिया अर्थात् पत्नी बना लिया, बहन प्राप्त हो जाने के कारण महारानी वासवदत्ता भी प्रसन्न है। अर्थात् सपत्नी (रत्नावली) के कारण महारानी भी रुष्ट नहीं है जैसा कि उनके लिए स्वाभाविक था। कोसल राज्य को जीत लिया। इस प्रकार आपके महान मन्त्री होते हुए मेरे पास अब किस वस्तु की कमी है जिसके लिए कामना करूं। तत्कालीन समय में राजा लोग अपने सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे जिसका दुष्परिणाम मुगलों के शासन काल भी रहा है। राजा उदयन एक बड़ी बात मन्त्री के लिए कहता है कि

यौगन्धरायण जैसा जब मन्त्री मेरे साथ है मुझे किस बात की कमी है। यौगन्धरायण ऐसा मन्त्री है जो राजा और राज्य दोनों के सुखोपभोग विधायक है। उसका जीवन व्यक्तिगत नहीं राजा के अधीन है। एक बात यहाँ राजा उदयन के विषय में भी बहुत व्यावहारिक दिखलाई पड़ती है कि उदयन अपने मन्त्री के कार्यों का विरोध नहीं करता है बल्कि सहर्ष स्वीकृति प्रदान करता है जो राजधर्म की दृष्टि से अनुकूल है। राजा और मन्त्री का परस्पर सामंजस्य ही राज्य समृद्धि का नियामक बनता है। वह यौगन्धरायण के कार्यों की सहर्ष स्वीकृति प्रदान करता है। महाभारत और रामायण इस बात के उदाहरण हैं कि जिन्होंने अपने मन्त्री की बात नहीं मानी वे अपने पुत्र-पौत्र के साथ समाप्त हो गये। रावण और माल्यवान, विभिषण आदि और धृतराष्ट्र को विदुर बार-बार मना करते रहे लेकिन न रावण माना और न धृतराष्ट्र जिसका परिणाम आप जानते हैं।

यद्यपि जीमूतवाहन का पितृ अनुराग राजधर्म के लिए उचित नहीं है। लेकिन समुद्र तट पर सर्पों के हड्डियों का ढेर देखकर उसके अन्दर जो दया और त्याग की भावना जन्म लेती है वह जीमूतवाहन के व्यक्तित्व को चमत्कृत कर देती है। वहाँ पर गरुड़ के शंखचूड़ नामक सर्प का क्रम है। इसलिए उसकी माता विलाप कर रही होती है। जीमूतवाहन अपने आपको उसके बदले में उपस्थित करता है। वह लाल वस्त्र धारण कर बध्यशिला पर बैठ जाता है। गरुड़ उसे उठा ले जाता है। रहस्य जानकार गरुड़ भी उसके शौर्य और आत्मविकार, बलिदान से प्रसन्न है। यह एक राजा का दिव्य गुण है। यह गुण नन्दिनी की सेवा में संलग्न दिलीप में देखने को मिलती है। राजा का यह कर्तव्य है कि उसके उपस्थित रहते हुए किसी पर संकट नहीं आना चाहिए। पहले राजा फिर प्रजा। यही भाव जीमूतवाहन को उच्च आसन प्रदान करता है। जिसके मृतप्राय होने पर एक पिता के द्वारा इस प्रकार विलाप किया जाता है-

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः, क्षमं क्षान्तिं वोढं क इह विरता दानपरता।

हतं सत्यं सत्यं ब्रजतु कृपणा क्वाद्य करुणा, जगत् कृत्स्नं शून्यं त्वयि तनय! लोकान्तरगते।।¹⁵

अर्थात् हे पुत्र तेरे परलोक चले जाने पर धैर्य आधारहीन हो गया। विनम्रता मानो किसकी शरण में जाए? क्षमा को धारण करने में यहाँ कौन समर्थ? उदारता समाप्त हो गयी। सत्य विनष्ट हो गया। सचमुच हे बेचारी करुणा आज कहाँ जाए? सम्पूर्ण संसार शून्य हो गया है। इस प्रकार हर्ष जिस राजा का प्रारम्भ पितृ भक्त में उपस्थित कर राजधर्म से विमुख बना दिया था उसी के अन्दर त्याग और बलिदान की उच्च भावना का बीजांकुरण कर प्रजा पालन का पुरोधा पुरुष बना देते हैं।

संदर्भ -

1. रत्नावली, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, भूमिका, पृ.5
2. वही, 1/4
3. वही, 1/5
4. वही, 1/9
5. नागानन्दम्, संस्कृत ग्रन्थागार, दिल्ली, 2008, श्लोक-1/5
6. वही, 1/7
7. उत्तररामचरितम्, 1/41
8. प्रियदर्शिका, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, 2013, श्लोक- 1/4
9. वही, 1/4 के अनन्तर
10. वही, 4/6
11. नागानन्द, 1/8
12. रत्नावली, 4/20 के अनन्तर
13. वही, 4/20 के अनन्तर
14. वही, 4/21
15. नागानन्द, 5/31

रत्नावली नाटिका का सामाजिक वैशिष्ट्य

देवी प्रसाद मिश्र

हर्ष के युग में मदनमहोत्सव का आयोजन होता था जिसे वर्तमान समय में बसन्त पंचमी तथा होलिकोत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस मदनमहोत्सव का रमणीय वर्णन रत्नावली नाटिका में इस प्रकार है-

मधुमत्तकामिनीजनस्वयंग्राहगृहीतशृङ्गकजलप्रहारनृत्यन्नागरजनजनितकौतुहलस्य समन्ततः शब्दायमानमर्दलोद्दामचर्चरीशब्दमुखरस्थ्यामुखशोभिनः प्रकीर्णपटवासपुञ्जपिञ्जरितदशदिशामुखस्य सश्रीकतां मनदनहोत्सवस्य। अर्थात् अब मदिरा (पीने) से मतवाली कामिनियों द्वारा स्वयं पकड़ी हुई पिचकारियों के जल की चोट से नाचते हुए नागर पुरुष कौतुहल उत्पन्न कर रहे हैं, चारों ओर बजते हुए मृदङ्गों के कारण प्रचंड चर्चरी बाजे के शब्द से मुखरित गलियों की शोभा बढ़ रही है और बिखरे हुए गुलाल की राशि से दसों दिशाओं के मुख लाल-पीले हो रहे हैं। कौशाम्बी नगरी चारों तरफ से अबीर, गुलाल से रंग-बिरंगी दिखलाई पड़ रही है, स्त्री-पुरुष के रंग खेलने से फर्श लाल रंग प्रतीत हो रहा है -

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुडकुमक्षोदगौरैः- हॅमालंकारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः।

एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा, कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेनैकपीता विभाति।।^१

अर्थात् केसर के चूर्णों से अरुण प्रातःकाल (का दृश्य) उपस्थित करने वाले बिखरे हुए गुलाल के पुञ्जों से, सुवर्ण के आभूषणों की कान्तियों और अपने भार से अग्रभाग को झुका देने वाले अशोक पुष्प के शिरोभूषणों उपलक्षित वेशों के अनुमान करने योग्य अपने ऐश्वर्य से कुबेर की समस्त निधियों को तिरस्कृत करने वाली यह कौशाम्बी (नगर) ऐसी एकमात्र पीली दिखाई देती है मानो यहाँ रहने वालों (की देह) पर सोने का पानी चढ़ा दिया गया हो। चारों ओर से पिचकारियों से छूटती हुई निरन्तर जल की बौछारों के समूह से प्लावित तथा उसी समय अतिशय मर्दन से बने हुए कीचड़ में की गई क्रीड़ा वाले आँगन में उन्मत्त रमणियों के कपोलों से झरते हुए सिन्दूर (अबीर) के रङ्ग से लाल पैरों के रखने से लोग सामने की फर्श को कुछ देर के लिए सिन्दूर से रङ्गा हुआ (रक्ताभ) बना रहे हैं। इसी प्रकार से मदनमहोत्सव का एक और उदाहरण -

धारायन्त्रमुक्तसन्ततपयःपूरप्लुते सर्वतः, सद्यः सान्द्रविमर्दकर्मकृतक्रीडे क्षणं प्राङ्गणे।

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूरारागारुणैः, सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम्।।^२

सागरिका एवं सुसङ्गता के व्यवहार से तत्कालीन समाज में घटित स्त्रियों की वेशभूषा, शृंगार तथा मनोभावों का स्पष्ट चित्रण प्रदर्शित होता है। स्त्रियों का गायन, नृत्य वादन में विशेष उल्लेख प्राप्त होता है।

महोत्सवों में कलाओं का विशेष प्रदर्शन किया जाता था। परिजनों का आमोद-प्रमोद की पराकाष्ठा प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है -

स्त्रस्तः स्त्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलः केशपाशः

क्षीबायां नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौ क्रन्दतः पादलग्नौ।

व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः

क्रीडन्त्या पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम्।⁴

अर्थात् (मद्य सेवन से) मतवाली और (अतएव) कुचों के भार से झुकी हुई कमर के टूटने की परवाह किये बिना नाचती हुई इस (वनिता) का खुला हुआ और (अतएव) बिखरा हुआ जूड़ा मानो पीड़ा के कारण, विशेष रूप से बनाई गयी पुष्पमाला की शोभा को त्याग रहा है, पैरों से चिपकी हुई ये पायल (मानों पीड़ा के कारण) दोगुना चिल्ला रही है। लगातार कम्पन्न के कारण डोलता हुआ यह हार (मानों पीड़ा के कारण) निरन्तर वक्षस्थल को पीट सा रहा हो। चित्रकला के चित्रण में भी स्त्रियाँ पारङ्गत थी सागरिका द्वारा उदयन का चित्र और सुसंगता द्वारा सागरिका का चित्र बनाया जाता है। ये दोनों का चित्र अत्यन्त कलात्मक एवं सजीव जैसे प्रतीत होते हैं। इनमें मनोभावों का भी अंकन किया गया है -

यद्यपि मेऽतिसाध्वसेन वेपतेऽयमतिमात्रमग्रहस्तस्तथापि नास्ति तस्य

जनस्यान्यो दर्शनोपाय इति यथातथालिख्यैनं प्रेक्षिष्ये।⁵

अर्थात् यद्यपि अत्यधिक भय के कारण मेरे हाँथ की अँगुलियाँ बहुत काँप रही हैं तो भी उस जन को देखने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, इसलिए जैसे-तैसे चित्र उतार कर उसे देखूँगी। सागरिका उदयन का चित्र निर्माण करती है। उस चित्र को देखकर सुसंगता उदयन के चित्र के पास ही सागरिका का चित्र बना देती है और कहती है कि जैसे तुमने कामदेव का चित्र बनाया वैसे मैंने रति (कामदेव की पत्नी) का चित्र बना दिया। यथा -

यादृशस्त्वया कामदेव आलिखितस्तादृशी मया रतिरालिखिता।⁶

स्त्रियाँ अनेक प्रकार से श्रृंगार करती थी, केशों को विविध प्रकार से बाँध कर पुष्प गुच्छों को लगाती थी, चरणों में लाक्षारस (महावर), हाथों में कंगन, कानों में कर्णाभरण का उपयोग करती थी, बहुमूल्य रत्नों से श्रृंगार करती थी। तत्कालीन समय में पर्दा प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियाँ प्रायः पर्दा में रहकर ही कार्यों को करती थी। वासवदत्ता घूँघट निकाल कर उदयन से मिलने जाती हैं। वासवदत्ता सागरिका एवं उदयन के प्रेम को जान कर सागरिका को कैद कर देती हैं। इससे पता चलता है कि कुलवधू का घर में सम्मान एवं पूर्ण अधिकार होता था। सागरिका उदयन प्रेमासक्त है और अपने सखी सुसंगता से अपने भाग्य को उलाहना देती है -

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा। प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम्।⁷

अर्थात् दुर्लभ व्यक्ति से (मेरा) प्रेम (हुआ) है, लज्जा भारी है और शरीर पराधीन है। प्रिय सखी! (ऐसी स्थिति में मेरा यह) प्रेम भयानक है। (अतएव) केवल मरण (ही मेरा) सबसे बढ़कर मेरा रक्षक है। यहाँ पर सागरिका के द्वारा अपने प्रेम को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। पटरानी की आज्ञा से ही राजा अन्य स्त्रियों से प्रेम कर सकता था। सागरिका के प्रेम में उदयन के पड़ने पर वासवदत्ता का क्रोधित होना यह प्रदर्शित करता है कि रानी का पूर्ण अंकुश था इसके उदाहरण में राजा उदयन वासवदत्ता से क्षमा याचना का वर्णन है -

आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष, लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना।

कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे, हर्तुक्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात्।⁸

अर्थात् देवि! लज्जित हुआ मैं तुम्हारे चरणों की महावर द्वारा की गई किञ्चित् लालिमा को अपने सिर से दूर करता हूँ किन्तु (तुम्हारे) मुख रूपी चन्द्रमण्डल पर क्रोध रूपी ग्रहण द्वारा उत्पन्न की गई (किञ्चित् लालिमा) को (तभी) हटाने में समर्थ हो सकता हूँ, यदि मुझ पर (तुम्हारी) केवल कृपा हो जाये।

तत्कालीन समाज में लोग तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना पर विश्वास करते थे। इसी प्रकार से ऐन्द्रजालिक लोगों को जादू का खेल दिखाकर मनोविनोद करता है, उससे जन-मानस एवं वासवदत्ता भी प्रसन्न हो जाती है -

एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शङ्करोऽयं, दोभिदैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः।

एषोऽयैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तऽन्ये। नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणन्पूरा दिव्यनार्यः।।⁹

राजा उदयन यह कहता है कि हे देवि! आकाश में कमल पर (स्थित) ये ब्रह्मा हैं, चन्द्रमा की कला रूप शिरोभूषण से युक्त ये शङ्कर हैं, धनुष, खड्गगदा और चक्र के चिन्हों से युक्त चार भुजाओं वाले ये दैत्यों के विनाशक (विष्णु) हैं, ये भी ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्र हैं, तथा ये दूसरे देवता हैं और ये चंचल चरणों में बजते हुए नुपूरों वाली देवाङ्गनायें नृत्य कर रही हैं। ऐन्द्रजालिक अपने जादू से अन्तःपुर में आग लगने का दृश्य प्रदर्शित करता है -

हर्म्याणाहेमशृङ्गाश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः, सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः।

कुर्वन् क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातैर्रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तः पुरेऽग्निः।।¹⁰

तात्पर्य यह है कि समूहों से महलों की मानों सोने की बनी चोटी की शोभा उत्पन्न करता हुआ, बगीचे के सघन वृक्षों के अग्रभागों को मुरझा देने से अत्यन्त तीव्र गर्मी सूचित करता हुआ, धुओं के फैलाव से क्रीडापर्वत को जलपूर्ण मेघ के समान श्यामल बनाता हुआ अधिक दाह से महिलावृन्द को पीड़ित करता हुआ वह अग्नि यहां अन्तःपुर में एकाएक भड़क उठा है। तत्कालीन समय में धार्मिक कार्य, सिद्ध साधु-सन्तों पर विश्वास हुआ करता था। सिंहलेश्वर की पुत्री के बारे में सिद्ध सन्तों ने भविष्यवाणी की थी कि जो इससे पाणिग्रहण करेगा वह चक्रवर्ती राजा होगा। अतः सिद्ध महात्माओं के वचन विश्वासपूर्ण थे। यथा-

इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धेनादिष्टा यथा योऽस्याः पाणिं, ग्रहीष्यतिस सार्वभौमो राजा भविष्यति।¹¹

राज्य में राजा का प्रजाओं का सर्वविध कल्याण करना कर्तव्य था। राजा राज्य के उन्नति के लिए सदैव प्रयत्न करता था। स्वामीभक्त सेवक, बुद्धिमान मन्त्री, स्नेही मित्र, प्रजा का अनुराग एवं उत्तम गुणयुक्त राजा उन्नति के पथ पर अग्रसर हुआ करता था -

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः, सम्यकपालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं, कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः।।¹²

अर्थात् राज्य निष्कण्टक हो गया है (राज्य पालन का) सम्पूर्ण भार योग्य मन्त्री को सौंप दिया गया है, भली-भाँति लालन-पालन की हुई प्रजाएँ सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित है, फिर प्रद्योतपुत्री (वासवदत्ता), वसन्त समय और तुम हो, इसलिए कामदेव (मदनमहोत्सव इस) नाम से भले ही सन्तोष प्राप्त कर ले, किन्तु मैं समझता हूँ कि यह महान उत्सव मेरा है (न कि कामदेव का)। इस प्रकार से श्री हर्षवर्द्धन ने रत्नावली नाटिका में प्रत्येक पक्ष का उद्घाटन बड़े ही कुशलतापूर्वक किया है जिसमें स्त्रियों की दशा, राज्य का शासन, प्रजा की कुशलता, मनोविनोद की चर्चा एवं कहानी का मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है। इस कहानी का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है राज्य के संचालन के साथ ही काव्यपक्ष का उद्घाटन सराहनीय है। इस कहानी के माध्यम से गागर में सागर भरने का सफलतम प्रयत्न किया है।

संदर्भ -

1. साहित्य दर्पण, 6/1
2. साहित्य दर्पण, 6/1
3. साहित्य दर्पण, 6/3
4. साहित्य दर्पण, 6/6
5. रत्नावली तारिणीश झा पृष्ठ 29)
6. रत्नावली, तारिणीश झा, 1/11
7. रत्नावली, तारिणीश झा, 1/12, पृ. 33
8. रत्नावली, तारिणीश झा, 1/17
9. रत्नावली, तारिणीश झा, पृ. 75
10. रत्नावली, तारिणीश झा, पृ. 80
11. रत्नावली, तारिणीश झा, 2/1, पृ. 83
12. रत्नावली, तारिणीश झा, 3/14, पृ. 181
13. रत्नावली, तारिणीश झा, 4/11 पृ. 228
14. रत्नावली, तारिणीश झा, 4/14, पृ. 240
15. रत्नावली, तारिणीश झा, 4 अंक पृ. 255
16. रत्नावली, तारिणीश झा, 1/10

रत्नावली नाटिका में प्रेम एवं सौन्दर्य

सकीना कुमारी सालवी

हर्ष रोमांचक प्रणय नाटिका के लेखक तथा रंगमंचीय नाटक प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध है। प्रणय के लिए हर्ष ने सौन्दर्य के उपकरणों का प्रचुर मात्र में प्रयोग किया है। वृक्ष, वन, पर्वत, प्रसाद, उपवन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न, ग्रीष्म इत्यादि प्राकृतिक वर्णनों का सजीव चित्रण किया गया है। सौन्दर्य दो प्रकार का होता है - आन्तरिक एवं बाह्य। जब व्यक्ति आन्तरिक सौन्दर्य से युक्त होता है तब उसके भाव अन्य व्यक्तियों से देखे जाते हैं। तथा बाहरी सौन्दर्य से युक्त व्यक्ति अन्य सौन्दर्य प्रेमियों के लिए आनन्द की वस्तु बन जाता है। आनन्दवर्धन का कथन है कि यह सौन्दर्य शरीर के प्रसिद्ध अवयवों से उत्पन्न होकर भी उनसे पृथक् वस्तु प्रतीत होता है। यथा - प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्। यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।¹ वस्तुतः आन्तरिक सौन्दर्य अथवा प्रेम का कोई हेतु नहीं होता है। अहेतु ही एक दूसरे को जोड़ता है जैसा कि महाकवि भवभूति ने कहा है कि - अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया, स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीयति।²

महाकवि की यह स्पष्ट धारणा है कि जो प्रेम बिना किसी कारण सहसा उत्पन्न होता है, स्वाभाविक और निःस्वार्थ होता है, उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती अर्थात् उसको तोड़ने हटाने या दूर करने का कोई उपाय नहीं होता। स्वार्थजन्य प्रेम ही उस कारण या स्वार्थ के दूर होने पर हटाया जा सकता है सहज प्रेम नहीं। क्योंकि ऐसा अकारण प्रेम वस्तुतः वह प्रेममय सूत्र होता है जो कि प्राणियों के हृदयों को दृढ़तापूर्वक सी देता है जिससे कि वे कभी पुनः अलग नहीं हो सकते। प्रेम बाह्य कारणों के अधीन नहीं होता है यथा सूर्य के उदित होने पर कमल खिल जाता है। इस बात की पुष्टि सूर्य-पद्मिनी-वर्णन के द्वारा भावी उदयन रत्नावलीरूप वृत्तान्त की अन्योक्तिमय व्यञ्जना से की गयी है -

यातोऽस्मि पद्यनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति।।³

ऐसा ही सुन्दर चित्र महाकवि भवभूति ने भी प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं प्रेम को कोई आन्तरिक हेतु ही जोड़ता है। यथा - सूर्य के उदित होने पर कमल का खिलना एवं चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चन्द्र कान्तमणि पिघल जाती है - व्यतिषजयति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु न खलु बहिरूपाधीन प्रीतयः संश्रयन्ते विकसित हि पतंगस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रक्रान्तः।।⁴ स्त्री के सौन्दर्य-चित्रण में जिस तरह

महाकवि कालिदास शकुन्तला को ब्रह्मा की प्रथम रचना बताते हैं⁵ ठीक वैसे ही रत्नावली नाटिका का नायक उदयन सागरिका के सौन्दर्य पर मन्त्रमुग्ध होकर वह कहता है कि स्वयं ब्रह्मा भी इसे बनाकर आनन्द से गद्ग हो गये होंगे। उनके चारो मखों ने एक साथ साधुवाद दिया होगा और आश्चर्य के कारण उनका सिर हिल गया होगा - दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम्। शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा विधाय ललनां जगत्त्र्यललामभूतामिमाम्।⁶ जिस प्रकार उदयन रत्नावली पर आसक्त है ठीक उसी प्रकार सागरिका (रत्नावली) भी उदयन के बिना जीवन को व्यर्थ समझती है। वह कहती है कि - मैंने दुर्लभजन पर अनुराग किया है, लज्जा अधिक है, स्वतन्त्र भी नहीं हूँ, प्यारी सखी इस स्थिति में प्रेम करना एक भयानक व्यापार है, अब तो केवल मृत्यु ही शरण है -

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा, प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम्।⁷

राजा उदयन वासवदत्ता से भी गहरा प्रेम करता है। अतः वह उद्यान की लता को देखकर कल्पना करता है कि इस लता को देखकर मैं अन्य स्त्री को देखने के समान देवी वासवदत्ता का अपराध कर रहा हूँ तथा इस अपराध से मैं निश्चय ही देवी के मुख को क्रोध से आरक्त कान्तिवाला बना दूँगा-

**उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-दायासं श्वसनोद्गमैर-विरतैरातन्वतीमात्मनः
अद्योद्यानलतामिमां समदनां गौरीमिवान्यां ध्रुवं, पश्यन्कोपविपाटलद्युति मुखं देव्याः करिष्याम्यहम्।⁸**

सागरिका का सौन्दर्य इतना विलक्षण है कि राजा उदयन उसे राजहंसी के तुल्य बताता है। वह कहता है जिस प्रकार राजहंसी मानसरोवर में प्रवेश करती है ठीक वैसे ही चित्रगत यह कन्या मेरे दिल में प्रवेश कर रही है। ऐसी सौन्दर्य से युक्त यह कन्या कौन है?

लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः। मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव।⁹

इतना ही नहीं वह आगे पुनः कहता है कि विधाता इस नायिका के अद्भुत पूर्ण चन्द्ररूप मुख का निर्माण करके एक बार अपने आश्रयभूत कमल के संकुचित हो जाने से उलझन में पड़ गये होंगे -

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम्। धाता निजासनाम्भोजविनिमीलन दुःस्थितः।¹⁰

हर्ष ने अपनी नाटिका में दशकामावस्थाओं का भी सुन्दर चित्रण किया है। अभिलाष, चिन्ता, अनुस्मृति, गुणकीर्तन, उद्देग विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता एवं मरण ये देश कामावस्था भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में स्वीकार की है।¹¹ इन कामवस्था में जो व्याधि की दशा है। वह रत्नावली में सुन्दर रूप से चित्रित की गयी है। उसका एक उदाहरण दृष्टव्य है -

परिम्लानं पीनस्तनजघनसंगादुभयत-स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः, कृशाङ्गयाः सन्तापं वदति नलिनीपत्रशयनम्।¹²

विदूषक, राजा उदयन से कहता है कि यहाँ पर सागरिका का शयन स्थान जो कमलपत्र और मृणालों से बनाया गया है वह कामावस्था का सूचक है। विदूषक की बात सुनकर राजा कहता है कि मित्र तुमने ठीक ही समझा है क्योंकि यह शयन स्थान स्थूल स्तन और जघन देश जहाँ आकर मिला वह स्थान मुरझा हुआ है, मध्यभाग में क्षीणता के कारण जितने अंश में स्पर्श नहीं हुआ उतना भाग हरा ही रहा। हाथों के पटकने से कुछ अग्रिमभाग अस्त-व्यस्त हो रहा है, इस तरह यह शयनीय उस कृशाङ्गी की काम पीड़ा को सूचित कर रहा है।

विदूषक राजा उदयन से हास-परिहास में कहता है कि अरे! आपने तो अपूर्व लक्ष्मी को प्राप्त किया है तब उदयन कहता है कि मित्र, ठीक कहते हो यह लक्ष्मी ही है और इसके हाथ पारिजात पल्लव है, यदि ऐसा न होता तो पसीने के छल से अमृत इन हाथों से कैसे बहता -

श्रीरषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः । कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।¹³

कामासक्त राजा उदयन वासवदत्ता के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहता है कि प्रिये! सागरिके मुख चन्द्रमा है, आँखे कमल है, उरूयुग कदलीगर्भ है, दोनों हाथ कमल दण्ड है, इस तरह तुम्हारे सभी अंग संताप हरण समर्थ है, अतः हे! प्रिये आओ मेरे शरीर में लिपटकर हमारे इन काम सन्तप्त अंगों की शीतल करो -

**शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ रम्भागगर्भनिभं तथोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।
इत्याह्लादकराखिलाङ्गि रससान्निः शंकमालिङ्गय मा- मङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येहोहि निर्वापय ।।¹⁴**

हर्ष की यह स्पष्ट धारणा है कि जहाँ पर प्रेमी-प्रेमिका में सच्चा प्रेम हो उस प्रेम में यदि कोई त्रुटि हो जाती है तब वह त्रुटि असह्य हो जाती है। सागरिका के प्रति राजा के प्रेम से वासवदत्ता क्षुब्ध है। वह उदयन से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं करती। सम्भव है कि वह प्राण भी त्याग दे। स्त्री स्वभाव का सुन्दर चित्रण हर्ष ने एक श्लोक में ही कर दिया है -

समारूना प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिन, व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ, प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलिततमविसह्यं हि भवति ।।¹⁵

जब नायक-नायिका एक-दूसरे को प्राप्त करने में असफल हो जाते हैं तब कामाग्नि के द्वारा मरण कामदशा उत्पन्न होती है। मरण को काव्यों में दिखाने का प्रायः आचार्यों ने निषेध किया है। भरतमुनि का यह स्पष्ट मत है कि मरण कामदशा को काव्यों में नहीं दिखाना चाहिए।²¹ मरण कामदशा को व्यभिचारि भाव के रूप में हर्ष ने अपनी रत्नावली नायिका में दिखाया है। विदूषक से वार्तालाप के प्रसंग में सागरिक की अनिष्ट की आशंका करता हुआ उदयन अपने प्राण त्यागना चाहता है। वह कहता है कि मेरे प्राणों मुझ निर्दयी को छोड़ दो, मेरे ऊपर दया कर मेरी बात मानों। तुम यदि शीघ्र नहीं जाओगे तो वंचित होंगे, क्योंकि वह सुन्दरी दूर चली जाएगी -

प्राणाः परित्यजत काममदक्षिणं मां, रे दक्षिणा भवत मद्बचनं कुरुध्वम् ।

शीघ्रं न यात यदि तन्मुषिताः स्थ नूनं, याता सुदूरमधुना गजगामिनी सा ।।¹⁶

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत नाट्य साहित्य में हर्ष ने रत्नावली नाटिका में शृंगार रस के चित्रण के साथ-साथ समाजशास्त्र का भी सुन्दर चित्रण किया है। प्रेम के लिए सौन्दर्य के सभी साधनों का उपयोग अपने नायक-नायिका के लिए किए हैं। साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। कवि अपने व्यक्तिगत गुण, दोष तथा साधन को लेकर ही अपने भावों का प्रकाशन काव्य में करता है -**शृंगार चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् । स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत् ।।¹⁷**

सन्दर्भ -

1. ध्वन्यालोक 1/4	2. उत्तररामचरितम् 5/17	3. रत्नावली 3/6
4. उत्तररामचरितम् 6/12	5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/1	6. रत्नावली 2/16
7. रत्नावली 2/1	8. रत्नावली 2/4	9. रत्नावली 2/9
10. रत्नावली 2/10	11. नाट्यशास्त्र 24/167-172	12. रत्नावली 2/13
13. रत्नावली 2/18	14. रत्नावली 3/11	15. रत्नावली 3/15
16. नाट्यशास्त्र 24/190	17. रत्नावली 4/6	

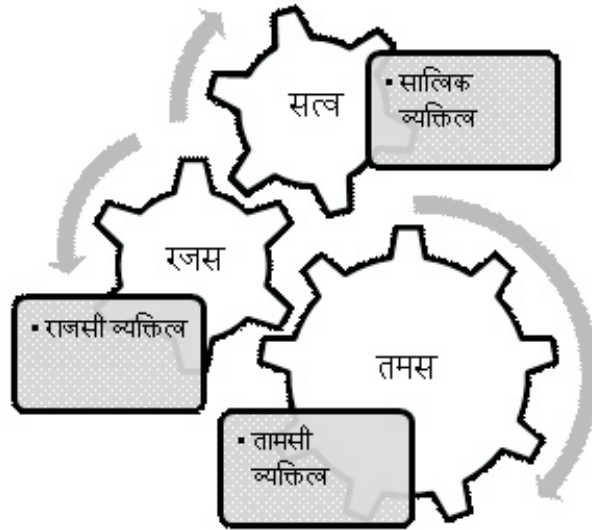
नागानंद के मूल्य एवं शैक्षिक तत्त्व

शिवशंकर यादव, धर्मेन्द्र कुमार सराफ

राजा हर्षवर्धन साहित्य व कला के भी एक महान उपासक थे तथा वे एक बहुत कुशल वीणा वादक भी थे। इनके द्वारा लिखित तीन नाटिकाएं 'नागानंद', 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' संस्कृत साहित्य की अमूल्य नीधियां हैं जिससे इनकी एक साहित्यकार, कवि व कलाकार के रूप में छवि प्रकट होती है। हर्ष के धर्म सहिष्णु आदर्श जीवन को देखते हुए बाणभट्ट जो हर्षवर्धन के अस्थान कवि थे, ने अपना यह मत व्यक्त करते हुए कहा है कि हर्षवर्धन ने 'नागानंद' (नागों का आनंद) नाटिका में जीमूतवाहन के आदर्श जीवन में अपने स्वयं का ही जीवन चित्रित करने का प्रयत्न बताया है (हर्षचरितम्)। 'नागानन्द'-नाटकम् के नायक जीमूतवाहन में प्रकृति प्रेम, करुणा, क्षमा, दृढ़ता, स्थिरता, आत्म-सम्मान, परोपकारिता, उदारता, सात्विकता, अहिंसा एवं आदर्श जैसे नैतिक मूल्यों को देखा जा सकता है। श्री हर्ष के नागानंद में कुछ नैतिक मूल्यों को निम्नवत उद्धृत किया है - निराधारं धैर्य कमिव शरणं यातु विनयः, क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह विरता दानपरता।

अर्थात् नागानंद नाटक में जीमूतवाहन धैर्य, साहस, परोपकार, दया, शांति, दानशीलता, सत्य, कृपा, और त्याग की मूर्त है जो सम्पूर्ण विश्व के लिए युग-युगांतर तक प्रेरणाप्रद शिक्षा प्रदान करता है। नागानंद का नायक, जीमूतवाहन का जीवन संतुष्टि, आनंद और शांति से भरा होता है जिसमें वह अपने लक्ष्यों और मूल्यों के अनुसार जीवन यापन करता है। उसे अपने जीवन में राज सिंहासन की बिल्कुल भी लालसा नहीं रहती है। वह किसी प्रकार की ईर्ष्या, द्वेष या घृणा नहीं रखता है और न ही किसी वस्तु के प्रति लालच करता है वरन् उसको अपने आप में पूर्ण संतुष्टि रहती है। उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य अपने माता-पिता की सेवा करना था। वह अपने अंदर साहस, क्षमता, दृढ़ता, स्थिरता, उदारता तथा परोपकार जैसे आदर्श गुणों को समाहित किए हैं। वह आत्म विकास पर निरंतर ध्यान देता है और जीवन को उच्च शिखर तक बेहतर बनाने के लिए आत्म बलिदान करने को भी तैयार हो जाता है। इसी तरह वह अपने सामाजिक सरोकारों को भी अधिक महत्व देते हुए संपूर्ण नाग प्रजाति को बचाने के लिए अत्यंत साहसिक कार्य करता है और समाजिक उत्तरदायित्वों को निभाते हुए अपने राजधर्म का भी पालन करता है। वह अपने परिवार, पत्नी व मित्रों के साथ भी अच्छे संबंध रखता है। नागानंद का नायक जीमूतवाहन एक राजा के रूप में प्रतिष्ठित है जो विद्याधर जीमूतकेतु राजा का पुत्र है व राज्य का युवराज होने के बावजूद उसमें राजसी प्रवृत्ति की झलक कम और सात्विक प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। उसमें राजसी गुणों की तुलना में सात्विकता के अधिक झलक दिखाई देती है। सांख्य दर्शन के अनुसार

व्यक्तित्व को तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है- तामसी (तमस) व्यक्तित्व, राजसी(रजस), व्यक्तित्व और सात्विक (सत्व) व्यक्तित्व(ओड़, 2010)। तामसी(तमस) व्यक्तित्व-इस प्रकार के व्यक्तित्व के व्यक्ति अहंकारी, क्रोधी, वाचाल, निर्भीक, लड़ाकू, सर्वाधिक आत्म-केन्द्रित एवं राक्षसी प्रवृत्ति के होते हैं।



चित्र संख्या 1. संख्या दर्शन के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार

राजसी (रजस) व्यक्तित्व - ऐसे व्यक्ति राजशाही, भोग-विलास, आत्म-केन्द्रित तथा आराम-परस्त प्रवृत्ति के होते हैं। सात्विक (सत्व) व्यक्तित्व- उपरोक्त तामसी व राजसी दोनों प्रवृत्तियों से अलग सात्विक व्यक्तित्व के धनी लोगों में दैवीय, शुद्ध आचरण और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की प्रबलता होती है जो सर्वदा वैश्विक कल्याण के लिए काम करते हैं। वास्तव में किसी भी मनुष्य में सभी प्रकार के व्यक्तित्वों का सम्मिश्रण ही परिलक्षित होता है।

जीमूतवाहन एक पवित्र जीवन यापन करता है। उसका शुद्ध शाकाहारी भोजन करना, सर्वदा सत्य के साथ साहसपूर्वक खड़े रहना, कभी भी अशिष्ट या अपमानजनक भाषा का प्रयोग नहीं करना, दूसरों की प्रशंसा करना, आत्मविश्वासी तथा उदारवादी रहना इत्यादि विशिष्ट गुणों का समावेश उसके सात्विक व्यक्तित्व को दर्शाता है। वह कभी किसी को धोखा नहीं देता है न ही गुमराह करता है। वह लोगों को नेतृत्व करने का अवसर भी देता है, किसी कूटनीति प्रवृत्ति का मन में प्रवेश वर्जित रखता है। वह एक अगाध प्रकृति प्रेमी है जो मन को एकाग्रचित कर आध्यात्मिक ज्ञान में गहन रुचि रखता है और स्वयं को ईश्वर एवं माता-पिता की भक्ति में निरंतर मग्न रखता है। अतः कहा जा सकता है कि जीमूतवाहन मन, वाणी और कर्म से सात्विक है। अतः सात्विक प्रवृत्ति विकसित करने से व्यक्ति में बहुत से महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। व्यक्ति के अंदर आत्मज्ञान उत्पन्न होने से अपने लक्ष्यों व मूल्यों की स्पष्ट समझ, नैतिक मूल्यों के आधार पर उचित निर्णय की क्षमता, अपने विचारों तथा भावनाओं पर नियंत्रण और गलत कार्यों के प्रति दुराव तथा जीवन में आने वाली जटिल परिस्थितियों व चुनौतियों का धैर्यपूर्वक सामना करना इत्यादि के साथ विद्यार्थी समाज में कुशल समायोजन विकसित कर सकता है। इस प्रकार श्री हर्ष द्वारा रचित नाट्यशास्त्र 'नागानन्द' नाटकम् के पात्र जीमूतवाहन का अभिनय एक आदर्श जीवन, माता- पिता के प्रति दृढ़ भक्ति, अहिंसा, समाज के प्रति कर्तव्य,

सात्विक प्रवृत्ति, त्याग व करुणा की अभिलाषा, साहसी नेतृत्व, एवं समर्पण इत्यादि को धारित कर धर्म सहिष्णु जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। 'नागानन्द' में निहित मानवीय मूल्यों को शैक्षिक परिपेक्ष्य में निम्नवत् रेखांकित किया जा सकता है-

1. **माता-पिता के प्रति दृढ़ भक्ति** --नागानन्द नाटक में वृद्ध विद्याधर राजा जीमूतकेतु अपने युवा पुत्र जीमूतवाहन को राज्य का कार्य भार सौंप कर सपत्नीक ईश्वर आराधना हेतु वन को गमन करते हैं जिससे युवराज जीमूतवाहन का मन विचलित हो उठता है क्योंकि उसके अंदर माता-पिता के प्रति दृढ़ भक्ति होती तथा उसको माता-पिता की सेवा में आनंद आता था। उसको राजसी भोग-विलास की तनिक भी अभिलाषा न थी, वह अपने वृद्ध माता-पिता को वनवास का कठिन दुःख सहते नहीं देख सकता था। इसलिए वह अपने मित्र अत्रेय (विदुषक) को साथ लेकर माता-पिता की सेवा करने हेतु वन के लिए प्रस्थान करता है। इसी तत्व का उद्घाटन हर्षवर्धन नागानन्द में निम्नवत् करते हैं -

रागस्यापदमित्यैवमि न हि में धवंसाति न प्रत्ययः, कृत्याकृत्य विचारणसु विमुखं को वा न वेत्ति क्षितौ।

एवं निन्धमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं, भक्त्या याति यदीत्यमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य में।। 6।।

जीमूतवाहन अपने मित्र से कहता है कि यह यौवन, कामुकता का घर है जो क्षणभंगुर है। इस संसार में कर्तव्य और अकर्तव्यके विवेचनोंमें काम वासना प्रतिकूल रहती है। फिर भी इन्द्रियाधीन यौवन मुझे सही अर्थ में तभी आनंद देगीजब मेरा जीवनभक्तिपूर्वक माता-पिता की सेवा करते हुए व्यतीत हो सके। इस क्षणभंगुर संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है, आज जो साक्षात् दिखाई दे रहा है, वह कब अदृश्य हो जाए इसका भी कोई भरोसा नहीं है। मानव जीवन मात्र माता-पिता का प्रेम ही निःस्वार्थ है, अन्य सभी सम्बन्ध किसी न किसी स्वार्थ से जुड़े हैं। अतः हमें अपने माता-पिता से प्राप्त प्रेम का सदैव सम्मान करना चाहिए। इस सम्बन्ध में हर्ष 'नागानन्द' में कुछ तथ्यों को निम्नलिखित प्रकार से उजागर करते हैं -

तिष्ठन् भाति पितुः पुरो भुवि यथा सिंहासने किं तथा? यत् संवाहयतः सुखं तू चरणौ तातस्य किं राजके।

किं भुक्ते भुवनत्रये धृतिरसौ भुक्तोऽङ्गिते या गुरोः? आयासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रस्ति कश्चिद् गुणः?।। 17।।

जीमूतवाहन अपने मित्र से कहता है कि पिता के सामने धरा पर बैठा हुआ पुत्र जिस प्रकार सुशोभित होता है, वैसी शोभा कभी भी राज सिंहासन पर बैठने में नहीं मिल सकती और जो स्वाद और आनन्दमाता-पिता का जूठन खाने में है, वह आनन्द कभी भी त्रिभुवन के छप्पन भोग करने में भी नहीं आयेगा। इसी तरह माता-पिता के पैरों को दबाने में जो सुख की प्राप्ति होती है, वह संसार के सभी भोग-विलास के सुखों से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, जीमूतवाहन को माता-पिता को अकेला छोड़कर राज्य करने में स्वयं की भलाई समझ में नहीं आती है। इसी प्रकार का प्रसंग त्रेता युग के रामायण काल के समय युवराज श्रवण कुमार का आता है। उनमें अपने अंधे माता-पिता के प्रति अगाध भक्ति दिखाई देती है। वह अपने अंधे माता-पिता को चार धाम की यात्रा की इच्छापूर्ति हेतु उन्हें अपने कंधों पर कांवर में बैठा कर यात्रा पर निकल पड़े थे और जीमूतवाहन की तरह वृद्ध मां-बाप की सेवा की और अन्तोगत्वा वन में ही अपने प्राणों की आहुति दे दी थी (बाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड)। हमारी सनातनी संस्कृति में माता-पिता को ईश्वर का दूसरा रूप माना है। हमारे माता-पिता हमको जन्म देने से लेकर हमारा लालन-पालन करते हुए अपने अनुभवों से हमें समाज में जीने लायक बनाते हैं। वे उचित-अनुचित, गुण-दोष तथा अच्छाई-बुराई के साथ सही-गलत का अंतर सिखाते हैं। वे मानव जीवन के प्रथम शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं। यदि आज कलयुग में मनुष्य अपने

माता-पिता के प्रति पूर्ण श्रद्धा भाव और सेवा के साथ उनका आदर व सम्मान करे तो कहीं पर भी वृद्धाश्रम की आवश्यकता नहीं होगी। साथ ही अनौपचारिक शिक्षा का एक सशक्त माध्यम हमारे परिवार में ही उपलब्ध होगा जिससे आने वाली पीढ़ी नैतिक संस्कारों एवं मूल्यों को सीख सकेगी। अर्थात् जीमूतवाहन की मातृ-पितृ भक्ति से यह शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने माता-पिता के प्रति निष्ठा, श्रद्धा, आदर तथा कृतज्ञता रखते हुए उनके उपकारों को कभी नहीं भूलना चाहिए।

2. अहिंसा- जीमूतवाहन हिंसा में विश्वास नहीं रखता है। वह अहिंसा को परम धर्म के रूप में स्वीकार करता है क्योंकि जब वह मित्र अत्रैय से अपने माता-पिता की सेवा के लिए वन जाने की जिद कर रहा होता है तब इसका मित्र उसको वन न जाने के लिए व उसके शत्रु राजा मतंग द्वारा राज्य को हड़पने एवं राज्य की सुरक्षा हेतु युद्ध के लिए समझाता है। जीमूतवाहन युद्ध से होने वाली हिंसा व रक्तपात को सोचकर अत्यंत व्याकुल हो उठता है। वह स्पष्ट करता है कि वह अपने राज्य के लोगों का युद्ध में रक्तपात नहीं होने देगा न ही किसी प्रकार की जन-हानि होने देगा। वह कहता है कि यदि शत्रु मतंग मेरा राज्य लेना चाहता है तो मैं उसे अवश्य खुशी से दे दूंगा। 'नागानन्द' नाटकम् अध्याय तृतीय के श्लोक में निम्नवत् प्रस्तुत है -

अनिहत्य तं सपत्नं कथमिव जीमूतवाहनस्याहम्। कथयिष्यामि हतं तव राज्यं रिपुणेति निर्लज्जः।।14।।

उसके बाद वन में मित्रवसु द्वारा संदेश देना की राजा मतंग ने उसके राज्य पर आक्रमण कर हड़प लिया है। मित्रवसु शत्रु राजा मतंग को युद्ध में मारने एवं उससे अपना राज्य वापस लेने के लिए जीमूतवाहन से केवल मात्र आदेश देने के लिए कहता है और मतंग के लिए क्रूर व निष्ठुर शब्दों का प्रयोग करता है। तब भी जीमूतवाहन अपनी पत्नी के भाई मित्रवसु को समझाते हुए मना कर देता है कि इससे बहुत जन-धन की हानि व निर्दोष लोगों का रक्त बहेगा जिससे अत्यंत दुःख होगा। इस वाक्यांश को नागानन्द के तृतीय अध्याय के श्लोक में निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है -

स्वशरीरमपि पराश्रो यः खलु दयादयाचितः कृपया। राज्यस्य कृते स कथं प्राणिवधकौर्यमनुमन्ये।।17।।

जीमूतवाहन मन से भी किसी का अहित नहीं सोचता और न ही किसी को कठोर वाणी या कटु शब्द के द्वारा नुकसान ही पहुंचता है तथा साथ ही वह कर्म से किसी भी अवस्था में किसी प्राणी की हिंसा नहीं चाहता। उसका मानना है कि हिंसा से केवल दुःख प्राप्त हो सकता है। हिंसात्मक तरीके से पाई गई वस्तु कभी सुख नहीं दे सकती है। हिंसा से प्राणियों की आत्मा को कष्ट पहुंचता है जिससे परमात्मा भी दुखित होते हैं। ऐसी विचार धारा से जीमूतवाहन का व्यक्तित्व ओत-प्रोत है। अहिंसा के सिद्धांतों को बौद्ध धर्म में बहुत महत्व दिया गया है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ, जैन धर्म के मूल मंत्र में ही अहिंसा परमो धर्मः कहा गया है। सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध में हुई हिंसा से द्रवित होकर अहिंसा का मार्ग अपनाया और आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने सत्य अहिंसा के सिद्धांत को अपना कर ही भारत की आजादी के लिए आंदोलन चलाया था जिसका परिणाम आज सभी के समक्ष है। शैक्षिक परिदृश्य में अहिंसा हमें दूसरों के प्रति करुणा व सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करना सिखाती है और हमें शांति एवं सौहार्दपूर्ण जीवन जीने की कला भी सिखाती है। साथ में दूसरों का सम्मान करना, उसके अधिकारों को महत्व देना, दूसरों के जीवन की कीमत समझना एवं जीवन को बचाने एवं जीवों को संरक्षित करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार प्राणियों में सद्भावना व्याप्त होती है। उक्त शिक्षाओं को अपना कर विद्यार्थी अपने जीवन को अधिक अर्थपूर्ण व संतुष्ट बना सकते हैं और एक अहिंसात्मक समाज का निर्माण कर सकते हैं।

3. **त्याग एवं करुणा** - इस नाटक में जीमूतवाहन का चरित्र त्याग व करुणा की मूरत प्रतीत होता है। वह बाहर से जितना सामान्य सा दिखता है, उतना ही उदारतापूर्ण व मर्मस्पर्शी है। वह सर्वदा ही अपने क्षणिक स्वार्थ को करुणा व परमार्थ की वेदि पर त्याग कर देता है। जैसे ही उसे पता चलता है कि नागवंश घोर विपत्ति से घिरा है तो वह कमजोर नागवंशों के प्रति समानुभूतिपूर्वक उनको इससे बाहर निकालने के लिए भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ के समक्ष स्वयं को समर्पित कर देता है। इसके लिए वह क्षण मात्र भी नहीं सोचता कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी नवविवाहिता पत्नी व वयो वृद्ध माता-पिता का क्या होगा? और इस कष्ट से उन पर क्या बीतेगी? उसको उस समय केवल शंखचूड़ नामक सर्प और उसकी मां का दारुण दुःख ही दिखाई देता है। वह नागवंश एवं मनुष्य प्रजाति में किसी प्रकार का भेद नहीं समझता है। वह केवल सभी जीवों को ईश्वर की रचना समझता है इसलिए वह दूसरे के दुःखों को अपना दुःख समझकर करुणा प्रदर्शित करता है। यही जीमूतवाहन के त्याग और करुणा की पराकाष्ठा है। यहां श्री गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा लिखित रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड की चौपाईका प्रसंग उद्धृतकरती है कि- परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ।। अर्थात् दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुंचाने के बड़ा कोई अधर्म नहीं है (पोद्दार,)।

4. **समाज के प्रति कर्तव्य**- जीमूतवाहन अपने अधिकारों की तुलना में अपने कर्तव्यों को अधिक महत्व देता है। वह संवेदना, समर्पण, सहयोग व सेवा भाव के माध्यम से समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाता है। वह वन गमन करने से पूर्व अपनी राज्य की प्रजा के प्रति अपने सभी कर्तव्यों का समुचित निर्वहन करता है। नागानंद नाटक के प्रथम अध्याय के इस श्लोक के माध्यम से उसका सामाजिक कर्तव्य उद्घाटित किया जा सकता है- **न्याय्ये वत्सर्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता, जीतो बन्धुजनस्तथात्मसमतां राज्ये च रक्षा कृता । दत्तो दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽप्यर्थिने, किं कर्तव्यमतः परं कथं वा यत्ते स्थितं चेतसि । 18 ।।**

अर्थात् इन्होंने प्रजा को अपने नैतिक उत्तरदायित्वों का पालन करने व उनको न्याय मार्ग में लगा दिया, सभी को आर्थिक दुखों से छुटकारा दिलाया एवं सुखपूर्वक जीवन जीने की कला का मार्ग प्रशस्त किया। सभी बंधु-बांधवों को अपने ही समक्ष कर दिया, राज्य की रक्षा के लिए प्रधानमंत्री को नियुक्त कर संभालने को दिया, यहां तक की इच्छा से अधिक फल देने वाले कल्पवृक्ष को भी अपने याचकों को दे डाला। ऐसे सभी कर्तव्य जीमूतवाहन अपने समाज व राज्य के लिए निभाता है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने परिवार का ध्यान रखते हुए समाज, नगर व राष्ट्र हित में सामाजिक कार्यों में सहभागी रहे और पर्यावरण संरक्षण, संस्कृति संरक्षण, राष्ट्रीय एकता, मानव सेवा के प्रति कर्तव्यों को अपना कर समाज व राष्ट्र को उन्नत बनाने में मदद कर सकता है।

5. **साहसी नेतृत्व**- जीमूतवाहन यह जानकर कि गरुड़ के समक्ष जाते ही उसकी मृत्यु सुनिश्चित है, फिर भी वह नागवंशों को गरुड़ से हमेशा-हमेशा के लिए मुक्ति दिलाने के लिए साहसपूर्वक प्रयत्न करके काल(गरुड़) का भी हृदय परिवर्तन कर देता है। गरुण को स्वयं के कृत्यों पर आत्मग्लानि व पश्चाताप का एहसास करवाता है और अमृत वर्षा करवा कर पहले से मृत अन्य सर्पों को भी जीवन दान दिलाता है। 'नागानन्द' नाटक में अध्याय पंचम के श्लोक में वर्णित है कि - **पक्षैः पीत्वाऽम्बुनाथं पटुजवपवनः प्रेर्यमाणःसमीरै- नैत्राचिः प्लोषमूर्च्छाविधुरविनिपतत्सानलद्वादशार्कः । चञ्च्वा सञ्चूर्ण्य शक्राशनिधनदगदाप्रेतलोकेऽदण्डा-नन्तः सम्मग्नदक्षः क्षणममृतमयीं वृष्टिमभ्युत्सृजामि । 132 ।।**

गरुड़ कहता है, मैं अपनी मजबूत पंखों से प्रचंड पवन पैदा कर अपनी मजबूत डैनों से समुद्र को ऊपर उछल दूंगा, अपनी जलती आंखों की अग्नि में बारह सूर्यों को जलाकर नीचे गिरा दूंगा। अपनी चोंच की चोट से इंद्र के वज्र को, कुबेर की गदा को तथा यम के दण्ड को चूर-चूर कर युद्ध में देवताओं को पराजित कर क्षण भर में अमृत की वर्षा कर देता हूं। जीमूतवाहन के अंदर निर्भीकता व जीवन में सहासिक जोखिम उठाने की क्षमता है साथ ही किसी भी समूह का नेतृत्व भी कर सकता है। वह हर बदलती हुई परिस्थितियों में अपने को अनुकूल करने की क्षमता रखता है। उसके अंदर निर्णय लेने व विश्वास हासिल करने की योग्यता है। वह अपने व अपने परिजनों एवं अन्य किसी भी समुदाय पर आई समस्याओं का समाधान करने का सामर्थ्य रखता है।

उपसंहार –

आज बदलते परिवेश के साथ हमारी शैक्षणिक प्रक्रिया में भी बदलाव की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षा के उद्देश्यों में मुख्यतः व्यक्ति के व्यक्तित्व में नैतिक व चारित्रिक विकास के साथ उसमें संस्कार निहित शिक्षा आज के समय की मांग है। आज युवा पीढ़ी पाश्चात्य अंग्रेजी संस्कृति के पाठ्यचर्या को अपना कर भारतीय संस्कृति व संस्कारों को कम महत्व देती है। पाश्चात्य संस्कृति हमारे भारतीय संस्कृति, सभ्यता, आदर्श जीवन एवं नैतिक शिक्षा आदि संस्कारवान मूल्यों से अलग है। विशेषतया अंग्रेजी मिशनरी स्कूलों में पाश्चात्य संस्कृति की झलक दिखती है जो हमारी भारतीय संस्कृति के लिए चुनौती है। शैक्षिक दृष्टिकोण से जीमूतवाहन के अंदर वह सभी आदर्श जीवन की विशेषताएं हैं जो समाज में आदर्श नागरिक के लिए होनी चाहिए। विद्यार्थी नागानंद के नायक जीमूतवाहन से प्रेरित होकर अपने अंदर आदर्श जीवन जीने की कला को सीखने व अपने आप को बदलने का प्रयत्न कर समाज में आदर्श स्थापित कर सकते हैं। अतः नागानंद जैसे नाट्यशास्त्र के आदर्श एवं शैक्षिक मूल्यों को पाठ्यचर्या में सम्मिलित कर विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में प्रभावशाली परिवर्तन लाया जा सकता है जो एक दूसरे के प्रति सामंजस्य व समायोजन जैसे उच्च क्षमताओं को जन्म देते हैं। उक्त सभी नैतिक एवं शैक्षिक मूल्य अनौपचारिक शिक्षा के रूप में मानव के व्यक्तित्व विकास में सहायक हो सकते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि विद्यालय पाठ्यचर्या में नागानंद के शैक्षिक मूल्यों को सम्मिलित कर विद्यार्थियों के चरित्र व व्यवहार में समरसता लायी जा सकती है साथ ही विद्यार्थियों में अत्मानुशासन, आत्म-संयम, प्रेम, मित्रता, करुणा, बंधुता, विनोदशीलता, साहस तथा सामाजिक न्याय इत्यादि मूल्यों को विकसित कर एक सामान्य चेतना व प्रेरणा के साथ समावेशी समाज का निर्माण किया जा सकता है। शिक्षक इस नाट्यशास्त्र के माध्यम से विद्यार्थियों में ईमानदारी, आत्मनिर्भरता, सृजनशीलता, सत्यता, निर्भीकता एवं करुणा जैसे मानवीय नैतिक व चारित्रिक मूल्यों का विकास कर सकते हैं। अतः यह प्रासंगिक है कि जो शिक्षा हमें दूसरों के प्रति अच्छा आचरण करने में सहायक हो, वही नैतिक शिक्षा है और जो मूल्य व्यक्ति के स्वार्थ से उठकर परमार्थ के लिए अग्रसर करे और दूसरों के प्रति समर्पित हो, वही आदर्श मूल्य है जिसके माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षित कर हम एक सभ्य, नैतिक व मूल्यवान समाज का निर्माण एवं समावेशी समाज का विकास कर सकते हैं।

सन्दर्भ –

- उपाध्याय, वासुदेव (2006); *हर्षवर्धन , नवीनतम संस्करण, हिंदुस्तानी अकादमी, प्रयागराज को दिनांक 16 जनवरी 2025* <https://ia904501.us.archive-org/11/items/in.ernet.dli.2015.489908/2015.489908.Hashhavaradhan.pdf> से प्राप्त किया गया है।
- ओड़, लक्ष्मीकान्त (2010). *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।*

- जैन, शुद्धात्म प्रकाश (2016). मूल शिक्षा, प्रथम संस्करण, राखी प्रकाशन प्र. लि., आगरा ।
- पचौली, सत्यप्रकाश (1998). शिक्षा के आयाम, प्रथम संस्करण, आदित्य पब्लिशर्स, बीना, (म. प्र.) ।
- पोद्दार, हनुमान प्रसाद (2015); गोस्वामी तुलसीदास कृति- “रामचरितमानस”, गीता प्रेस, गोरखपुर ।
- मिश्र, जगदीशचंद्र (2017); श्री हर्षदेव प्रणीतं ‘नागानन्द’- नाटकम् , ‘विमला’ - संस्कृत- हिन्दी व्याख्योपेतम्, वाराणसी, सुरभारती प्रकाशन ।
- व्यास, हरिश्चंद्र एवं कैलाश चंद्र (2010); नैतिक शिक्षा, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली ।
- साहित्याचार्य: श्री जगन्नाथ पाठक य महाकवि बाणभट्ट विरचित- “हर्षचरितम्” वाराणसी, चौखंबा विद्याभवन प्रकाशन कोदिनांक 16 जनवरी 2025[https://archive-org/details/harshacharitam& in&hindi/ page/n31/mode/2up](https://archive-org/details/harshacharitam&in&hindi/page/n31/mode/2up) से प्राप्त किया गया ।
- हरजीत सिंह (1952). श्री हर्ष रचित नागानन्दमय लाहौर बुक शॉप, लुधियाना को दिनांक 16 जनवरी 2025 <https://ia801405.us.archive.org/19/items/in.ernet.dli.2015.403290/2015.403290.Naganandam.pdf> से प्राप्त किया गया प्राप्त किया गया ।

19

हर्ष के रूपकों का सांस्कृतिक संदर्भ

रामकरण लुहार एवं दयाशंकर तिवारी

हर्षवर्धन एक निर्भीक शासक के साथ-साथ कुटनीतिज्ञ, विद्वान् और श्रेष्ठ कवि और अन्य विद्वानों के आश्रयदाता थे। इन्होंने भारतवर्ष की सांस्कृतिक विरासत का भी संरक्षण और संवर्धन किया था। हर्षवर्धन पर बौद्धधर्म का व्यापक प्रभाव होने के कारण इन्होंने लड़ाईयों में सदैव नैतिकता का ही पालन किया। इनका साम्राज्य कश्मीर को छोड़कर पूरे उत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण में नर्मदा तक विस्तृत था। इनके शासनकाल में ही चीनी यात्री ह्वेनसांग 629 ई. में नालन्दा स्थित बौद्ध महाविहार में अध्ययन करने तथा यहाँ से महत्त्वपूर्ण बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों को ले जाने के लिए भारत की यात्रा पर आया था। इनके सम्मान में हर्षवर्धन ने अपनी राजधानी कन्नौज में एक बड़ी सभा का आयोजन किया। उसने हर्षवर्धन के दरबार में कई वर्ष बिताए और इस दौरान उसने भारतवर्ष में व्यापक भ्रमण भी किया। ह्वेनसांग के प्रभाव में हर्षवर्धन भी बौद्ध धर्म का महान् समर्थक बन गया। ह्वेनसांग ने हर्ष की शासन व्यवस्था और तत्कालीन जनजीवन का सजीव विवरण लिखा जो फाहियान के विवरण से कहीं अधिक विश्वसनीय है। इससे तत्कालीन समाज में लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन पर और उस समय के धार्मिक सम्प्रदायों पर काफी प्रकाश पड़ता है। ह्वेनसांग के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उस समय के दोआब में स्थित प्रयाग और कन्नौज नगर महत्त्वपूर्ण थे। इनकी रचनाएँ तत्कालीन समाज में सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बहुत ही लोकप्रिय रही हैं। इनके अध्ययन से हमें हर्षकालीन भारतवर्ष की सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थितियों के बारे जानकारी मिलती है।

प्रियदर्शिका नाटिका - सम्राट् हर्षवर्धन स्वयं राजकार्यों में व्यस्त रहते हुए भी अपनी महत्त्वपूर्ण नाट्य रचनाओं में तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति, संगीत एवं कला की विस्तृत चर्चा की है। कवि ने इसमें वैदर्भी शैली का प्रयोग करके सहज और सर्वजन ग्राह्य बनाया है, तथा अपना प्रभाव समाज के लोगों पर छोड़ा है। जैसे ग्रीष्मकाल ऋतु का वर्णन करते हैं -

आभात्यर्काशुतापक्वथदिवशफरोदतर्नैर्दीर्घिकाम्भः, छत्राभं नृत्तलीलाशिथिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः, सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य।¹

इससे यह ज्ञात होता है की हर्ष को राजनीति के साथ-साथ संगीत एवं नाट्यकला का भी विशद् ज्ञान था। इनकी प्रथम रचना प्रियदर्शिका नाटिका मानी गई है। इसमें चार अंक हैं। इसके प्रथम अंक में वत्सनरेश उदयन तथा प्रियदर्शिका की प्रणयकथा वर्णित है। राजा उदयन अपनी ज्येष्ठा रानी वासवदत्ता के डर से

प्रियदर्शिका के प्रति अपने प्रणय सम्बन्ध को गुप्त ही रखता है लेकिन अन्ततः वासवदत्ता को इसके बारे में बता चल जाता है। वस्तुतः युद्ध में कलिंगराज से अपने पिता दृढ़वर्मा के परास्त होने पर संयोगवश राजकुमारी प्रियदर्शिका उदयन के दरबार में आती है, जहाँ वह ज्येष्ठा रानी वासवदत्ता की दासी के रूप में रहने लगती है। यह अरण्य में प्राप्त होने के कारण इसे 'आरण्यिका' भी कहा गया है। द्वितीय अंक में प्रियदर्शिका की भेंट इस नाटिका के नायक उदयन से होती है। प्रथम भेंट में ही दोनों में उत्कट प्रेम जाग्रत हो जाता है। इसके तृतीय अंक में ज्येष्ठा रानी वासवदत्ता की सखी सांकृत्यायनी उसके मनोरंजन के लिए उदयन और वासवदत्ता के प्रेमाख्यान से सम्बन्धित एक नाटक का मंचन का आयोजन करवाती है। इसमें आरण्यिका (प्रियदर्शिका) को वासवदत्ता का और मनोरमा को वत्सनरेश उदयन का अभिनय प्रदर्शित करना था किन्तु उदयन स्वयं अभिनय करता है। जिससे वासवदत्ता क्षुब्ध होकर प्रियदर्शिका को कारागार में डाल देती है। इससे प्रियदर्शिका के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है और वह विषपान कर लेती है। चतुर्थ अंक में आरण्यिका द्वारा विषपान करने पर उसके विष का प्रभाव कम करने वाले उदयन के समक्ष उसे लाया जाता है; उसी समय प्रियदर्शिका के पिता दृढ़वर्मा का कंचुकी वहाँ आ जाता है और मूर्छित राजकुमारी को पहचान लेता है। इससे ज्येष्ठा रानी वासवदत्ता को बहुत पश्चात्ताप होता है और इसके बाद राजा उदयन का आरण्यिका (प्रियदर्शिका) से विवाह सम्पन्न होता है। कवि हर्ष की यह प्रथम रचना होने से इसकी भाषा शैली भी सरल और स्पष्ट है। इसी कथानक को कवि ने अपनी दूसरी कृति 'रत्नावली' में बहुत प्रौढ रूप में प्रस्तुत किया है।

रत्नावली - इसमें राजा उदयन तथा सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली के प्रेम और विवाह की कथावस्तु वर्णित की गई है। इसमें भी राजा उदयन जो धीरललित नायक है तथा अपनी महारानी वासवदत्ता के भय से रत्नावली के प्रति अपने प्रेमसम्बन्ध को छिपाये रखता है। लेकिन प्रियदर्शिका नाटिका के समान इसमें भी रानी वासवदत्ता अन्त में जान लेती है। रत्नावली में भयभीत कामिनी के संयोग शृङ्गार का वर्णन करते हुए कवि हर्ष नवीन रूप की सृष्टि करते हैं। यथा -

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता, घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताऽप्यहो, रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी।।^१

अर्थात् संकेत स्थान में स्थित कामिनी सशंकित होकर, प्रेम के कारण, अपनी विकसित दृष्टि प्रेमी के मुख पर नहीं डालती (अर्थात् उससे आँखें नहीं मिलाती) है। कण्ठ के आलिङ्गन में आनन्द से स्तनों को कसकर नहीं सटाती है। प्रयत्नपूर्वक गोद में पकड़ लिये जाने पर भी बार-बार कहती है कि मैं जा रही हूँ; तथापि आश्चर्य है कि वह अत्यधिक आनन्द ही देती है। इस प्रकार रत्नावली वस्तुतः शृङ्गार रस प्रधान नाटिका है। इसमें सर्वत्र वैदर्भी रीति और माधुर्य गुण का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। हर्ष ने रत्नावली नाटिका में पाँच अर्थप्रकृतियों के साथ-साथ पाँच कार्य अवस्थाओं भी कुशलतापूर्वक समायोजन इस नाटिका में किया है। इसमें वस्तुतः राजा उदयन का मंत्री यौगन्धरायण एकबार किसी सिद्ध पुरुष के मुख से यह सुनकर के सिंहल देश की राजकुमारी का जो पति होगा वह अवश्य ही चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। एक बार राजा उदयन के राजप्रासाद में रत्नावली समुद्र-दुर्घटना से बचकर पहुँचती है। इसलिए उसे 'सागरिका' कहा गया है। राजा उदयन को रत्नावली के रूप-सौन्दर्य से दूर रखने का प्रयास ज्येष्ठा रानी वासवदत्ता करती है। लेकिन प्रथम अंक में वर्णित भव्य वसन्तोत्सव में इनकी भेंट हो जाती है और वहीं से प्रणयलीला का आरम्भ होता है। इसके प्रथम अंक में वसन्तोत्सव का रम्य वर्णन किया गया है। यहाँ वस्तुतः वसन्त ऋतु में वृक्ष भी मतवाले हो गये हैं। यथा -

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं विभ्रतो, भृंगालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः ।

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहुः, भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसंगमधुना मत्ता इवामी द्रमाः ।।³

यहाँ प्रमदवन की रम्या प्रकृति के वर्णन में वन-वर्णन जैसा शुद्ध प्रकृति-चित्रण नहीं है अपितु उसे मानव-सौन्दर्य या विशेषता के स्पष्टीकरण के लिए ही प्रयुक्त किया गया है। इसमें राजा उदयन को एक मैना द्वारा सागरिका (रत्नावली) के प्रेमाग्रह की सूचना प्राप्त होती है। इसके पश्चात् उदयन और रत्नावली मिलते हैं। यह जानकर महारानी वासवदत्ता क्रोधित हो जाती है। राजा उदयन द्वारा उसे मनाने और अनुनय करने के समस्त प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। यह देखकर सागरिका लज्जावश फाँसी लगा लेती है किन्तु उदयन उसे किसी प्रकार से बचा लेता है तो रानी वासवदत्ता क्रोधवश रत्नावली (सागरिका) को कारागार में डाल देती है और उसे उज्जयिनी भेज देने का मिथ्या वृत्तान्त लोक में प्रसारित कर दिया जाता है। इस नाटिका के अन्तिम अंक में ऐन्द्रजालिक अपना खेल दिखाते हुए महल में 'अग्रिकाण्ड' का एक दृश्य प्रस्तुत करता है। इसे देखकर वासवदत्ता राजा उदयन से प्रार्थना करती है इस अग्निकांड से रत्नावली को किसी प्रकार से बचा लें। राजा उसे अपने प्राणों पर खेलकर बचाकर ले आते हैं। सिंहल के प्रधानमन्त्री (वसुभूति) तथा बाभ्रव्य (कंचुकी) उस सागरिका को रत्नावली के रूप में पहचान लेते हैं। वासवदत्ता अपनी भूल को मानकर राजा उदयन से उसका विवाह सम्पन्न करा देती है। इस प्रकार रत्नावली नाटिका की रचना वस्तुतः प्रियदर्शिका में वर्णित कथावस्तु को नाटकीय पारिभाषिकताओं से समृद्ध बनाकर ही हुई है। इसीलिए परवर्ती नाट्यकारों ने इसके उद्धरण अपनी रचनाओं में बहुतायत में उद्धृत किये हैं। जैसे- दशरूपक और साहित्यदर्पण में नाट्य विषयों के उदाहरण प्रायः रत्नावली नाटिका या वेणीसंहार नाटक के ही प्राप्त होते हैं।

नागानन्द - यह नाटक वस्तुतः बौद्धधर्म की एक कथा पर आश्रित है जो 'बृहत्कथा' में संकलित है। इस कथा का एक स्वरूप 'वेताल पच्चीसी' में प्राप्त होता है। कवि हर्ष ने मूलकथा में उचित परिवर्तन करके इसे पौराणिक स्वरूप प्रदान किया है। इसका नायक बौद्ध होने पर भी पौराणिक देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति रखता है। इस प्रकार हर्ष ने बौद्ध और पौराणिक धर्मों के समन्वय के लिए ही इसे रचा था। इसमें विद्याधर का राजकुमार जीमूतवाहन; मित्रवसु की बहन मलयवती पर अनुरक्त होता है। जीमूतवाहन और मलयवती प्रेम में अधीर हैं। बाद में मित्रवसु की स्वीकृति से इन दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। अगले अंक में इन दोनों के आमोद-प्रमोद के बारे में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। इसमें तात्कालिक समाज की झलक मृच्छकटिक के अनुकरण पर मिलती है। इसके चतुर्थ अंक से कथानक बोधिसत्त्व की कथा के रूप में परिणत होता है। जीमूतवाहन सागर-तट पर गरुड़ द्वारा खाये गये सर्पों की अस्थियाँ देखकर द्रवित होता है। इसी बीच वह शंखचूड़ की माता का विलाप भी सुनता है। क्योंकि इसी समय शंखचूड़ के मारे जाने की बारी आयी हुई है। जीमूतवाहन उसके स्थान पर स्वयं लालवस्त्र पहनकर वध शिला पर बैठ जाता है, गरुड़ उसे उठाकर ले जाते हैं। इसके अन्तिम अंक में गरुड़ नायक जीमूतवाहन के शौर्य के साथ-साथ धैर्य और उदारता से प्रसन्न होकर उसे छोड़ देते हैं। इस पर गरुड़ पश्चात्ताप करते हैं तथा अमृत वर्षा करके सभी नागों को पुनः जीवित कर देते हैं। नागानन्द के चतुर्थ अङ्क में वन की विशिष्टताओं का आकर्षण बतलाते हैं -

शय्या शादलमासनं शुचिशिला सद्य द्रुमाणामधः, शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः ।

इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने, दुष्प्रापार्थिनी यत्प्राप्यघटनावन्ध्येर्वृथा स्थीयते ।।⁴

इस रमणीय वन में सब कुछ प्रकृति प्रदत्त है केवल याचकों के अभाव में नायक जीमूतवाहन का मन नहीं लगता। इस प्रकार कवि हर्ष ने इस नाटक को श्रृंगार से आरम्भ करके करुण रस आदि से नायक के उत्साह

और आत्मत्याग पर्यन्त कथानक को बहुत ही शास्त्रीय ढंग से प्रस्तुत किया है। इसका कथानक की भाषा सरल, स्वाभाविक भाव-सौन्दर्य तथा आदर्श नैतिक गुणों के कारण ही बौद्ध जगत् में विशेष रूप से लोकप्रियता को प्राप्त हुआ था। इस नाटक के प्रथम तीन अंकों में शृंगार रस और अन्तिम दो अंकों में करुण रस की प्रमुखता है। किन्तु इन दोनों से दया और वीररस को मुख्य माना गया है। इस प्रकार इन नाटकों में कवि हर्ष की वर्णन क्षमता और शैली ही कथानक संयोजन, चरित्र-चित्रण एवं रसोद्भावन की दृष्टि से उत्कृष्ट नाट्यकला का परिचय प्रस्तुत करती है। इनमें तत्कालीन समाज में सांस्कृतिक दृष्टिकोण से नागरिकों के विभिन्न हर्षोत्सव, देवाताओं का विधिवत् पूजन, प्रकृति की रमणीयता, नारी का अनुपम सौन्दर्य, अन्तःपुर के विविध विलासमय प्रसंग, प्रणय भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा नृत्य-संगीत इत्यादि का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। दृश्यकाव्य में वस्तुतः आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथावस्तु होती है। इसमें आधिकारिक कथा ही मुख्य कथा है। इसमें नायक को अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति अवश्य होती है। हर्षवर्धन रचित प्रियदर्शिका नाटिका में भी वत्सराज उदयन एवं प्रियदर्शिका का वृत्तान्त आधिकारिक कथा है, जिसमें उदयन को प्रियदर्शिका के रूप में फल की प्राप्ति होती है। प्रासंगिक कथा दो प्रकार की होती है - पताका और प्रकरी। इसमें पताका कथा ही मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है। प्रियदर्शिका नाटिका में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका कथा ही है। जो नाटिका के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। यह कथा नायक को नायिका की प्राप्ति में सहायक होती है, क्योंकि बिना वासवदत्ता की कृपा के उदयन को प्रियदर्शिका प्राप्त नहीं हो सकती थी। इस प्रकार तत्कालीन रूपक या उपरूपक की कथावस्तु के अध्ययन में सुख और दुःख का सम्मिश्रण ही उस काल की सांस्कृतिक परिस्थिति का समग्र चित्रण प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः सुख की अनुभूति के लिए ही नाटक में पहले दुःख का निष्पादन किया जाता है। इसके पीछे भारतीय ज्ञान परम्परा का समग्र चिन्तन विद्यमान है। क्योंकि आशावादी दृष्टिकोण के अनुसार मानव जीवन में दुःख और क्लेशों की परिणति सदैव सुख, शान्ति और परमानन्द के सायुज्य में ही होती है।

निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि जिस समय उत्तर भारत में शासन की बागडोर अल्पायु में सम्राट् बनकर हर्ष ने संभाली उस समय भारतवर्ष अनेक विपत्तियों से घिरा हुआ था। लेकिन सम्राट् हर्ष ने धैर्य, साहस और कुटनीतिज्ञ प्रशासक का परिचय देते हुए न केवल अपने पैतृक राज्य की रक्षा की अपितु उसे विस्तृत साम्राज्य के रूप में भी प्रतिष्ठित किया। जनसामान्य के हित एवं कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहने के कारण हर्षवर्धन उन लोगों के लिए महानता का प्रतीक बन गये थे। इस प्रकार भारतवर्ष की तत्कालीन समाज के विभिन्न पहलुओं की तथ्यात्मक जानकारी इनके द्वारा रचित नाट्य रचनाओं के अध्ययन से ही हमें प्राप्त होती है।

सन्दर्भ -

1. प्रियदर्शिका, 1/12
2. रत्नावली, 3/9
3. रत्नावली, 1/17
4. नागानन्द, 4/2

रत्नावली नाटिका का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन

भरत यादव

प्राचीन भारतीय इतिहास में छठीं शताब्दी के मध्य से लेकर सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक उत्तरी भारत के एक बड़े भू-भाग पर गुप्त साम्राज्य के पश्चात् थानेश्वर में एक नवीन राजवंश का उदय हुआ, जिसे हम वर्द्धन वंश के नाम से पुकारते हैं।¹ इस वंश का संस्थापक पुष्यभूति था। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक हर्षवर्धन था, जो कन्नौज के सिंहासन पर 606 ई. में बैठा। उसके सिंहासना रोहण के पूर्व, उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। जिन में राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने की लिए होड़ लगी हुई थी। हर्ष ने इन पर एकाधिपत्य स्थापित कर, बहुत दिनों के पश्चात् एक बार फिर देश में चारों ओर शांति स्थापित किया। भारतीय राष्ट्र जो पहले बहुसंख्यक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, एकता के सूत्र में आबद्ध हो गया। इतिहास के पृष्ठों में उसकी महती दानशीलता स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है। वह ऐसा सहिष्णु सम्राट था, जिसकी समदृष्टि में सभी धर्मावलम्बी वैष्णव, शैव, जैनी तथा बौद्ध भी आदर के पात्र थे। उसके द्वारा आयोजित प्रयाग-संगम पर सांस्कृतिक सम्मेलन का प्रयास प्रशंसनीय था।²

नाटककार सम्राट् हर्षवर्धन

हर्षवर्धन अत्यन्त पराक्रमी सम्राट होने के साथ ही साथ स्वयं विद्वान्, कवि एवं अन्य कवियों का आश्रयदाता भी था। संस्कृत के अन्य नाटककारों-भास, कालिदास, शूद्रक आदि की अपेक्षा हर्षवर्धन का जीवन वृत्त इतिहास के पृष्ठों में अत्यधिक स्पष्ट है।³ हर्ष द्वारा रचित प्रियदर्शिका, रत्नावली एवं नागानन्द नामक तीन नाट्य ग्रंथ उसे तत्कालीन समय में एक श्रेष्ठनाटककार के रूप में स्थापित करते हैं। हर्ष की नाट्यकृति रत्नावली चार अङ्कों की एक बहुत ही सफल नाटिका है। इसकी रचना हर्ष द्वारा ऐतिहासिक पात्रों को लेकर अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर की गई है। वत्सराज उदयन से सम्बन्धित कथाएँ प्राचीन भारत में अत्यधिक लोकप्रिय थीं। अतः यह अधिक सम्भव है कि हर्ष ने रत्नावली और प्रियदर्शिका की कथावस्तु अपने समय में प्रचलित लोककथा से ग्रहण की हो।⁴ जो समकालीन इतिवृत्ता के लिए दर्पण का कार्य करती है। रत्नावली की नाट्य कलात्मकता प्रियदर्शिका नाटिका से अधिक परिष्कृत है। नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन इस में सर्वांगीणरूप से हुआ है। दशरूपक तथा साहित्य दर्पण में भी इसके अधिक उद्धरण दिये गए हैं।⁵ ये नाट्य ग्रन्थ साहित्य के भावपक्ष, कलापक्ष, रस, अलंकार के रसास्वादन के साथ-साथ तत्कालीन संस्कृति के ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, एवं सांस्कृतिक साक्ष्यों के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में 'रत्नावली' नाटिका में वर्णित उदयन तथा उसके समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं का साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर तत्कालीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्वरूपों का अनुशीलन करना है।

रत्नावली नाटिका का मूल स्रोत एवं नवीनताएँ

हर्ष की 'रत्नावली' नाटिका स्वयं में मौलिक है, यद्यपि उसने उसकी रचना करने के लिए कथाग्रंथों तथा अन्य पूर्ववर्ती नाटकों से वस्तु-सामग्री को यथेष्ट ग्रहण कर अपनी रचना को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है, यह उसके नाट्यग्रंथों से स्पष्ट ज्ञात होता है। बौद्ध साहित्य से लेकर ईसा की 13वीं शताब्दी तक भारतीय साहित्य के एकाधिक क्षेत्रों में उदयन की कथा का प्रचार-प्रसार देखने को मिलता है।

कथा सरित्सागर से प्राप्त उदयन के आख्यान से स्पष्ट होता है कि हर्ष ने रत्नावली के प्रमुख पात्रों तथा स्थानों के नाम मूलस्रोत से लिए हैं। वत्सराज उदयन, वासवदत्ता, यौगन्धरायण, रुमण्वान्, वसन्तक तथा काञ्चनमाला नामक सभी पात्र कथासरित्सागर तथा रत्नावली दोनों में पाये गये हैं। रत्नावली नाटिका में रुमण्वान् को मंत्री के स्थान पर सेनापति के रूप में रखा गया है। कौशाम्बी और लावणक दोनों स्थानों के नाम भी आख्यान से लिए गये हैं। रत्नावली की कथावस्तु का सम्बन्ध वासवदत्ता के साथ उदयन के विवाहोपरान्त चरित से है। उदयन के पूर्वचरित्र के विषय में केवल कुछ संकेत मात्र किया गया है। इसके अतिरिक्त मूल कथानक में घटित घटनाओं को भी हर्ष ने ग्रहण कर अपनी नाट्यकला-निपुणता से रत्नावली में उनका नियोजन किया है।⁶ कुछ परिवर्तन तो हर्ष की सर्वथा नूतन कल्पनाएँ हैं, और कुछ में मूल आख्यानों की घटनाओं का भिन्न पात्रों तथा परिस्थितियों से सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। मूल आख्यान में पद्मावती के साथ उदयन के विवाह का कारण मगध नरेश को मित्र बनाने की चिन्ता है, तथा विवाह का प्रस्ताव रानी वासवदत्ता एवं मंत्रियों के परामर्श से किया गया है। किन्तु रत्नावली में रत्नावली के साथ विवाह का प्रस्ताव सिद्ध के कथनानुसार किया गया है कि जो रत्नावली से विवाह करेगा वह चक्रवर्ती राजा होगा। आख्यान में पद्मावती के साथ विवाह करने के लिए राजा उदयन मगध जाता है, जबकि रत्नावली की नायिका सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या है। आख्यान में वासवदत्ता और पद्मावती को क्रमशः चण्ड महासेन और प्रद्योत की पुत्री कहा गया है किन्तु वासवदत्ता को रत्नावली नाटिका में प्रद्योत की पुत्री कहा गया है। मूलकथा के अनुसार छद्मवेश में मगध जाकर पद्मावती के अन्तःपुर में रहती है। रत्नावली में हर्ष ने सागरिका को छद्मवेश में वासवदत्ता के समीप रखा है।⁷ ऐन्द्रजालिक के जादू (माया) से कौशाम्बी में अन्तःपुर में प्रज्वलित अग्नि की घटना भी नूतन कल्पना है। उपर्युक्त मूल आख्यान की कथावस्तु को ग्रहण करते समय उसमें परिवर्तन कर और कुछ नवीन कल्पनाओं के साथ उसे सम्बद्ध करने से नाटिका की प्रभावोत्पादकता बढ़ी है और हर्ष का यह कहना कि रत्नावली नाटिका 'अपूर्ववस्तुरचनालङ्कृता' है, सर्वधान्याय संगत होने से यथार्थ प्रतीत होता है। निश्चित ही इन नूतन कल्पनाओं से तथा मूल आख्यान की कथावस्तु को घटनाओं में परिवर्तन करके श्रीहर्ष ने सामाजिकों में उत्सुकता, सहानुभूति और हास्य मिश्रित आनन्द की अनुभूति करा दी है।⁸

रत्नावली नाटिका का ऐतिहासिक विवेचन

संस्कृत साहित्य में उदयन की अनेक प्रेम कथाओं का वर्णन मिलता है। महाकवि श्रीहर्षदेव द्वारा विरचित रत्नावली नाटिका की कथावस्तु सिंहलदेश की राजकुमारी रत्नावली तथा महाराज उदयन की प्रेमकथा पर आधारित है। नाटिका की नायिका रत्नावली सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या है। ग्रन्थ के अन्तिमांश को

छोड़कर वह सर्वत्र सागरिका के नाम से ही व्यवहृत हुई है। वह मुग्धा नायिका है। कुल, जन्म एवं कर्म से सभी तरह से प्रशंसनीय है। उसका भाग्य इतना प्रबल एवं उत्तम है कि उसको ब्याहने वाला कोई भी राजा चक्रवर्ती पद का भाजन हो सकता था। उसके भाग्य की प्रबलता का ही परिणाम है कि उसे महामात्य यौगन्धरायण की कूटनीति का शिकार हो कुछ दिनों तक महारानी वासवदत्ता की परिचर्या भी करनी पड़ी। यह उसकी तपस्या, लगन, दृढ़निश्चय और सहनशीलता का ही परिणाम है कि वह अन्त में अपने निश्चय को सार्थक करने में उदयन के साथ विवाह करने में सफल हो जाती है। यदि ये विशेषतायें उसमें न होती तो निश्चय ही महामन्त्री की एक भी योजना सफल न होती। उनकी प्रतिभा कुछ रंग न दिखला पाती। वस्तुतः यौगन्धरायण की सफलता में रत्नावली के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण योगदान है।⁹ उनके संबंध में हर्ष के अतिरिक्त विशुद्ध ऐतिहासिक स्रोतों से पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।¹⁰ अस्तु जब नाटिका की कथावस्तु की ऐतिहासिकता की परीक्षा करनी होगी तब हम उस सामग्री से तुलना करके निष्कर्ष देने में सक्षम होंगे। जो निम्नलिखित है-

राजनीतिक इतिहास :-

महात्मा बुद्ध के समय में दस गणतंत्रों के अतिरिक्त चार राजतंत्र भी थे जो साम्राज्य विस्तार की भावना से प्रेरित हो निरन्तर अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए प्रयत्नशील एवं संघर्षरत थे। इसमें वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी, जो यमुना नदी के तट पर इलाहाबाद से 38 मील दूर को सम गाँव के निकटवर्ती भूमि के पास या सम्भवतः उसी ग्राम में थी।¹¹ वत्स के पूर्व में मगध तथा पश्चिम में अवन्ति का राज्य था। महात्मा बुद्ध के समय में वत्स की राजधानी कौशाम्बी का अत्यधिक व्यापारिक महत्व था क्योंकि यह विदिशा होते हुए उज्जैन जाने के व्यापारिक मार्ग में पड़ता था।¹² इस समय वत्स में पौरव राजा 'उदयन' राज्य कर रहा था। वह बुद्ध का भक्त और मगध के राजा बिम्बिसार का मित्र था।¹³

उदयन की ऐतिहासिकता

छठीं शताब्दी ई. पू. में वत्स के शासक उदयन के विषय में पुराण, हर्ष के दो नाटक प्रियदर्शिका तथा रत्नावली, भास की कृति स्वप्नवासवदत्ता तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण, आदि ग्रन्थों से प्रकाश पड़ता है। पुराणों के अनुसार उदयन पौरव राजवंश का था और उसके पिता का नाम स्तानीकथा। वासवदत्ता तथा प्रतिज्ञा यौगन्धरायण ग्रन्थों में उदयन के पिता का नाम सहस्ररानीक मिलता है। राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार उदयन के पिता का नाम परन्तु कथा। भास के अनुसार उदयन भरत कुल का था जिसकी माँ विदेह की राजकुमारी थी क्योंकि उसे विदेह पुत्र कहा गया है। संस्कृत-साहित्य में उदयन की अनेक प्रेम कथाओं का वर्णन मिलता है। प्रारम्भ में उदयन एवं अवन्ति के शासक प्रद्योत में वैमनस्य था किन्तु उदयन ने प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से प्रेम-विवाह किया तथा वत्स एवं अवन्ती के मध्य मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। उड़ीसा के उदयगिरि-खण्डगिरि की गुफा में बने चित्रों को देखने पर ऐसा लगता है कि कवि वरभास द्वारा वर्णित उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कथा चित्रित हुई है।¹⁴ वृहत्कथा मंजरी एवं सोमदेवकृत कथा सरित्सागर से ज्ञात होता है कि उदयन के योग्य मंत्री यौगन्धरायण के प्रयत्नों से उदयन का विवाह मगध के तत्कालीन शासक दर्शक की पुत्री पद्मावती के साथ सम्पन्न हुआ था। इसके अतिरिक्त भी उदयन ने अनेक विवाह किये थे। हर्ष की कृति प्रियदर्शिका में अंग के राजा दृढ़वर्मन की पुत्री से भी उदयन के विवाह का उल्लेख है। उदयन की एक और पत्नी मागन्दीया का धर्मपाल टीका में उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त हर्ष की महत्वपूर्ण कृति रत्नावली में उदयन का सागरिका से भी प्रेम का उल्लेख है।

उदयन के उपर्युक्त विवाहों का अत्यधिक राजनीतिक महत्व था। अपने राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए उसके लिए अवन्ती, मगध, अंग, आदि राज्यों से मधुर सम्बन्ध कायम रखना आवश्यक था। बी. सी. लॉ के अनुसार 'यदि उदयन ने उपर्युक्त वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित न किए होते तो मगध एवं अवन्ती की बढ़ती हुई शक्ति के समक्ष कौशाम्बी कभी भी नष्ट कर दी गयी होती। 'अतः स्पष्ट ही है कि ये वैवाहिक संबंध उदयन की राजनीतिक दूरदर्शिता एवं सूझबूझ के प्रतीक थे।'¹⁵

रत्नावली में उदयन की दिग्विजयों का वर्णन है। हर्ष ने प्रस्तुत नाटिका में युद्ध के वर्णन का निबन्धन इस प्रकार प्रस्तुत किया है, चतुर्थ अङ्क में विजय वर्मा उदयन के समक्ष युद्ध स्थल के दृश्य को प्रस्तुत करते हुए कहता है रणभूमि में कोसलाधिपति के विन्ध्यपर्वत की भाँति प्रतीत होने वाले हाथियों की सेना के व्यूह को रौंदते हुए उस रुमण्वान् ने कोसलाधिपति के समक्ष अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने रणकौशल को प्रकट किया है।'¹⁶

इस प्रकार युद्ध में प्रयुक्त अस्त्र शस्त्रों की रगड़ से सिर काटे जा रहे थे, और चारों ओर रुधिर की नदी सी प्रवाहित हो रही थी तथा शस्त्रों की खड्ग से अग्नि की लपटें निकल रही थी। सेना के भगदड़ को रोकते हुए मतवाले हाथी पर सवार कोसलाधिपति अकेले ही रुमण्वान् द्वारा मारा गया।'¹⁷

बौद्ध ग्रन्थों में उदयन को एक युद्ध प्रिय एवं शक्तिशाली राजा कहा गया है। कथासरित्सागर एवं प्रियदर्शिका में उसकी दिग्विजयों का वर्णन है। वैयक्तिक सम्बन्धों के द्वारा मगध एवं अवन्ती के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् उदयन ने काशी पर आक्रमण करने का निश्चय किया, किन्तु काशी-नरेश ब्रह्मदत्त ने उसकी शक्ति से भयभीत होकर उदयन की अधीनता स्वीकार कर ली। काशी-राज के नाम के सम्बन्ध में मतभेद है। भास काशी के राजा का नाम आरुणित था तिब्बती साक्ष्य 'आरनेमि' मानते हैं। काशी को अपने अधीन करने के पश्चात् उदयन ने पूर्व में बंग एवं कलिंग, दक्षिण में चोल एवं कोलराज्यों, पश्चिम में म्लेच्छों, तुरुष्कों, पारसी कों एवं हूणों पर विजय प्राप्त की। विदेह एवं चेदि राज्यों पर भी उदयन की विजय का वर्णन प्राप्त होता है। इतिहासकार कथासरित्सागर एवं प्रियदर्शिका में वर्णित उदयन की उपरोक्त विजयों को प्रमाणिक नहीं मानते, किन्तु इससे इतना अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि उदयन युद्ध प्रेमी एवं महत्वाकांक्षी शासक रहा होगा जिसने न केवल अपने साम्राज्य को तत्कालीन अन्य शक्तिशाली राजतंत्रों से सुरक्षित रखा वरन् साम्राज्य-विस्तार का भी प्रयत्न किया। उदयन के पश्चात् वत्स की राजगद्दी पर कौन बैठा? इस विषय में मतभेद है। अवन्ती के समान वत्स भी कालान्तर में मगध साम्राज्य में विलीन हो गया।'¹⁸

सामाजिक इतिहास :-

समाज परम्परागत चार वर्णों में विभक्त था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। नाटिका के तृतीय अङ्क में उदयन ने विदूषक को वृहस्पति से बढ़कर कहा है।'¹⁹ क्षत्रिय का कर्तव्य शस्त्र द्वारा राष्ट्र की रक्षा करना था, वैश्य का व्यवसाय-वाणिज्य था और शूद्र का मुख्य कर्तव्य सेवा करना था। इसके प्रथम अङ्क में मदन महोत्सव की धूम में नाचते गाते नगर निवासियों द्वारा मृदंगों की मृदु ध्वनि से गूँजती हुई सड़कों की शोभा का तथा उड़ाये गये गुलाल से कौशाम्बी के महोत्सव की शोभा का वर्णन इस प्रकार किया है।'²⁰ सम्भवतः रत्नावली की राजघराने की कन्या के अनुरूप ही उच्च कोटि की शिक्षा भी मिली थी। वह चित्र बनाने में बेजोड़ है। उसने केवल एक बार ही महाराज उदयन को देखा है और उनका चित्र वह बना देती है। कवि ने नाटिका के द्वितीय अङ्क में चित्रपट पर चित्रङ्कन द्वारा नायिका (सागरिका) के अन्तः भाव का प्रकटन किया है।'²¹ इसके अतिरिक्त नाटिका में विभिन्न प्रकार के भोज्य-पदार्थों, वस्त्रों, आभूषणों, वाद्य-यंत्रों एवं जादू-टोनों (ऐन्द्रजालिक) इत्यादि का उल्लेख मिलता है।

आर्थिक इतिहास

जातक और त्रिपिटक इत्यादि प्रारम्भिक के पालि ग्रन्थों से बुद्धकालीन भारत के आर्थिक जीवन का आदर्श चित्र हमारे सामने प्रस्तुत होता है। महात्मा गौतम के काल में कौशाम्बी ने व्यापार में आशातीत उन्नति कर ली थी। इसका प्रमुख कारण यह था कि यह विदिशा होते हुए उज्जैन जाने के व्यापारिक मार्ग में पड़ता था।²² रिजडेविड्सने कौशाम्बी को बुद्धकालीन उत्तरी भारत का सबसे प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र कहा है। मथुरा, पाटलिपुत्र, राजगृह, चम्पा तथा वाराणसी, आदि नगरों के साथ कौशाम्बी का घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध था। प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ उदवासगदसाओ में चम्पा, वाराणसी, वैशाली, मिथिला, एवं उज्जयिनी इत्यादि प्रसिद्ध नगरों के साथ ही साथ कौशाम्बी का भी उल्लेख किया गया है।²⁴

हर्ष ने प्रस्तुत नाटिका के प्रथम अङ्क में कौशाम्बी नगरी के लौकिक ऐश्वर्य एवं वैभव का निरूपण इस प्रकार किया है कि स्वर्णाभूषणों की कान्तियों से और अपने भार से अग्रभाग को झुका देने वाले अशोक पुष्प के शिरोभूषणों से, उपलक्षित वेषों से तथा अपने ऐश्वर्य से कुबेर की समस्त कोश सम्पदा को जीती हुई यह कौशाम्बी नगरी पीतवर्ण के समान प्रतीत हो रही है। ऐसा लग रहा है कि कौशाम्बी नगर निवासियों के सम्पूर्ण शरीर पर सुवर्ण का लेप कर दिया गया हो।²⁵

धार्मिक इतिहास

इस समय जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म उन्नति की अवस्था में थे, उदयनस्वयम् बुद्ध का भक्त था।²⁶ उदयन बुद्ध भिक्षु पिण्डोल भारद्वाज द्वारा बौद्ध धर्म का समर्थक एवं उनका संरक्षक बनाया गया था।²⁷ उदयन के समय वहाँ के एक घोषित नाम के धनीसेठ ने बौद्ध भिक्षुओं के विश्राम हेतु घोषिताराम का निर्माण करवाया था, जिसके भग्नावशेष पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त हुए हैं।²⁸ यहां से प्राप्त एक शिलालेख में घोषिताराम के बिहार का उल्लेख भी मिलता है।²⁹ नाटिका में हिन्दू देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं।³⁰ द्वितीय अङ्क में विदूषक उदयन से कहते हैं - हे मित्र, दासी-पुत्री यह सारिका तो, चतुर्वेदी ब्राह्मण की तरह, ऋचाओं (ऋग्वेद के मन्त्रों) को पढ़ने में प्रवृत्त है।³¹

इस प्रकार हर्ष के नाटक कला नैपुण्य को देख कर निस्संदेह यह कहा जा सकता कि हर्ष नाट्य शास्त्र का मुखपेक्षी नहीं रहा। उसने अपनी नाटिकाओं की रचना के लिए पूर्ववर्ती नाट्य कृतियों से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की है। परिणामतः उसकी कृतियाँ उत्तरवर्तीनाट्य कृतियों के लिए आदर्श बन सकी हैं। नाटकीय गुणों की दृष्टि से हर्ष की रत्नावली संस्कृत नाट्य साहित्य की अनुपम कृतियों में से एक है। रत्नावली इतिहास ग्रन्थ नहीं है, यद्यपि एक नाटिका है। ऐतिहासिक पात्रों की कुछ घटनाओं को यथावत् उतारते हुए भी कवि कल्पना में स्वतन्त्र है। नायक-नायिका पर वैशिष्ट्य को ज्ञात करने के लिए उसने दोनों के वंश के उद्भव की गौरवमयी परम्परा का काल्पनिक एवं काव्यात्मक चित्रण किया है। नाटिका के प्रथम अङ्क में कौशाम्बी नगरी के लौकिक ऐश्वर्य एवं वैभव का निरूपण किया है। यह उल्लेखनीय है कि कौशाम्बी से प्राप्त एक शिलालेख में घोषिताराम के बिहार का उल्लेख मिलता है। चतुर्थ अङ्क में विजय वर्मा उदयन के समक्ष युद्ध स्थल के दृश्य को प्रस्तुत करता है साथ ही रण भूमि में कोसलाधिपति पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है जिस की पुष्टि अन्य पुरातात्विक एवं साहित्यिक ग्रन्थों से भी होती है। इसके अति रिक्त नाटिका में तत्कालीन समाज के विविध प्रकार के भोज्य-पदार्थों, वस्त्रों, आभूषणों, वाद्य-यंत्रों एवं जादू-टोनों (ऐन्द्रजालिक) के साथ ही साथ आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास इत्यादि का उल्लेख मिलता है।

मानचित्र : उदयन कालीन भारतवर्ष³²



संदर्भ -

1. चटर्जी, गौरीशंकर, हर्षवर्द्धन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, यू. पी. 1950, पृ. 10
2. महाकवि श्री हर्षदेव विरचिता रत्नावली नाटिका, (व्याख्याकार: मुसलगाँवकर, डॉ. राजेश्वरशास्त्री) चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2014, पृ. 14

3. तत्रैव, पृ. 13
4. तत्रैव, पृ. 31
5. सिन्हा, जयश्री, संस्कृत नाटिका विमर्श, कैपिटल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1986, पृ. 48
6. मुसलगाँवकर, डॉ. राजेश्वरशास्त्री, तत्रैव, पृ. 30-32
7. तिवारी, नीतू, हर्षवर्धन कृत-रत्नावली नाटिका और शिङ्गभूपाल कृत-कुवलयवली नाटिका का तुलनात्मक अध्ययन, (अप्रकाशित) शोध-प्रबन्ध, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर 2005, पृ. 93-94
8. मुसलगाँवकर, डॉ. राजेश्वर शास्त्री, तत्रैव, पृ. 33-34
9. महाकवि श्री हर्षदेव विरचिता, रत्नावली नाटिका, (व्याख्याकार : त्रिपाठी, डॉ. श्रीकृष्ण) चौखम्भासंस्कृत भवन, वाराणसी, 2008, पृ. 17-20
10. पाण्डेय, डॉ. वी.के., प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, शारदा पुस्तकभवन, इलाहाबाद, 2013, पृ. 124
11. नाहर, रतिभानु सिंह, प्राचीनभारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, किताब महल, इलाहाबाद, 1974, पृ. 121
12. पाण्डेय, डॉ. वी.के., तत्रैव, पृ. 124
13. पाण्डेय, डॉ. राजबली, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010, पृ. 134
14. अग्रवाल, श्री सदानंद, खारवेल, कटक, 1993, पृ. 70
15. पाण्डेय, डॉ. वी.के., तत्रैव, पृ. 124
16. त्रिपाठी, डॉ. श्रीकृष्ण, तत्रैव, पृ. 156-157
योद्धुर्निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणदिग्वाभागान्विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन् ।
वेगाद् बाणान्विमुञ्चन् समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिर्निपत्य प्रत्यैच्छद्वाञ्छितापिद्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ।।
17. मुसलगाँवकर, डॉ. राजेश्वर शास्त्री, तत्रैव, पृ. 195
अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृतोत्तमाङ्गो क्षणव्यूढासूक्सरितस्वनत्प्रहरणवर्मोद्वलद्धहिनि ।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भिङ्गप्रतीपीभवन्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्यो हतः ।।
18. पाण्डेय, डॉ. वी.के., तत्रैव, पृ. 124
19. त्रिपाठी, डॉ. श्रीकृष्ण, तत्रैव, पृ. 109
20. डॉ. राजेश्वर शास्त्री, तत्रैव, पृ. 21
तावदस्य मधुमत्तकामिनीजनस्वयंग्रहगृहीतशृङ्गकजलप्रहार नत्यन्नागरजनजनितकौतूहलस्य समन्ततः
शब्दायमानमर्दलोद्दामचर्चरीशब्दमुखररथ्यामुखशोभिनः प्रकीर्णपटवासपुञ्जपिञ्जरी—तदशदिशामुखस्य
सश्रीकतामंदनमहोत्सवस्य ।
21. तत्रैव, पृ. 50
तद्यावदिहकोऽपिनागच्छतितावदालेख्यसमर्पितंतमभिमतंजनंप्रेक्ष्य यथासमीहितंकरिष्यामि । यद्यपि
मेऽतिसाध्वसेनवेपतेऽयमितिमात्रमग्रहस्तस्थतथापितस्य जनस्यान्योदर्शनोपायोनास्तीति यथातथाऽऽलिख्यैनं प्रेक्षिष्य ।
22. नाहर, रतिभानु सिंह, तत्रैव, पृ. 121
23. राय, उदयनारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर-जीवन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ. 102

24. विद्यालंकार, सत्यकेतु, भारत का प्राचीन, सरस्वतीसदन, मसूरी, इतिहास, 1953, पृ. 375-376
25. त्रिपाठी, डॉ. श्रीकृष्ण, तत्रैव, पृ. 18
कीर्णैः पिष्टातकौधैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोद्गौरैर्हेमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्करातैः ।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशाकौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीताविभाति ।।
26. पाण्डेय, डॉ. राजबली, पृ. 134
27. नाहर, रतिभानु सिंह, तत्रैव, पृ. 123
28. पाण्डेय, डॉ. वी.के., तत्रैव, पृ. 203
29. मुखर्जी, राधाकुमुद, प्राचीन भारत, (अनु० बुद्धप्रकाश) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962, पृ. 41
30. पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीनभारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग- 2, सेन्टल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2009, पृ. 215
31. डॉ. श्रीकृष्ण, तत्रैव, पृ. 69-70
‘सखि, अतोऽपि मेऽधिकतरं सन्तापो वर्धते’ । ‘सखि, अपनयेमानिनलनीपत्राणि मृणालवलयानि च अलमेतेन ।
कस्मादकारणआत्मानमायासयसि’ इति ।
32. काटदरे, माधव केशव, वत्सराजउदयन, नवभारत प्रकाशन संस्था, मुम्बई, 1941, पृ. 16

21

नागानन्द नाटक में भारतीय ज्ञान-परम्परा

गुलशन कुमार

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।¹

श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार भारतभूमि इतनी शोभा सम्पन्न है कि श्री हरि स्वयं इसे देखकर प्रसन्न होते हैं। भारत भूमि की यह शोभा भारतीय ज्ञान परम्परा के कारण ही है। भारतीय प्रज्ञा प्राचीन काल से ही कला, विज्ञान, अध्यात्म, मूल्य आदि से परिपूर्ण रही है। संस्कार नामक विशेष गुण होने के कारण हमारी परम्परा में दया, करुणा, मैत्री, परोपकार आदि तत्त्व पाए जाते हैं। यही कारण है कि हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संस्कृति वाले हैं। विश्व पटल पर गुटनिरपेक्षता और पंचशील जैसे सिद्धान्त इसके ठोस प्रमाण हैं। इसी संस्कृति को अन्तराविष्ट करता हुआ नाटक नागानन्द है। महाराज हर्षवर्धन द्वारा रचित इस नाटक में पांच अंक हैं। विद्याधर जीमूतवाहन इसका नायक है, नायिका मलयवती है। नाटक के मंगलाचरण में बुद्ध की प्रार्थना की गयी है, कथावस्तु विद्याधर जातक से है। अतः नाटक पर बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रभाव है। परोपकार, त्याग, संतोष जैसी बुद्ध की शिक्षाएँ नागानन्द की ज्ञान परम्परा में हैं। नाटक के नायक राजा जीमूतवाहन की राजनीति सभी का कल्याण करने वाली है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'³ के भाव को धारण करते हुए प्रथम अंक में नायक विदूषक से कहता है-

न्याय्ये वर्त्मनि योजिताः प्रकृतयः सन्तः सुखं स्थापिता नीतो, बन्धुजनस्तथात्मसमतां राज्ये च रक्षा कृता।

दत्तो दत्तमनोरथाधिकफलः कल्पद्रुमोऽथिने, किं कर्तव्यमतः परं कथय वा यत्ते स्थितं चेतसि।⁴

अर्थात् मैंने प्रजा को न्याय मार्ग में लगा दिया है। सज्जनों को सुखपूर्वक रखा है। बन्धु-बान्धवों को अपने बराबर ही बना दिया है। राज्य की रक्षा की है। इच्छा से भी अधिक फल देनेवाला कल्पवृक्ष भी याचकों को दे डाला है। अब कहो, इससे अधिक मेरे करने योग्य बात तुम्हारे मन में कौन-सी बैठी हुई है ?

पञ्चम अंक में नायक परोपकार के प्रति इतना समर्पित हो चुका है कि अंगों के कट जाने पर भी बहुत समय तक पीड़ा का अनुभव नहीं कर पाता- हहह ! परार्थसम्पादनामृतरसास्वादाक्षिप्तत्वादेतावर्ती वेलं मया न लक्षिताः।⁵ अर्थात् नायक (पीड़ा का अनुभव करते हुए) हाय रे, परोपकार करने में अमृत की तरह आनन्द में डूबा होने के कारण अब तक मुझे पीड़ा मालूम नहीं हुई थी।

किसी भी समाज या परिवार के लिए जो नैतिक गुण आवश्यक होते हैं वे गुण इस नाटिका में व्याप्त हैं। माता-पिता या बड़ों की आज्ञा पालन हमारी परम्परा रही है। जीमूतवाहन भी कहता है-

वरं ताताज्ञैवानुष्ठिता।⁶

अर्थात् पूज्य पिताजी की आज्ञा का पालन हो जाये इतना भर ही तो मैं चाहता हूँ। परोपकार का सम्बन्ध दया से है, दया से परोपकारिता आती है, दया से ही क्षमा आती है। दया श्रेष्ठ गुण है। मित्रावसु विद्याधर जीमूतवाहन की परोपकारिता का वर्णन करते हुए कहता है - **यच्चासूनपि सन्त्यजेत् करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यतः।**⁷ अर्थात् प्राणियों की रक्षा के लिए दया-वश वह अपनी जान भी दे सकता है। लोभ, मोह, महत्वाकांक्षा से परे होकर नश्वर शरीर के प्रति मोह भंग कराते हुए जीमूतवाहन अपनी माँ मलयवती से कहता है- **मेदोऽस्थिमांसमज्जाऽसृक्संघातेऽस्मिंस्त्वचाऽऽवृते। शरीरनाम्नि का शोभा सदा बीभत्सदर्शने?**⁸

अर्थात् यह देहमेदा, हड्डी, मांस, मज्जा तथा रक्त का समूह ही तो है, केवल चमड़े से ढंका है। यह हमेशा बीभत्स है। भला ऐसे शरीर में भी कहीं शोभा या सुन्दरता हो सकती है ? पुनः जीमूतवाहन आश्चर्य करते हुए कहता है कि मनुष्य इस नश्वर शरीर के लिए इतना पाप करते हैं ? -

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः। शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते।।⁹

अर्थात् मूत्र-विष्टादि सारी अपवित्र वस्तुओं का घर कृतघ्न और विनाशवान् इस शरीर के लिए मूर्खजन पाप किया करते हैं। सदाचार और सत्कार परम्परा का प्रवाह इतना है कि मलयवती जब सत्कार और शिष्टाचार नहीं कर पाती है, तब उसमें आत्मग्लानी का भाव आता है, वह कह उठती हैं- **सोऽप्यकृतप्रतिपत्तिमदक्षिणेति मां सम्भावयिष्यति।**¹⁰

अर्थात् सामान्य शिष्टाचार भी नहीं करने वाली मुझे भला वे कितना अशिष्ट समझते होंगे। पुनः पांचवें अंक में मलयवती को अपने सास-ससुर की सेवा करते हुए दिखाया गया है - **क्षौमे भङ्गवती तरङ्गितदशे फेनाम्बुतुल्ये वहन् जाह्नव्येव विराजितः सुपयसा देव्या महापुण्यया।। धत्ते तोयनिधेरयं सुसदृशी जीमूतकेतुः श्रियं यस्यैषान्तिकवर्तिनी मलयवत्याभाति वेला यथा**¹¹।।

अर्थात् सिकुड़न पड़े तथा किनारों पर लहराते हुए फेनिल पानी जैसे दो रेशमी कपड़ों को धारण किये ये जीमूतकेतु (ससुर) सागर की तरह प्रतीत हो रहे हैं और पास में ही बैठी समान उम्र वाली महारानी पुण्या (सास) तो पक्षियों से पूरित परम पवित्र गंगा की तरह प्रतीत हो रही है और राजकुमारी मलयवती इनकी परिचर्या करती हुई सागर की तरंग-सी लग रही है। विवाहों के अनेक प्रकारों में गान्धर्व विवाह को भी समाज में उचित स्थान प्राप्त था। विदूषक का वचन है - **निर्वृत इदानीं ते गान्धर्वो विवाहः।**¹² अर्थात् अब तुम्हारा गन्धर्व विवाह हो गया है, अतः अब तो इनका हाथ छोड़ दो।

भारतीय परम्परा में संगीत से आनन्द की उत्पत्ति मानी जाती है। महर्षि याज्ञवल्क्य तो संगीत से मोक्ष का मार्ग बताते हैं। नाटक में वीणा के संगीत की झंकार का मधुर वर्णन है और संगीत के तालों की भी चर्चा नायक करता है। यथा- **स्थानप्राप्त्या दधानं प्रकटितगमकां मन्द्रतारव्यवस्थां निर्हादिन्या विपञ्च्या मिलितमलिरुतेनेव तन्त्रीस्वरेण। एते दन्तान्तरालस्थिततृणकवलच्छेदशब्दं नियम्य व्याजिह्वाङ्गाः कुरङ्गाः स्फुटललितपदं गीतमाकर्णयन्ति।।**¹³

अर्थात् ये हिरन गर्दन टेढ़ी किए, मुँह में पड़ी घास का चबाना बन्दकर मधुर संगीत सुनने का मजा ले रहे हैं। ये गीत हृदय और कण्ठ से फूटकर निकली स्वर-लहरी को स्पष्ट अनुगूँजित कर रहे हैं। इसमें मन्द्र और तार स्वरों की व्यवस्था है। वीणा की मधुर झंकार का संयोग है। पदोच्चारण सुन्दर एवं स्पष्ट है।।

उच्चस्तरीय वस्त्राभूषण और शृंगार किसी भी सभ्यता के विकास के सूचक होते हैं क्योंकि जब समाज की मूलभूत आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं, तब सामाजिक उच्च स्तरीय वस्त्राभूषणों और शृंगारों का प्रयोग करता है। नाटक में विद्याधर सिद्धजनों के साज-शृंगार, वस्त्राभूषण के विषय में नायक से कहता है -

दिग्धाङ्गा हरिचन्दनेन दधतः सन्तानकानां स्रजो
माणिक्याभरणप्रभाव्यतिकरंश्चित्रीकृताच्छांशुकाः ।
सार्द्धं सिद्धजनैर्मधूनि दयितापीतावशिष्टान्यमी
मिश्रीभूय पिबन्ति चन्दनतरुच्छायासु विद्याधराः ।¹⁴

अर्थात् शरीरों में हरिचन्दन का पीला लेप किये हुये, कल्पवृक्ष के फूलों की मालाएँ पहने हुए तथा मणियों के आभूषणों की कान्तियों के परस्पर मिलने से चित्र-विचित्र बने हुए वस्त्रों वाले ये विद्याधर सिद्धजनों के साथ मिलकर चन्दन-वृक्षों की लताओं में प्रियतमाओं के पीने से बची हुई मदिराओं को स्वयं कैसे पी रहे हैं?

यहाँ पुरुष का स्त्री प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि वे अपनी प्रियतमाओं के पीने से अवशिष्ट मदिरा का पान कर रहे हैं। नायक द्वारा प्रियतमा के वर्णन करते समय चन्द्रमा की कलाओं का ज्ञान भी स्पष्ट दिख पड़ता है।

अक्लिष्टबिम्बशोभाधरस्य नयनोत्सवस्य शशिन इव ।
दयितामुखस्य सुखयति रेखाऽपि प्रथमदृष्टेयम् ।¹⁵

अर्थात् पहली दृष्टि में दूज का चाँद जिस तरह लोगों को आनन्द देता है, उसी तरह पके बिम्ब-फल की तरह लाल-लाल होठ वाली इस प्रियतमा के मुख की रेखा ही हमारे मन को आनन्दित कर रही है।

चित्रादि कलाओं के सुन्दर प्रदर्शन के लिए वर्ण इत्यादि का प्रयोग अपेक्षित होता है। तृतीय अंक में चेटी नील के रस के समान तमाल के पत्तों के रस से विदूषक के मुख को काला कर देती है। यथा -

तावन्नीलरसानुकारिणा तमालपल्लवरसेन मुखं कालीकरिष्यामि ।¹⁶

अर्थात् तब तक तमाल के पत्ते के काले रस से इसका मुँह मैं काला कर दूँगी। प्रथम अंक में वृक्षों के छाल से वस्त्र बनाने की बात मिलती है। यथा - वासोऽर्थं दययेव नातिपृथक् कृतास्तरूपां त्वचो ।¹⁷

अर्थात् पहनने के लिए पेड़ों की छाल दयावश मोटी नहीं छिली गई हैं। यहाँ पर त्याग पूर्वक भोग करने का भाव भी दिखलाई पड़ रहा है। नाटक में विमान का प्रयोग भी बताया गया है। मित्रावसु जीमूतवाहन से कहता है कि महाराज यदि आप आज्ञा दें -संसर्पद्भिः समन्तात् कृतसकलवियन्मार्गयानैर्विमानैः कुर्वाणाः प्रावृषीव स्थगितरविरुचः श्यामतां वासरस्य । एते याताश्च सद्यस्तव वचनमितः प्राप्य युद्धाय सिद्धाः ।¹⁸

अर्थात् चारों ओर से आकाशमार्ग में छाये विमानों से सूर्य की किरणों को ढँककर दिन को वर्षा ऋतु की तरह काला- अन्धकारमय बनाते हुए ये सिद्धगण आपके आदेश से तत्काल युद्ध के लिए गये कि आपको अपना राज्य प्राप्त हुआ समझो। प्रकृति को ही देखकर प्रकृति में होने वाली आपदाओं का अनुमान भारतीय जनमानस कर लेता है। इस बात के प्रमाण स्वरूप जीमूतवाहन कहता है-

उद्गर्जज्जलकुञ्जरेन्द्रभसाऽऽस्फालानुबन्धोद्धतः सर्वाः पर्वतकन्दरोदरभुवः कुर्वन् प्रतिध्वनिनीः ।¹⁹

अर्थात् ऊपर उठते हुए जलगर्जों के लगातार किये गये सूड़ों से जोर के थपेड़ों से उत्पन्न, पर्वतों की गुफाओं के सभी भीतरी भागों को गुंजाता हुआ तथा कानों के पर्दों को फाड़ता हुआ, यह ऊँचा शब्द जैसे उठ रहा है, उससे लगता है कि इधर-उधर उछलते हुए अनगिनत शङ्खों को साथ लिए यह ज्वार-भाटा प्रायः आ ही रहा है। दाईं आंख फड़कने से शकुन और बाईं आंख के फड़कने से अपशुन की भी बात की गई है। जब जीमूतवाहन विदूषक से कहता है कि हे मित्र! मेरी दायाँ आंख फड़क रही है तो विदूषक कहता है कि अवश्य ही निकट भविष्य में तुम्हारा कल्याण होने वाला है। पञ्चम अंक में जब जीमूतकेतु (नायक के पिता) की बाईं आंख फड़कती है तो वह अनिष्ट की आशंका करता है। मदराचल की गुफाएं, हिमालय की चोटी, महेन्द्र, कैलाश

आदि पर्वत तथा मलयाचल के पठारों में जीमूतवाहन की गाथा के गायन से यह बात पता चलती है कि इन क्षेत्रों पर भारतीय ज्ञान परम्परा का प्रभाव था।

मेरौ मन्दरकन्दरासु हिमवत्सानौ महेन्द्राचले कैलासस्य शिलातलेषु मलयप्राग्भारदेशेष्वपि।

उद्देशेष्वपि तेषु तेषु बहुशो यस्य श्रुतं तन्मया लोकालोकविचारिचारणगणैरुद्गीयमानं यशः।।²⁰

अर्थात् सुमेरु पर्वत पर, मन्दराचल की गुफाओं में, हिमालय की चोटी पर, महेन्द्राचल पर, कैलास की चट्टानों में, मलयाचल के पठारों में तथा अन्य स्थानों में लोकालोक पर्वत पर घूमने वाले चारणगण जिस जीमूतवाहन की यशोगाथा गाते हैं, उसे गाते मैंने अनेकों बार सुना है।

वस्तुतः श्रीहर्षदेव का यह नागानन्द नामक नाटक भारतीय ज्ञान परम्परा के अधिकांश अंगों का पालन करता दिखाई पड़ता है। पात्रों में भासित हो रहे उच्च मानवीय मूल्य श्रेष्ठ जनों के प्रति आदर व सेवा का भाव है। सामाजिक उत्कर्ष के सूचक प्रेम, संगीत व उत्तम वस्त्राभूषणों का वर्णन है। नाटक की ज्ञान परम्परा से जो मूल्य हमें प्राप्त होते हैं, उसकी समाज को बड़ी आवश्यकता है। नायक जीमूतवाहन के द्वारा दुसरों की रक्षा के लिए स्वयं के शरीर को अर्पण कर देने की घटना 'परोपकारार्थमिदं शरीरं'²¹ का उपदेश देती है।

सन्दर्भ -

1. श्रीमद्भागवत्पुराण 5.19.21
2. ऋग्वेद, महा उपनिषद्, 6.72
3. भविष्य पुराण 3.2.35.14, गीता प्रेस, गोरखपुर, बृहदारण्यकोपनिषद् (शांति मन्त्र)
4. नागानन्द-नाटकम्, व्याख्याकार- डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. सं. 16
5. वही, पृ. सं. 253
6. वही, पृ. सं. 17
7. वही, पृ. सं. 85
8. वही, पृ. सं. 247
9. वही, पृ. सं. 164
10. वही, पृ. सं. 64
11. वही, पृ. सं. 205
12. वही, पृ. सं. 101
13. वही, पृ. सं. 27
14. वही, पृ. सं. 134
15. वही, पृ. सं. 82
16. वही, पृ. सं. 139
17. वही, पृ. सं. 23
18. वही, पृ. सं. 146
19. वही, पृ. सं. 157
20. वही, पृ. सं. 234
21. द्वात्रिंशद्वपुत्तलिकासिंहासन, 81

हर्ष के रूपकों में राजा उदयन का पुरुषार्थ

शशिकुमार सिंह, भूपेन्द्र लोधी

हर्ष संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नाटककारों में अग्रगण्य हैं। इन्होंने दो नाटिकाओं- प्रियदर्शिका एवं रत्नावली तथा एक नाटक-नागानन्द की रचना कर संस्कृत नाट्य जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। चतुःसमुद्राधिपति और परमभट्टारक महाराजाधिराज जैसी उपाधियों से विभूषित हर्षवर्धन यद्यपि अत्यन्त समृद्धशाली एवं निरुपद्रव वर्धन साम्राज्य के वीर एवं बुद्धिमान् राजा थे, परन्तु इसके साथ ही साथ वे साहित्य, कला एवं संगीत के प्रबल पोषक तथा मर्मज्ञ साधक के रूप में भी प्रभूत प्रसिद्धि को प्राप्त थे। हर्षरचित रत्नावली नाटिका में हर्ष को निपुण कवि कहा गया है 'श्रीहर्षः निपुणो' कविः।¹ हर्ष द्वारा विरचित दोनों नाटिकाएं प्रियदर्शिका एवं रत्नावली संस्कृत नाट्य परम्परा में अत्यन्त समादृत कृतियां हैं। संस्कृत नाट्य-परम्परा में अट्टारह प्रकार के उपरूपकों की गणना हुई है। नाटिका इन्हीं उपरूपकों में कल्पित कथानक से युक्त एक उपरूपक प्रकार है। नाटिका में स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है तथा इसका नायक धीरललित कोटि का होता है, जो किसी श्रेष्ठ राजकुल में उत्पन्न राजा होता है।

नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्स्त्रीप्राया चतुरङ्गिका। प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः।²

श्री हर्ष की दोनों नाटिकाओं में वत्सदेश का राजा उदयन धीरललित कोटि के नायक हैं। धीरललित नायक का लक्षण करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं - निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।³

अर्थात् धीरललित नायक वह है जो निश्चित रहने वाला, मधुर स्वभाव वाला और कला में सतत् आसक्ति रखने वाला होता है। रत्नावली के नायक उदयन भी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर अपने राज्य की सीमा को सुरक्षित रखने वाले अपने राज्यभार को योग्य सचिव के हाथ में रखकर निश्चित रहने वाले राजा के रूप में दिखलाये गये हैं।

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः, सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः।⁴

वत्सराज उदयन का स्वभाव अत्यन्त मृदु है। प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन अपनी सेना के द्वारा विमर्दित बहादुर शत्रु विन्ध्यकेतु के पराक्रम से अत्यन्त प्रभावित होकर मुक्तकण्ठ से उसके वीरता की सराहना करना और अपनी सेना के कठोर प्रहार से हुई शत्रु विन्ध्यकेतु के मृत्यु पर लज्जा का अनुभव करना, उदयन के अत्यन्त मृदु स्वभावी होने का परिचय कराता है।

राजा- रुमण्वन्, सत्पुरुषोचितं मार्गमनुगच्छतो यत् सत्यं व्रीडिता एव वयं विन्ध्यकेतोर्मरणे।⁵

रत्नावली में मदनमहोत्सव के अवसर पर गीत, संगीत, वाद्य एवं नृत्य आदि का उत्सवपूर्ण आयोजन तथा उसमें राजा उदयन की पूर्णमनोयोग से सहभागिता उदयन की कला के प्रति गहन अनुरक्ति को संकेतित करती है। वत्सदेश के अधिपति उदयन के वीरोचित स्वभाव का वर्णन भी नाटिकाओं में अभिवर्णित है। राजा उदयन का उदारतापूर्ण स्वभाव एवं परोपकारी प्रकृति उन्हें लोकप्रिय राजा के रूप में नाटिकाओं में अधिष्ठित करती है। राजा उदयन प्रियदर्शिका एवं रत्नावली दोनों नाटिकाओं में एक पुरुषार्थी नायक के रूप में उपस्थित होते हैं। पुरुषार्थ मनुष्य तथा समाज को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाला एक आदर्श विधान होता है। पुरुषार्थ ही मनुष्य तथा समाज के मध्य संबंधों की व्याख्या करता है और उन्हें नियमित बनाकर उनके पारस्परिक संबंध को नियंत्रित करता है। पुरुषार्थों का मुख्य उद्देश्य है, मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों के बीच सामंजस्य स्थापित करना। पुरुषार्थ चार प्रकार के माने जाते हैं - धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इनके अर्थ एवं काम पुरुषार्थ भौतिक सुखों के प्रतिनिधि होते हैं जबकि धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थ आध्यात्मिक सुख के साधन। पुरुषार्थों का सम्यक् अनुपालन मनुष्य के जीवन को पूर्णरूप से विकसित करता है। काव्य के शास्त्रज्ञ मनीषियों ने भी चतुर्विध पुरुषार्थों को काव्यों में प्रमुखता के साथ मान्यता दी गई है। काव्यालंकार के प्रणेता आचार्य भामह ने चतुर्वर्ग पुरुषार्थ को काव्य का प्रयोजन माना है।

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्।⁶

कतिपय आचार्यों के द्वारा मोक्ष पुरुषार्थ को छोड़कर त्रिवर्गपुरुषार्थ - धर्म, अर्थ एवं काम मात्र को ही प्रमुख पुरुषार्थ के रूप में अंगीकार किया गया है, इस पर नाट्यशास्त्र के सुधी विद्वान् दशरूपककार धनंजय अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं और उन्हें अल्पबुद्धि वाला मानकर दूर से ही नमस्कार के योग्य मानते हैं।

आनन्द नित्यंदिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।

योऽपीतिहासादिवदाहा साधुस्तस्मै नमः स्वादु परांगमुखाय।⁷

प्रस्तुत शोध पत्र में कविवर हर्षदेव विरचित प्रियदर्शिका एवं रत्नावली नाटिकाओं के नायक राजा उदयन के व्यक्तित्व में विद्यमान चतुर्विध पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को दिग्दर्शित करने का प्रयास किया गया है।

धर्म : पुरुषार्थों में धर्म का सर्वप्रथम स्थान माना जाता है। धर्म शब्द मूल रूप से 'धृ' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है - धारण करना अथवा अस्तित्व बनाए रखना। धर्म वह तत्त्व है जो मनुष्य तथा समाज के अस्तित्व को दृढ़तर बनाता है। महाभारत में धर्म को सभी प्राणियों के रक्षक के रूप में निरूपित किया गया है।

प्रभावार्थ च भूतानां धर्मः सृष्टः स्वयंभुवा।⁸

प्रियदर्शिका नाटिका के नायक राजा उदयन भी धर्म को अभीष्ट सिद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण साधन मानते हैं। **निर्व्याजादिव धर्मतः किमिव न प्राप्तं मया बन्धनात्।⁹**

प्रियदर्शिका एवं रत्नावली दोनों नाटिकाओं में वत्सराज उदयन को यद्यपि विविध प्रेम लीलाओं में अनुरक्त रहने वाले नायक के रूप में दर्शाया गया है। परन्तु, राजा उदयन अपने राजोचित स्वधर्म से कभी विमुख नहीं होते हैं। राजा उदयन अपनी प्रजा की रक्षा के लिए अपने सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं तथा प्रजा को संभाव्य उपद्रवों से सर्वथा मुक्त कर उनका भली-भाँति पालन-पोषण कर स्वयं के राजधर्म का निर्वाह करते हैं। रत्नावली नाटिका में राजा उदयन स्वयं कहते हैं -

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तोभरः । सम्यक् पालनपालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।।¹⁰

अर्थशास्त्रकार कौटिल्य ने भी स्वधर्म के पालन को स्वर्ग एवं मोक्ष का आधार माना है। **स्वधर्मः स्वर्गायान्त्याय च ।¹¹** अर्थशास्त्र में ही यह भी कहा गया है कि राजा का कर्तव्य है वह प्रजा को धर्म एवं कर्म के मार्ग से कभी पथभ्रष्ट न होने दे। अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखने वाला राजा लोक और परलोक दोनों में सुखी रहता है।

तस्मात् स्वधर्मभूतानाम् राजा न व्यभिचारयेत् । स्वधर्म संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ।।¹²

रत्नावली (सागरिका) के प्रेम में आसक्त रहते हुए भी राजा उदयन अपने राजधर्म के प्रति सदैव सचेत रहते हैं। रत्नावली के चतुर्थ अंक में अपने सेनापति के भगिनीपुत्र विजय वर्मा के द्वारा अपनी सेना की रोमांचक सफलता का समाचार सुनकर हर्षित होते हैं। कोशलदेश पर अपनी सेना के विजय की सूचना पाकर वे घटना को विस्तार से जानने के लिए लालायित हो जाते हैं। रत्नावली के चतुर्थ अंक में राजा उदयन के देवता विषयक आस्था के भाव को भी प्रकट किया गया है, जो राजा उदयन को धर्म-पुरुषार्थ से सम्पन्न होना बताता है। उज्जयिनी से आये हुए ऐन्द्रजालिक के द्वारा इन्द्रजाल के माध्यम से आकाश में उपस्थित किए गए विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं तथा देवराज इन्द्र को तथा सिद्धचारणों को उनकी पत्नियों के साथ नृत्य करते हुए देखकर आश्चर्यचकित होते हैं और रानी वासवदत्ता को इस दृश्य को दिखाते हुए कहते हैं -

राजा - आश्चर्यमाश्चर्यम्! देवि! पश्य -

एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंक्रोऽयं, दोर्भिर्दित्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः ।

एषोऽप्यैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथाऽन्ये, नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणरणन्पूरा दिव्यनार्यः ।।¹³

यहां पर राजा उदयन का देवविषयक आस्था का भाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार राजा उदयन के व्यक्तित्व में धर्म पुरुषार्थ के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

अर्थ : अर्थ पुरुषार्थ वह पुरुषार्थ है जिससे मनुष्य भौतिक सुखों एवं धन, ऐश्वर्य, शक्ति आदि को प्राप्त करता है। महाभारत में अर्थ पुरुषार्थ को 'परमधर्म' कहा गया है। अर्थ पर ही सभी वस्तुएं निर्भर करती हैं।

धनमाहुः परमम् धर्मा धने सर्वम् प्रतिष्ठितम् । जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः ।।¹⁴

अर्थशास्त्र में धन अर्थात् को प्रधानतत्त्व के रूप में निरूपित किया गया है और धन पर ही धर्म और काम पुरुषार्थ की आश्रितता बताई गई है। **अर्थ एव प्रधानः इति कौटिल्य । अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ।।¹⁵**

प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन के चरित्र में अर्थ पुरुषार्थ को उनके व्यक्तित्व के प्रमुख पक्ष के रूप में दर्शाया गया है। राजा उदयन का साम्राज्य धन-वैभव से परिपूर्ण है। नाट्य आदि के लिए बनी हुई विशाल नाट्यशालाएं दुष्यन्त के अर्थ सम्पन्नता को प्रमाणित करती हैं। एक अत्यन्त वैभवशाली नाट्य शाला का वर्णन करते हुए प्रियदर्शिका में कहा गया है -

आभाति रत्नशतशोभिशातकुम्भ-स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम् ।

अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभिः प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ।।¹⁶

अर्थात् अत्यन्त रमणीय तथा अप्सराओं के सदृश अद्वितीय रूप शोभा को धारण करने वाली युवतियों से युक्त नाट्यशाला के सुवर्णमय स्तम्भों पर स्थूल मुक्तक मालाएं लटक रहीं हैं जो सैकड़ों रत्नों से सुशोभित हो रही हैं। यहां राजा उदयन के अर्थ सम्पन्न वैभव का सुन्दर चित्रण किया गया है। राजा उदयन के राज्य में रानियां तो आभूषणों को धारण करती ही थीं, रानियों की दासियां भी मूल्यवान रत्नों से जड़ित आभूषणों से सजी-धजी रहती थीं।

पादैर्नूपुरिभिर्नितम्बफलकैः शिञ्जानकांचीगुणै-हारापादितकान्तिभिः स्तनतटैः केयूरिभिर्बाहुभिः ।

कर्णैः कुण्डलिभिः करैः सवल्लयैः सस्वस्तिकैर्मूर्धजैर्देवीनां परिचारिकापरिजनोप्येतुषु संदृश्यते ।।¹⁷

रत्नावली नाटिका में राजा उदयन की कौशाम्बी नगरी के धन-धान्य से परिपूर्ण बताते हुए उसे धनाधिपति कुबेर के सम्पूर्ण कोष को जीत लेने वाली बताया गया है ।

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुंकुमक्षेदगौरैर्हमालंकारभाभिर्भनमितशिखैः शेखरैः कैकिंरातैः ।

एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा-कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ।।¹⁸

अर्थात् कुबेर के सम्पूर्ण कोष को जीत लेने वाली पीतमय कांति से युक्त राजा उदयन की कौशाम्बी नगरी जिसमें सर्वत्र केसर रज के समान प्रातःकालीन सुन्दर छटा में बिखरे हुए सुगंधित अबीर और गुलाल के चूर्ण तथा सोने के पानी सी पुती हुई नागरिकों की वेशभूषाएं तथा स्वर्ण आभूषणों की कांति और अशोक के पुष्पों के भार से झुकी हुई राजा उदयन की कौशाम्बी नगरी की चोटियां मन को मोह लेती हैं । इस प्रकार प्रियदर्शिका एवं रत्नावली दोनों नाटिकाओं में राजा उदयन के अर्थ सम्पन्न वैभवपूर्ण विराट व्यक्तित्व का विवेचन किया गया है ।

काम : मानव जीवन की सहज इच्छाओं एवं प्रवृत्तियों से सम्बन्धित पुरुषार्थ काम कहलाता है । नैतिक आचरण की सहायता से धन की प्राप्ति कर उसके उपभोग के लिए मनुष्य जो उद्योग करता है, वही काम पुरुषार्थ है । महाभारत में काम को मन एवं हृदय के उस सुख रूप को कहा जाता है जो इन्द्रियों के विषयों से संयुक्त होने पर निःसृत होता है । इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च । विषये वर्तमानानां या प्रीतिरूप जायते । स काम इति में बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम् ।।¹⁹ काम पुरुषार्थ के लिए यह आवश्यक है कि वह धर्म और अर्थ से अविरोध को रखने वाला हो । “धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत”²⁰

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं को धर्म से अविरोद्ध काम के समान बतलाया है - “धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतवर्षभ”²¹ वत्सराज उदयन के व्यक्तित्व में काम विषय आचार-व्यवहार की बहुलता दिखाई पड़ती है । रत्नावली में नाटिका की नायिका सिंहलदेश की राजकुमारी सागरिका राजा उदयन की पूजा होते हुए देखकर साक्षात् देहधारी कामदेव के रूप में अनुभव करने लगती है और कहती है - “कथं प्रत्यक्ष एव भगवान्कुसुमायुध इह पूजां प्रतीच्छति । अस्माकं तातस्यान्तःपुरे पुनाश्चितेगतोऽर्च्यते । तदहमतीह स्थितैवैभिः कुसुमर्भगवन्तं कुसुमायुधं पूजयिष्ये ।।”²² राजा उदयन अपनी रानी वासवदत्ता से अत्यधिक प्रेम करते हैं । वह रानी की प्रशंसा करते हुए उन्हें कामदेव के पास में स्थित धनुर्लता के समान बताते हैं -

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् । आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।²³

उदयन चित्रफलक में चित्रित रूपसी नायिका सागरिका के चित्र को अपने चित्र के साथ देखकर मोहित हो जाते हैं । राजा उदयन सागरिका से मिलन के सुखकाल का स्मरण कर व्याकुल हो जाते हैं और कहते हैं कि - अहो महदाश्चर्यम्, मनश्चलं प्रकृत्यैवे दुलक्ष्यं च तथापि मे । कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शितीमुखैः ।।²⁴

अर्थात् यह महान् आश्चर्य है कि राजा उदयन का मन प्रकृति से ही चंचल और दुर्बल है, फिर भी मेरा वह मन कामदेव ने अपने सभी बाणों से एक साथ वेध दिया है । यहां राजा उदयन के काम विषयक चेष्टाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है । प्रियदर्शिका में भी राजा उदयन आरण्यका के रूप-दर्शन पर मुग्ध हो जाते हैं । जब राजा उदयन को पता चलता है कि वह अविवाहिता है तो अतिप्रसन्न हो जाते हैं और कहते हैं कि यह अविवाहिता कन्या है । इसके दर्शन में कोई दोष नहीं है, अब हम पूर्ण विस्रब्ध भाव से इसे देखेंगे ।

“वयस्य, निर्दोषदर्शना कन्यका खल्वियम् । विस्रब्धमिदानीं पश्यामः ।।”²⁵

प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में राजा उदयन और आरण्यका के मिलन की योजना बनाई जाती है, जिसमें राजा उदयन और रानी वासवदत्ता के चरित पर केन्द्रित अभिनय होता है। इस नाटक में वासवदत्ता के रूप में आरण्यका को और उदयन के रूप में दासी मनोरमा को अभिनय करने का उद्योग निश्चित होता है। इसी क्रम में मनोरमा के द्वारा यह कहा जाता है कि उसके स्थान पर यदि वस्त्र-आभूषण आदि पहनकर राजा उदयन स्वयं उस नाटक में अपने ही अभिनय का स्वांग करें तो वह आरण्यका के साथ समागम का सुख-भोग सकते हैं। मनोरमा की इस योजना पर राजा उदयन अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं।²⁶ यहां पर राजा उदयन में विद्यमान कामभाव के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटिकाओं में राजा उदयन के काम पुरुषार्थ का वर्णन अन्य विविध स्थानों पर भी प्रचुरता से प्राप्त होता है।

मोक्ष : भारतीय चिन्तन प्रक्रिया में मोक्ष को जीवन का चरम-लक्ष्य स्वीकार किया गया है। मोक्ष की प्राप्ति सभी का परम् साध्य है। मोक्ष का सामान्य अर्थ यह है कि जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति पाकर आत्मा का परमात्मा में विलीन हो जाना और अनन्त आनन्द की अनुभूति करना। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं - सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज । अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।²⁷

अर्थात् संसार के सभी धर्मों को छोड़कर प्राणी आदि श्रीकृष्ण के शरण में शरणागत हो जाता है, तो उसे श्रीकृष्ण सांसारिक चक्र से मुक्त कर देते हैं। वह असीम आनन्द को प्राप्त हो जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है - रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।²⁸ अर्थात् प्रेम ही आनन्द है जो उस प्रेम को प्राप्त कर लेता है, वही आनन्दी कहलाता है। नाट्यवेत्ता धनञ्जय ने परमानन्द रूप रसास्वादन को ही दशरूपकों का फल बताया है। “स्वसंवेद्यः परमानन्दरूपो, रसास्वादो दशरूपाणां फलं”²⁹ इस प्रकार नाटक-नाटिका आदि में रस की प्रतीति ही परमानन्द की प्राप्ति है। यही मोक्ष की अवस्था है।

रत्नावली नाटिका में सागरिका के विरह में व्याकुल राजा उदयन जब सागरिका की अग्निदाह से रक्षा करते हुए उससे मिलते हैं तो उन्हें अतीव आनन्द की अनुभूति होती है। वे कहते हैं -

नयामि भवतीमितः प्रियतमे-कलम्बस्व माम् । (कण्ठे गृहीत्वा निमीलिताक्षः स्पर्शमुखं नाटयन्)

अहो सणान्मेऽपगतो-यं सन्तापः । प्रिये समाश्वतिहि समाश्वसिहि ।

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः । यतः सन्तापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ।।³⁰

अर्थात् हे प्रिये रत्नावली! तुम्हें अग्नि से बचाकर मैं तुझे अन्यत्र ले जा रहा हूं। तुम मुझे पकड़ लो। उदयन कहते हैं कि यह अग्नि अब तुम्हें नहीं जला रही है, बल्कि तुम्हारा स्पर्श मेरे सन्ताप को दूर कर रहा है। यहां पर प्रेम के शीतलतादायक आनन्द से अग्नि का ताप भी प्रभावहीन होता हुआ दिखाया गया है। नाट्य ग्रंथों के यही परमानन्द की अवस्था धनञ्जय आदि सुधी मनीषियों को मोक्ष के रूप में अभिप्रेत है।

प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन और वासवदत्ता के रूप में आरण्यका के नाट्य मंचन के क्रम में उदयन और आरण्यका के मध्य रसानुभूति की चरमावस्था का निरूपण किया गया है। आरण्यका जब अपना हाथ उदयन को सौंपती है, तब उदयन अतीवानन्द की अनुभूति से भर जाता है और उन्हें आरण्यका के हाथ की पसीने की बूंदें अमृत के समान प्रतीत होने लगती हैं।

राजा - (आरण्यकाया हस्तं गृहीत्वा)

सद्योऽवश्यायबिन्दुव्यतिकरशिशिरः किं भवेत्पद्मकोशो, ह्लादित्वं नास्य मन्ये सदृशमिदमुषस्येव वीतातस्य । मुञ्चन्त्येते हिमौघं नखरजनिकराः पञ्च किं सोऽपि दाही । ज्ञातं स्वेदापदेशादविरतममृतं स्पन्दते व्यक्तमेतत् ।।³¹

यहां पर भी प्रेमी-प्रेमिका मिलनजन्य आनन्द की चरमावस्था का वर्णन धनञ्जयाभिमत मोक्ष की अवस्था का स्मरण दिलाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्री हर्षवर्धन कृत संस्कृत की दोनों नाटिकाओं रत्नावली एवं प्रियदर्शिका के नायक राजा उदयन के व्यक्तित्व में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चतुर्वर्ग पुरुषार्थ के दर्शन होते हैं। राजा उदयन अपने राजोचित धर्म का पालन करते हुए धन-धान्य से परिपूर्ण राज्य का निर्माण करते हैं तथा अपनी इच्छाओं को पूर्ण करते हुए प्रेम की चरमावस्था जिसे नाट्यशास्त्रियों ने मोक्ष के समान बताया है, उसे प्राप्त करने में सफल होते हैं। इतिशम्

संदर्भ -

1. रत्नावली 1/5
2. साहित्यदर्पण, 6/269
3. साहित्यदर्पण, 3/33-I
4. रत्नावली 1/9-I
5. प्रियदर्शिका पृ. 16
6. काव्यालंकार 1/
7. दशरूपक 1/
8. महाभारत-शांतिपर्व 90/19
9. प्रियदर्शिका 1/6
10. रत्नावली 1/9
11. अर्थशास्त्र 1/
12. अर्थशास्त्र 1/2/3
13. रत्नावली 4/11
14. महाभारत, उद्योगपर्व 72/23
15. अर्थशास्त्र, 1/राजर्षिवृत्त-2
16. प्रियदर्शिका, 3/2
17. प्रियदर्शिका, 3/4
18. रत्नावली, 1/10
19. महाभारत, वनपर्व 37-39
20. अर्थशास्त्र - प्रथमाधिकरण-राजर्षिवृत्तं
21. श्रीमद्भगवद् गीता 7/11
22. रत्नावली पृ. 39
23. रत्नावली 1/19
24. रत्नावली 3/2
25. प्रियदर्शिका पृ. 32
26. प्रियदर्शिका पृ. 59
27. श्रीमद्भगवद् गीता 18/66
28. तैत्तिरीयोपनिषद्
29. दशरूपक, पृ. 7
30. रत्नावली 4/17-18
31. प्रियदर्शिका 3/11

23

दृढसमाधानम्

रामहेत गौतम

नागानन्द एक ऐसा नाटक है जिसमें बुद्ध की करुणा से युक्त जीमूतवाहन बोधिसत्त्व हो जाता है। बोधिसत्त्व जिसको अपने धैर्य व दयाभाव से जीतता है वह है गरुण जो कि बदले के भाव में अंधा हो चुका है और नागों को खा-खाकर हड्डियों के पहाड़ खड़े कर देता है। बदले के भाव से जलता समाज विनाश की ओर जा रहा है। इस विनाश को बदले की भावना के साथ हिंसा से नहीं रोका जा सकता। यदि रोका जा सकता है तो दृढ समाधान से। दृढ समाधान औचित्य विचार पूर्वक लिया गया निर्णय है। वही लोकोपकारी है। लोकोपकार का भाव ही इस नागानन्द नाटक का केन्द्रीय तत्त्व है। यही बोधिसत्त्व भाव है, प्रेम है। इस नाटक का नायक जीमूतवाहन स्वयं एक बोधिसत्त्व है। जैसा कि नाटक के आरम्भ में ही सूत्रधार कहता है कि—

‘यत्तदसमत्त्वामिना श्रीहर्षदेवेनापूर्ववस्तुरचनोलङ्कृतं विद्याधरजातकप्रतिबद्धं नागानन्दं नाम नाटकं कृतमित्यस्माभिः श्रोत्रपरम्परया श्रुतं, न च प्रयोगतो दृष्टम्।’¹ बोधिसत्त्व के जीवन का मुख्य उद्देश्य लोक को सुधारना है। अगर कोई हिंसक सामाजिकों को दुःख पहुँचा रहा है तो उससे बदला लेना अथवा दण्डित करना बोधिसत्त्व का काम नहीं है बल्कि उसे यह बोध कराना है कि वह कहाँ और किस प्रकार गलत है। तथा किस प्रकार अपनी गलतियों को सुधार सकता है। बुद्ध का वचन ही है कि ‘न हि वेरेन वेरानि संमंदीध कुदाचनं, अवेरेन च संमंती, एस धंमो सनंतनो।’² जातक कथाओं के अनुसार शुद्धोदन कुमार सुकिति (सिद्धार्थ) के रूप में जन्म के पूर्व अनेक जातकों का जन्म हुआ। वे बोधिसत्त्व कहलाये। प्रत्येक जातक ने लोकहित के लिए जीवन जिया है। सुकिति(सिद्धार्थ) बोधिसत्त्व जब बोध के लिए बोधिवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न(समाधिस्थ) थे तब मार आदि ने उन्हें बाधित किया। उसी दृश्य का प्रयोग करते हुए कवि अपने इस नाटक में नान्दी करते हुए लिखते हैं कि—

ध्यान-ब्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि। (नान्दी)
मिथ्या कारुणिकोसि निर्धृणतरस्त्वत्तः कुकोन्यः पुमा-
न्नेषज्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः।।³

समाधि के बहाने तू किस (ललना) का ध्यान कर रहा है? क्षणभर आँख खोलकर काम के बाणों से विह्वल इस जन की (हमारी) ओर तो देख, रक्षक होता हुआ भी तू!(हमारी) रक्षा नहीं करता, तू झूठे ही दयालू कहलाता है, तुझसे अधिक निष्ठुर पुरुष और कौन होगा? इस प्रकार काम की स्त्रियों से ईर्ष्या पूर्वक संबोधित समाधि में मग्न भगवान् बुद्ध तुम्हारी रक्षा करें।

सूत्रधार कहता है कि कुशल कवि श्री हर्षदेव की गुणग्राही सभा में नाट्यकला निपुण नटों के द्वारा तत्त्वज्ञानी जीमूतवाहन के चरित को प्रस्तुत करने का उपक्रम सुधी दर्शकों और सामाजिकों को मनोहर व अभीष्ट फल 'क्लेशों से विरक्ति' देने वाला होगा।¹ भरत मुनि ने भी नाट्य के प्रयोजनों में दुःख, श्रम व शोक से विश्रान्ति को स्वीकार किया है। नाटक का आरम्भ भी क्लेशविह्वल नटी के रुदन तथा विरक्ति में घर त्याग से होता है। आँसू बहाती हुई नटी को समझाते हुए सूत्रधार कहता है² कि -

-आयज्ये! नागानन्दे नाटयितव्ये किमिदमकारणमेव रुद्यते?

नटी-आयज्य! कथं न रोदिष्यामीति। यतस्तावत् तात आयज्यया सह स्थविरभावं ज्ञात्वा

अदूरजातनिर्वेदः, कुटुम्बभारोद्धनयोग्य इदानीं त्वमिति हृदये वितकज्यं तपोवनं गतः।

सूत्रधार-(सनिर्वेदम्) अये! कथं मां परित्यज्य तपोवनं यातौ पितरौ, तत् किमिदानीं युज्यते?

(विचिन्त्य) अथवा कथमहं गुरुचरण-परिचयज्या-सुखं परित्यज्य गृहे तिष्ठामि? कुतः?

विधातुं पितृशुश्रूषां त्यक्तुवैश्वर्यं क्रमागतम्।

वनं याम्यहमद्यैव यथा जीमूतवाहनः।।

(ततः प्रविशति नायको विदूषकश्च)

नायक :- रागस्यास्पदमित्यवैमि न हि मे ध्वंसाति न प्रत्ययः, कृत्याकृत्यविचारणासु विमुखं को वा न वेत्ति क्षितौ। एवं निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं, भक्त्या याति यदीत्यमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे।।

इस संवाद में हम पाते हैं कि विरक्ति की बात प्रमुखता से उभरती है और नाटक के अन्त तक बनी रहती है। नायक ऐश्वर्यभोग व प्रशासनिक दायित्व के भार को अपने बुजुर्ग माता-पिता की देख-भाल, सेवा सुश्रूषा से वंचना का कारण नहीं बनने देना चाहता। जबकि चतुर्थ अङ्क में नागराज वासुकी नागों की रक्षा के नाम पर प्रतिदिन एक नाग को हत्यारे गरुण का ग्रास बनने के लिए भेजने की शर्त पर स्वयं सत्तासुख भोगता है।³ नायक जीमूतवाहन अपने माता-पिता आदि बुजुर्गों के प्रति स्व दायित्व बोध के साथ-साथ समाज व राष्ट्र के प्रति भी उसे अपने दायित्व का पता है। इसीलिए मित्रावसु उसके गुणों की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि-

यद्विधाधरराजवंशतिलकः प्राज्ञः सतां सम्मतो, रूपेणाप्रतिमः पराक्रमधनो विद्वान् विनीतो युवा।

यच्चासूनपि सन्त्यजेत् करुणया सत्त्वार्थमभ्युद्यत-स्तेनास्मै ददतः स्वसारमनुला तुष्टिर्विषादश्च मे।।⁴

यहाँ हम देखते हैं कि मित्रावसु अपनी बहिन के लिए वर योग्यगुणों की दृष्टि से जीमूतवाहन के व्यक्तित्व से संतुष्ट है परन्तु 'प्राणियों की रक्षार्थ अपनी जान की बाजी लगा देने' वाली पृकति उसको व्यथित करती है। जीमूतवाहन किसी को धोखा नहीं दे सकता। प्रेम के मामले में भी वह किसी को अंधेरे में नहीं रखना चाहता अतः अपने लिए आये विवाह के प्रस्ताव को लेकर स्पष्ट कह देता है कि- 'क इह नेच्छद् भवद्भिः सह श्लाघ्यमीदृशं सम्बन्धम्? किन्तु न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यतः प्रवतञ्जितुं, ततो नाहमेनां प्रतिग्रहीतुमुत्सहे'। जब रुष्ट नायिका जब फाँसी लगाती है तो उसे हाथ पकड़कर रोकता है, तथा नायिका के कथन- 'कस्त्वं निवारयितुम्? मरणेपि किं त्वमेवाभ्यर्थनीयः?' पर नायक कहता है कि- नाहं मुञ्चामि। कण्ठे हारलतायोग्ये येन पाशस्त्वयोर्पितः। गृहीतः सापराधोयं कथं ते मुच्यते करः।।⁵ इससे ज्ञात होता है कि जीमूतवाहन नीतिज्ञ होने का साथ साथ चतुर प्रेमी भी है। मित्रावसु के प्रस्ताव को नायक के माता-पिता द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर मलयवती से विवाह की तैयारी को लेकर जीमूतवाहन कहता है कि-

अन्योन्यदर्शनकृतः समानरूपानुरागकुलवयसाम्। केषाञ्चिदेव मन्ये समागमो भवति पुण्यवताम्।।⁶

वर तथा कन्या के रूप, प्रेम, कुल तथा अवस्था की समानता होना सौभाग्य की बात है। अतः अपने गृहस्थजीवन की शुरुआत के विषय में नायक खुश है। जब जीमूतवाहन को जब खबर मिलती है कि उसकी सत्ता छिन सकती है तो वह व्यग्र या उग्र न होकर शान्त ही रहता है। शत्रु मतङ्ग के आक्रमण की खबर देते हुए मित्रावसु युद्ध हेतु अनुमति चाहता है तो जीमूतवाहन कहता है कि अपने व्यक्तिगत राज्यभोग के लिए प्राणिवध जैसे क्रूरकर्म की अनुमति कैसे दी जा सकती है।¹⁰ क्योंकि 'अपि च, क्लेशान् विहाय मम शत्रुबुद्धिरेव नान्यत्र। यदि त्वमस्मत्प्रियं कर्तुमीहसे, तदनुकम्पयतामसौ राज्यस्य कृते क्लेशदासीकृतस्तपस्वी'। यद्यपि एक राजा की दृष्टि से शत्रु के हमले का प्रतिकार न करना एक बहुत बड़ा दोष है परन्तु याद रखना होगा कि जीमूतवाहन एक बोधिसत्त्व है वह युद्ध से विरत है। अतः यह उसके बोधिसत्त्व का प्रधान गुण हो जाता है। जो कि बाद में नागों की प्राणरक्षा कर गरुण जैसे हिंसक को भी हिंसा से विरत करने वाला एक उपदेशक बन जाता है। मतंग के प्रतिकार के निषेध से खिन्न मित्रावसु को समझाते हुए जीमूतवाहन कहता है कि सभी दिशाओं के आलोकित कर सबका हित करने वाला सूर्य धन्य है।¹¹ इससे ज्ञात होता है कि नायक एक मात्र परोपकार के लिए समर्पित है। मलयगिरि व समुद्र दर्शन के समय आस-पास के सुरम्य वातावरण में भी परोपकार का अवसर खोजता है।¹² हिमाच्छादित मलय की चोटियों का भ्रम होने पर मित्रावसु जीमूतवाहन को बताता है कि यह हिमचोटी नहीं, नागों की हड्डियों का ढेर हैं। कहते हैं कि पाताल के नागों को गरुण प्रतिदिन उठा ले जाता है और खाने के बाद यहीं उसकी हड्डियाँ फेंक देता है। उन्हीं हड्डियों का ढेर है यह। गरुण के नागलोक आने से अनेक नाग भय आदि के कारण ही मर जाया करते थे। अतः नागों के राजा बासुकि ने गरुण से कहा कि वे नागलोक न आयें। उनके भोजन के लिए यहाँ से प्रतिदिन एक नाग गरुण के पास पहुँचा दिया जायेगा। तब से यह सिलसिला जारी है। इस विषय पर मित्रावसु और जीमूतवाहन के मध्य कुछ इस प्रकार संवाद¹³ होता है-
यह सब सुन जीमूतवाहन कहता है कि -

कष्टमेवं रक्षिता नागराजेन पन्नगाः ?

जिह्वासहस्रद्वितयस्य मध्ये नैकोपि सा तस्य किमस्ति जिह्वा ।

एकाहिरक्षार्थमहिद्विषेध दत्तो मयात्मेति यया ब्रवीति ? । ।

मित्रावसु - प्रतिपन्नं तत् पक्षिराजेन-

इत्येष भोगिपतिना विहितव्यस्थो

यान् भक्षयत्यहिपतीन् पतगाधिराजः ।

यास्यन्ति यान्ति च गताश्च दिनैर्विवृद्धिं

तेषामपी तुहिनशैलरुचोस्थिकूटाः । ।

नायकः आश्चर्यम्-

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।

शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ! । ।

अहो ! कष्टमनवसानेयं विपत्तिर्नागानाम् ।

(आत्मगतम्) अपि शक्नुयामहं स्वशरीरसमर्पणेन एकस्यापि नागस्य प्राणपरिरक्षां कर्तुम् ?

इस प्रकार विचार-विमर्श करता हुआ जीमूतवाहन पर्वत की चोटी से सागर की ओर उतर ही रहा था कि अचानक किसी का विलाप सुनाई देता है-

‘(नेपथ्ये) हा पुत्तअ संखचूड! कहं वावादिस माणो अज्ज किल तुमं मए पेक्खिदव्वो?’

‘हा पुत्तक शङ्खचूड! कथं व्यापायमानोद्य किल त्वं मया प्रेक्षितव्य’

रोती हुई बुढ़िया के पीछे शंखचूड और दो वस्त्रों को छिपाये नौकर का प्रवेश होता है।

वृद्धा-(सास्रम्) हा पुत्तअ संखचूड! कहं वावादिसमाणो अज्ज किल तुम मए पेक्खिदव्वो? (चिबुकं गृहीत्वा) इमिणा मुहचंदेण विरहिअं दाणिं अंधआरी भविस्सदि पाआलं।

इस प्रकार मां-बेटे के विलाप एवं किङ्कर द्वारा राजा वासुकि की राजाज्ञा को सुनकर जीमूतवाहन भाँप जाता है कि आज इसे मरने के लिए छोड़ दिया गया है। इस अवसर पर जीमूतवाहन विचार करता है कि- ‘अहो मैर्ष्यं गरुत्मतः! अपि च- —चञ्चुर्नैव खगाधिपस्य हृदयं वज्रेण मन्ये कृतम्’। आतञ्ज कण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबन्धुभिः। त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः?।।¹⁴

फिर कहता है कि मैं करूँगा इसकी रक्षा। तब वृद्धा और जीमूतवाहन की वार्तालाप को सुन शङ्खचूड कहता है कि- मा डरो मत यह नागशत्रु नहीं हैं। क्योंकि- कहाँ तो नागरक्तरञ्जित चौंच वाला गरुण और कहाँ चन्द्र सा सौम्य स्वभाव वाले ये महाजन।¹⁵ जीमूतवाहन भी कहता है कि मैं शंखचूख की रक्षा करूँगा अतः यह वध्यचिह्न मुझे दे दो, शंखचूड के स्थान पर मैं जाता हूँ। ऐसा सुन शङ्खचूड कहता है कि दृजिन प्राणों को बचाने के लिए विश्वामित्रादि ने अपने धर्म तक को छोड़ दिया। परन्तु जीमूतवाहन इन प्राणों को दूसरों की प्राणरक्षा के लिए अर्पित कर देता है। लोकहित के लिए समर्पित लोग कम ही पैदे हैं उनका जीवित रहना अधिक जरूरी होता है।¹⁶ वद्धचिन्न लेकर बध्यस्थल पर जाने के दृढ़निश्चय के आगे शङ्खचूड भी जब जिद कर बैठा कि वह अपने बदले इस लोकोपकारी को मरने नहीं दे सकता। मरघट की बीभत्सता भी रोंगटे खड़े कर देने वाली है- चञ्चू-चञ्चूद्वृतार्थच्युतपिशित-लबग्रास-संवृद्ध-गर्द्धै-गृधैराबद्ध-पक्ष-द्वितय-विधुतिभिर्-बद्ध-सान्द्रान्धकारे। वक्तोद्धान्ताः पतन्त्यश्लमिति शिखिशिखाश्रेणयोस्मिन् शिवाना-मस्र-स्रोतस्यजस्र-रूत-बहलवसावासविस्रे स्वनन्ति।।¹⁷

यह भयानक ‘य तथा शङ्खचूड व उसकी मां का करुण क्रन्दन व जीमूतवाहन को समझाना आदि चल ही रहा होता है कि तभी कञ्चुकी आकर मित्रावसु की माँ द्वारा भेजा गया लाल वस्त्रों का जोड़ा जीमूतवाहन के हाथों में थमा देता है। इस जोड़े को पाकर वह शङ्खचूड की प्राणरक्षा वाले मनोरथ में अपने विवाह की सफलता को समझता हुआ विचार करता है कि ‘सफलीभूतो मे मलयवत्याः पाणिग्रहः’ उधर विलखता शङ्खचूड मरने से पहले देवदर्शन के लिए अपनी माँ के साथ भगवान् गोकर्ण की प्रदक्षिणा करने चला जाता है। तभी अचानक बवंडर उठता देख गरुण के आगमन को भाँपकर जीमूतवाहन लाल कपड़े को ओढ़ वध्यस्थल पर जा बैठता है। इस लोकोपकार के समय जन्म से अधिक लोकहित के लिए मरमिटने का सुखानुभव माँ की गोद के सुख की अपेक्षा अधिक प्रिय लगता है। गरुण आकर उसे उठा ले जाता है और लोकोपकारी की प्रशंसा में आकाश से पुष्पवर्षा के साथ नगाड़े बजने लगते हैं। परन्तु दम्भी हिंसक गरुण यहाँ भी अपने बल के भ्रम में खुश होता है। और सोचता है कि आज तो नागों के नाश की लालस पूरी हो जायेगी। ‘नागानां रक्षितां भाति गुरुरेष यथा मम। तथा सर्पाशनाकाङ्क्षां व्यक्तमद्वपनेष्यति’।¹⁸ उधर जीमूतवाहन के पिता जीमूतकेतु पुत्रवधू मलयवती की सेवा सुश्रूषा से संतुष्ट होकर कहता है कि जो कुछ अभिलाषा थी सो पूरी हुई। अब केवल मुक्ति ही वांछनीय है।¹⁹ इतना कहा ही था कि तभी सुनन्द अचानक पास आकर कहता है कि- ‘जीमूतवाहनस्य’ ऐसा सुनते ही सभी बेचौन हो उठते हैं। और प्रार्थना करते हैं कि- ‘त्रिभुवनैकचक्षुर्भगवान् सहस्रदीधितिः स्फरन् जीमूतवाहनस्य श्रेयः करिष्यति’²⁰ तभी आसमान से रक्तरंजित चूडामणि पैरों के पास आकर गिरती है। जीमूतकेतु वृद्धा, मलयवती सभी घबरा जाते हैं। तभी सुनन्द कहता है कि यह तो रोज की बात है।

ताकञ्च्येण भक्ष्यमाणानां पन्नगानामनेकशः । उल्कारूपाः पतन्त्येते शिरोमणय ईदृशाः ।²¹

यहाँ सुनन्द के कथन से पता चलता है कि वहाँ के निवासियों ने इसे अपनी नियति मान लिया है। अतः अब उनमें इस घटना से अधिक छोभ पैदा नहीं होता। जीमूतकेतु भी उस चूडामणि को देखकर दूर से ही नागों की होने का अनुमान लगाता कि तभी करुण क्रन्दन करते हुए शंखचूड के अस्पष्ट शब्दों से भ्रम की स्थिति में जीमूतवाहन के सुरक्षित होने के अनुमान के साथ जीमूतकेतु, मलयवती आदि कुछ राहत की सांस लेते हैं कि तभी शंखचूड के साथ स्पष्ट वार्ता होने पर स्पष्ट हो जाता है कि शंखचूड के प्राण रक्षा में जीमूतवाहन ने अपने प्राणों को दाव पर लगा दिया है। सभी बेहोश हो जाते हैं। होश में आने पर सभी पुनः करुण विलाप करते हुए जीमूतकेतु जीमूतवाहन के वियोग में स्वयं के दाहसंस्कार के लिए की अग्निहोत्रियों के घर से अग्नि मंगाते हैं।

उधर गरुण जीमूतवाहन के धैर्य को देखकर अधीर हो उठता है। सोचता है कि मैंने इसका इतना अपकार किया फिर भी यह परोपकारियों की तरह खेद रहित ही दिख रहा है। गरुण को पीछे हटते देखकर नायक कहता है कि- शिराओं से चूर रहा है लहू अभी भी, और बचा हुआ है माँस भी तो। अभी तुम भी तो छके हुए नहीं लगते, अभी और खाओ पीछे क्यों उसटते हो गरुण! यह सब सुन गरुण कहता है कि तुम्हारा कलेजा फाड़कर निकाला लहू हमने, और तुमने ऐसी बात कर दी कि हमारा तो दिल ही बाहर आ गया।²² नायक पुनः कहता है कि एवं क्षुदुपतप्तो न श्रवणयोग्यस्त्वम् । कुरुष्व तावत् मम मांसशोणितेन तृप्तिम् । (अभी भी तुम बहुते भूखे हो, मेरी बात तो समझने से रहे, अतः अभी और खा लो। तभी शंखचूड आकर कहता है कि यह तो मेरे बदले मारे गये हैं। तब दोनों को देखकर गरुण कहता है कि अरे आज तो कपड़ों से पहचानने के चक्कर में मैं धोखा खा गया। अरे रे! आज मैंने किसे मार दिया। जिसकी यशोगाथा चारों दिशाओं में गाई जाती हो उस विद्याधर को मारकर आज मैं पाप-पंक में फंस गया हूँ। (सर्वथा महत्यहं पङ्के निमग्नोस्मि)²³

इससे यह पता चलता है कि गरुण के लिए नागों को मारना आम बात है परन्तु विद्याधरों को मारना पाप कर्म है। साथ ही विद्याधर नागपुत्र शङ्खचूड के जैसा ही एक आदमी है कोई जमीन पर रेंगने वाला जन्तु नहीं तभी तो कपड़ों भर का अन्तर न रहने पर नाग के भ्रम में विद्याधर को उठा लिया जाता है। इस घटनाक्रम में जहाँ शङ्खचूड नाग अपने बदले में विद्याधर की मौत को देख स्वयं को नरक पतित समझता है। इसमें समाज में ऊँच-नीच के भाव का बोध होता है। इतना ही नहीं एक विद्याधर को मार देने का अफसोस गरुण को भी होता है। परन्तु नागों की मौत का नहीं।

गरुण अये! करुणार्द्रचेतसा अनेन महात्मना अस्मद्ग्रासगोचर-पतितस्यास्य फणिनः प्राणान् रक्षितुं स्वदेह आहारार्थमुपनीतः । तन्महदकृत्यमेतन्मया कृतम् । किं बहुना, बोधिसत्व एवायं व्यापादितः । तस्य महतः पापस्याग्निप्रवेशादृते नान्यत् प्रायश्चित्तं पश्यामि । तत् क्व नु खलु वह्निं समासादयामि?(अहो, मेरे मुख का निवाला बने उस नाग को बचाने के लिए इस दयालु आदमी ने अपनी जान दे दी। मैंने ये क्या कर दिया, महात्मा बोधिसत्व को ही मार दिया। इस महापाप का प्रायश्चित्त आत्मदाह के अलावा और कुछ भी नहीं।)

उधर जीमूतवाहन की हालत देख उसके परिजन विलाप करते हैं। पिता जीमूतकेतु विलाप करते हुए अपने-पराये का भेद तुम नहीं करते थे यह तो समझ आता है, परन्तु बहुतों की जान बचाई जाए अथवा एक की यह विचार तुमने क्यों नहीं किया पुत्र! एक नाग को बचाने के लिए तुमने अपने माता-पिता तथा पत्नी को मरने के लिए छोड़ पूरे कुल को ही नष्ट कर दिया।²⁴

गरुण इतना तो अच्छे से जानता है कि किसी की हत्या लज्जास्पद काम है, अतः वह जीमूतकेतु को अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता। वह लज्जावश अपने-आप को आग में जला देना चाहता है। 'तत् किमेतदीयेनाग्निना आत्मानमुद्दीपयामि? न शक्नोम्यस्य पुत्र्याताल्लज्जया मुखं दर्शयितुम्'²⁵ अब विचारणीय प्रश्न

यह है कि गरुण के लिए नागों को मारना पापकर नहीं लगता जबकि विद्याधरों को मारना पापकर लगता है। यह मनोवृत्ति केवल गरुण की नहीं है बदले की आग में जल रहे प्रत्येक व्यक्ति की है। आगे जीमूतवाहन कहता है कि 'भोः पक्षिराज! अलमनेनाध्यवसायेन, नायं प्रतीकारोस्य पाप्मनः।'।

इस घटनाक्रम में जीमूतवाहन की करुणा के आगे गरुण की बदले की आग शमित हो जाती है। और गरुण कृताञ्जलि होकर पूछता है कि 'भो महात्मन्! कस्तर्हि कथ्यताम्।'।

यहाँ हमें बोधिसत्त्व देखने को मिलता है। जिसके आगे हिंसक भी समर्पण कर दे। यह घटनाक्रम देख जीमूतकेतु हर्षित होकर कहते हैं कि- 'देवि! दिष्ट्या वदञ्धसे। अयमसौ वत्सो जीमूतवाहनो न केवलं ध्रियते, प्रत्युत पुरः कृताञ्जलिना गरुणेन शिष्येणेव पर्ययुपास्यमानस्तिष्ठति।'।

जीमूतवाहन के परिजन उसे जीवित देख अभी किंचित्मात्र खुश ही हुए थे कि तभी वह मूचिञ्छत हो जाता है। और पुनः चीख-पुकार मच जाती है। जहाँ एक ओर शंखचूड अपने आप को दोषी ठहराता है तो वहीं गरुण कहता है कि 'सर्वमिदं मम नृशेसस्यासमीक्ष्यकारिताया विजृम्भितम्।'। इतना ही नहीं जीमूतवाहन के परिजन गरुण को कोसते हैं तो होश में आने पर नायक जीमूतवाहन देह की नश्वरता के संबन्ध में कहता है कि

मेदोस्थि-मांस-मज्जोसृक्-सङ्घातेस्मिंस्त्वचोवृते ।

शरीरनाम्नि का शाभा सदा बीभत्सदर्शने? ।।²⁶

गरुण भी शिष्यभाव से निवेदन करता है कि-

भो महात्मन्! नरकानल-ज्वालावलीढमिवात्मानं मन्यमानो दुःखं तिष्ठामि। तदुपदिश्यतां, येन मुच्येहमस्मादेनसः। पिता से अनुमति पूर्वक जीमूतवाहन गरुण को समझाता है कि-

नित्यं प्राणाभिघातात् प्रतिविरम कुरु प्राकृते चानुतापं ।

यस्मात् पुण्यप्रवाहं समुपचिनु दिशन् सर्वसत्त्वेष्वभीतिम् ।

मग्नं येनात्र नैनः फलति परिमितप्राणिर्हिंसात्तमेतद्

दुर्गाधापारवारेर्लवणपलमिव क्षिप्तमन्तहृदस्य ।।²⁷

प्राण हरण न करण प्रण, पूर्व पाप अनुताप ।

निर्मल झीलहि नमक वत, न फैले तव इ पाप ।।

गरुण भी स्वीकार करते हुए - अज्ञान-निद्राशयितो भवता प्रतिबोधितः। सर्वप्राणिवधादेष विरतोऽद्य प्रभृत्यहम् ।। इतना ही नहीं अब नाग समाज यथेच्छ विचरण कर सकेगा-

क्वचिद्वीपाकारः पुलिनविलुलैर्भोगनिवहैः कृतावतज्जभ्रान्तिर्वलयितशरीरः क्वचिदपि ।

व्रजन् कूलात् कूलं क्वचिदपि च सेतुप्रतिसमः समाजो नागनां विहरतु महोदन्वति सुखम् ।।

अपि च

स्रस्तानापादलम्बान् तिमिरचयनिभान् केशहस्तान् वहन्त्यः

सिन्दूरेणेव दिग्धैः प्रथमरविकरस्पर्शताम्रैः कपोलैः ।

आयासेनालसाङ्गयोप्यवगणितरुजः कानने चन्दनाना-

मस्मिन् गायन्तु रागादुगयुवतयः कीर्तिज्जमेतां तवैव ।।²⁸

पहाड़ से भोगनिवह(भोग-विलास के भंडारों) वाले, भँवर-सी कुण्डलित देह वाले, एक छोर से दूसरे छोर तक सेतु सा छा जाने वाला नाग समाज यथेच्छ भ्रमणशील हो। इतना ही नहीं काले केशों, लाल गाल, अलसाई देह वाली नागकन्याएँ भी चन्दनवन में तुम्हारा यशगान करें।

जीमूतवाहन गरुण से अपने वचन पर अडिग रहने के परामर्श के साथ शंखचूड़ को उसकी माता के पास जाने की सलाह देते व पीड़ा का अनुभव करते हुए कहता है कि-

हहह! परार्थ-सम्पादनामृत-रसास्वादाक्षिप्तत्वादेतावतीं वेलां मया न लक्षिताः, सम्प्रति तु मां वाधितुमारब्धा मर्मच्छेदिन्यो वेदनाः । शङ्खचूड़ द्वारा जोड़े गये दोनों हाथों से माता-पिता को प्रणाम करते हुए- तात! अम्ब! अयं मे पश्चिमः प्रणामः । पुनः विलाप आरम्भ हो जाता है । विलाप करते हुए जीमूतकेतु-

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः?

क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह? विरता दानपरता?

हतं सत्यं सत्यं व्रजतु कृपया क्वाथ क्वाथ करुणा?

जनज्जातं शून्यं त्वयि तनय! लोकान्तरगते ।।²⁹

वृद्धा विलाप करते हुए भवन्तो लोअपाला! कहां वि अमिदेण सिंचिअ पुत्तअ मे जीआवेहि । (हे लोकपाल भगवान! किसी तरह अमृत से सिंचकर मेरे बेटे को जीवित कर दो ।) ऐसा सुनते ही गरुण को उपाय सूझ आता है कि अब तो अमृत वर्षा से जीमूतवाहन के साथ-साथ अस्थिशेष नागों को भी जीवन दान दिया जा सकता है । अब कुछ भी हो मैं ऐसा करके ही रहूंगा । इसके लिए चाहे देवताओं से ही युद्ध क्यों न करना पड़े । ऐसा विचार कर गरुण निकल पड़ता है । उधर परिजनों के साथ मलयवती के विलापपूर्वक आह्वान पर भगवती गौरी आकर जीमूतवाहन को जीवन दान प्रदान करती हुई करती हैं कि - निजेन जीवितेनापि जगतामुपकारिणः । परितुष्टोस्मि ते वत्स! जीव जीमूतवाहन! ।।³⁰ जीमूतवाहन को जीवनदान प्राप्त होने पर कुलदेवी गौरी को सभी प्रणाम करही रहे होते हैं कि तभी अचानक बिना बादल के वर्षा होने लगती है । अमृत वर्षा से पूर्व में मारे गये सभी नाग भी पुनर्जीवित हो जाते हैं ।

मतङ्ग आदि विद्याधरों के स्वामी भक्तिभाव से जीमूतवाहन के सम्मुख झुक रहें हैं । इससे और अधिक क्या किया जाये? कुलदेवी के ऐसे वचन सुनते ही प्रणाम पूर्वक जीमूतवाहन कहता है कि- शङ्खचूड़ को मिला जीवन, गरुण भी शीख पा गया । मरे नाग भी सारे जीवित हुए, मुझे पा माता-पिता भी हर्षित हुए । चक्रवती हो गया हूँ, प्रत्यक्ष दर्शन आपके पा गया । इससे अधिक और क्या चाहिए मुझे ।³¹ समय पर वर्षा हो, धरती फसलों से भरी रहे । न हो द्वेष कँही, आपदायें सबकी सब ही दूर हों । जनता सुकर्म करे, सब बन्धु बान्धवों के साथ मिलजुल कर आनन्द मनायें । इस प्रकार

शिवमस्तु सर्वजगतांपरनिहतनिरता भवन्तु भूतगणाः । दोषा प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।।³²

भरतवाक्य के साथ नाटक पूर्ण हो जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण नाटक लोकहित के भाव से रचा गया है । लोकहितैषी व्यक्तित्व ही पूरे घटनाक्रम का केन्द्रीय बिन्दु है । लोकहित तथा सत्यवादिता का दृढसंकल्प जीमूतवाहन के व्यक्तित्व में आद्यान्त बने रहते हैं । मलयवती के प्रति प्रेम हो चाहे माता-पिता के प्रति दायित्वबोध पूर्ण समर्पण । जनता के प्रति प्रजापालन हो या युद्ध से विरति, सब जगब जीमूतवाहन एक बोधिसत्व के रूप में दृढसंलपित बना रहता है । नागों की रक्षा के प्रति बासुकि के निर्णय को अपरिपक्व जानकर स्वयं उस कार्य में लग जाता है । इस काम में गरुण के प्रति युद्ध नहीं छेड़ता वल्कि उसका हृदय परिवर्तन करके जहाँ एक नागों की रक्षा करता है वहीं गरुण को भी हिंसा से विरति का पाठ पढ़ाया जाता है । बदले की आग जलाती है वहीं करुणा लोक का अमृतसिंचन करती है । जीमूतवाहन स्वयं दृढसमाधान को प्राप्त रहता है वहीं गरुण को भी दृढसमाधान का उपदेश देकर गरुण, नाग, विद्याधर आदि समूचे लोक की क्लेशमुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर देता है । यही इस नाटक की सफलता है ।

सन्दर्भ -

- 1 नागानन्द-नाटकम् 1.2 के बाद सूत्रधार का कथन ।
- 2 धम्मपद-5
- 3 नागानन्द-1.1
- 4 नागानन्द-1.3
- 5 नागानन्दम् प्रथम अङ्क के चौथे व छठवें छन्द के मध्य का संवाद ।
- 6 नागानन्दम्-4.4-5 एवं इनके बीच का संवाद
- 7 नागानन्दम्- 2.10
- 8 नागानन्दम् 2.12
- 9 नागानन्दम्- 2.14
- 10 स्वशरीरमपि परार्थो यः खलु दद्यादयाचितः कृपया ।
राज्यस्य कृते स कथं प्राणिवधक्रौर्यमनुमन्ये ।। नागानन्दम् , 3.17
- 11 निद्रामुद्रोवबन्धव्यतिकरमनिशं पद्मकोषादपास्य-
न्नाशापूरैककर्मप्रवणनिजकरप्रीणिताशेषविश्वः ।
कृष्टः सिद्धैः प्रसक्तस्तुतिमुखरमुखैरस्तमप्येष गच्छ-
एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः ।। नागानन्दम् , 3.18
- 12 शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः
शीतं निर्झरवारिपानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः ।
इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोयमेको वने
दुष्प्रापार्थिनि यत् परार्थघटनाबन्धैर्वृथा स्थीयते ।। नागानन्दम्- 4.2
- 13 नागानन्दम्- चतुर्थ अङ्क के छन्द -4 से 7 तक संवाद
- 14 नागानन्दम्-4.9, 11
- 15 महा हि मस्तिष्क-विभेद-मुक्त-रक्तच्छटा-चर्चित-चण्ड-चञ्चुः ।
क्वासौ गरुत्मान्? क्व च सोमसौम्यस्वभावरूपाकृतिरेष साधुः? ।। नागानन्दम्- 4.13
- 16 ममैतदम्बार्पय वध्यविहं प्रावृत्य यावद्विनतोत्पजाय ।
पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयुतुं ददामि ।। नागानन्दम्- 4.14
अहो! जगद्विपरीतमस्य महासत्त्वस्य चरितम् । कुतः?
विश्वामित्रः श्वमांसं श्वपच इव पुरोभक्षयद् यन्निमित्तं
नाडीजङ्घो निजघ्ने कृततदुपकृतिर्यत्कृते गौतमेन ।
पुत्रेयं कश्यपस्य प्रतिदिनमुरगानन्ति ताकञ्च्यो यदर्थं
प्राणास्तानेष साधुस्तृणमिव कृपया यः परार्थं ददाति ।। नागानन्दम् 4.15
जायन्ते च म्रियन्ते च मादृशाः क्षुद्रजन्तवः ।
परार्थे बद्धकक्ष्याणां त्वादृशामुद्भवः कुतः? ।। नागानन्दम्-4.16
- 17 नागानन्दम्- 4.18
- 18 नागानन्दम्- 4.29

- 19 'भुक्तामि यौवनसुखानि यशोवकीर्णं राज्ये स्थितं स्थिरधिया चरितं तपोपि ।
श्लाघ्यः सूतः सुसदृशान्वयजा स्नुषेयं
चिन्त्यो मया ननु कृतार्थतयोद्य मृत्युः ।। नागानन्दम्-5.3
- 20 नागानन्दम्- 5.4 के बाद जीमूतकेतु का चिन्तन
- 21 नागानन्दम्- 5.6
- 22 शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्त-मद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।
तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्सन् ।। 5.16
आवर्जितं मया चञ्चुवा हृदयात् तव शोणितम् ।
अनेन धैर्यज्येण पुनस्त्वया हृदयमेव नः ।। नागानन्दम्- 5.17
- 23 नागानन्दम्- 5.19 के बाद का कथन ।
- 24 आत्मीयः पर इत्ययं खलु कुतः सत्यं कृपायाः क्रमः? किं रक्षामि बहून् किमेकमिति ते जाता न चिन्ता कथम्? ।
तार्क्ष्यात् त्रातुमहिं स्वजीवितपरित्यागं त्वया कुर्वता । येनात्मा पितरौ वधूरिति हतं निःशेषमेतत्कुलम् ।। नागानन्दम्-
5.21
- 25 नागानन्दम् 5.22 से पूर्व गरुण का कथन ।
- 26 नागानन्दम्-5.24
- 27 नागानन्दम्- 5.25 (अनुदित दोहा-रामहेत गौतम)
- 28 नागानन्दम्-5.26-27
- 29 नागानन्दम्-5.31 (गये परलोक तुम्ह, धीरज हुआ निराधार ।
नम्रता कौन शरण, क्षमा अब किस प्रकार? ।।
उदारता मिट चली, मिटे सत्य, करुणा दया ।
हा! जीमूत तव विन, संसार सून हो गया ।। अनुदित-रामहेत गौतम)
- 30 नागानन्दम्-5.34
- 31 नागानन्दम्- 5.39
- 32 नागानन्दम्- 5.41

24

रत्नावली का नाट्यशास्त्रीय विवेचन

सुषमा देवी

श्रीहर्षकृत रत्नावली नाटिका नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से एक सफल नाटिका मानी जाती है। कवि ने इसमें नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन पूर्ण रूप से किया है। इसकी कथावस्तु सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली तथा महाराज उदयन की प्रेम कथा पर आधारित है। यह श्रृंगार रस प्रधान चार अंकों की नाटिका है। इसका नायक धीरललित है। इसमें सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी के आधार पर मन्त्री यौगन्धरायण षड्यन्त्र से सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की कन्या रत्नावली को वत्सराज उदयन के यहाँ भेज देता है। तथा वह रत्नावली प्रच्छन्न रूप से सागरिका नाम से दासी बनकर अन्तःपुर में रहने लगती है। उसके रूप-लावण्य से शंकित होकर रानी वासवदत्ता उसे सदा राजा उदयन से दूर रखने का प्रयास करती रहती है परन्तु राजा उदयन उस पर मुग्ध हो जाता है। ईर्ष्यावश, रानी उसे कारावास में डलवा देती है, किन्तु उसके राजकुल में उत्पन्न होने, ममेर बहन रत्नावली होने तथा सिद्ध पुरुष की भविष्यवाणी कि 'रत्नावली से विवाह करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् होगा।' इन सभी बातों के प्रकट होने पर स्वयं रानी वासवदत्ता वत्सराज को रत्नावली (सागरिका) से विवाह करने की अनुमति दे देती है। इस प्रकार इस नाटिका का मंगलमय अवसान होता है।

नाटिका का लक्षण : संस्कृत साहित्य में नाट्य की दो विधाएँ उपलब्ध होती हैं- रूपक तथा उपरूपक।¹ इन दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि रूपक सर्वथा रसाश्रित होते हैं और उपरूपक भावाश्रित।² वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर रूपक के दस भेद हैं- नाटक, प्रकरण, अंक, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम तथा ईहामृग।³ और उपरूपक के अट्ठारह भेद हैं- नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकराणिका, हल्लीश और भणिका।⁴ इनमें नाटिका का प्रथम स्थान है। आचार्य भरत ने नाटिका का लक्षण करते हुए कहा है-

स्त्रीप्राया चतुरङ्का ललिताभिनयात्मिका सुविहिताङ्गी। बहुगीतनृत्य वाद्यरति संभोगात्मिकचैव।।

राजोपचारयुक्ता प्रसादन क्रोधदंभसंयुक्ता। प्रकरण नाटक नाटीकक्षणमुक्त समासेन।।⁵

अर्थात् नाटिका, नाटक एवं प्रकरण के मिश्रण से निर्मित होती है। इसमें प्रख्यात नायक एवं अन्तःपुर की नायिका से संबंधित वस्तु (कथावस्तु) होती है। यह स्त्री बहुल, चार अंकों वाली, कैशिकीवृत्ति युक्त, नृत्य, गीत, पाठ्य एवं रतियुक्त राज्य प्राप्ति रूप फलों वाली होती है। यह ज्येष्ठा नायिका के क्रोध प्रसाधन एवं दंभ से युक्त होती है। कवि श्रीहर्ष ने रत्नावली नाटिका को उपर्युक्त समस्त नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्यों के साथ प्रस्तुत किया है जिसका वर्णन निम्न प्रकार से है-

वस्तु-विन्यास : वस्तु से तात्पर्य कथावस्तु से है। आचार्य भरत ने इसे इतिवृत्त कहा है 'इतिवृत्त तु नाट्यस्य शरीरम्'⁷। जो नाट्य का शरीर है। यह नाटक के तीन तत्त्वों- वस्तु, नेता तथा रस में से प्रथम भेदक तत्त्व है "वस्तुनेतारस्तेषाम् भेदकः"⁸। यह वस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक दो प्रकार की होती है। आधिकारिक मुख्य कथावस्तु है जो नायक के फल प्राप्ति तक चलती है। रत्नावली नाटिका में उदयन एवं रत्नावली का वृत्तान्त आधिकारिक वस्तु है जिसमें उदयन को रत्नावली रूप फल की प्राप्ति होती है।⁹ मुख्य कथावस्तु (आधिकारिक) की साधक एवं नाटक में प्रसंगवश आई हुई कथा प्रासंगिक कथा है। जो एक से अधिक हो सकती हैं। रत्नावली नाटिका में जब सिंहलाधिपति ने उदयन के लिए रत्नावली की याचना को ठुकरा दिया तब यौगन्धरायण द्वारा उदयन की पूर्व नायिका वासवदत्ता का अग्नि में जलकर मरने की मिथ्या अफवाह फैलाना प्रासंगिक कथावस्तु का उदाहरण है।

अर्थप्रकृतियाँ : जो प्रयोजन की सिद्धि में कारण हो¹⁰, वे अर्थप्रकृतियाँ कहलाती हैं। ये अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।¹¹ जो कथावस्तु के प्रयोजन का सम्पादन करती है।

बीज : यह नाटक के प्रमुख फल या लक्ष्य का मूलभूत कारण है। जिस प्रकार अल्प बीज अंकुरित एवं पल्लवित होकर फल प्रदान करता है, उसी प्रकार कथानक का अल्प कथन अनेक प्रकार से पल्लवित होता हुआ कथावस्तु के फल का सम्पादन करता है।¹² रत्नावली नाटिका में इसका बखूबी निर्वाह किया गया है। उदयन को रत्नावली प्राप्ति का हेतुभूत यौगन्धरायण का व्यापार बीज है जिसे विष्कम्भक में न्यस्त किया गया है।

बिन्दु : नाटक में जो घटना अवान्तर कथा के विच्छिन्न होने पर उसे प्रधान कथा के साथ जोड़े रखने का कार्य करती है, वह बिन्दु है।¹³ रत्नावली नाटिका में वैतालिक द्वारा राजा उदयन के सौन्दर्य का वर्णन करने पर सागरिका के द्वारा यह कहना कि- क्या यह वही राजा उदयन है जिनकों में पिताजी के द्वारा समर्पित की गई हैं।¹⁴ सागरिका के हृदय में उत्पन्न यह उत्सुकता कथा को आगे बढ़ाने में सहायक है, जो बिन्दु नामक अर्थप्रकृति का स्पष्ट उदाहरण है।

पताका : जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है उस प्रासंगिक कथावस्तु को पताका कहा जाता है।¹⁵ रत्नावली नाटिका में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका अर्थप्रकृति का उदाहरण है। जो नायक को नायिकारूपी फल की प्राप्ति करवाता है, क्योंकि वासादत्ता की सहायता के बिना उदयन को सागरिका की प्राप्ति नहीं हो सकती थी।¹⁶ यह वृत्तान्त आरम्भ से लेकर अन्त तक चलता रहता है।

प्रकरी : जो कथा नाटक में कुछ ही समय तक चले, वह प्रकरी नामक प्रासंगिक कथावस्तु है।¹⁷ इस प्रकार की कथाएँ अवसर विशेष पर आती हैं और मुख्य कथा की सहायता कर समाप्त हो जाती हैं, यथा- रत्नावली नाटिका में उदयन के सेनापति विजयवर्मा द्वारा रूमण्वान से कोसलोच्छेद का वर्णन करना।¹⁸

कार्य : आचार्य भरतमुनि ने कार्य को परिभाषित करते हुए कहा है- जो आधिकारिक वस्तु के प्रयोग के लिए आरम्भ होता है वह कार्य है।¹⁹ रत्नावली नाटिका में राजा उदयन के द्वारा सागरिका को प्राप्त करना कार्य है। अतः नायक एवं नाटककार का अभीष्ट ही कार्य है।

कार्यावस्था : नाटक में नायक फल प्राप्ति के लिए जो कार्य व्यापार एवं प्रयास करता है उसे कार्यावस्था कहा जाता है। कार्य के विकास की पाँच अवस्थाएँ हैं- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।²⁰ जो नायक को उसके लक्ष्य तक पहुँचाती है।

आरंभ : नायक के मन में फल प्राप्ति के प्रति उत्सुकता ही कार्यारम्भ अवस्था है।²¹ इसमें नायक यह निश्चय करता है कि मैं इस कार्य का सम्पादन करूँगा। रत्नावली नाटिका में राजा उदयन के चक्रवर्ती पद की प्राप्ति के

लिए प्रारम्भ किये गये इस कार्य में भाग्य ने इस प्रकार सहायता की है कि सिद्धि में कोई भ्रम या संशय नहीं है, यह सत्य है।²² ऐसे वत्सराज उदयन के कार्य का औत्सुक्य रूप आरंभ मंत्री यौगन्धरायण के मुख से किया गया है। जो नायक उदयन का आरंभ रूप व्यापार है।

प्रयत्न : नायक या नायिका के द्वारा फलप्राप्ति हेतु अत्यन्त वेगपूर्वक यत्न करना प्रयत्न कहलाता है।²³ रत्नावली नाटिका में सागरिका का यह कथन कि- वत्सराज उदयन के दर्शन पाने का चित्र के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, मैं किसी भी प्रकार से उदयन का चित्र बनाकर अपनी अभिलाषा को पूर्ण करूँगी।²⁴ सागरिका का वत्सराज उदयन से मिलन का यह उपाय प्रयत्न ही है।

प्राप्त्याशा : फल प्राप्ति के लिए किये गये उपाय तथा फल प्राप्ति के विघ्न की शंका होने के कारण फल प्राप्ति की सम्भावना प्राप्त्याशा कहलाती है।²⁵ रत्नावली नाटिका में सागरिका के द्वारा वेष परिवर्तन रूपी उपाय से राजा उदयन एवं सागरिका के मिलन की संभावना होने पर भी मध्य में वासवदत्ता रूपी विघ्न की आशंका से निश्चय नहीं हो पाना प्राप्त्याशा अवस्था का स्पष्ट उदाहरण है।²⁶

नियताप्ति : विघ्नों के अभाव के कारण फल प्राप्ति का निश्चय हो जाना नियताप्ति है। रत्नावली नाटिका में क्रुध वासवदत्ता के द्वारा बन्दी बनाई गई सागरिका को मुक्त कराने के लिए राजा उदयन का विदूषक को यह कहना कि- मित्र! देवी वासवत्ता को प्रसन्न करने के अतिरिक्त अन्य को उपाय नहीं है।²⁷ इसके पश्चात् चतुर्थ अंक में क्रुद्ध वासवदत्ता स्वरूप विघ्न का निवारण हो जाने पर सागरिका की प्राप्ति निश्चित हो जाना नियताप्ति का उदाहरण है।²⁸

फलागम : फल की समग्र प्राप्ति फलागम है।²⁹ रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन को नायिका रत्नावली की प्राप्ति हो जाना फलागम नामक कार्यावस्था है।

संधियाँ : नाट्य में इनका प्रयोग नाटक को अनुशासित रखने तथा कथावस्तु को विभाजित करने के लिए किया जाना है। नाट्यशास्त्र के अनुसार कथावस्तु को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है, जिन्हें सन्धि कहते हैं- मुख, (उद्घाटन), प्रतिमुख (प्रगति), गर्भ (विकास), विमर्श (विराम) और निर्वहण (निष्कर्ष)।³⁰ इन संधियों का निर्माण पञ्च कार्यावस्थाओं (प्रारंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम) और पञ्च अर्थप्रकृतियों (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य) के संयोग से होता है।³¹

मुख सन्धि : यह बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से निर्मित होती है। इसके अन्तर्गत काव्य रूपी शरीर में मुख के समान अनेक अर्थों एवं रसों का बीज समाहित रहता है।³² रत्नावली नाटिका के प्रथम अंक में यौगन्धरायण के कथन- 'एवमेतत् । कः सदेहः ?' से लेकर द्वितीय अंक में सागरिका के द्वारा चित्र बनाकर राजा के दर्शन तक³³ इस सन्धि का निर्वाह देखने को मिलता है।

प्रतिमुख : बिन्दु नामक अर्थप्रकृति एवं यत्न नामक अवस्था के संयोग से प्रतिमुख संधि बनती है। इसका लक्षण करते हुए दशरूपककार ने कहा है 'जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य एवं कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भेद होता है, वह प्रतिमुख संधि है।'³⁴ इसका प्रयोग रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में देखने को मिलता है। जहाँ वासवदत्ता के द्वारा चित्रफल की घटना के माध्यम से सागरिका एवं उदयन का अनुराग रूपी बीज कुछ लक्ष्य तथा कुछ अलक्ष्य रूप में प्रकट हो रहा है।³⁵

गर्भ संधि : यह संधि प्राप्त्याशा कार्यावस्था तथा पताका नामक अर्थप्रकृति के संयोग से निर्मित होती है। नाट्यशास्त्र के अनुसार पूर्व संधियों में कुछ-कुछ प्रकट हुए फलप्रधान उपाय का जहाँ ह्रास और अन्वेषण से

युक्त बार-बार विकास हो, वहाँ गर्भ नामक संधि होती है।³⁶ रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में वत्सराज के द्वारा सागरिका का हाथ पकड़ने पर सुसंगता की उक्ति से फलप्रधान उपाय का उद्भेद हुआ है। उसी समय वासवदत्ता का प्रवेश होने से ह्रास हुआ है। तृतीय अंक में राजा के कथन से उसका अन्वेषण सूचित हुआ है। इस पर विदूषक के कथन से फिर से उद्भेद होता है। वासवदत्ता फिर भी जान जाती है, अतः ह्रास हुआ है। इस प्रकार यहाँ गर्भ संधि है।³⁷

विमर्श : यह संधि प्रकरी नामक अर्थप्रकृति तथा नियताप्ति नामक कार्यावस्था के संयोग से बनती है। इसमें क्रोध, व्यसन आदि से वशीभूत होकर गर्भ स्थित बीज का पूर्ण उद्भेद हो जाता है।³⁸ रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में अग्नि के उपद्रव पर्यन्त वासवदत्ता की प्रसन्नता से निर्विघ्न रूप से उदयन को रत्नावली की प्राप्ति का निश्चय ही विमर्श संधि का स्पष्ट उदाहरण है।³⁹

निर्वहण संधि : कार्य नामक अर्थप्रकृति तथा फलागम नामक कार्यावस्था के संयोग से निर्वहण संधि होती है। दशरूपक में इसका लक्षण करते हुए कहा गया है कि- कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ, जो अब तक इधर उधर बिखरे पड़े हैं, जब एक अर्थ के लिए एक साथ एकत्रित किये जाते हैं तो वह निर्वहण संधि कहलाती है।⁴⁰ रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में सागरिका को देखकर वसुभूति का यह कथन कि -यह कन्या तो राजपुत्री रत्नावली के समान है', निर्वहण सन्धि का उदाहरण है।⁴¹

पात्र एवं दर्शक की दृष्टि से वस्तु-विभाजन : नाटक में पात्र एवं दर्शक के अनुसार भी कथावस्तु की योजना करनी होती है जिससे कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार न हो। कभी कभी नाटक में अनेक पात्रों की उपस्थिति में कुछ बात सभी के सुनने योग्य होती है, कुछ केवल विशिष्ट लोगों के तो कुछ आत्मगत आदि होती है। इसका प्रयोग रत्नावली नाटिका में सम्यक् रूप से किया गया है।

स्वगत : जो संवाद किसी भी पात्र के सुनने योग्य नहीं होता है वह स्वगत है। इसमें कोई पात्र किसी घटना के विषय में आत्मगत विचार करता है।⁴² रत्नावली नाटिका में सागरिका अपने प्रति उदयन के प्रेम को देखकर मन ही मन कहती है- (आत्मगतम्) किमेष भणिष्यतीति यत्सत्यं जीवितमरणयोरन्तरे वर्ते।⁴³ अर्थात् यह क्या कहेंगे। यह सच है कि मैं इस समय जीवन और मरण के मध्य जूझ रही हूँ।

अपवारित : दशरूपककार के अनुसार जहाँ किसी पात्र के द्वारा मुख फेरकर दूसरे व्यक्ति से गुप्त वार्ता की जाती है, वह संवाद अपवारित कहलाता है।⁴⁴ रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अंक में राजा उदयन का देवी वासवदत्ता से एकान्त में अलग होकर यह कहना- (अपवार्य।) देवि किमेतदलीकमेव त्वन्मातुलामात्यः कथयति।⁴⁵ अर्थात् देवी! तुम्हारे मामा का मंत्री क्या यह असत्य कह रहा है, अपवारित की योजना है।

नेपथ्य : इसी को चूलिका भी कहा जाता है। जहाँ कथावस्तु की सूचना पर्दे के उस ओर अन्दर बैठे पात्रों के द्वारा दी जाती है। रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण के द्वारा उदयन के आगमन अर्थ को सूचित करने के लिए इसका प्रयोग हुआ है यथा- नेपथ्य से कलकल ध्वनि को सुनकर यौगन्धरायण कहता है- मधुरता से बजाये हुए कोमल मृदङ्ग की संगति करने वाले गीत के कारण चित्ताकर्षक यह पुरवासियों की करतलध्वनि हो रही है। इससे ज्ञात होता है कि इस मदन महोत्सव से उत्पन्न पुरवासियों के आनन्द को देखने के लिए महाराज राजमहल की अटारी की ओर जा रहे हैं।⁴⁶

अंकास्य या अंकमुख : जब किसी अंक के अन्त में प्रविष्ट पात्रों द्वारा अग्रिम अंक अर्थ (कथानक) की सूचना दी जाती है तो अंकास्य कहा जाता है।⁴⁷ रत्नावली नाटिका में प्रथम अंक के अन्त में राजा का यह कहना कि- देवि तदुत्तिष्ठ। आवासाभ्यन्तरमेव प्रविशावः। (सर्वे उत्थाय परिक्रामन्ति।)⁴⁸ अर्थात् 'हे देवि! अब दिन समाप्त हो

गया है इसलिए उठो! हम सभी राजभवन के अन्दर चलें' से लेकर द्वितीय अंक के आरम्भ की सूचना मिलने से अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक का ज्ञान होता है।

अंकावतार : जहाँ प्रथम अंक की वस्तु का विच्छेद किए बिना दूसरे अंक की वस्तु चले, वहाँ अंकावतार होता है।⁴⁹ रत्नावली नाटिका में प्रथम अंक की कथा का विच्छेद हुए बिना ही द्वितीय अंक अवतरित होता है, जो अंकावतार का स्पष्ट उदाहरण है।⁵⁰

नेता (पात्र) : नाटिका में पात्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो नाटकीय कथावस्तु को उसके लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। इसलिए यहाँ नेता पद से अभिप्राय केवल नायक से नहीं है अपितु नायिका, उपनायक, विदूषक, विट, चेट आदि सभी पात्रों से है।⁵¹

नायक : नायक शब्द 'नी' धातु से बना है जिसका अर्थ है- ले जाना अर्थात् जो कथावस्तु को फलागम तक ले जाता है वह नायक है। यह नायक चार प्रकार के होते हैं- धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त।⁵² रत्नावली नाटिका का नायक धीरललित है। दशरूपक में धीरललित नायक का लक्षण करते हुए वर्णित है- निश्चिन्तो धीरललितः क्लृप्तः खुखी मृदु।⁵³ अर्थात् जो सदैव कलाओं से निश्चिन्त रहता है, कोमल स्वभाव वाला होता है, सुखी रहता है तथा कलाओं में आसक्त रहता है वह धीरललित नायक होता है। वत्सराज उदयन को इन समस्त गुणों से युक्त दिखाया गया है। अतः वह धीरललित नायक है।

उपनायक : जो नायक, प्रधान नायक की फलप्राप्ति में सहायता करता है वह उपनायक कहलाता है। इसका अपना कोई लक्ष्य नहीं होता। वह अपने स्वामी के लक्ष्य प्राप्ति हेतु ही पूर्ण निष्ठाभाव से कार्य करता है। रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण इसी प्रकार का उपनायक है। उसके समस्त कार्य अपने स्वामी उदयन के कल्याण के लिए ही होते हैं। वह अपने स्वामी की समुन्नति के लिए सदैव चिन्तित रहता है। प्रथम अंक में वह कहता है- प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवेनेत्यं दत्तहस्तावलम्बे। सिद्धेभ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः।⁵⁴

विट : यह नायक का दूसरा सहायक है। जो किसी एक विद्या में निपुण होता है।⁵⁵ यह अत्यन्त व्यवहार कुशल एवं चतुर व्यक्ति होता है और अपनी कला से राजा को प्रसन्न रखता है। रत्नावली नाटिका में उदयन के कञ्चुकी तथा सेनापति विजयवर्मा को विट के रूप में दर्शाया गया है।

विदूषक : यह नायक का मित्र होता है। इसका उद्देश्य अपने कार्यों वेशभूषाओं, शारीरिक चेष्टाओं तथा बातों से हास्य उत्पन्न करना है- विकृतांगवचोवेषैर्हास्यकृत्याविदूषकः।⁵⁶ रत्नावली नाटिका में वसन्तक नामक ब्राह्मण ने विदूषक की भूमिका निभायी है। वह राजा उदयन का प्रिय सहचर है। वह सागरिका की दासी सुसंगता के साथ एक योजना बनाकर राजा उदयन को सागरिका से मिला देता है।

नायिका : नायक के समान नायिका भी नाटिका की महत्त्वपूर्ण पात्र है। यह नायक की पत्नी या प्रिया होती है। नाट्यशास्त्र में नायिका को रूपक का प्रधान स्त्रीपात्र एवं श्रृंगाररस का आलम्बन बताया है। जो सामान्य गुणों के आधार पर तीन प्रकार की होती है- स्वकीया, परकीया तथा सामान्या।⁵⁷ इनमें से स्वकीया नायिका शील, लज्जा आदि गुणों से युक्त, सच्चरित्र, पतिव्रता, विवाहिता, व्यवहार कुशल स्त्री होती है। यह भी तीन प्रकार की होती है- मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा।⁵⁸ रत्नावली नाटिका में मुग्धा नायिका को चित्रित किया गया है। नायिका रत्नावली में मुग्धा नायिका के समस्त गुण विद्यमान हैं। वह अत्यन्त लज्जावती, उदारशीला, सौन्दर्य, धैर्य, शालीनता, भावुकता, सरलता आदि गुणों से युक्त है। उसके हृदय की भावुकता एवं शालीनता रत्नावली नाटिका

के तृतीय अंक के चतुर्थ श्लोक में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।⁵⁹ इसके साथ ही महारानी वासवदत्ता के द्वारा बन्दी बनाए जाने भी सागरिका कुपित नहीं होती, जो उसके धैर्य एवं सहिष्णुता को दर्शाता है।⁶⁰ इसी प्रकार रत्नावली नाटिका में नायिका वासवदत्ता को प्रगल्भा नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। उसमें प्रगल्भा नायिका के प्रेम व्यापार संबंधी गुण दिखाए गए हैं।

इसके अतिरिक्त रत्नावली नाटिका में नायक एवं नायिका के मुख्य सहायकों के रूप में वसुभूति (सिंहलेश्वर का मंत्री), सुसंगता (सागरिका की सखी), ऐन्द्रजालिक (जादूगर) इत्यादि पात्र रंगमंच पर अवतीर्ण होते रहते हैं।

कैशिकीवृत्ति : नाट्य में नायकादि का चेष्टा- व्यापार वृत्ति है। जिससे नाट्य में रस एवं भावों का संचरण होता है। यह कैशिकी, सात्वती, आरभटी एवं भारती भेद से चार प्रकार की होती है।⁶¹ नाटिका चूँकि श्रृंगार प्रधान रचना होती है। इसलिए इसमें कैशिकी वृत्ति की योजना की जाती है। नाटिका में भारती, आरभटी एवं सात्वती वृत्ति का प्रायः अभाव होता है। रत्नावली नाटिका में कैशिकी वृत्ति को वर्णित किया गया है। कैशिकी वृत्ति उसे कहते हैं जिसमें गीत, नृत्य, विलास, कामोपभोग इत्यादि से उपलक्षित सुकुमार, श्रृंगार से परिपूर्ण नायक का चेष्टा व्यापार रहता है।⁶² रत्नावली नाटिका में 'चित्रदर्शन के अवसर पर सुसंगता राजा उदयन से परिहासपूर्वक कहती है कि मैंने चित्रफलक सहित यह समस्त वृत्तान्त जान लिया है, जाकर इसे महारानी वासवदत्ता से कह दूँगी'। यहाँ भय नामक नम्र है जोकि कैशिकी वृत्ति का ही एक अंग है।⁶³

रस : रस्यते आस्वादयते इति रसः अर्थात् जो आस्वादित होता है उसे रस कहते हैं। सामाजिकों को इस रस की अनुभूति कराना ही नाटक का प्रमुख प्रयोजन है। इसके अभाव में नाटक सर्वथा अपूर्ण रहता है। आचार्य भरतमुनि के अनुसार विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से ही रस की निष्पत्ति होती है 'विभावानुभावव्यभिचारि- संयोगादूरसनिष्पत्तिः' कविराज विश्वनाथ के अनुसार सहृदयी पुरुषों में विद्यमान वासना रूप रति आदि स्थायीभाव ही विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त करते हैं।⁶⁴ काव्यशास्त्र में नौ रस स्वीकार किये गये हैं- श्रृंगार, हास्य, करुण, वीर, भयानक, अद्भुत, बीभत्स, रौद्र और शान्त। रस के अनुसार ही भावों की संख्या भी क्रमशः नौ निश्चित की गई है- रति, हास, शोक, उत्साह, भय, विस्मय, जुगुप्सा, क्रोध और शम। इनमें से नाटिकाओं में श्रृंगार रस अंगीरस के रूप में तथा अन्य रस गौण रूप में विद्यमान रहते हैं। रत्नावली नाटिका में श्रृंगार रस की प्रधानता है। इसमें श्रृंगार रस के संयोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार दोनों अंगों का प्रयोग हुआ है। तृतीय अंक में सागरिका जब गले में पाश डालने के लिए तैयार होती है तब राजा उदयन उसे रोकते हुए कहते हैं कि -

अलमलमतिमात्रं साहसेनाऽमुना ते त्वरितमपि विमुञ्च त्वं लतापाशमेतम् ।

चलितमपि निरोद्धुं जीवितं जीवितेशे क्षणमिह मम कण्ठे बाहुपाशं निधेहि ।।⁶⁵

अर्थात् हे प्राणप्रिये! तुम इस लताबंधन को छोड़कर मेरे गले में भुजबंधों को क्षणभर के लिए डाल दो। राजा के इस कथन से श्रृंगार की अभिव्यक्ति होती है। यहाँ नायिका सागरिका आलम्बन विभाव है। सागरिका द्वारा गले में पाश लगाने को उद्धत होना उद्दीपन विभाव है। उदयन का सागरिका को पाश लगाने से रोकना अनुभाव है। चिंता करना आदि संचारी भाव है। रति स्थायीभाव है। इन सबसे श्रृंगार रस की पुष्टि होती है। इसी प्रकार रत्नावली नाटिका में विप्रलंभ श्रृंगार का उदाहरण दृष्टव्य है- द्वितीय अंक में नायिका सागरिका अपने हृदय से कहती है कि जिस नायक उदयन को देखने से तुम्हारा सन्ताप घटने की अपेक्षा बढ़ता जा रहा है,

उसे ही बारम्बार देखने की अभिलाषा तुम्हें क्यों हो रही है।⁶⁶ नाटिका में शृंगार रस के अतिरिक्त हास्य⁶⁷ वीर⁶⁸, करुण⁶⁹, अद्भुत⁷⁰ आदि रसों का प्रयोग गौण रूप में किया गया है।

भाषा: संस्कृत नाटिकाओं में पात्रानुकूल भाषा-शैली का प्रयोग किया जाता है। इसमें सर्वत्र संस्कृत तथा प्राकृत आदि भाषाओं के प्रयोग का विधान है। रत्नावली नाटिका में इसके पुरुष पात्र- राजा उदयन, उदयन का प्रधानमंत्री यौगन्धरायण, सिंहल नरेश विक्रम बाहु का मंत्री वसुभूति, उदयन का कञ्चुकी वाभ्रव्य एवं उदयन का सेनापति विजयवर्मा संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं। जबकि उदयन का विदूषक वसन्तक, जादूगर ऐन्द्रजालिक, रानी वासवदत्ता, सागरिका की सखी सुसंगता, अन्तःपुर की सेविकाएँ- चूतलतिका एवं निपुणिका, चेटी आदि सभी नारी पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। इस नाटिका में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।⁷¹ भाषा सरल, विरल समासों से युक्त एवं प्रसादगुण युक्त है। नाटिका में वैदर्भी रीति के अतिरिक्त यत्र तत्र गौड़ी⁷², एवं पाञ्चाली⁷³ रीति भी दृष्टिगोचर होती है। कवि ने नाटिका में यथावसर शब्द एवं अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। अनुप्रास⁷⁴, उपमा⁷⁵, रूपक⁷⁶, उत्प्रेक्षा⁷⁷, श्लेष⁷⁸, स्वभावोक्ति⁷⁹, काव्यलिंग⁸⁰, अतिशयोक्ति⁸¹, आदि अलंकारों का सम्यक् प्रयोग देखने को मिलता है। अलंकारों के अतिरिक्त कवि ने भावानुकूल छंदों का प्रयोग किया है। नाटिका में अनुष्टुप्, उपजाति, शालिनी, मालिनी, हरिणी आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।⁸²

उपसंहार : श्रीहर्षवर्धन रचित रत्नावली नाटिका का नाट्यशास्त्रीय विवेचन से ज्ञात होता है कि कवि ने नाटिका के समस्त नियमों का पालन किया है। इसमें उदयनादि पात्र प्रख्यात एवं कथानक कविकल्पित है। वासवदत्ता, रत्नावली, सुसंगता, निपुणिका आदि स्त्रीपात्रों की बहुलता है। नाटिका का समापन चार अंकों में हो रहा है। इसका नायक उदयन प्रसिद्ध राजवंश से सम्बन्धित है। नाटिका का प्रारम्भ नान्दी पाठ से किया गया है। उसके बाद सूत्रधार के द्वारा प्रस्तावना प्रस्तुत की गई है। अर्थप्रकृतियों- बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, कार्य एवं कार्यावस्थाओं- आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम तथा इनसे युक्त संधियों-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण का सम्यक् संयोजन हुआ है। पात्र एवं दर्शक की दृष्टि से वस्तु विभाजन किया गया है, जिसमें स्वगत, अपवारित, नेपथ्य, अंकास्य तथा अंकावतार का यथास्थान प्रयोग हुआ है। संवादों के अनुसार ही पात्र योजना की गई है। नृत्य-गीतादि से युक्त कैशिकी वृत्ति का सफल प्रयोग किया गया है। रस, भाषा, रीति, अलंकार तथा छंदों का उचित प्रयोग कवि की नाट्य प्रतिभा को दर्शाता है। अतः रत्नावली नाटिका नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से एक सफल नाटिका है।

सन्दर्भ -

1. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, रूपकाणि दश, 6/4
2. दशरूपक, धनिक की वृत्ति, 1/18
3. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः । दशरूपक, घनञ्जय, 1/10
4. नाट्यशास्त्र, भरत, 18/23
5. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, 6/4-6
6. नाट्यशास्त्र, भरत, 18/107-108
7. नाट्यशास्त्र, भरत, अध्याय 21/1
8. दशरूपक, धनञ्जय, 1/10

9. प्रियदर्शिका, भूमिका, पृ.22
10. यत्रार्थः फलं तस्य प्रकृतयः उपायाः फलहेतवः इत्यर्थः । अभिनवभारती, भाग 4, पृ.2
11. बीज बिन्दु पताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः ।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः ।। दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 18, पृ.32
12. स्वल्पोद्दिष्ट तद्धेतु बीजं विस्तार्यनेकधा । दशरूपक, 47 प्रथम प्रकाश, 17
13. अवान्तार्थ विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.3,
14. श्रुत्वा सहर्ष परिवृत्य राजानं संपृहं पश्यन्ती, कह अञं सो राआ उद्अणो जस्स अहं तादेण दिण्णा ।
रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 23, पृ.41
15. काव्य का स्वरूप, पृ.123
16. रत्नावली भूमिका, पृ.94
17. प्रासंगिक प्रदेशस्थं चरितं मता । नाट्यदर्पण, पृ.33
18. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 32
19. यत्राधिकारिकं वस्तु सम्यक् प्राज्ञैः प्रयुज्यते ।
तदर्थो यः सभारंस्तत्कार्यं परिकीलततम् ।। नाट्यशास्त्र, 19/25
20. अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलालम्बिभिः ।
आरम्भयत्न प्राप्त्याशानियताप्ति फलागमः ।। दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 19, पृ.146
21. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे । संस्कृत नाट्य शिल्प एवं रंगमंच, पृ.146
22. प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवेनेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।
सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत स्वास्मि भर्तुः रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 7
23. प्रयत्नस्तु तद्प्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.35
24. तथापि नास्त्यन्तो दर्शनोपाय इति यथा तथाऽऽलिख्य यथा समीहितं करिष्ये । नाट्यदर्पण, पृ.36
25. उपायापाय शंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्ति सम्भवः । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.35
26. वेषपरिवर्ताभिसरणादौ समागमोपाये...वासवदत्ता । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.35 तथा नाट्यदर्पण, पृ.36
27. वयस्य देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि । रत्नावली, तृतीय अंक, पृ.125
28. एह्येह्यतिनिष्ठुरे इदानीमपि तावत्त्वेनं दर्शय । आर्यपुत्र लज्जे खल्वनेनात्मनो नृशंसत्वेन ।
तदपनयास्या बन्धनम् । रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ.175
29. समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.37
30. मुखं प्रतिमुखं गभाविमर्शं निर्वहणान्यमी ।
सन्ध्यो मुख्यवृत्तांशाः पञ्चावस्थानुगाः क्रमात् । नाट्यदर्पण, श्लोक 37
31. नाट्यदर्पण, प्र.वि., पृ.38
32. मुखं प्रधानवृत्तांशः बीजोत्पत्ति रसाश्रयः । नाट्यदर्पण, श्लोक 39 तथा नाट्यशास्त्र, 19/39
33. रत्नावली, पृ.11-49
34. तस्य बीजस्य किञ्चदलक्ष्यः किञ्चदलक्ष्य इवोद् भेदः प्रकाशनं तत्प्रतिमुखम् ।
दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.54

35. रत्नावली, पृ.65
36. फल प्रधानोपायस्य प्रागुद्भिन्नस्य किञ्चन ।।
गर्भो यत्र समुद्भेदो ह्यसान्वेषणवान्मुहुः । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 78
37. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 78 की व्याख्या से उद्धृत
38. उद्भिन्नसाध्यविघ्नात्मा विमर्शो व्यसनादिभिः । नाट्यदर्पण, प्र.वि., पृ.41
39. दशरूपक, पृ.8
40. बीजवन्तो मुखद्यथा विप्रकीर्णा यथायथम् ।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।। दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.58
41. रत्नावली, चतुर्थ अंक
42. स्यात् अश्राव्य स्वगतमतम् । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.124
43. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ. 75 पर सागरिका का कथन
44. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्त्यापवारितम् । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.73
45. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ.164
46. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ.14
47. अंकान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात् । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ.70
48. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ.42
49. अंकावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः ।
एभिः संसूचयेत सूच्यं दृश्यमङ्कैः प्रदर्शयेत् ।। दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 71
50. रत्नावली, प्रथम अंक से द्वितीय अंक, पृ.43-45
51. नाट्यशास्त्र का इतिहास, पृ.323
52. नाट्यशास्त्र, 24/17
53. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश
54. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 7
55. एकविधो विटश्चान्यो । दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृ.151
56. भावप्रकाशन, पृ.94
57. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधाः । दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 15
58. मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् । दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 15
59. रत्नावली, तृतीय अंक, श्लोक 4
60. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ.96
61. यद्वयापारात्मिका वृत्तिश्चतुर्धा । दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, पृ.219
62. गीतनृत्यविलासाद्यैर्मदुः शृंगारचेष्टितैः । दशरूपक, द्वितीय प्रश्न, पृ.221
63. रत्नावली, द्वितीय अंक, 15-16
64. विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा रसतामेतिरत्यादिः स्थायिभावः सचेतसामः ।
साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद

65. रत्नावली, तृतीय अंक, श्लोक 17
66. येनदृष्टेन तव ईदृशः संतापो ननुवर्धते तमेव
पुनरपि प्रेक्षितुमभिलाषसीतयहो ते मूढता । रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ.57
67. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ.12
68. रत्नावली, चतुर्थ अंक, श्लोक 5
69. रत्नावली, तृतीय अंक, पृ.175
70. रत्नावली, चतुर्थ अंक, श्लोक 10
71. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 3, 5, 8 इत्यादि ।
द्वितीय अंक, श्लोक 4, 5, 10 इत्यादि ।
तृतीय अंक, श्लोक 1-6 तथा 9-19
चतुर्थ अंक श्लोक, 1-4 तथा 7-9 इत्यादि ।
72. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 11, 12 तथा द्वितीय अंक, श्लोक 3 इत्यादि ।
73. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 2 तथा तृतीय अंक श्लोक 17 इत्यादि ।
74. रत्नावली, चतुर्थ अंक, श्लोक 6
75. रत्नावली, द्वितीय अंक, श्लोक 4
76. रत्नावली, तृतीय अंक, श्लोक 11
77. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 20, 23
78. रत्नावली, द्वितीय अंक, श्लोक 4, 19
79. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 2
80. रत्नावली, प्रथम अंक, श्लोक 1
81. रत्नावली, द्वितीय अंक, श्लोक 12
82. रत्नावली (भूमिका), पृ.89

प्रत्येक काल तथा युग में कलाएं मानव जीवन के लिए सदा उपयोगी रही हैं। संस्कृत काव्य शास्त्रों में मिलने वाली कलाओं में से अधिकतर कलाएं आज के भौतिक युग में लुप्त अथवा गौण हो चली हैं। तथापि 'कला जीवन के लिए है एवं जीवन कला' के लिए है, इस उक्ति के अनुसार कलाएँ आज भी मानव जीवन की श्रेष्ठ अंग बनी हुई हैं। चौसठ कलाओं में से ललित कला के अन्तर्गत आने वाली नृत्य कला का अभिन्न स्थान है। प्रायः नृत्य का शाब्दिक अर्थ नर्तन लिया जाता है। हालांकि, नृत्य जो है वह नटन अथवा नर्तन का ही एक भेद मात्र है। यदि हम नृत्य शास्त्र या संगीत शास्त्रों पर अपनी दृष्टि डालें तो नर्तन के अन्तर्गत आने वाले नृत्त, नृत्य तथा नर्तन तीनों की अलग-अलग चर्चा देखने को मिलती है। नृत्त:- अर्थात् अभिनय से शून्य अंग संचालन नृत्त कहलाता है। अन्य शब्दों में जहां अभिनय से रहित आश्चर्यजनक केवल अंगविक्षेप हो। नृत्य शब्द का वर्णन प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल के आचार्यों ने किया है लगभग सभी ने नृत्त की समान परिभाषा दी है। आचार्य भरतमुनि नृत्त को परिभाषित करते हुए कहते हैं-“नृत्तांगहारसंपन्ना” अर्थात् अंगहार आदि क्रियाओं से नृत्त सुसम्पन्न होता है। संगीतरत्नाकर में शारंगदेव कहते हैं -

गात्रविक्षेपमात्रं सर्वाभिनय वर्जितम् । आंगिकोक्तप्रकारेण नृत्तं नृत्तविदो विदुः ।।¹

गात्र अर्थात् शरीर का संचालन ऐसे हो जिसमें अभिनय प्रयोग वर्जित हो। इस प्रकार के अंगविक्षेप को विद्वान नृत्त कहते हैं। इस प्रकार नृत्त शब्द की उत्पत्ति 'नृत्ती' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है गात्र अर्थात् शरीर या अंग विक्षेप। नृत्त में जो अंगों की गतिशीलता होती है, उनसे किसी प्रकार के भाव की अपेक्षा नहीं होती।² अभिनयदर्पण में नन्दिकेश्वर कहते हैं- **भावाभिनयहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते³** अर्थात् जो भाव तथा अभिनय से सदा विहीन हो वह नृत्त है।

नृत्य :- नृत्य शब्द की उत्पत्ति 'नृत्' धातु से होती है जिसका अर्थ है अंग विक्षेप। जिसमें आंगिक अभिनय मुख्य होता है तथा वह भाव और पदार्थाभिनय पर आश्रित होता है।⁴ जब किसी पद अथवा गीत में भावों का अभिनय ताल और लय के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है उसे नृत्य कहते हैं।⁵ नाट्यशास्त्र में भरतमुनि नृत्य को परिभाषित करते हैं- **गीतप्रयोगमाश्रित्य नृत्तमेतत्प्रवर्त्यताम् ।।⁶**

भारतीय शास्त्र परम्परा में नृत्य एवं नृत्त के अन्तर्गत ताण्डव एवं लास्य इन दो भेदों का विशेष स्थान है। भारतीय संगीत में विशेष महत्व रखने वाले ताल वलय को ताण्डव तथा लास्य से सम्बन्धित माना जाता है।

अर्थात् ता का अर्थ ताण्डव तथा ल से लास्य मानते हैं। लास्य शब्द की निष्पत्ति “लसति इति लास्य” से की गयी है अर्थात् जो सुकुमार, स्त्री अंग प्रधान है। भारतीय नृत्य शास्त्र तथा संगीत शस्त्रों में लास्य एवं लास्याङ्गो का विविध उल्लेख मिलता है। लास्य से अर्थ है कोमल, सुकुमार तथा ललितपूर्ण अंगो द्वारा नृत्य और लास्याङ्ग अर्थात् वह प्रक्रियाएँ जो शरीर की चेष्टाओं द्वारा लास्यों को अभिव्यक्त करने में सहायता करती हैं।

नाट्य की प्रस्तुति में लास्य को नाटक के अंग के रूप में माना गया है जिसका वर्णन भरतमुनि नाट्यशास्त्र के 20 वें अध्याय में इस प्रकार करते हैं- “अन्यापि लास्यविधावङ्गानि तु नाटकोपयोगीनि। अस्माद विनिःसृतानि तु भाण इवैकप्रयोज्यानि।। भाणाकृतिवल्लास्यं विज्ञेयं त्वेकपात्रहार्यश्च। प्रकरणवदूह्यकार्यसंस्तवयुक्तं विविधभावं ज्ञेयम्।।”⁷

अर्थात् इसी प्रकार अन्य अंग जो नाटक के सहायक होते हैं तथा भाण के समान ही स्वरूप रखते हैं। जिसको किसी एक पात्र द्वारा अभिनीत किया जाता है एवं प्रकरण के समान ही इसके प्रणय प्रसंगों से सम्बन्धित अनेक भावों से युक्त होता है। इस लास्य के 12 अंगों का उल्लेख प्राप्त होता है-

गेयपदंस्थितपाट्ठ यमासीनं पुष्पगण्डिका। प्रच्छेदकस्त्रिमूढंच सैन्धवाख्यं द्विमूढकम्।।

उत्तमोत्तमकश्चौव विचित्रदमेव च। उक्तप्रयुक्तभावांच लास्याङ्गानि विदुर्बुधाः।।⁸

नागानन्द नाटक में लास्य का दर्शन प्रथम अङ्क में होता है। जहां मलयवती भूमि पर बैठी वीणा बजाती हुई दिखाई देती है। यह लास्य के प्रथम अंग गेयपद का उदाहरण है जिसे भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के 20 वे अध्याय में इस प्रकार परिभाषित किया है-

आसनेषूपविष्टैर्यत् तन्त्रीभाण्डोपवृष्टिम्। गायनैर्गीयते शुष्कं तद् गेयपदमुच्यते।

या नृत्यस्यासीना नारीं गेयं प्रियगुणान्वितम्। साङ्गोपाङ्गविधानेन तद् गेयपदमुच्यते।।⁹

अर्थात् नायिका जब वाद्य-यंत्रों के साथ भूमि पर बैठकर गायक द्वारा गाए गए आसारित गीत पर या खुद आसारित गीत गाते हुए भावों और भंगिमाओं तथा लघु अंग-संचालन के द्वारा गीत के अर्थ को व्यक्त करते हुए अपने प्रियतम को प्रशंसित करती है, इसे गेयपद लास्य कहते हैं। गेयपद लास्य के प्रस्तुतिकरण में कलाकार स्वतंत्र रूप से संगीत प्रस्तुति का विषय और उसके लिए क्या आवश्यक है निर्धारित करते हैं। गेयपद लास्य की प्रस्तुति नाट्य के प्रारंभ भाग में दर्शित होती है। नृत्य प्रस्तुति के लिए भी नाट्य का आरंभ भाग ही उचित माना गया है। प्रस्तावित नाटक में भी नांदी के पश्चात् नायक तथा विदूषक के मध्य लघु वार्तालाप के बाद ही नायिका अर्थात् मलयवती अपने वाद्य-यंत्र वीणा के साथ प्रदर्शित होती है। मुख्यतः प्रविशति भूमावुपविष्टा बीराणां वादयन्ती मलयवती चेटी च। इस प्रकार गाना प्रारंभ करती है-

उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरधुते! मम हि गौरि। अभिवाञ्छितं प्रसिध्यतु भगवति। युष्मत्प्रसादेन।।¹⁰

अर्थात् खिले हुए कमल की केसर की धुली के समान उज्ज्वल सी कान्ति वाली गौरी माता। आपकी कृपा से मेरा आराध्य सिद्ध होवे। मलयवती का गाना तथा उसकी वीणा बजाने की प्रतिभा देख उसकी प्रशंसा करता है -

गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्त्रोऽपि सम्पादिता-स्तत्त्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक् त्रयो दर्शिताः।।¹¹

अर्थात् इस गाने में स्पष्ट रूप से दस प्रकार का ‘व्यञ्जन-धातु’ है; ‘द्रुत, मध्य और विलम्बित’ - तीन प्रकार का प्राप्त होने वाला ‘लय’ अच्छी तरह स्फुट है; ‘गोपुच्छ’ इत्यादि तीनों ही प्रकार की ‘यतियाँ’ क्रमशः कर रखी हैं और ‘तत्त्व, श्रोष एवं अनुगत’- ये बजाने की तीनों विधियाँ अच्छी तरह दर्शाई गई हैं। इसमें नायिका

की सुंदरता, उसके नृत्य और उसकी कला की समझ को लास्य रूप में दर्शाया गया है। लास्य यहाँ केवल बाह्य सौंदर्य तक सीमित नहीं है बल्कि उसके संवादों में भी झलकता है। जब चेटी मलयवती को वीणा बजाने से रोकती है तब माता गौरी के प्रति उसकी श्रद्धा, आदर उसके संस्कार को दर्शाता है। साथ ही उसकी सरलता, सौम्यता और नारीत्व का उदात्त चित्रण भी इस नाटक के लास्य की विशेषता है। उसके लावण्य रूप पर मुग्ध होकर राजा उसकी सौंदरता का वर्णन इस प्रकार करता है-

स्वर्गस्त्री यदि तत्कृतार्थमभवच्चक्षुः सहस्र हरे-नार्गी चेन्न रसातलं शशभृता शून्यं मुखेऽस्याः स्थिते ।।¹²

अर्थात् अगर यह एक स्वर्गीय स्त्री है, तो इन्द्र की हजार आँखें सफल हो गई हैं, यदि यह नागलोक से आई है तो इसके मुख मात्र की उपस्थिति में नागलोक कभी चन्द्रमा से शून्य नहीं रहा होगा, यह यदि विद्याधरी है, तो हमारी जाति अन्य समस्त जातियों को जीतने वाली है यदि यह सिद्धों के कुल की है, तो इससे सिद्ध लोग तीनों ही लोकों में प्रसिद्ध हो जायेंगे।

रत्नावली के द्वितीय अङ्क में जब सागरिका अर्थात् रत्नावली सुसंगता के आग्रह पर अपने आप को रोक नहीं पाति और अपनी विरह वेदना उसे बता देती है वहाँ लास्य का एक मनोरम चित्रण देखने को मिलता है। यहाँ लास्य के द्वितीय अंग स्तिथपाठ्य का प्रयोग हुआ है। आचार्य भरतमुनि स्तिथ पाठ्य को परिभाषित करते हैं- **प्राकृतं या वियुक्ता तु पठेदासनसंस्थिता । मदनानलतप्ताङ्गी स्थितपाठ्यं तदुच्यते ।।¹³** अर्थात् जब कोई नायिका अपने प्रेमी से अलग होकर या बिछड़ कर विरह से पीड़ित होकर एक स्थान पर विराजमान होकर प्राकृत भाषा में पाठ करती है तब वह स्तिथ पाठ्य कहलाता है। सागरिका निःश्वास लेकर कहती है “प्रिय हृदय, खुश हो जाओ। यह दुःखदायी परिणाम भोगने वाले दुर्लभ व्यक्ति (महाराज उदयन) को पाने की इच्छा व्यर्थ है। दूसरी बात यह है कि जिस व्यक्ति को एक बार देखने से तुम्हारा संताप बढ़ जाता है, उसे फिर से देखने की इच्छा कर रहा है। तुम्हारी मूर्खता विचित्र है। रे हृदय, तुम बहुत क्रूर हो, जन्म से साथ बढ़े हुए इस जन (मुझ सागरिका) को छोड़कर क्षणिक दर्शन मात्र से परिचित जन अर्थात् उस महाराज उदयन का पीछा करते तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आती या तेरा क्या ही दोष है? आज तुमने कामदेव के बाणों की चोट से डर कर ऐसा किया है। (आँसू बहाते हुए) मैं कामदेव को उलाहना चाहूँगी। (हाथ जोड़कर) हे कामेश्वर! क्या तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है, देवताओं एवं राक्षसों को जीत कर अबलाओं पर इस प्रकार हमला करते हुए? अथवा सोचकर कि तुम शरीरहीन हो शरीरहीन होने से लज्जा नहीं आती। (लम्बी साँस लेकर) उस दुःख ने मुझ मन्दभागिनी की मृत्यु को जन्म दिया है। (चित्रफलक को देखकर) इस चित्र लिखित राजा उदयन को देखकर यथा मनचाहा कर लूँ जब तक यहाँ कोई अन्य व्यक्ति नहीं आ जाता। दुःखी मन को एकाग्र कर चित्रफलक को लेकर शांत होने का अभिनय करती है। यद्यपि मेरी अँगुलियों के भाग घबराहट से काँप रहे हैं और उस प्रियतम उदयन को देखने का कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। इसलिये चित्र के बहाने से इनको देखूँगी (फिर चित्र बनाने का अभिनय करने लगती है।) तभी सुसंगता का प्रवेश होता है और वह अपनी सखी की दृष्टि से बचकर उसे देखने लगती है और समझ जाती है की इसने राजा उदयन का चित्र बनाया है पर वह ये अपनी सखी के मुख से सुनना चाहती है और पूछती है यह क्या चित्र बना रही है? आँखों में आँसू भर एवं लज्जा के साथ कहती है मैंने मदन महोत्सव में भगवान कामदेव को चित्रित किया है तभी सुसंगता कहती है परंतु इसमें कुछ शून्य मालूम पड़ता है और वह तूलिका लेकर भगवान कामदेव के समीप रति का चित्र बना देती है। इसे देख सागरिका की लज्जा एवं संताप और बढ़ जाता है वह कहती है-

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा, प्रियसखी विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ।।¹⁴

अर्थात् दुर्लभ व्यक्ति के प्रति अनुराग रखना, भारी लज्जा और आत्म पराधीन के समान है। प्रिय सखी, ऐसा प्रेम संकटापन्न है मेरे लिए अब मृत्यु ही सबसे उचित सहारा है। इसी प्रकार रत्नावली के तृतीय अंक में हमे लास्य का एक अनोखा रूप देखने को प्राप्त होता है। यहाँ लास्य का तृतीय अंग अर्थात् आसीन नामक लास्याङ्ग की झलक प्राप्त होती है। आचार्य भरतमुनि आसीन नामक लास्याङ्ग को इस प्रकार परिभाषित करते हैं- आसीनमास्यते यत्र चिन्ताशोकसमन्वितम् । अप्रसाधिगात्रञ्च जिह्व दृष्टिनिरीक्षितम् ।।¹⁵

नाट्यशास्त्र के 20वे अध्याय में वर्णित इस श्लोक के अनुसार जब कोई नायिका साज-सज्जा तथा प्रसाधनो से स्वयं को रहित करके विराजमान अवस्था में किसी पद के माध्यम से तिरछी दृष्टिपात के प्रयोग से शोक तथा चिन्ता जैसी मनो अवस्था का बयान करें तब वह आसीन पाठ्य लास्य कहलाता है। इसकी सांगीतिक प्रयोजना में दो प्रकार का वर्णन मिलता है। प्रथम वर्णन में त्र्यस्त्र ताल को आधार बनाया जाता है। जिसमें केवल पुरुष भावनाओं की अभिव्यक्ति की जाती है। दूसरे में आसीन पाठ्य की प्रस्तुति पंचपाणि ताल पर आधारित चार पादों में से उनके अर्थों को व्यक्त करते हुए गाए जाते हैं।

यद्यपि लास्य कोमल, सुकुमार भाव से युक्त स्त्री प्रधान होता है परंतु कहीं-कहीं इसका प्रदर्शन पुरुष पात्र द्वारा भी किया जाता है। जैसा की भरतमुनि द्वारा दिये गए लक्षण के अनुसार इसकी दो प्रकार की सांगीतिक प्रयोजना होती है जिसमें प्रथम वर्णन में पुरुष भावनाओं की अभिव्यक्ति त्र्यस्त्र ताल को आधारित करके होती है। यहाँ राजा उदयन की भावाभिव्यक्ति इसी प्रथम वर्णन पर आधारित है-

संतापो हृदय स्मरानलकृतः संप्रत्ययं सद्यतां, स्त्येवोपशमोऽस्य तां प्रति पुनः किं त्वं मुधा ताम्यसि ।

यन्मूढेन मया तदा कथमपि प्राप्तो गृहीत्वा चिरं, विन्यस्तस्त्वयि सान्द्रचन्दनरसस्पर्शो न तस्याः करः ।।¹⁶
अहो महदाश्चर्यम् । मनश्चलं प्रकृत्यैव दुलक्ष्यं च तथापि मे । कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ।।¹⁷

(ऊर्ध्वमवलोक्य ।) भोः कुसुमधन्वन् !

बाणाः पञ्च मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जनः, प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धिं गतम् ।

द्रष्टं तत्त्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं, विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नीतस्त्वया पञ्चताम् ।।¹⁸

कामावस्था से पीड़ित राजा उदयन का प्रवेश होता है। निश्वास लेकर राजा- रे हृदय! उस समय मैं मूर्ख (उदयन) था, जब मैं उस सागरिका का हाथ पकड़कर किसी तरह के घने चन्दन रस के समान सुखकर शीतल कर का स्पर्श महसूस करता था, तो मैं बहुत समय तक तुझ काम सन्ताप से व्यथित (हृदय) था। अब कामानल से उत्पन्न होने वाला यह दुःख सहन कर। इस काम संताप का उपशमन तो नहीं ही है। उस (सागरिका) के प्रति तुम बेचैन क्यों हो रहे हो? ये महान आश्चर्य है की मन अपनी प्रकृति से ही चंचल एवम् दुर्भेद्य होता है। फिर भी, न जाने क्यों यह मन मेरा कामदेव के सभी बाणों से एक साथ भेदा जा चुका है। ऊपर की ओर देख कर राजा-अरे कुसुम धन्वन्! संसार में ऐसा प्रसिद्ध है की कामदेव के पाँच बाण है तथा उन बाणों से असंख्य जन लक्ष्य बनाए जाते हैं। किन्तु तुझमें यह बात विपरीत है की अब असंख्य बाणों से बिंधा हुआ मैं कामातुर उदयन मृत्यु की ओर जा रहा हूँ। इस प्रकार राजा उदयन काम पीड़ा से पीड़ित तथा विरहागनी में जलता हुआ मन ही मन सागरिका से मिलन तथा पुनः मिलन की आशा में व्याकुल बैठा है। तभी वसन्तक (विदूषक) का प्रवेश होता है। वह राजा को सूचना देता है की आज उसका पुनः मिलन सागरिका से होगा। इस पर राजा प्रसन्न होकर विदूषक को शुद्ध सुवर्ण का उपहार देता है, फिर दोनों माधवीलता मंडप में चले जाते हैं। उसके पश्चात् राजा गंध महक कर-

राजा - वयस्य गच्छाग्रतः । ननु सुपरिज्ञात एवात्र मार्गः तथा हि-

पालीयं चम्पकानां नियतमयमसौ सुन्दरः सिन्दुवारः, सान्द्रा वीथी तथेयं बकुलविटपिनां पाटलापङ्क्तिरेषा ।

आध्रायाघ्राय गन्धं विविधमधिगतैः पादपरेवमस्मिन्, व्यक्ति पन्थाः प्रयाति द्विगुणतरतमोनिह तोऽप्येष चिह्नैः ।¹⁹

यहाँ राजा विदूषक से बताता है की यह मार्ग तो सुपरिचित है । तभी विदूषक राजा को प्रतीक्षा करने का बोल सागरिका को लेने चला जाता है । तब तक राजा उदयन मरकत मणि के पत्थर से बनी वेदिका पर बैठकर अपनी प्रिया की प्रतीक्षा करने लगता है और सोचता है की किसी कामुक व्यक्ति का अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री के प्रति समागम का पक्षपात विचित्र होता है । क्योंकि- **प्रणयविशदां दृष्टि वक्त्रे ददाति न शङ्किता घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ । वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताऽप्यहा रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ।**²⁰

क्योंकि संकेत स्थल पर कामिनी किसी के जान लिए जाने के भय से शंकित अनुरागभरी दृष्टि को ऊपर नहीं कर पाती । कण्ठालिङ्गन करने पर भय के कारण विशेष अनुराग से वक्षःस्थल को पूर्ण सटने नहीं देती, प्रयास करके रोकने पर भी 'मैं जा रही हूँ' इस प्रकार कहती है तथापि वास्तव में कामिनी अत्यन्त आनन्द देती है । प्रियदर्शिका यह एक चार अंको की नाटिका है । इसमें राजा वत्स की अन्तःपुर की प्रेम कहानी को दर्शाया गया है । राजा दृढ़ वर्मा के युद्ध में पराजित होने के पश्चात उनकी सुंदरी कन्या प्रियदर्शिका राजा वत्स के अन्तःपुर में जाती है और वहाँ आरण्यका का जीवन व्यतीत करने लगती है । प्रियदर्शिका की लावण्यता पर राजा वत्स मुग्ध हो जाते हैं और अन्तःपुर के रंगमंच पर उसके विवाह का अभिनय करते हैं । रानी वासवदत्ता आरण्यका बनती है तथा वर का अभिनय स्वयं राजा वत्स करते हैं । यह असली प्रेमाभिनय का रूप धारण कर लेता है । वासवदत्ता की ईर्ष्या व क्रोध के कारण आरण्यका को कारावास में डाल दिया जाता है । परन्तु अन्ततः आरण्यका का राजपुत्री होने की बात सबके सामने आ जाती है तब रानी वासवदत्ता स्वयं राजा वत्स और आरण्यका अर्थात् प्रियदर्शिका के साथ विवाह करने के लिए अनुमति दे देती है । प्रस्तुत नाटिका के तृतीय अंक में आसीन लास्य का आंशिक रूप प्राप्त होता है । उपर्युक्त आचार्य भरतमुनि द्वारा दिये गए लक्षण का अन्य आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षण से कुछ भिन्नता प्राप्त होती है । जैसे संगीत दामोदर में पंडित शुभंकर आसीन लास्य को इस प्रकार परिभाषित करते हैं-

भ्रूकरचरणविलासाभिनयैर्युक्तं प्रपूर्यते यच्च । आसीनया वनितया भवति तदासीनपाठ्यन्तु ।²¹

आसीन पाठ्य तब होता है जब वनिता (स्त्री) किसी आसन या मंच (प्रेक्षागृह) पर बैठी हुई होती है और अपने भौहों, हाथों, चरणों आदि अंगों के विलास के साथ लास्य भाव का प्रदर्शन करती है । नृत्याध्याय में अशोकमल्ल आसीन लास्य को परिभाषित करते हैं-

यत्राङ्गना खण्डितास्ते चिन्ताशोकसमाकुला । वर्जिताभिनयैर्वाक्यैस्तदासीनं मतं बुधैः ।²²

जब खण्डिता नायिका चिन्ता व शोक से ग्रस्त होकर केवल बैठी हो और कोई आंगिक या भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं करती, तो वह आसीन लास्यांग बन जाता है । जायसेनापतिकृत नृतरत्नावली के अनुसार आसीन लास्य- **चिन्ताशोकान्वितं सर्वैः वाद्यैरभिनयैरपि । हीनं यत्रास्यते तस्मात् ख्यातमासीनसंज्ञया ।**²³

इस प्रकार की प्रस्तुति को आसीन लास्य कहा जाता है जब पाठ और अभिनय दोनों ही विराजमान अवस्था में चिन्ता और दुःख को दर्शाते हैं । उपर्युक्त दिये गये लक्षणों के आधार पर यहाँ प्रियदर्शिका अर्थात् आरण्यका कामावस्था से पीड़ित आसन पर बैठी अभिनय करती है ।

आरण्यका- (निःश्वस्य) हृदय, दुर्लभजनं प्रार्थयमानं त्वं कस्मा. न्मादुःखितां करोषि ।

मनोरमा - तदेतच्छन्यहृदयत्वस्य कारणम् । कं पुनरेषा प्रार्थयते । अवहिता तावच्छोष्यामि ।

आरण्यका - (सास्त्रम्) कथं तथा नाम शोभनदर्शनो भूत्वा महाराज एवं सन्तापयति माम् । आश्चर्यमाश्चर्यम् ।
(विश्वस्य) अथवा ममैवैषाऽभागधेयता । न पुनर्महाराजस्य दोषः ।

मनोरमा - (सवाष्पम्) कथं महाराज एवास्याः प्रार्थनीयः साधु प्रियसखि साधु । आभिजात्यस-शस्तेऽभिलाषः ।

यहाँ कामवस्था से पीड़ित आरण्यका राजा को याद कर रही है और मनोरमा उसकी बातें छिपकर सुनती है । उसे ज्ञात होता है की आरण्यका का अनुराग बहुत दूर पहुँच चुका है । वह आरण्यका के समीप जाती है और सारा वृतांत जान लेती है । वह तालाब से कमलके पत्ते लाकर उसके हृदय पर रख उसे धीरज रखने को कहती है । तभी विदूषक का प्रवेश होता है और मनोरमा द्वारा उससे ज्ञात होता है की महाराज की जैसी अवस्था है आरण्यका की अवस्था उससे भी दुगुनी है । महाराज की भी यही अवस्था है जानकर आरण्यका स्वयं नलनी के पत्ते हटाने लगती है । तभी मनोरमा विदूषक को बताती है की महाराज की अवस्था मात्र जानकर इसका संताप दूर हो गया है अब इसे तुम ले लों । अतः इस प्रकार यहाँ महाकवि हर्ष ने आरण्यका के माध्यम से लास्य का मनोरम चित्रण किया है ।

लास्य का महत्व संस्कृत नाट्यशास्त्र में उल्लेखनीय है । यह प्रेम और सौंदर्य की भावना को गहराई से उभारता है, जो भारतीय कला और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । हर्ष के रूपकों में लास्य केवल नृत्य का माध्यम नहीं, बल्कि भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने का शक्तिशाली उपकरण था । यह शास्त्रीय नृत्य और अभिनय के मर्म को समझने के लिए अद्वितीय दृष्टिकोण प्रदान करता है । लास्य के माध्यम से हर्ष ने न केवल साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में नारी और सौंदर्य के महत्व को भी रेखांकित किया । लास्य का स्वरूप हर्ष के रूपकों में प्रेम और शृंगार का प्रतीक है, साथ ही भारतीय नाट्यकला की समृद्ध परंपरा का भी प्रतीक है । लास्य की यह प्रवृत्ति सांस्कृतिक मूल्यों को सुदृढ़ करती है और नाटक को भी मनोरंजक बनाती है ।

संदर्भ -

1. संगीतरत्नाकर 6/26
2. कथक कल्पद्रुम, डॉ. चेतना ज्योतिषी ब्योहार, पृष्ठ-69
3. अभिनयदर्पण श्लोक 15
4. कथक कल्पद्रुम, डॉ. चेतना ज्योतिषी ब्योहार, पृष्ठ 69
5. कथक नृत्य परम्परा, डॉ. प्रेम दवे, पृ.सं.10
6. नाट्यशास्त्र 4/268
7. नाट्यशास्त्र 20/133-20/134
8. नाट्यशास्त्र पृष्ठ 43
9. शास्त्री शुक्ल श्री बाबूलाल, भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्रम्, भाग-3, हिन्दी व्याख्या प्रदीप, पृ.सं. 43
10. नागानंद, मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम अंक, पृ.सं. 26
11. वही, पृष्ठ 27
12. वही, पृष्ठ 30
13. शास्त्री शुक्ल श्री बाबूलाल, भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्रम्, भाग-3, हिन्दी व्याख्या प्रदीप, पृ.सं. 44

14. पं. परमेशवर्दीन पांडे, महाकवि हर्षदेव विरचित रत्नावली, द्वितीय अंक श्लोक 1, पृष्ठ 54
15. शास्त्री शुक्ल श्री बाबूलाल, भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्रम्, भाग-3, हिन्दी व्याख्या प्रदीप, पृ.सं. 44
16. पं.परमेशवर्दीन पांडे, महाकवि हर्षदेव विरचित रत्नावली, तृतीय अंक श्लोक 1, पृष्ठ 101
17. वही, पृष्ठ 102
18. वही, पृष्ठ 102
19. वही, पृष्ठ 111
20. वही, पृष्ठ 113
21. आचार्य डॉ. हरिराम, शुभंकर कृत संगीत दामोदर (हिन्दी अनुवाद), पृ.सं. 155
22. गैरोला वाचस्पति, अनुवाद हिन्दी अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय, पृ.सं. 378
23. जायसेना पति विरचित नृत्तरत्नावली (Vol.1).
अंग्रेजी अनुवादक पाप्पु वेन्गोपाला राव और यशोदा ठकोरे, पृ.सं. 24

रत्नावली नाटिका की नाट्यशास्त्रीय परख

पूनम यादव

महाकवि हर्षवर्धन अर्थप्रकृतियों के प्रयोग में सिद्धहस्त कवि हैं। इनके द्वारा रत्नावली नाटिका में इनका सफल प्रयोग किया गया है। रत्नावली नाटिका का फल है कौशाम्बी नरेश वत्सराज उदयन को रत्नावली (सागरिका) की प्राप्ति। इस फल का हेतुभूत बीज नामक अर्थप्रकृति का प्रयोग नाटिका की प्रस्तावना के अनन्तर किया गया है। यहाँ यौगन्धरायण मन्त्री का कथन है कि इसमें सन्देह नहीं है कि यदि भाग्य अनुकूल हो तो अन्य देश से, समुद्र के मध्य से तथा दिशाओं के अन्तिम भाग से भी इष्ट प्राप्ति हो जाती है। जैसे-सिद्धपुरुष के वचनानुसार (सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली के साथ जिसका विवाह होगा, वह चक्रवर्ती सम्राट् बनेगा) माँगी गयी रत्नावली का सिंहलद्वीप से लौटते समय सागर में नौका टूट जाने से डूबकर ऊपर उठने पर एक कड़ी का तख्ता पा जाना और कौशाम्बी नगरी के व्यापारी द्वारा राजकुमारी को आश्वासन देना तथा रत्नमाला चिह्न को पहचानकर यहाँ लाना सम्भव हुआ। मन्त्री के उपर्युक्त कथन में उदयन एवं रत्नावली के मिलन का बीज उपन्यस्त है।¹ मदनोत्सव के अवसर पर कामदेव पूजन के अनन्तर कथा विच्छिन्न सी हो जाती है, तब प्रथम अङ्क में वैतालिक द्वारा पठित ‘उदयनस्येन्दोरिवोद्दीक्षते’² पद्य को सुनकर सागरिका (रत्नावली) का कथन ‘(सहर्षम्) कहां एसो सो उदअणणरिन्दो जस्सअहंतादेण दिण्णा’³ अर्थात् (सहर्ष) क्या ये वही राजा उदयन हैं, जिन्हें पिताश्री ने मुझे समर्पित किया है, कथा को आगे बढ़ाने में सहायक है, अतः यह नाटिका की बिन्दु नामक अर्थप्रकृति प्रतीत होती है। इस नाटिका में पताका नामक अर्थप्रकृति का प्रयोग नहीं किया गया है। चतुर्थ अङ्क में रुमण्वान द्वारा कोसलोच्छेद का वर्णन⁴ किया जाता है, यह प्रकरी नामक अर्थप्रकृति प्रतीत होती है। चतुर्थ अङ्क में ही सागरिका एवं उदयन का विवाह⁵ कार्य नामक अर्थप्रकृति प्रतीत होता है।

रत्नावली नाटिका में कार्यावस्थाएँ -

महाकवि हर्षणीत रत्नावली नाटिका में उपर्युक्त कार्यावस्थाओं को इस रूप में देखा जा सकता है-

रत्नावली नाटिका के प्रथम अङ्क में यौगन्धरायण द्वारा रत्नावली को वत्सराज उदयन के अन्तरूपुर में रखने की उत्कण्ठा⁶ आरम्भ नामक अवस्था परिलक्षित होती है। द्वितीय अङ्क में सागरिका द्वारा चित्रफलक पर राजा उदयन का चित्र अङ्कित किया जाता है। उसी चित्र के द्वारा वत्सराज उदयन का सागरिका से मिलन होता है। अतः चित्रफलक का प्रयोग प्रयत्न नामक कार्यावस्था प्रतीत होती है।⁷ तृतीय अङ्क में वत्सराज उदयन एवं सागरिका के मिलन हेतु वेश परिवर्तन का उपाय किया जाता है। यह प्राप्त्याशा अवस्था प्रतीत होती

है।⁸ तृतीय अङ्क में विदूषक के कथन 'सागरिका दुक्करं जीविस्सदि' से लेकर राजा के कथन वयस्य! देवीप्रसादनं त्यक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि' अर्थात् मित्र! देवी वासवदत्ता की प्रसन्नता के अतिरिक्त सागरिका से मिलन का अन्य उपाय नहीं है, पर्यन्त नियताप्ति अवस्था प्रतीत होती है।⁹ चतुर्थ अङ्क में विवाह के अनन्तर राजा उदयन को रत्नावली की प्राप्ति एवं चक्रवर्ती सम्राट् होने की सूचना में फलागम अवस्था दृष्टिगत होती है।¹⁰

रत्नावली नाटिका में सन्धियाँ -

उपर्युक्त सन्धियों का अनुप्रयोगात्मक रूप महाकवि हर्षवर्धन विरचित रत्नावली नाटिका में इस प्रकार देखा जा सकता है- रत्नावली नाटिका के प्रथम अङ्क में यौगन्धरायण के कथन 'एवमेतत्। करु सन्देह? से लेकर द्वितीय अङ्क में सागरिका द्वारा चित्रफलक पर राजा उदयन का चित्राङ्कन तथा उसके द्वारा राजा के दर्शन पर्यन्त मुख सन्धि परिलक्षित होती है।¹¹ द्वितीय अङ्क में सागरिका के कथन 'यावन्नकोऽपीहा गच्छतितावदालेख्यसमर्पितंतमभिमतंजनं प्रेक्ष्ययथासमीहितं करिष्यामि से लेकर सुसङ्गता के कथन 'भट्टा! अलंसङ्काए...पसादेदुण भट्टा' पर्यन्त प्रतिमुख सन्धि परिलक्षित होती है।¹² द्वितीय अङ्क में सुसङ्गता के कथन 'सहि, अदक्खिणा दाणिंसे से लेकर काञ्चनमाला के कथन भट्टिणि, इयंसाचित्तसालिआ... सण्णं करोमि' पर्यन्त गर्भ सन्धि प्रतीत होती है।¹³ चतुर्थ अङ्क में ऐन्द्रजालिक द्वारा कृत्रिम अग्नि प्रज्वलित करने तक विमर्श सन्धि परिलक्षित होती है।¹⁴ अन्तःपुर में प्रज्वलित अग्नि तथा अग्नि में सागरिका को देखकर वासवदत्ता राजा से उसे बचाने का अनुरोध करती है। इसके अनन्तर सागरिका की अपनी ममेरी बहिन के रूप में पहचान होने पर वासवदत्ता को उसके प्रति अनुराग हो जाता है। वह उसका हाथ राजा उदयन के हाथ में सौंप देती है। इस प्रकार चतुर्थ अंक में निर्वहण सन्धि परिलक्षित होती है।¹⁵

रत्नावली नाटिका में संसूच्य कथावस्तु(अर्थोपक्षेपक) -

उक्त नाटिका में अर्थोपक्षेपकों की योजना नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप की गयी है। प्रथम अङ्क में आमुख के अनन्तर भावी कथांश की सूचना हेतु विष्कम्भक अर्थोपक्षेपक का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत यौगन्धरायण मन्त्री (मध्यम पात्र) द्वारा सिद्धपुरुष के वचनानुसार राजा उदयन के साथ विवाह हेतु माँगी गयी सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली का समुद्र में नौका टूटने पर भी सुरक्षित रूप से कौशाम्बी में आना तथा मन्त्री द्वारा इसे महारानी वासवदत्ता को सौंपा जाना, मदनोत्सव आयोजन एवं इस में राजा उदयन का आगमन आदि कथांशों की सूचना दी जाती है।¹⁶ द्वितीय अङ्क में सुसङ्गता एवं निपुणि का नाम का प्राकृत भाषी अधम पात्रों द्वारा भावी कथांश वियोगावस्था में नायक राजा उदयन के चित्राङ्कन हेतु सामग्री (चित्रफलक, तूलिका, पेटिका आदि) रत्नावली द्वारा कदली गृह में प्रवेश किए जाने की सूचना दी गयी है।¹⁷ तृतीय अङ्क में मदनिका एवं काञ्चन माला नाम का प्राकृत भाषी अधम पात्रों द्वारा भावी कथांशवत्स राजा उदयन की काम पीड़ा के निवारण हेतु वेश परिवर्तन कर सागरिका को उदयन से मिला ने की योजना एवं महारानी वासवदत्ता के समक्ष उक्त योजना का भेदोत्पादन की सूचना दी गयी है।¹⁸ चतुर्थ अङ्क में सुसङ्गता एवं विदूषक नाम का प्राकृत भाषी मध्यम पात्रों द्वारा भावी कथांशवासवदत्ताकेवेश में सागरिका तथा राजा को उपवन में मिलते देख कर महारानी वासवदत्ता द्वारा उसे अन्यत्र भेजे जाने एवं सागरिका द्वारा मदनिका को किसी ब्राह्मण को दान करने हेतु रत्न माला प्रदान किए जाने की सूचना दी गयी है।¹⁹

रत्नावली नाटिका में इतिवृत्त के अन्य भेद -

उपर्युक्त भेदों में से रत्नावली नाटिका में अश्राव्य (स्वगत) एवं प्रकाश (सर्वश्राव्य) तथा आकाश भाषित कथा वस्तु का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत नाटिका के तृतीय अङ्क में आकाश भाषित इतिवृत्त का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत मदनिका द्वारा आकाश को लक्ष्य कर के कौशाम्बिका को सम्बोधन कर काञ्चन माला के उदयन के समीप आगमन के विषय में प्रश्न किया जाता है। इसके अनन्तर किञ्चित् श्रवण का अभिनय कर के स्वयं द्वारा ही उक्त प्रश्न का उत्तर दिया जाता है।²⁰

नेता -

रूपक का दूसरा महत्वपूर्ण तत्त्व नेता को माना गया है। नेता पद से यहाँ केवल नायक का ही ग्रहण नहीं होता अपितु सभी पात्रों का ग्रहण होता है। रूपक में एक नेता प्रधान होता है, जिसे नायक कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य पात्र मन्त्री, पताकानायक, विट, विदूषक आदि इसके सहायक होते हैं।²¹ नायक कथावस्तु को फलागम पर्यन्त ले जाने वाला तत्त्व होता है। इसी के हित में रूपक के समस्त कार्य व्यापार का अवसान होता है, वस्तुतः यही समस्त कार्य व्यापार अथवा घटना चक्र का आधार एवं सूत्रधार होता है।²² यही रूपक के प्रधान रस का मूलभूत हेतु अथवा आलम्बन होता है। दशरूपक²³, काव्यानुशासन²⁴, नाट्यदर्पण²⁵ एवं साहित्यदर्पण²⁶ आदि ग्रन्थों में विनम्रता, मधुरता, त्यागी, चतुरता, प्रियंवद, दक्ष, शूर, शास्त्रज्ञ, शुचि, वाग्मी आदि नायक के सामान्य गुण स्वीकार किए गए हैं। नायक चार प्रकार²⁷ के होते हैं- धीरोदात्त, धीरललित, धीर प्रशान्त एवं धीर प्रशान्त। इनमें से नाटिका का नायक धीरललित कोटि का होता है। आचार्य धनञ्जय²⁸, आचार्य हेमचन्द्र²⁹, आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र³⁰, आचार्यशारदातनय³¹, कविराज विश्वनाथ³² आदि आचार्यों के अनुसार निश्चिन्त, सुखी, मृदुस्वभाव एवं नृत्य आदि कलाओं में तत्पर रहने वाला नायक धीरललित नायक कहलाता है।

रत्नावली नाटिका में प्रधान नायक -

रत्नावली नाटिका का मुख्य नायक कौशाम्बी नरेश वत्सराज उदयन है। सम्पूर्ण नाटिका में इनकी भूमिका पर दृष्टिपात करने पर परिलक्षित होता है कि यह धीरललित नायक के गुणों से युक्त है। प्रथम अङ्क में स्वयं उदयन का कथन है कि राज्य शत्रुओं से रहित हो गया है। राज्य का कार्यभार योग्य मन्त्री को सौंप दिया गया है। सम्यक् रूप से परिपालित प्रजा सभी प्रकार से शान्त है। मेरे पास प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता, वसन्त ऋतु और तुम जैसा मित्र है। इस अवस्था में कामदेव भले ही मदनोत्सव से सन्तुष्ट होवे, किन्तु मैं मानता हूँ कि यह मेरा ही उत्सव है।³³ राजा उदयन के उक्त कथन से उनकी निश्चिन्तता की प्रतीति होती है। इसी प्रकार प्रथम अङ्क में ही राजा उदयन के अन्य कथन³⁴ से उनकी नृत्य आदि कलाओं में अनुरक्ति परिलक्षित होती है।

नाटिका में नायिका योजना -

नाटिका में दो नायिकाएं स्वीकार की गयी हैं- एक मुख्य नायक की परिणीता स्त्री तथा दूसरी नृपवंशजा, अन्तरूपुर से सम्बद्ध सङ्गीत आदि कलाओं में प्रवीण कन्या होती है। रत्नावली नाटिका में नायिकाओं की योजना इस प्रकार की गयी है-

रत्नावली नाटिका में दो नायिकाओं की योजना की गयी है- वासवदत्ता एवं रत्नावली(सागरिका)। वासवदत्ता वत्सराज उदयन (मुख्य नायक) की परिणीता स्त्री है तथा रत्नावली (वासवदत्ता की ममेरी बहिन) मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता के अन्तरूपुर में निक्षिप्त है।³⁵ इनमें से रत्नावली नाटिका की मुख्य नायिका है। सम्पूर्ण नाटिका पर दृष्टिपात करने पर यह परिलक्षित होता है कि यह नायिकोचित समस्त गुणों से युक्त है।

यह मुग्धा कोटि की नायिका है। इसमें प्रेमासक्त वत्सराज उदयन का कथन है कि त्रिलोक में इस अद्वितीय ललना की रचना करके ब्रह्मा ने आश्चर्य से निजासनभूत कमलदलों की कान्तिजयी नेत्रों को विस्फारित किया होगा। शिर हिलाते हुए अपने चतुर्मुखों से एक साथ साधु! साधु! उच्चारित किया होगा।³⁶ राजा उदयन के उपर्युक्त कथन से रत्नावली के मुग्धा रूप की अभिव्यक्ति की गयी है। द्वितीय अङ्क में रत्नावली द्वारा चित्राङ्कन³⁷ के उल्लेख से उसकी कलाभिज्ञ होने की प्रतीति होती है। सम्पूर्ण नाटिका में ऐसे अनेक उदाहरण हैं,³⁸ जिनके द्वारा रत्नावली में मुग्धास्वरूप, कलाभिज्ञता, विनम्रता, धैर्यशीलता, लज्जा, उदारहृदय, मृदुस्वभाव, सहिष्णुता आदि नायिकोचित गुणों की प्रतीति होती है।

रत्नावली नाटिका में रस योजना -

उक्त नाटिका में प्रधान रस के रूप में शृङ्गार रस का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत वत्सराज उदयन एवं रत्नावली आलम्बन विभाव हैं। मदनोत्सव, वसन्त ऋतु, नृत्य, गीत एवं अभिनय आदि, काम पूजन के दृश्य, शृङ्गारिक वातावरण, सन्ध्या आदि उद्दीपन विभाव, एवं दर्शनोत्कण्ठा, चित्राङ्कन सन्ताप, मान, कम्पन, स्वेद लज्जा, आदि अनुभाव तथा अश्रु, मरण, ईर्ष्या, हर्ष आदि व्यभिचारि भाव हैं। प्रथम अङ्क के अन्तर्गत रत्नावली में वत्सराज उदयन के दर्शन से प्ररुद्ध रति नामक स्थायि भाव उपर्युक्त विभावानुभाव आदि के द्वारा अन्य अङ्कों में विप्रलम्भ शृङ्गार एवं सम्भोग शृङ्गार रस के रूप में अभिव्यक्त होता है। शृङ्गार रस के अतिरिक्त उक्त नाटिका के अन्तर्गत विदूषक के कथनों में हास्य रस, वानर के जंजीर टूट जाना एवं सामान्यजन में उससे त्रास के उल्लेख में भयानक रस, कौशल देश पर विजय प्राप्ति के उल्लेख में वीर रस तथा ऐन्द्रजाल के उल्लेख में अद्भुत रस को अप्रधान अर्थात् गौण रस के रूप में उपन्यस्त किया गया है।

वृत्तियाँ -

नायक का व्यापार स्वरूप वृत्तियों का नाट्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इनके माध्यम से नायक-नायिकाओं के चरित्र का विकास होता है। इनके द्वारा नाट्य में रस का संचरण होता है। ये नाट्य में रसावस्थाओं की सूचक होती हैं। आचार्य भरत मुनि द्वारा इन्हें 'नाट्य की माताओं' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। आचार्य अभिनव गुप्त³⁹ एवं धनञ्जय⁴⁰ के अनुसार नायक आदि के 'रसोचित चेष्टा विशेष रूप व्यापार' को वृत्ति कहा जाता है। भारती (वाक् प्रधान), सात्वती (सत्त्व प्रधान), आरभटी (पौरुष प्रधान) एवं कैशिकी (आहार्य प्रधान) के भेद से ये चार प्रकार की होती हैं।⁴¹ इनमें से कैशिकी वृत्ति का नाटिका में समस्त अङ्गों सहित प्रयोग किया जाता है -

कैशिकी वृत्ति -

नृत्य, गीत, विलास आदि मृदु शृङ्गारिक चेष्टाओं से समन्वित वृत्ति कैशिकी वृत्ति कहलाती है।⁴² इसके अन्तर्गत स्त्रियों के व्यापार की प्रधानता रहती है। इसके चार अङ्ग माने गए हैं- नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मस्फोट एवं नर्मगर्भ।⁴³ प्रिय जन को आकृष्ट करनेवाली वैदग्ध्यपूर्ण क्रीड़ा नर्म कैशिकी वृत्ति कहलाती है।⁴⁴ नर्म में होनेवाला विघ्न नर्मस्फिञ्ज वृत्ति कहलाती है।⁴⁵ इसके अन्तर्गत नायक-नायिका के नवीन सङ्गम का आरम्भ सुखकारक एवं अन्त किसी के द्वारा सङ्गम विषयक भेदोत्पादन के भय से युक्त होता है।⁴⁶ चमत्कार एवं उल्लास के द्वारा शृङ्गार का वैचित्र्य हो जाना नर्मस्फोटवृत्ति कहलाती है।⁴⁷ इसके अन्तर्गत अल्पभावों द्वारा अल्प रस सूचित होता है।⁴⁸ नायक का किसी (शृङ्गारिक) प्रयोजन के निमित्त छिपकर सङ्केत स्थल पर गमन नर्मगर्भवृत्ति कहलाती है।⁴⁹

रत्नावली नाटिका में कैशिकी वृत्ति -

प्रस्तुत नाटिका में कैशिकी वृत्ति का समस्त अङ्गों सहित प्रयोग किया गया है। द्वितीय अङ्क में वासवदत्ता द्वारा विदूषक के हाथ में चित्र फलक को देख लिए जाने पर विदूषक का कथन है कि यह मेरे द्वारा दी गयी अपना चित्र बनाने की चुनौति के परिणाम स्वरूप महाराज उदयन द्वारा बनाया गया चित्र है। उदयन इस सम्बन्ध में विदूषक के कथन के विषय में सहमति प्रकट करते हैं, तब रानी वासवदत्ता द्वारा चित्रफलक पर उदयन के चित्र के साथ अङ्कित चित्र की ओर सङ्केत करके उसे परिहासपूर्वक कहा जाता है कि आपके समीप अङ्कित यह दूसरी स्त्री भी क्या आर्यवसन्तक की शिल्प रचना है ?⁵⁰ उपर्युक्त प्रसङ्ग में नर्म कैशिकी वृत्ति परिलक्षित होती है। तृतीय अङ्क में नर्मस्फिञ्ज कैशिकी वृत्ति का प्रयोग किया गया है। इसके अन्तर्गत महारानी वासवदत्ता का वेश धारण करके सागरिका एवं उदयन के मिलन की योजना की गयी है। इनके मिलन का आरम्भ सुखकारक है किन्तु वासवदत्ता के आगमन से अन्त भययुक्त होता है, अतः यहाँ नर्मस्फिञ्ज वृत्ति परिलक्षित होती है।⁵¹

रत्नावली नाटिका में अन्य नाट्यशास्त्रीय तत्त्व -

रत्नावली नाटिका में वत्सराज उदयन महारानी वासवदत्ता से भयभीत रहते हैं अतः रत्नावली से छुप-छुपकर मिलते रहते हैं। द्वितीयअङ्क में वासवदत्ता के आगमन की सूचना पाकर ये सागरिका का हाथ छोड़ देते हैं। नाटिका के अन्त में महारानी वासवदत्ता द्वारा वत्सराज उदयन एवं रत्नावली का मिलन करवाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसके प्रथम अङ्क में क्रमशः नान्दीपाठ, कवि, नायक आदिपात्र, सभा एवं नाटिका की प्ररोचना, प्रस्तावना, द्वितीय एवं तृतीय अङ्क में पताका स्थानक तथा नाटिकान्त में भरत वाक्य आदि नाट्य शास्त्रीय तत्त्व सम्यक् रूप से उपन्यस्त किए गए हैं। इसका नामकरण नायिका के नाम पर आधारित है। इसके अन्तर्गत चार अङ्क हैं। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं रत्नावली नाटिका में उनके अनुप्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटिका में नाटिका का नामकरण, अङ्कों की सङ्ख्या, (नान्दीपाठ, कवि, नाटिका, नायक आदि पात्र एवं सभा की) प्ररोचना, प्रस्तावना, कथावस्तु का विकास, नायक एवं उसके सहायक पात्र, नायिका एवं उसकी सहायिका पात्र, रस, वृत्ति, भाषा, नाटिकान्त में भरत वाक्य आदि तत्त्वों की योजना नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप की गयी है। इसके परवर्ती ग्रन्थ दशरूपक एवं साहित्य दर्पण में भी नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण हेतु उदाहरण रूप में इस नाटिका से विभिन्न उद्धरण उद्धृत किए गए हैं। इस प्रकार यह नाटिका नाट्य शास्त्रीय सिद्धान्तों की दृष्टि से श्रेष्ठ नाटिका है।

सन्दर्भ -

1. यौगन्धरायण:- एवमेतत्। कः सन्देहः? (द्वीपादन्यस्मादिति पुनः पठित्वा).....युक्तमेवानुष्ठितम्। रत्नावली नाटिका, प्रथम अङ्क, पृष्ठ 48-49
2. रत्नावली नाटिका, 1.24
3. वही, 1.24 के अनन्तर गद्य भाग, पृष्ठ 79
4. वही, 4.4 के अनन्तर गद्यभाग से 4.7 से पूर्व तक का भाग
5. वासवदत्ता- (हस्तं प्रसार्य) एहि रत्नावलि! एहि। एतावदपि.... आर्यपुत्र! प्रतीच्छेनाम्। वही, चतुर्थ अङ्क, पृष्ठ 200

6. यौगन्धरायण- मयापि चौनां देवीहस्ते सगौरवं निक्षिपता युक्तमेवानुष्ठितम् । रत्नावली नाटिका 1.7 के अनन्तर गद्य भाग, पृष्ठ 49
7. तथापि नास्ति तस्य जनस्यान्यो दर्शनोपाय इति यथातथालिख्यैर्न प्रेक्षिष्ये । रत्नावली नाटिका, द्वितीय अङ्क में प्रवेशक के अनन्तर पृष्ठ 84
8. काञ्चनमाला- तेनैव विरचितभङ्गिनीवेषां सागरिकां गृहीत्वाहमपि.....तया सह भतुर्गु समागमो भविष्यतीति । रत्नावली नाटिका, तृतीय अङ्क, प्रवेशक, पृष्ठ 128-29
9. रत्नावली नाटिका, 3.15 के अनन्तर गद्य भाग, पृष्ठ 153
10. नीतो विक्रमबाहुरात्मसमतां.....करोमि स्पृहाम् ।। रत्नावली नाटिका, 4.21
11. रत्नावली नाटिका, प्रथम एवं द्वितीय अङ्क
12. रत्नावली नाटिका, द्वितीय अङ्क
13. वही
14. वही
15. वही
16. यौगन्धरायण:-एवमेतत् । करु सन्देह ?.....चिन्तयामि । इतिनिष्क्रान्तः । रत्नावलीनाटिका, प्रथमअङ्क में प्रस्तावना के अनन्तर यौगन्धरायण का कथन, पृष्ठ 48-51
17. सुसङ्गता-हृदो हृदो । कर्हि दाणि मम.....सकाशं गमिष्यामि । रत्नावली नाटिका, द्वितीयअङ्क के प्रारम्भ में सुसङ्गता एवं निपुणिका का सम्वाद, पृष्ठ 82-53
18. काञ्चनमाला- (सोत्प्रासम्) साहुरे! अमच्चवसन्तअ.....भर्तुर्ये निवेदयावः । रत्नावलीनाटिका, तृतीयअङ्क के प्रारम्भ में काञ्चनमाला एवं मदनिका का सम्वाद, पृष्ठ 127-13.
19. सुसङ्गता- (सकरुणं निरुश्वस्य) हापिअसहि साअरिअ.....एवम् । इतिनिष्क्रान्तौ । रत्नावलीनाटिका, चतुर्थअङ्क के प्रारम्भ में सुसङ्गता एवं विदूषक का सम्वाद, पृष्ठ,163-166
20. मदनिका- (आकाशे) कोसम्बिए.....कुत्रेदानीं प्रेक्षिष्ये । रत्नावलीनाटिका, तृतीयअङ्क में मदनिका का कथोपकथन, पृष्ठ 127
21. पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः.....हास्यकृच्च विदूषकः ।। दशरूपकम्, 2.8-9, साहित्यदर्पणम्, 3. 39-42
22. काव्यानुशासनम्, सप्तम अध्याय, पृष्ठ 355, नाट्यदर्पणम्, 4.16.
23. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः.....शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।। दशरूपकम्, 2.1-2
24. शोभाविलासमधुरललित.....सत्त्वजास्तद्गुणाः । काव्यानुशासनम्, 7.
25. तेजो विलासो माधुर्यं शोभा स्थैर्यं गभीरता.....नेतरि सत्त्वजाः । नाट्यदर्पणम्, 4.161
26. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको.....वैदग्ध्यशीलवान्नेता ।। साहित्यदर्पणम्, 3.31
27. भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।। दशरूपकम्, 2.3, भावप्रकाशनम्, 4.1.8, साहित्यदर्पणम्, 3.32
28. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।। दशरूपकम्, 2.3,
29. कलासक्तः सुखी शृङ्गारी मृदुः निश्चिन्तो धीरललितः । काव्यानुशासनम्, सप्तम अध्याय, पृष्ठ 359
30. शृङ्गारी धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः । नाट्यदर्पणम्, 1.9

31. राजभोगेष्वनिश्चितो.....स्याद्रतिप्रियः । भावप्रकाशनम्, 4.112
32. निश्चितो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् । साहित्यदर्पणम्, 3.34
33. राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः.....पुनर्मन्ये महानुत्सवः । । रत्नावली नाटिका, 1.1.
34. स्रस्तः स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितमाकुलः.....स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गानपेक्षम्, रत्नावली नाटिका, 1.17
35. मयापि चोनां देवीहस्ते सगौरवं निक्षिप्ता । रत्नावली नाटिका, प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के अनन्तर पृष्ठ 49
36. दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष.....जगत्त्रयललामभूतामिमाम् । रत्नावली नाटिका, 2.16
37. (फलकमवलोक्य) तद् यावन्न कोऽपीहागच्छति इति यथातथालिख्येनं पेक्षिष्ये । रत्नावली नाटिका, द्वितीय अङ्क में प्रवेशक के अनन्तर पृष्ठ 84
38. रत्नावली नाटिका, 2.1, 3.4, 3.11, चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में सुसङ्गता का कथन (हा प्रियसखि...अवस्थान्तरं प्रापिता) पृष्ठ 163
39. रसोचितवेष्टाविशेषोवृत्तिः । लोचन, 3.4, व्यापारः पुरुषार्थसाधकोवृत्तिः । अभिनवभारती, 18.11.
40. यद्वापारात्मिका वृत्तिश्चातुर्धा । दशरूपकम्, 2.46
41. चतस्रो वृत्तयोद्भेताः सर्वनाट्यस्यमातृकाः । साहित्यदर्पणम्, 6.123
42. गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदुः शृङ्गारचेष्टितैः । दशरूपकम्, 2.47
43. नर्मतत्स्फिञ्जतत्स्फोटतद्गर्भैश्चतुरङ्गिका । वही
44. वैदग्ध्यक्रीडितनर्मप्रियोपच्छन्दनात्मकम् । दशरूपकम्, २.४८
45. नर्मणः स्फुञ्जोविघ्नइति । अभिनवभारती, 2.59
46. नर्मस्फिञ्जः सुखारम्भो भयान्तोनवसङ्गमे । दशरूपकम्, 2.5.
47. नर्मणइतितदुपलक्षितस्य शृङ्गार.....स्फुटत्वम् । अभिनवभारती, 2.6.
48. नर्मस्फोटस्तुभावानांसूचितोऽल्परसोलवैः । दशरूपकम्, 2.51
49. छन्ननेतृप्रतीचारो नर्मगर्भोऽर्थहेतवः । दशरूपकम्, वही
50. रत्नावल्यां वासवदत्ता- (फलकमुद्दिश्यसहासमं) एसाविअवरा तवसमीवेजधालिहिदाएदंकिं अज्जवसन्तस्स विण्णाणम् । रत्नावलीनाटिका, 1.19 के अनन्तर गद्य भाग, पृष्ठ 122-123
51. शीतांशुमुखमुत्पले तव.....निर्वापय । रत्नावलीनाटिका, 3.11-13 तथा इसके अनन्तर वासवदत्ता एवं उदयन का सम्वाद, पृष्ठ 149-15.

प्रियदर्शिका की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

विजय शंकर द्विवेदी, निकिता शर्मा

‘प्रियदर्शिका’ हर्ष की प्रसिद्ध संस्कृत नाटिका है, जो संस्कृत नाट्यशास्त्र के मानकों का अनुसरण करती है। चार अंकों में विभक्त इस नाटिका में कौटुम्बिक, प्रेम, सत्यता, कूटनीति, धार्मिक तत्त्व और राजनीति जैसे विषय समाहित हैं। इसकी शैली, पात्रों की अभिव्यक्ति, रस निष्पत्ति और शिल्प कौशल इसे अद्वितीय बनाते हैं।

नाटिका का प्रारम्भ—

नान्दी-भारतीय नाट्याचार्यों के अनुसार नाटक अथवा नाटिका का प्रारम्भ से पूर्व प्रारम्भिक कार्य आवश्यक होते हैं - यथापूर्व रङ्ग, सभा पूजा आदि। पूर्वरङ्ग के प्रत्याहारादि 22 अङ्ग होते हैं। उन्हीं में से नान्दी भी एक अङ्ग है, जो नाटक के आदि में किये जाने वाले मङ्गलाचरण का पर्याय है। इसमें देव, द्विज आदि की स्तुति के साथ नाटकीय घटनाओं की ओर संकेत किया जाता है। नान्दी आठवा बारह पदों की होती है, प्रियदर्शिका में अष्टपदा नान्दी का प्रयोग है। भरतमुनि के मतानुसार सूत्रधार को नान्दी पाठ करना चाहिए—
सूत्रधार : पठेनान्दीमध्यमस्वरमाश्रितः। रङ्गशाला के व्यवस्थापक को सूत्रधार कहते हैं— नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते। सूत्रधारयतीत्यर्थे सूत्रधारोनिगद्यते।

हर्ष कृत प्रियदर्शिका ग्रन्थ में 2 मङ्गलाचरणों का प्रयोग किया गया है जिसमें भगवान शिव और पार्वती से सभी का कल्याण करने की प्रार्थना की गई है—

धूमव्याकुल-दृष्टिरिन्दुकिरणेराह्लादिताक्षीपुनःपश्यन्तीवरमुत्सुकानतमुखोभूयोऽप्यब्रह्मणः।

सैषापादनखेन्दुदर्पणगतेगङ्गादधानेहरेस्पर्शादुत्पुलकाकरग्रहवित्रिगौरीशिवायास्तुवः⁹।।॥

अपिच—

कैलासादावुदस्तेपरिचलतिगणेषूल्लसत्कोतुकेषुक्रोडंमातुःकुमारेविशतिविषमुचिप्रेक्षमाणेसरोषम्।

वादावष्टम्भसोदद्वेषिदशमुखेयातिपातालमूलंक्रुद्धोऽप्याश्लिष्टमूर्तिर्भयघनमुमयापातुतुष्टःशिवोनः।।¹⁰

पात्र परिचय

हर्ष ने प्रियदर्शिका नाटिका में अत्यन्त प्रभावी रूप से पात्रों का समायोजन किया गया है, जो प्रत्येक सहृदय के मन को आह्लादित करता है—

1. नायक—प्रियदर्शिका के नायक उदयन संस्कृत नाटकों के आदर्श नायकों में से एक हैं। भरतमुनि

नाटिका नायक को (नायकं नृपतिम्) राजा बताया है। नाट्यशास्त्रमें नायकों के चार मुख्य भेद किये हैं—धीरोदात्त, धीरप्रशांत, धीरोद्धत, धीरललित। उदयन धीरललित नायक की श्रेणी में आता है। दशरूपक के द्वितीय उद्योत में धीरललित नायक के सम्बन्ध में कहा है—**निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः।**¹¹ चिन्तामुक्त, विविधकलाओं ज्ञाता भोगों में आसक्त रहने वाला, शृङ्गार रस की प्रवृत्ति से युक्त, सुख भोगने वाला, मृदुस्वभाव, शिष्ट व्यवहार करने वाला, देवी नायिका से भयभीत रहने वाला नायक धीरललित कहलाता है। प्रियदर्शिका के नायक उदयन में सभी विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। कोमल स्वभाव, सेवकों की कार्यतत्परता को जानने वाला, मन्त्रियों की बुद्धि को देखने वाला, नगरवासियों के प्रति अनुराग, युद्ध में साहस दिखाने वाला, स्त्री रूपी रत्न को प्राप्त करने वाला है।

भृत्यानामविकारिता परिगता दृष्टा मतिर्मन्त्रिणां मित्रण्यप्युपलक्षिता विदितः पौरानुरागोऽधिकम्।

निर्व्यूढा रणसाहसव्यसनिता स्त्रीरत्नमासादितं निर्याजादिव धर्मतः किमिव न प्राप्तं मया बन्धनात्।¹²

2. नायिका --सामान्यतः आचार्यों ने नायिका के मुख्यतः तीन भेद स्वीकार किए हैं—स्वकीया, परकीया (अन्या), और साधारण स्त्री (सामान्या)।

हर्षकृत प्रियदर्शिका की नायिका प्रियदर्शिका संस्कृत साहित्य की उन नायिकाओं में से है जो अपनी कोमलता, सौन्दर्य और गुणों के कारण आदर्श नायिका के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रियदर्शिका का अभिप्राय सबको प्रिय दिखने वाली अर्थात् शारीरिक (वाह्य तथा आन्तरिक) सौन्दर्य से परिपूर्ण नायिका है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, नायिका के गुणों का निर्धारण उसकी भावनाओं, व्यवहार, और प्रेम में निष्ठा के आधार पर होता है। प्रियदर्शिका इन सभी गुणों में उत्तम है तथा स्वकीया मुग्धा नायिका की श्रेणी में आती है। दशरूपककार आचार्य धनञ्जय स्वकीया नायिका के विषय में कहते हैं—**मुग्धामध्या प्रगल्भेति स्वीयाशीलार्जवादियुक्**।¹³ अर्थात् शील और लज्जा से सम्पन्न नायिका को 'स्वकीया' कहा जाता है। जो पुनः मुग्धा, प्रगल्भा तथा मध्या तीन प्रकार की होती है। आचार्य धनञ्जय ने 'मुग्धानायिका' का स्वरूप बताते हुए कहा है—**मुग्धानववयः कामारतौवामामृदुःक्रुधिः।**¹⁴ मुग्धानायिका वह है, जो नवीन आयु में पदार्पण कर रही हो, काम वासना में रुचि रखने लगी हो, परन्तु रति-क्रीड़ा से कतराती हो तथा जो क्रोध करने पर भी कोमल हो।

प्रियदर्शिका नाटिका का नाम नायिका प्रियदर्शिका के नाम पर है। स्वभाव से अत्यन्त कोमल प्रतीत होती है। नाटिका में जब वह तीन अंकों तक 'आरण्यका' बनकर महारानी वासवदत्ता के महल में रह रही थी तब उन्हें चेटी द्वारा शेषालिका के फूल चुनने को कहा गया। प्रियदर्शिका इस आज्ञा से निराश हो जाती, उनकी आँखों में आसूँ आ जाते हैं तथा वह कहती है कि भाग्य के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है—**तथा नामता-शेवंश उत्पन्नयान्यजनमाज्ञाप्यस्थितयासांप्रतंपरस्यमयाज्ञप्तिः कर्तव्येतिनास्तिखलुदुष्करदेवस्य।**¹⁵

राजा उदयन प्रियदर्शिका के रूप और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

अहोसुतरांप्रकटीकृतमाभिजात्यंधीरतया। धन्यः खल्वसौय एतदङ्गस्पर्शसुखभाजनं भविष्यति।¹⁶

दृढ़वर्मा के कञ्चुकी द्वारा प्रियदर्शिका को प्रियदर्शना कहा गया है। प्रियदर्शिका रूप लावण्य तथा व्यवहार से इतनी कमनीय है कि नायक उदयन का केन्द्र बिन्दु बनी रहती है नायिका की प्राप्ति ही नायक की फल प्राप्ति है। वह अङ्ग देश के राजा दृढ़वर्मा की पुत्री है। जो सुशीला, रूपवती, सङ्गीतज्ञा है। कमल के समान नेत्रों वाली, नासिका के छिद्र छोटे, स्तन सीमित तथा सटे हुये, लचकदार कटि प्रदेश, लम्बे घने बाल, नृत्य

और गीत में अनुरक्ति पद्म की गन्ध से सुगन्धित वह पद्मिनी नायिका है। उदयन को प्रियदर्शिका का सौन्दर्य नागलोक की कन्या, शरीरधारिणी चाँदनी, तथा कमलयुक्त लक्ष्मी के समान दिखायी देता है।

भवतिकमलनेत्रनासिकाक्षुद्रन्ध्रा अविरल कुचयुग्मा दीर्घकेशी कृशाङ्गी।

मृदुवचनसुशीला नृत्यगीतानुरक्ता सकलतनु सुवेशा पद्मिनी पद्मगन्धा।।¹⁷

नायिका प्रियदर्शिका नाट्यशास्त्रीय कसौटी पर खरी उतरती है।

3. विदूषक - नाटिका में विदूषक का महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में भूमिका होती है, जो नाटक के हास्य और मनोरंजन का मुख्य स्रोत है। आचार्य विश्वनाथ विदूषक का लक्षण करते हुए कहते हैं -

कुसुमवसन्ताभिधःकर्मवपुर्वेषभाषायैः। हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकःस्यात्स्वकर्मज्ञः¹⁸

किसी फूल अथवा वसन्तादि पर जिसका नाम हो, जो अपनी क्रिया, शरीर चेष्टा, वेशभूषा और भाषा आदि से हँसाने वाला हो, खाने-पीने की बातों को कभी न भूलता हो, उसे 'विदूषक' कहा जाता है। यह कथानक के विकास में भी आवश्यक प्रतीत होता है। यह राजा का मित्र तथा नायक का सहायक होता है।

हर्षकृतप्रियदर्शिका नाटिका में विदूषक का नाम वसन्तक है, जो राजा उदयन का घनिष्ठ मित्र तथा विश्वासपात्र है। सामान्यतः विदूषक की भाषाशैली अथवा संवाद प्रवृत्ति प्राकृत में होती है, जो उसे नायक तथा अन्य पात्रों से अलग बनाती है। विदूषक की आकृति विकृति-आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में विदूषक का स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं। **वामनः दन्तुरः कुब्जोद्विजिविकृताननः। खलतिपिङ्गलाहाश्चसविधेयो विदूषकः¹⁹।।** अर्थात् विदूषक शरीर से प्रायः बौना, दन्तेल, कुबड़ा, टेढ़े मुँह वाला, गंजे सिर वाला तथा पीली आँखों वाला होता है। यह द्विजिह्वा (दुतरफा बात करने वाला) तथा मन से दुष्ट होता है।

विदूषक का कार्य-विदूषक का मुख्य कार्य अपने अङ्गों, विचित्र वेशभूषा तथा व्यंगोक्ति द्वारा हास्य उत्पन्न करना है-विकृतांगवचोवेषैः हास्यकारीविदूषकः।

प्रियदर्शिका में विदूषक का स्वभाव कुछ इसी प्रकार है। वह हास्यप्रद कथनों द्वारा राजा उदयन के मन को प्रफुल्लित कर देता है यथा-**भोई शःखलुब्राह्मणःयश्चतुर्वेदपञ्चवेदषड्वेद ब्राह्मणसहस्रपर्या कुलेराजकुले प्रथममहमेवदेवीसकाशात्स्वस्तिवायनंलभे।²⁰**

प्रियदर्शिकाकेपात्रनाटककीकथा, रस, और भावनाओं को सजीव रूप देने में पूर्णतः सफल हैं। पुर्वोक्त पात्रों के अतिरिक्त अन्य सहायक पात्रों का सामंजस्य नाटक को रोचक और संतुलित बनाता है। प्रत्येक पात्र अपने गुणों और विशेषताओं से नाटिका में विशेष योगदान देते हैं, जिससे यह नाटिका उत्कृष्टता को प्राप्त होती है। यथा-

4. वासवदत्ता - उदयन की पहली पत्नी अवन्तिक देश की राजकुमारी, जो करुणा और धैर्य की प्रतिमूर्ति है। महाराज उदयन की प्रसन्नता एवं उनके प्रति निष्ठा की भावना होने के कारण वह नाटिका के अन्त में प्रियदर्शिका को राजा उदयन को सौंप देती है। वासवदत्ता की भूमिका नाटिका में वियोग और मिलन के भावों को गहराई प्रदान करती है। नाटिका में महारानी वासवदत्ता की कुछ दासियाँ भी भूमिका निभाती हैं जैसे इन्दीवरिका, काञ्चनमाला, मनोरमा तथा प्रतिहारी। इसके अतिरिक्त साङ्कृत्यायनी नामक वृद्ध महिला भी नाटिका में अपनी भूमिका अर्जित करती है, जो सदैव रानी वासवदत्ता के साथ उनके महल में रहती थी।

5. कञ्चुकी- राजमहल का सेवक, जो घटनाओं के संप्रेषण में सहायक होता है। सर्वप्रथम नाटिका का प्रारम्भ कञ्चुकी के संदेश द्वारा ही होता है-

कष्टंभोःकष्टम् । राज्ञोविपद्वन्धुवियोगदुःखदेशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः ।

आस्वाद्यतेऽस्याः कटुनिष्फलायाःफलमयैतच्चिरजीवितायाः²¹ । ।

कञ्चुकी राजा और अन्य पात्रों के मध्य संवाद का एक माध्यम होता है, जो राजदरबार के क्रिया कलापोंकोचित्रित करता है। इसके अतिरिक्त नाटिका में अन्य पुरुषपात्र भी हैं, यथा- विजय सेन जो राजा उदयन के सेनापति हैं तथा रुमणवान्राजा के मन्त्री की भूमिका में हैं।

कथावस्तु का विभाजन

प्रियदर्शिका की कथावस्तु नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार विभाजित है, जिसमें कथा का क्रमिक विकास, प्रेम का संघर्ष, और सुखान्त समापन-दृश्यमान है। नाटक का प्रत्येक भाग रस, भाव, और-दृश्य योजना के माध्यम से दर्शकों को गहराई से प्रभावित करता है। जिससे नाटिका की उत्कृष्टता उजागर होती है।

आचार्य धनञ्जय के अनुसार कथावस्तु दो प्रकार की होती है - **तत्राधिकारिकं मुख्य मङ्गप्रासङ्गिकं विदुः²²** दोनों में से मुख्यवस्तु आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है तथा अंगरूप वस्तु प्रासङ्गिक कथा वस्तु कहलाती है। आधिकारिक कथावस्तु का लक्षण देते हुए आचार्य धनञ्जय कहते हैं - **अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारीचतत्प्रभुः । तन्निवृत्तमभिव्यापिवृत्तस्यादाधिकारिकम्²³**। फलकास्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है तथा फलकास्वामी अधिकारी कहलाता है, उस फल भोक्ता के द्वारा फल प्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त (या कथा) आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है। प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन और रानी प्रियदर्शिका का वृत्तान्त, आधिकारिक है। सम्पूर्ण नाटिका का मुख्य आधार राजा उदयन और प्रियदर्शिका के प्रेमप्रसंगों पर आधारित है। नाटिका के समस्त पात्रों की भूमिका इन दोनों के मिलन में सहायक है। प्रासंगिक कथावस्तु को परिभाषित करते हुए कहा गया है- **प्रासङ्गिकंपरार्थस्यस्वार्थोयस्यप्रसङ्गतः²⁴** जो कथा किसी अन्य प्रयोजन के लिए होती है किन्तु प्रसङ्ग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है, वह प्रासङ्गिक वृत्त कहलाता है। यह प्रासङ्गिक कथा वृत्त दो प्रकार की होती है-पताका और प्रकरी।

सानुबन्धंपताकाख्यंप्रकरीचप्रदेशभाक्²⁵ पता का कथा मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है तथा प्रधान फल की प्राप्ति हेतु नायक की सहायता करती है-**व्यापि प्रासंगिकवृत्तंपताकेत्यभिधीयते²⁶** यथा- प्रियदर्शिका नाटिका में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका कथा है, जो प्रारम्भ से अंत तक प्रतिमान रहता है। नायक उदयन को नायिका प्रियदर्शिका की प्राप्ति हेतु सहायक सिद्ध होता है, बिना वासवदत्ता की कृपा के उदयन को प्रियदर्शिका प्राप्त नहीं हो सकती थी। नाटिका के अन्त में वह स्वयं अपनी मौसेरी बहन प्रियदर्शिका को अपने स्वामी उदयन को सौंप देती है। प्रकरी कथा वस्तु-प्रासंगिक रूप में आया अल्पवृत्तान्त होता है जिसमें नायक का स्वयं का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता- **प्रासङ्गिकं प्रदेशस्य चरितंप्रकरीमता²⁷** ।

नाटिका में अनेक घटनाओं के संकेत हैं, जो प्रकरी कही जा सकती हैं, यथा- विन्ध्यकेतु पर विजय सेना का आक्रमण, दृढवर्मा के कञ्चुकी का रंगमंच पर आना, इन्दीवरिका और रमाकेवृत्तान्त, सांकृत्यायनी द्वारा नाटिका का निबन्धन, अंगारवती द्वारा वासवदत्ता के पास पत्र भेजना, कलिंगराज के युद्ध में पराजय का वृत्तान्त आदि प्रकरी के अन्तर्गत आते हैं।

नाटिका में प्रयुक्त अर्थप्रकृतियाँ

नाटकीय कथावस्तु का संघटन पाँच अर्थप्रकृतियों द्वारा होता है, जो नाटक अथवा नाटिका के प्रयोजन सिद्धि (प्रयोजनसिद्धिहेतवः) का मूल कारण होती हैं।-**बीज विन्दु पताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणः²⁸** ये पाँच अर्थप्रकृतियाँ नाटिका के विशेष तत्त्व हैं।

बीज-स्वल्पोद्दिष्टस्तुतद्धेतुर्बीजविस्तार्यनेकधा ।²⁹

रूपक के आरम्भ में अल्परूप में संकेतित जो रूपक के फल का कारण होता है, जो इतिवृत्त में अनेक रूप से पल्लवित होता है, वह बीज कहलाता है। यथा- प्रियदर्शिका नाटिका के प्रथम अंक में विजयसेन द्वारा प्रियदर्शिका को राजा के लिए सौंपना बीज तत्त्व को व्यक्त करता है। यह घटना संभावित करती है कि रानी प्रियदर्शिका को राजा उदयन नाटिका के अंत में प्राप्त करेंगे।

बिन्दु-अवान्तरार्थविच्छेदेबिन्दुरच्छेदकारणम् ।³⁰

अवान्तर कथा की समाप्ति पर्यन्त प्रधान कथा के साथ सम्बन्ध रखने वाला तत्त्व बिन्दु कहलाता है। प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में विदूषक वसन्तक द्वारा प्रियदर्शिका से यह कहना कि तुम्हारी रक्षा तो सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ वत्सराज उदयन कर रहे हैं, बिन्दु तत्त्व है। यहाँ आरण्यका (प्रियदर्शिका) के हृदय में उदयन के प्रति औत्सुक्य एवं अनुराग की उत्पत्ति हुई, तथा उन दोनों के हृदय में अनुराग उत्पन्न होने से मिलन की सम्भावनाएँ बढ़ गयी।

पताका और प्रकरी-

आधिकारिक कथा (मुख्य कथा) के साथ दूर तक चलने वाली प्रासंगिक कथा, पताका है। यह नायक हेतु फल प्राप्ति में सहायक है, यथा- प्रियदर्शिका नाटिका में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त। कथानक में एक भाग में रहने वाले कथा का कुछ अंश, प्रकरी कहलाती है। यथा- विन्ध्य केतु पर विजयसेना का आक्रमण, दृढ़वर्मा के कंचुकी का रंगमंच पर आना, इन्दीवरिका और मनोरमा के वृत्तान्त, सांकृत्यायनी द्वारा नाटिका का निबन्धन, अंगारवती द्वारा वासवदत्ता के पास पत्र भेजना, कलिंगराज के युद्ध में पराजय का वृत्तान्त आदि प्रकरी कथा के अन्तर्गत आते हैं।

कार्य-अपेक्षितंतुयत्साध्यमारम्भोयन्निबन्धनः । समापनंतुयत्सिद्धयैतत्कार्यमितिसंमतम् ।³¹

नाटिका में फल की प्राप्ति के लिए जो उपाय आरम्भ किए जाते हैं वह अर्थप्रकृति, कार्य कहलाती है। यथा- नाटिका के चतुर्थ अंक में नायक उदयन द्वारा नायिका प्रियदर्शिका की प्राप्ति ही कार्य नामक अर्थप्रकृति को दर्शाती है।

नाटिका में प्रयुक्त कार्यावस्थाएँ-

नाटिका में फल की इच्छा वाले नायक आदि के द्वारा प्रारम्भ किए कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं। दशरूपक कार आचार्य धनञ्जय ने इन पाँच अवस्थाओं का वर्णन इस प्रकार से किया-

“अवस्था : पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः । आरम्भयत्न प्राप्त्याशा नियताप्ति फलागमः ।।³²

आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम ये नाटिका में घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करने वाली अवस्थाएँ हैं जो प्रारम्भ से अंत तक कार्यरत रहती हैं।

1. आरम्भ - मुख्य फल प्राप्ति के लिए नायक द्वारा किए जाने वाले कर्म अथवा उत्सुकता ही आरम्भ अवस्था कहलाती है- औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभायभूयसे ।³³ यथा - विजयसेन द्वारा प्रियदर्शिका के लाये जाने पर उदयन का यह कथन-यदावरयोग्याभविष्यतितदामांस्मारय³⁴। यह उक्ति आरम्भ को दर्शाती है। इसी प्रसंग से उदयन द्वारा प्रियदर्शिका को प्राप्त करने की सम्भावना व्यक्त होती है।

2. प्रयत्न- उस फल की प्राप्ति नहोने पर, उसे प्राप्त करने हेतु योजना युक्त व्यापार अथवा चेष्टा ही प्रयत्नावस्था कहलाती है --प्रयत्नस्तुतदप्राप्तौव्यापारोऽतित्वरान्वितः ।³⁵

यथा- द्वितीय अंक में राजा उदयन द्वारा झाड़ियों में छिपकर प्रियदर्शिका को देखना उसको भौंरो से बचाने के लिए जाना, मिलन हेतु अभिनय की योजना बनाना यत्न है-

अयिविसृजविषादंभीरुभृङ्गास्तवैतेपरिमलरसलुब्धावक्तृपद्येपतन्ति ।

विकिरसियदिभूयस्त्रसलोलायताक्षीकुवलयवनलक्ष्मीतत्कुतस्त्वांत्यजन्ति ।³⁶

3.प्राप्त्याशा - जब अनुकूल परिस्थितियों के होने पर भी उपाय अथवा विघ्न की आशंका के कारण फल प्राप्ति के विषय में कोई ऐकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता, ऐसी कार्यवस्था प्राप्त्याशा कहलाती है- **उपायापाय शङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्ति संभवः ।**³⁷

यथा- दूसरे अंक में प्रियदर्शिका की अनुरागावस्था तथा तृतीय अंक में मिलने का उपाय होने पर उदयन को प्रियदर्शिका की प्राप्ति की आशा तो है पर इसमें विघ्नों की संभावना है, क्योंकि वासवदत्ता द्वारा प्रियदर्शिका को उदयन की दृष्टिपथ से अलग रखा जाता है ।

4. **नियताप्ति** - जब फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है, तब नियताप्ति नामक अवस्था उत्पन्न होती है- **अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ।**³⁸ यथा- कंचुकी द्वारा वासवदत्ता को यह संकेत देना कि आरण्य का ही प्रियदर्शिका है, इससे सम्बंधित घटनाएँ विघ्नों को दूर कर फलकी प्राप्ति को सुनिश्चित करती है- **राजपुत्रि, इयंसाप्रियदर्शिकाभगिनोते ।**³⁹

5. **फलागम** - समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर फलागम कहलाता है- **समग्रफलसंपत्तिःफलयोगोयथोदितः ।**⁴⁰ यथा- चतुर्थ अंक में वासवदत्ता द्वारा उदयन के हाथ में प्रियदर्शिका को अर्पित किया जाना फलागम है ।

● **नाटिका में प्रयुक्त सन्धियाँ** - नाटिका में प्रयुक्त अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के परस्पर योग से सन्धियों का निर्माण होता है-

अर्थप्रकृतयः पञ्चपञ्चावस्थासमन्विताः ।⁴¹ दशरूपक के अनुसार यह सन्धियाँ पाँच होती हैं-

यथासंख्येनजायन्तेमुखाद्याःपञ्चसन्धयः । मुखप्रतिमुखेगर्भःसावमशोपसंहतिः ।⁴²

1. **मुखसन्धि** - बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से मुख सन्धि का निर्माण होता है, इसमें विभिन्न प्रयोजनों और रसों को उत्पन्न करने की बीजोत्पत्ति प्राप्त होती है तथा इसके 12 अंग होते हैं ।-

मुखंबीज समुत्पत्तिर्नार्थरससम्भवा । अङ्गानिद्वादशैतस्यबीजारम्भसमन्वयात् ।⁴³ यथा- प्रियदर्शिका नाटिका के प्रथम अंक में-दृढ़वर्मा का कंचुकी के स्वागत कथन से संवाद प्रारम्भ होकर प्रथम अंक के अंत तक का भाग मुखसंधि के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

2. **प्रतिमुखसन्धि** - बिन्दु नामक अर्थप्रकृति तथा यत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से प्रतिमुख नामक सन्धिकानिर्माणहोताहै, उस बीज का दृश्य तथा अदृश्य रूप में प्रकाशन और इस लक्ष्यालक्ष्य रूप में उद्भिन्न होना ही प्रतिमुख सन्धि का विषय है । इसके कुल 13 अंग होते हैं- लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्यप्रतिमुखंभवेत् । बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्यत्रयोदश ।⁴⁴ यथा- प्रियदर्शिका नाटिका के द्वितीय अंक में उदयन को देखकर प्रियदर्शिका का अनुराग से भर जाना तथा तृतीय अंक में मनोरमा द्वारा वत्सराज उदयन से प्रियदर्शिका को मिलाने का प्रयास करना, प्रतिमुख संधि के उदाहरण हैं ।

3. **गर्भसन्धि** - पताका अर्थप्रकृति तथा प्रत्याशा कार्यावस्था के संयोग से गर्भसन्धि का निर्माण होता है । इसमें प्रथम बार दिखाई दिए और पश्चात् नष्ट हुए बीज का अन्वेषण किया जाता है । इसकी विशेषता यह है कि

इसमें पताका अर्थप्रकृति हो अन्यथा न हो अपितु प्राप्त्याशा निश्चित रूप से विद्यमान होती है। इसके कुल 12 अंग होते हैं- **गर्भस्तुद्रष्टनष्टस्यबीजस्यान्वेषणमुहुः । द्वादशाङ्गः पताकास्यान्वा, स्यात्प्राप्तिसंभवः ।।**⁴⁵

यथा- प्रियदर्शिका में वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका कथा है, जो नायक को फल प्राप्ति में सहायक है। कौमुदी महोत्सव के अवसर पर नाटकाभिनय में उदयन को प्रियदर्शिका से मिलन की आशा होती है, परन्तु इसमें विघ्न उपस्थित होता है। पुनःचतुर्थ अंक में जब उदयन कहते हैं कि देवी की कृपा के बिना मिलना असंभव है। यह अंश गर्भसन्धि के अंतर्गत आता है।

4. अविमर्शसन्धि- प्रकरी नामक अर्थप्रकृति तथा नियताप्ति नामक कार्यावस्था के संयोग से विमर्श/अवमर्श सन्धि का निर्माण होता है। इसमें क्रोध, व्यसन या विलोभन से फलप्राप्ति के विषय में विचार किया जाता है तथा गर्भसन्धि के द्वारा बीजप्रकट किया जाता है। इसमें 13 अंग होते हैं-

क्रोधेनावमृशेद्यत्रव्यसनाद्विलोभनात् । गर्भनिर्भिन्नबीजार्यःसोऽवमर्शइतिस्मृतः ।।⁴⁶ यथा- जब कलिंगराज के वध तथा दृढवर्मा के राज्य में प्रतिष्ठित होने की प्रसन्नता में विदूषक वासवदत्ता से कहता है कि उदयन की पूजा करें तथा कैदी को मुक्त कर दें, यह अवमर्श सन्धि का उदाहरण है।

5. निर्वहणसन्धि- कार्यानामक अर्थप्रकृति तथा फलागम नामक कार्यावस्था के संयोग से निर्वहण/उपसंहति नामक सन्धि का निर्माण होता है। रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ जो अब तक यत्र-तत्र बिखरे हुए थे, जब एक अर्थ के लिए एक साथ एकत्रित किए जाते हैं, वह निर्वहण सन्धि का स्वरूप है। इसके 15 अंग होते हैं- **बीजवन्तोमुखाद्यार्थाविप्रकीर्णायथायथम् । ऐकार्थ्यमुपनीयन्तेयत्रनिर्वहणंहितम् ।।**⁴⁷

यथा- चतुर्थ अंक में उदयन द्वारा प्रियदर्शिका रूपी फल को प्राप्त करना ही, निर्वहण सन्धि है।

इस प्रकार हर्ष कृत प्रियदर्शिका नामक नाटिका में अनेक सन्ध्यंगोंकी योजना की गई है।

● **नाटिका में प्रयुक्तरस-** हर्षकृत प्रियदर्शिका नाटिका में अनेक रसों का प्रयोग किया गया है, जो नाटिका में उपस्थित भाव आदि के विकास और नाटकीयता के वर्धन के लिए है।

1. शृङ्गाररस- नाटिका में अङ्गीरस के रूप में नाट्यकार द्वारा शृङ्गार रस का समावेश किया गया।

आचार्य विश्वनाथ ने शृङ्गार रस को कुछ इस प्रकार से लक्षित किया- **शृङ्गहिमन्मयोद्भेदस्तदागमनहेतुकः उत्तमप्रकृतिप्रायोरसः शृङ्गारइष्यते ।**⁴⁸ अर्थात् कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को 'शृङ्गम्' कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस 'शृङ्गार' कहलाता है। इसका स्थायी भाव 'रति' होता है। अङ्गीरस होने के कारण नाटिका का अधिकांश वृत्त नायक उदयन और प्रियदर्शिका के प्रेम प्रसंगों पर आधारित है। द्वितीय अंक के प्रारम्भ में उदयन प्रथम बार प्रियदर्शिका का दर्शन होने पर उसके रूप और हावभाव की प्रशंसा शृङ्गार का उदाहरण है। यथा- **वयस्यनिरतिशयस्वरूपशोभाजनितबहुविकल्पेयम् । यत्सत्यमहमपिनावगच्छामि । पश्यपातालाद्भुवनावलोकन- पराकनपराकिंनागकन्योत्थिता । मिथ्यातत्त्वलु दृष्टमेवहिमयातस्मिन्कुतोऽस्तीदृशो । मूर्तीस्यादिहकौमुदीनघटतेतस्यादिवाददर्शनकेयंहस्ततलस्थितेनकमलेना- लोक्यतेश्रीरिव ।**⁴⁹

अपिच-**अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रोत्तिददत्यादृशायातायाविगलत्पयोधरपटादृष्टव्यतांकामपि ।**

अस्याश्चन्द्रमस्तनोरिवकरस्पर्शस्पदत्वंगतानैतेयन्मुकुलीभवन्तिसहसापद्मास्तदेवाद्विभुतम् ।⁵⁰

2. हास्यरस- प्रियदर्शिकानाटिकामेंहास्यरसकासमावेशविदूषककेमाध्यमसेहोताहै; वह अपने वाक्चातुर्य और चपलता से हास्य उत्पन्न करता है।

हास्यरसकालक्षण- विकृताकारवाग्बेषचेष्टादेःकुहकाद्भवेत्हास्योहासस्थायिभावःश्वेः प्रमथदैवतः ।⁵¹

अर्थात्विकृत आकार, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि से हास्यरस का आविर्भाव होता है। इसका स्थायीभाव 'हास' है। जिसकी विकृत आकृति, वाणी, वेष तथा चेष्टा आदि को देखकर सामाजिक गण हँसें, वह यहां आलम्बन और उसकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। नयनों का मुकुलित होना, शरीर का विकसित होना रस के अनुभाव होते हैं और निद्रा, आलस्य, आदि इसके सञ्चारी भाव होते हैं।

यथा- भोईदृशःखलुब्राह्मणः यश्चतुर्वेदपञ्चवेदषड्वेदब्राह्मण सहस्रपर्याकुलेराजकुले प्रथममहमेवदेवीसका शात्त्वस्ति. श्रवायनलभे ।⁵²

3.शांतरस- नाटिका के अंत में नायक-नायिका का मिलन शान्त रस का संचार करता है, जो सम्पूर्ण कथा को सुखद समापन प्रदान करता है। यथा-निःशेषदृढवर्मणापुनरपिस्वराज्यमध्यासितत्वंकोपेन सुदूरमप्यपहतासद्यः प्रसन्नामम ।⁵³ जीवन्तीप्रियदर्शनाचभगिनीभूयस्त्वयासंगताकितत्स्यादपरंप्रियंप्रियतमेयत्साम्प्रतंप्रार्थयते। यथावसर अन्य रसों का भी प्रयोग किया गया है।

- ❖ अलंकार - उपमा, रूपक, यमक अलंकारों का प्रियदर्शिका नाटिका में बहुलता है। यथावसर अन्य अलंकारों का प्रयोग प्रियदर्शिका में किया गया है।
- ❖ छन्द - शार्दूल विक्रीडित, आर्या, म्रगधरा, वसन्ततिलका, उपजाति, शिखरिणी, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग है।
- ❖ गुण - प्रियदर्शिका में माधुर्य, उदारता, ओज, प्रसाद, श्लेष आदि गुणों को समाहित किया गया है।
- ❖ वृत्ति - कैशिकी वृत्ति की बहुलता प्रियदर्शिका में है।
- ❖ प्रकृति चित्रण, सामाजिक तथा सांस्कृतिक चित्रण की बहुलता है।
- ❖ निष्कर्ष -

इस प्रकार हर्षकृत प्रियदर्शिका नाटिका की कथावस्तु प्रेमपूर्ण, करुणामयी और राजनीतिक संघर्षों का उत्कृष्ट उदाहरण है। अद्भुत प्रेमकथा को प्रस्तुत करती है। नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार रस, भाव, और समुचित पात्रसंयोजन के साथ एक उत्कृष्ट रचना है। नाटिका के अंत में सभी समस्याओं का समाधान सुखपूर्वक हो जाता है। प्रियदर्शिका, प्रारम्भ में वियोग और संघर्ष की स्थिति में थी, अंततः नायक उदयन के साथ मिल जाती है। जो प्रेम की विजय का प्रतीक के साथ सामाजिक और राजनीतिक संतुलन की स्थापना भी है। नाटिका का समापन शान्तरस के साथ होता है, जिसमें नायक-नायिका का प्रेम अपने चरम पर पहुँचता है। सुखद अंत सहृदयों में संतोष और आनन्द की अनुभूति कराता है। प्रियदर्शिका नाटिका में रसों का सुन्दर और संतुलित मिश्रण है। शृङ्गाररस प्रधान है, जो प्रेम और सौंदर्य का चित्रण करता है, हास्य, करुण, शांत और वीररस कथा को भावपूर्ण और जीवन्त बनाते हैं। इस प्रकार हर्ष की यह रचना रस, भाषा और भाव की दृष्टि से अद्वितीय है। अंत में आशीर्वादात्मक भरतवाक्य का समायोजन है जो जनकल्याण हेतु आशीर्वादात्मक पद्यों के रूप में मंगल कामना है जो तत्कालीन समाज एवं रीति की ही देन है।

प्रियदर्शिका नाटिका से यह प्रतीत होता है कि नायक अथवा राजा अपनी नायिका का विशेषमान, सम्मान, एवं आदर करता था; जो सभ्य और सुसंस्कृति समाज की मानसिकता को दर्शाता है। नाट्यशास्त्रीय विधान का पूर्ण पालन प्रियदर्शिका नाटिका में परिलक्षित होता है। इति शम् ।

सन्दर्भ -

1. नाट्यशास्त्र, दशरूपक 1.4
2. साहित्यदर्पण, षष्ठपरिच्छेद
3. दशरूपक, प्रथमप्रकाश
4. दशरूपक 1.8
5. साहित्यदर्पण 6.4-5
6. नाट्यदर्पण, नाट्यशास्त्र 18.110-111
7. साहित्यदर्पण, 6 परिच्छेद
8. साहित्य, 6 परिच्छेद
9. प्रियदर्शिका, 1.1
10. प्रियदर्शिका, 1.2
11. दशरूपक, 2.3
12. प्रियदर्शिका 1.6
13. दशरूपक, 2.15
14. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, सा.द. 2.16
15. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक
16. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक
17. प्रियदर्शिका
18. साहित्यदर्पण, 3.42
19. नाट्यशास्त्र, 35.57
20. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक
21. प्रियदर्शिका, 1.4
22. दशरूपक, 1.11
23. दशरूपक, 1.12
24. दशरूपक, 1
25. दशरूपक, 1.13
26. दशरूपक, 1
27. दशरूपक, 1
28. दशरूपक, 1.18
29. दशरूपक, 1.17
30. दशरूपक, 1.17
31. दशरूपक, 1
32. दशरूपक, 1.19
33. दशरूपक, 1
34. प्रियदर्शिका प्रथम अंक
35. दशरूपक, 1.20
36. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, 8
37. दशरूपक, 1
38. दशरूपक, 1.21
39. प्रियदर्शिका, चतुर्थ अंक
40. दशरूपक, 1
41. दशरूपक, 1.22
42. दशरूपक, 1.22
43. दशरूपक, 1.24
44. दशरूपक, 1.30
45. दशरूपक, 1.36
46. दशरूपक, 1.43
47. दशरूपक, 1.48
48. साहित्यदर्पण 3.183
49. प्रियदर्शिका, 2.6
50. प्रियदर्शिका, 2.7
51. साहित्यदर्पण, 3.214
52. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक
53. प्रियदर्शिका, 4.11

रत्नावली नाटिका का नाट्यविमर्श

पुष्कर आनन्द

महाराज हर्ष न केवल विद्वान कवियों एवं पण्डितों के आश्रयदाता थे अपितु स्वयं भी अनेक ग्रन्थों की रचना कर सरस्वती साधना को प्रफुल्लित एवं समृद्ध किया। जहां महाकवि पीयूषवर्ष जयदेव ने हर्ष को कविताकामिनी का हर्ष कहा- “हर्षो हर्षः” वहीं सोहल ने “गीर्हर्ष” माना है-

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु

गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः ।।¹

हर्ष की तीन रचनायें हैं- प्रियदर्शिका रत्नावली एवं नागानन्द। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार रत्नावली संस्कृत साहित्य की प्रथम नाटिका है। प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नाटिका में नाटकीय संघटना, कथावस्तु एवं पात्रों का अत्यधिक साम्य प्रतीत होता है। शास्त्रीय दृष्टि से दोनों ही रूपक नाटिका की कोटि में आते हैं। नाटिका का स्वरूप स्पष्ट करते हुये आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक में कहा है कि-

नाटिका की कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है अर्थात् कविकल्पित होती है तथा नायक नाटक से गृहीत होता है जो कि धीरललित एवं प्रख्यातवंश का राजा होता है। नाटिका का अङ्गी रस शृंगार होता है। इसके अतिरिक्त नाटिका स्त्रीप्रधान होता है एवं नायिका दो होती हैं जिसमें ज्येष्ठा नायिका देवी (महारानी) होती है और दूसरी नायिका मुग्धा होती है -

तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः प्रख्यातो धीरललितः शृंगारोऽङ्गी सलक्षणः

स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं यदि चेष्ट्यते एकद्वित्यङ्कपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ।।

देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृप वंशजागम्भीरा मानिनी कृच्छ्रातद्रशान्नेतृसङ्गमः ।।²

दूसरी नायिका के लिये कहते हैं कि वह मुग्धा होनी चाहिये-नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ।।³

पुनः कहते हैं कि वह मुग्धा नायिका अन्तःपुर से सम्बन्धित होने कारण नायक (राजा) के दृष्टिपथ में आती है और तभी नायक उससे प्रेम करने लगता है-

अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनेः, अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ।।⁴

जब हम हर्ष की नाटिकाओं को देखते हैं तो उपरोक्त लक्षण सम्पूर्ण रूप से साक्षात् घटित होते दिखते हैं। रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनों की कथावस्तु पात्र एवं नाट्यविधान देखें तो उपरूपक के भेदस्वरूप नाटिका के सम्पूर्ण लक्षण घटित होने के साथ-साथ नायक उदयन धीरललित एवं प्रथम नायिका देवी वासवदत्ता

ज्येष्ठा एवं मानिनी हैं इसके अतिरिक्त द्वितीया नायिका सागरिका अथवा रत्नावली मुग्धा कोटि की है। नाटिका में नायक उदयन सर्वदा महारानी वासवदत्ता के भय से त्रस्त दिखता है जैसा कि दशरूपककार ने कहा भी है- “नेता यत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः”। वहीं धीरललित नायक के स्वरूप को देखें तो उदयन में वे सारे लक्षण स्पष्ट अवलोकित होते हैं जैसा कि लक्षणकारों ने बताया है- **“निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः मृदुः सुखी”**⁵

वस्तुतः धीरललित नायक राज्य का समस्त भार सारी चिन्ताएं अपने मन्त्रियों पर डालकर निश्चिन्त रहता है एवं संगीतादि कलाओं का प्रेमी होने से भोगविलास में रत रहता है और यही कारण है कि वह सुकुमार एवं कोमल आचरण वाला होता है। रत्नावली नाटिका के नायक उदयन के निश्चिन्त एवं कलासक्त होने का परिचय रत्नावली के इस पद्य से स्पष्ट हो जाता है-

“राज्यं निर्जितशत्रुयोग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः सम्यकपालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।

प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं कामः कामुपेत्ययं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ।।”⁶

नाटिका में नायक उदयन का चित्रण एक रोमांचक प्रणयी के रूप में किया गया है तभी तो नायिका सागरिका की दृष्टि में वे साक्षात् कामदेव के अवतार ही हैं- **“कथं प्रत्यक्ष एव भगवान् कुसुमायुध इह पूजां प्रतीच्छति । अस्माकं तातस्यान्तःपुरे पुनश्चित्रञ्चज्यते । तदहमप्येभिः कुसुमैरिह स्थितैव भगवन्तं कुसुमायुधं पूजयिष्ये ।”**⁷ नायिका की दृष्टि से यदि नाटिका का नाट्यविमर्श करें तो वहां भी उपरोक्त कहे गये सभी लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। रत्नावली नाटिका में एक नायिका वासवदत्ता है जो ज्येष्ठा नायिका है और महाराज उदयन की महारानी है। वह अत्यन्त मानिनी है और इसीलिये राजा उदयन भी उससे डरते हैं। वासवदत्ता के कोप और मानका सजीव चित्रण तो उदयन की अनुभूति से ही समझा जा सकता है-

आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूधञ्जा

कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे हर्तुं क्षमो यदि परं करुणा मयि स्यात् ।।”⁸

जब राजा उदयन भ्रमवशात् वासवदत्ता को सागरिका समझकर प्रेमालाप करते हैं और वासवदत्ता इस बात को समझ जाती है कि राजा का यह प्रेम उसके लिये नहीं सागरिका के लिये है तब तो सुलभकोपा मानिनी ज्येष्ठा नायिका का कोप नायक को सहना ही पड़ेगा और इसीलिये वह वासवदत्ता के पैर पर गिरकर क्षमायाचना करने लगता है। जहां तक मुग्धा नायिका के स्वरूप का प्रश्न है तो सागरिका विशुद्ध रूप से मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित की गई है जैसा कि दशरूपककार ने कहा है- **मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि ।”**⁹

सागरिका मुग्धा नायिकानुकूला अत्यन्त लज्जाशीला है वह राजा उदयन (नायक) से प्रेम तो करती है परन्तु उनके सम्मुख साक्षात् जाने पर घबड़ा जाती है। वह इतनी लज्जाशीला है कि कामदेव के रूप में राजा उदयन का चित्र अपने द्वारा चित्रित किये जाने पर और सुसंगता के द्वारा जान लिये पर कहती है-

“प्रियसखी! महती खलु मे लज्जा । तत्तथा कुरु यथा न कोऽप्यपर एतद्वृत्तान्तं जानातीति ।” उसके चरित्र का परिचय इसी बात से लग जाता है कि वह राजा से प्रेम तो करती है पर पराधीनता एवं लज्जा के कारण किसी को बता नहीं सकती और इसीलिये वह मृत्यु को ही अपना शरण मानती है-

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा

प्रियसखि विषमं प्रेम मरणं शरणं नवरमेकम् ।।”¹⁰

इस प्रकार हर्ष के द्वारा रत्नावली का चरित्रभीनाटिका में विशुद्ध मुग्धा नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हर्ष का नाट्यवैशिष्ट्य

संस्कृत नाटककारों में प्रणय-नाटिका के रचनाकार के रूप में हर्ष का नाम बड़े ही आदर से लिया जाता है। इनकी रचनाओं के उपर महाकवि भास एवं कालिदास का प्रकृष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। महाकवि भास की भी दो रचनायें-स्वप्नवासवदत्तम् एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायण राजा उदयन की कथाओं से सम्बन्धित है। इसी प्रकार कालिदास के नाटकों में वर्णित घटनाओं का भी हर्षरचित नाटिकाओं में प्रचुर साम्य दिखता है। शकुन्तला के विषय में अभिज्ञानशाकुन्तल का कुछ- ‘य एवं चित्रण के साम्य को यहां स्पष्टतः देखा जा सकता है- **मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः, न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।**’¹¹

इसी भाव को रत्नावली में देखें- **“विदूषकः- आश्चर्यमाश्चर्यम् । ईदृशं रूपं मनुष्यलोके न पुनर्दृश्यते । तत्तर्कयामि प्रजापतेरपीदं निर्माय विस्मयः समुत्पन्न इति ।”**¹²

वर्णन कला की दृष्टि से हर्ष की यह विशेषता है वणज्य विषय के प्रत्येक पक्ष को मूर्त रूप दे देते हैं। रत्नावली नाटिका के वसन्तोत्सव का दृश्य उदयन के शब्दों में जीवन्त प्रतीत होता है-

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरैः
हैमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा
कौशाम्बीशातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ।।¹³

अर्थात् केसर की चूर्ण से पीले अतः प्रातःकाल की छटा को उपस्थित करने वाले फेंके गये सुगन्धित चूर्ण की राशियों से, सुवर्ण के आभूषणों की कान्ति से, भार से शिर को झुकाये हुये अशोकपुष्पों के शिरोभूषणों से व्यक्ति मानों सोने के पानी से पुते हुये हैं एवं कुबेर के सम्पूर्ण कोश को जीत लेने वाली यह कौशाम्बी वेश से अन्दाज किये जाने वाले अपने वैभव पीली दिखाई पड़ रही है।

हर्ष की रत्नावली की प्रसिद्धि अपने गुणों के कारण प्राचीन काल से ही अक्षुण्ण चल आर ही है। रत्नावली नाटिका न केवल वस्तुवर्णना के लिये प्रसिद्ध है अपितु शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करने के लिये भी प्रख्यात नाटिका है और यही कारण है कि आचार्य धनञ्जय एवं विश्वनाथ कविराज ने अपने - अपने लक्षणग्रन्थों में रत्नावली नाटिका का विशद् विश्लेषण किया है। चाहे सन्धि सन्ध्यङ्गों के सफल प्रयोगों की बात हो अथवा नायक नायिका के उदाहरण का विषय हो किंवा नाटकीय तत्त्वों अथप्रकृति अर्थोपक्षेपकादि की चर्चा हो प्रायशः रत्नावली का उल्लेख मिल ही जाता है।

हर्ष ने जिस भव्यता से कथानक में नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का समावेशन किया है वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटिका में पांचो सन्धियां, अर्थप्रकृति एवं पांचों अवस्थायें आदि स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। रत्नावली नाटिका का बीज वत्सराज के द्वारा रत्नावली की प्राप्ति का कारणभूत अनुकूल दैव है, जो राजा के अनुराग को बढ़ाने में सहायक होता है। इस प्रकार प्रथम अंक में अनुराग-बीज का प्रक्षेप है एवं मुख सन्धि भी वर्तमान है। उदाहरणार्थ -

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।¹⁴

दशरूपककार के अनुसार- “इत्यादिना यौगन्धरायणो वत्सराजस्य रत्नावलीप्राप्तिहेतुभूतमनुकूलदैवं स्वव्यापारं बीजत्वेनोपक्षिप्तवानिति उपक्षेपः ।” बिन्दु का उपक्षेप - “अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवौ.. इस

श्लोक में देखा जा सकता है, दशरूपककार ने यहां “गुणाख्यानं विलोभनम्” कहकर इसे विलोभन का उदाहरण माना है। मुख प्रतिमुख आदि सन्धियों के उदाहरण भी आचार्य धनञ्जय एवं विश्वनाथ के द्वारा अधिकांशतः रत्नावली का ही दिया गया है यथा- प्रतिमुख सन्धि के अङ्ग तापन का उदाहरण विश्वनाथ के द्वारा इस प्रकार दिया गया है- **उपायदर्शनं यत्तु तापनं नाम तद् भवेत् यथा रत्नावल्यांदुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा”**।¹⁸ गर्भ सन्धि तृतीय अंक में है जहां वेश बदलकर सागरिका के अभिसरण से राजा के हृदय में उसकी प्राप्ति की आशा बन्ध जाती है, परन्तु वासवदत्ता के द्वारा बाधा उत्पन्न कर देने पर नायक की आशाओं तुषारापात हो जाता है- राजा की यह उक्ति गर्भ सन्धि का उदाहरण है जहां वह कहता है कि- वयस्य। देवीप्रसादं मुक्त्वा नान्यमन्त्रोपायं पश्यामि। फिर कहता है कि- “सर्वथा देवी प्रसादनं प्रति निष्प्रत्याशीभूताः स्मः पुनः। तत्किमिह स्थितेन देवीं गत्वा प्रसादयामि।” निर्वहणसंधि चतुर्थ अंक में दिखता है जहां वसुभूति तथा वाभ्रव्य के साक्षात् प्रमाण एवं विदूषक के गले में विद्यमान रत्नावली को देखकर सागरिका का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है तथा नायक का नयिका से मिलनरूप फल की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि महाराज हर्ष ने अपनी काव्यप्रतिभा का प्रयोग कर, नाट्यतत्त्वों का समुचित समायोजन करते हुये अत्यन्त लोकरञ्जक, सहृदयानन्ददायक नाटकों का प्रणयन किया। उनकी तीनों ही रचनायें संस्कृतकाव्य जगत् के गौरभूत हैं इसके साथ ही जैसे काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला कहा जाता है तथैव रत्नावली नाटिका भी उनकी सभी रचनाओं में रम्य है।

सन्दर्भ -

1. बलदेव उपाध्यायकृत संस्कृत साहित्य का इतिहास- पृष्ठ-524
2. दशरूपक- तृतीय प्रकाश:- कारिका-43-45
3. दशरूपक- तृतीय प्रकाश:- कारिका- 46
4. दशरूपक- तृतीय प्रकाश:- कारिका- 47
5. दशरूपक- द्वितीय प्रकाश:- कारिका- 03
6. रत्नावली- पद्य संख्या-09
7. रत्नावली- प्रथमांकधसागरिका की उक्ति/ पृष्ठ-39
8. रत्नावली- द्वितीयांक- पद्य- 21
9. दशरूपक- कारिका- 15
10. रत्नावली- द्वितीयांक- पद्य- 01
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम् -1/24
द्वितीयांक- विदूषक की उक्ति / पद्य सं. 16 से पूर्व संवाद।
12. रत्नावली- 1/10
12. रत्नावली- 01/05
14. साहित्यदर्पण षष्ठ परिच्छेद / तापनलक्षणम्/ पृष्ठ-298

29

हर्ष के रूपकों की सत्यासत्य समीक्षा

रूपा कुमारी

हर्ष की साहित्यिक प्रतिभा का प्रमाण है तथा भारतीय नाट्य साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। रत्नावली हर्ष द्वारा रचित संस्कृत नाटिका चार अङ्कों में निबद्ध है, जिसके अन्तर्गत समाज प्रेम, तथा राजनीति का बहुत ही सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत रूपकों में रत्नावली का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। साहित्य के अन्य आचार्यों एवं दशरूपककार आचार्य धञ्जजय द्वारा अपने ग्रन्थों में उदाहरण के रूप में रत्नावली के पद्यों को स्थान-स्थान पर उल्लेख करना इस बात कि पुष्टि करता है कि अन्य रूपकों के अपेक्षा रत्नावली नाटिका शास्त्रीय पद्धति से अत्यधिक निकट है। इसका नामाकरण नायिका रत्नावली के नाम के आधार पर किया गया है। इसकी कथा राजकुमारी रत्नावली और राजा उदयन के प्रेम प्रसङ्ग पर आधारित है। इसमें हर्ष ने प्रचीन भारतीय संस्कृति, जीवनशैली और सामाजिक मान्यताओं का रोचक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

नागानन्द पाँच अङ्कों में निबद्ध नाटक है। इस नाटक का प्रमुख विषय-वस्तु त्याग, करुणा तथा परोपकार है। प्रस्तुत नाटक के अन्तर्गत बौद्ध धर्म के आदर्शों, विशेष रूप से करुणा और अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया गया है। नाटक का नायक जीमूतवाहन है, जो एक राजकुमार होते हुए भी सांसारिक सुखों को त्यागकर पर्वतों के कन्द्राओं में निवास करता है। नायिका मालविका जीमूतवाहन की पत्नी है। प्रस्तुत कहानी में नाग जाति के जीवन को बचाने के लिए वह स्वयं को बलिदान देता है। जीमूतवाहन नागों को गरुड़ के हमलों से बचाने के लिए अपने जीवन संकट में डालता है। अन्ततः उसकी करुणा और निस्वार्थता के कारण गरुड़ उसे छोड़ देता है और नाग जाति की रक्षा हो जाती है। प्रस्तुत नाटक की मुख्य विशेषताएँ परोपकार तथा त्याग सर्वोच्च धर्म है, करुणा का सन्देश प्रस्तुत नाटका का केन्द्रीय बिन्दु है। इसमें बौद्ध धर्म के आदर्शों दया, अहिंसा तथा सम्वाद की उत्कृष्टता स्पष्ट है। इसके धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष भी महत्वपूर्ण हैं। नागानन्द में बौद्ध धर्म के शिक्षा को नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया गया है तथा इसके अन्तर्गत धर्म और समाज के बीच सन्तुलन बनाने का प्रयास दिखाई देता है। नागानन्द नाटक की संरचना पौराणिक कथाओं तथा सामाजिक यथार्थ का सुन्दर मिश्रण है। इसके अन्तर्गत नाटक का चरित्र आदर्शवादी और प्रेरणादायक है, जो भारतीय नाट्य परम्परा की विशेषता को दर्शाता है। नागानन्द न केवल एक साहित्यिक रचना है, बल्कि यह जीवन के सर्वोत्तम आदर्शों का भी प्रतीक है। प्रस्तुत नाटक में हर्षवर्धन ने त्याग, दया और परोपकार जैसे गुणों को मुख्य

केन्द्र में रखा है। यह नाटक भारतीय साहित्य में धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है तथा हर्ष के कृतित्व को कालजयी बनाता है।

³प्रियदर्शिका हर्ष द्वारा रचित एक सुन्दर संस्कृत नाटक है, जो प्रेम प्रसङ्ग, राजनीति तथा मानवीय भावनाओं का समिश्रण प्रस्तुत करता है। यह नाटक साहित्यिक दृष्टिकोण से उत्कृष्ट है और हर्ष की साहित्यिक प्रतिभा को भी दर्शाता है। प्रियदर्शिका पाँच अङ्कों में निबद्ध नाटक का विषय वस्तु प्रेम तथा राजनीतिक परिस्थितियों के बीच सम्बन्ध का चित्रण है। इस नाटक का विषय वस्तु नायक-नायिका के बीच प्रेम, विरह तथा पुनर्मिलन पर आधारित है। नाटक का केन्द्र बिन्दु राजा उदयन तथा राजकुमारी प्रियदर्शिका का प्रेम प्रसङ्ग है। प्रस्तुत नाटकका मुख्य विषय-वस्तु प्रेम और त्याग का चित्रण है प्रियदर्शिका और उदयन का प्रेम आदर्शवादी और प्रेरणादायक है। नाटक में अलङ्कार भाषा, काव्यात्मक संवाद और नाटकीयता का सुन्दर मिश्रण है। नाटक में प्रेम के साथ-साथ राजनीतिक तथा सामाजिक सन्देशों पर राजाओं और राज्यों के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। प्रियदर्शिका में हर्ष ने सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थ को बड़े ही कुशलता से प्रस्तुत किया है। नाटक की संरचना और भाषा इसे संस्कृत साहित्य की अमूल्य धरोहर बनाती है। प्रस्तुत नाटक में नाटकीयता और हास्य का संतुलन है जो पाठकों को आकर्षित करती हैं। इसमें नायक-नायिका के मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। नाटक में वास्तविक जीवन तथा कल्पनाओं का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। प्रियदर्शिका तथा वासवदत्ता के पात्र नारी शक्ति और साहस का प्रतीक है। दोनों पात्रों के मनोभाव तथा संघर्ष नाटक को अधिक गहराई प्रदान करते हैं। प्रियदर्शिका हर्षवर्धन की साहित्यिक दृष्टि तथा कल्पनाशीलता का अनूठा उदाहरण है। यह नाटक न केवल प्रेम अथवा राजनीतिक की एक सुन्दर कथा प्रस्तुत करता है, बल्कि संस्कृत साहित्य में अपनी अमिट छाप छोड़ता है। इसके पात्र, संवाद और कथानक इसे कालजयी बनाते हैं और यह भारतीय नाट्य परम्परा का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है।

हर्ष केवल महाकवियों के आश्रयदाता ही नहीं थे बल्कि वह स्वयं भी एक महाकवि थे। वे ग्रन्थों के प्रणेता थे लक्ष्मी तथा शारदा का एकत्र मिलन एकान्त दुर्लभ होता है, परन्तु यहाँ सब सम्भव हो गया। ⁶‘निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च’। उनके सभा कवि बाण अपने हर्षचरित नामक ग्रन्थ में हर्ष की काव्य-प्रतिभा का उल्लेख करते हैं। उन्होंने हर्ष के जीवन को आधार बनाकर हर्षचरित नामक गद्य काव्य की रचना की। वीरता लक्ष्मी के साथ ही वह सरस्वती का भी कृपापात्र थे उनकी सभा का महारत्न बाण अपने हर्ष चरित नामक ग्रन्थ में हर्ष की काव्य प्रतिभा का आनेकशः उल्लेख करते हैं। बाणभट्ट हर्ष की परिषद् के अमूल्य व अनुपम रत्न थे जिन्होंने राजा की विक्रमादित्य कीर्ति का गान हर्षचरित नामक गद्यकाव्य में उल्लेख किया गया है। मयूरभट्ट भी इसी सभा के रत्न थे। कहा जाता है कि दैवदुर्विपाक से कुष्ठ रोग से आक्रान्त हो जाने पर इन्होंने ‘सूर्यशतक’ नामक मनोरम काव्य रचकर सूर्य की स्तुति की थी जिससे ये नौरोग हो गये थे। ⁷मम्मटाचार्य ने भी काव्यप्रकाश में ‘आदित्यादेर्मयूरादीनामिवार्थनिवारणम्’ कहकर इन्हें काव्य कौशल की व्यञ्जना द्वारा प्रशंसा की है। दिवाकर भी इनकी सभा में थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने अपने गुणों की महिमा से बाण और मयूर के समान की राजा से सम्मानित पद प्राप्त किया था। राजशेखर ने भी कहा है- ⁸‘अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः। श्रीहर्षस्याभवत् सभ्यः समो बाणमयूरयोः।। श्री हर्ष की सभा में बाण और मयूर की स्थिति का प्रमाण दशमशतक में होने वाली पद्यगुप्त के नवसाहसाङ्क चरित हैं।’

स चित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः। श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः।।

यहाँ प्रश्न यह उठता है क्या रत्नावली, नागानन्द प्रियदर्शिका रूपक हर्ष की कृतियाँ हैं, अथवा धावक या बाण ने हर्ष से प्रचुर मात्रा में सम्पत्ति लेकर इन्हें हर्ष के नाम पर कर दिया है? यह प्रश्न विद्वानों के समक्ष विवादास्पद बना हुआ है इसके प्रश्न के निम्न कारण हैं। सम्राट हर्षवर्धन उत्तरी भारत का शासक थे उनके राज्य की सीमाएँ विस्तृत थीं। निरुसन्देश उनका मित्रों की अपेक्षा शत्रुओं की संख्या अधिक रही होगी। विस्तृत राज्य में कोई-न-कोई उपद्रव होता रहता है। अतः साहित्य लेखन के लिए निश्चित रूप से शान्त वातावरण का होना स्वाभाविक है।

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश के काव्य प्रयोजन में धन की प्राप्ति को भी काव्य का प्रयोजन मात्र माना है।¹⁰ ‘काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये’। इसके उदाहरण में उन्होंने लिखा है।¹¹ ‘श्रीहर्षा देर्धावकादीनामिव धनम्’। यह देखकर काव्यप्रकाश के 17वीं शताब्दी के टीकाकार नागेश के उद्योत नामक टिका में लिखा है धावक कवि।¹² ‘स हि श्री हर्षनाम्ना रत्नावली कृत्वा बहुधनं लब्धवानिति प्रसिद्धम्’। अर्थात् धावक नाम का एक कवि हुआ उन्होंने हर्ष के नाम से रत्नावली की रचना करके बहुत सारा धन प्राप्त किया। इसी आशय से परमानन्द नामक टीकाकार ने इस प्रकार लिखा है। धावक कवि स्वीकृति रत्नावली नामनाटिका विक्रीय श्री ने अपनी कृति रत्नावली नामक नाटिका बेचकर श्री हर्ष नामक राजा के पास से बहुत सारा धन प्राप्त किया ऐसा प्रसिद्ध है। इसी आशय को परमानन्द नामक एक और टीकाकार ने इस प्रकार लिखा है-¹³ ‘धावकनामा कविः स्वकृतिं रत्नावलीनामनाटिकां विक्रीय श्रीहर्षनाम्नो राज्ञाः सकाशाद्बहुधनवापेति पुरा वृत्तम्’। अर्थात् धावक नाम के कवि ने अपनी कृति रत्नावली नामक नाटिका बेचकर श्रीहर्ष नामक राजा द्वारा बहुत सारा धन प्राप्त किया इस प्रकार की कहानी मिलती है।

ये कुछ आपत्तियाँ हैं जो हर्ष के रत्नावली के तथा उनकी अन्य कृतियाँ व लेखक कवि के रूप में बाधक हैं। परन्तु, सावधानी पूर्वक विचार किया जाए तो ये आपत्तियाँ स्वतः निरस्त हो जाती हैं। हर्ष को कवि होने का यह बात सत्य है कि एक विशाल साम्राज्य के शासक होने के साथ कवि होना आसान नहीं है ऐसा प्राचीनकाल से देखा जा सकता है, कि राजाओं के पीछे इतने विघ्न लगे रहते थे कि इस बीच साहित्य की रचना करना कठिन था। किन्तु इस आपत्ति को पुष्टों को उलट कर सावधानी पूर्वक देखना पड़ेगा जो हर्ष के जीवन के संघर्ष से भड़े पड़े हैं।

हर्षचरित के विषय में ह्येनसांग तथा इत्सिंग के यात्रा-विवरण को अध्ययन करने की जरूरत है जो महाराज हर्ष के जीवन एवं राज्य के वर्णन से भरे पड़े हैं। हर्ष एक लम्बी अवधि तक विशाल उत्तर भारत के शासक थे। 606-647 ई. तक सदाचार शीलादित्य के रूप में चमकते रहें। हर्ष के शासन के पूर्वार्द्ध के बीस वर्ष निःसन्देह कठिनाइयों के वर्ष थे, किन्तु बाद का जीवन शान्तिपूर्ण जीवन था। उन्होंने शत्रुओं को शान्त करने के पश्चात् राज्य कार्य का सारा भार अपने योग्य मंत्री के हाथों सौंपकर बाकी के समय साहित्यिक अनुष्ठानों में व्यतीत कर जीवन को सरस बनाया था। इसकी झलक रत्नावली नाटिका में देखने को मिलता है। शत्रुओं को शान्त करने के पश्चात् प्रजानुरञ्जन तथा भगवती सरस्वती की समाराधना ही हर्ष के जीवन का अवशिष्ट कार्य था। ‘विशान्तविग्रहकथो रतिमांजनस्य’। इसी के बाद सबसे पहले ‘प्रियदर्शिका तदनन्तर रत्नावली की रचना की और बौद्ध धर्म स्वीकारने के पश्चात् उन्होंने नागानन्द की रचना की।

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहना कि राज्य के कार्य-भार को सम्भालते हुए हर्ष रत्नावली के रचयिता नहीं हो सकते ऐसा उचित प्रतीत नहीं होता है। आज के महान् राजनेताओं की तरह हर्ष भी व्यस्त

रहते हुए यदि काव्य की रचना किए तो यह कहना अनुप्रयुक्त नहीं होगा। उदाहरण के रूप में लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधि, लाल बहादुर शास्त्री, अम्बेडकर इत्यादि राजनेता अपने व्यस्ततम जीवन में विचारों एवं लेखन के माध्यम से पूर्ण योग्यता हमारे समक्ष प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार हर्ष के विषय में यह कहना कि राज्य के कार्य भारको सम्भालते हुए एक साहित्यकार नहीं हो सकते यह कहना मात्र ही हास्यास्पद है। हर्ष के विषय में बाह्य प्रामाण के साथ अभ्यान्तर प्रमाण भी सिद्ध करते हैं कि रत्नावली, प्रियदर्शिका एवं नागानन्द के रचनाकार हर्ष ही है। इन तीनों ग्रन्थों में वाक्य-विन्यास, शब्दावली, भरतवाक्य यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण है कि ये तीनों कृतियाँ एक ही कवि के है। हर्ष को अपनी कवित्व प्रतिभा पर आत्म-विश्वास था तीनों नाटकों में पाए जाने वाले एक श्लोक में उन्होंने स्वयं को निपुण्य कवि कहा है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि नाट्य साहित्य में महाकवि हर्ष का विशेष योगदान है।

संदर्भ -

1. रत्नावली नाटिका, डॉ. शिवराज शास्त्री, प्रकाशक रतिराम शास्त्री, द्वितीय संस्करण 1968
2. नागानन्द नाटक, श्री बलदेवोपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
3. प्रियदर्शिका, पं. रामनाथत्रिपाठी शास्त्री, चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी - 1908
4. हर्षचरितम् : डॉ. निरंजन मिश्र, हंसा प्रकाशन, जयपुर 2019
5. रत्नावलीनाटिका, डॉ. शिवराज शास्त्री, पृष्ठ संख्या - 9
6. नागानन्द नाटक, पण्डित श्रीबलदेवोपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पृष्ठ संख्या -8
7. काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास, पृष्ठ संख्या -10
8. नागानन्द नाटक, पण्डित श्रीबलदेवोपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पृष्ठ संख्या -8
9. नागानन्द नाटक, पण्डित श्रीबलदेवोपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पृष्ठ संख्या -8
10. काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास, पृष्ठ संख्या - 10
11. काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास, पृष्ठ संख्या - 10
12. रत्नावलीनाटिका, डॉ. शिवराज शास्त्री, पृष्ठ संख्या - 13
13. रत्नावलीनाटिका, डॉ. शिवराज शास्त्री, पृष्ठ संख्या - 13

30

प्रियदर्शिका नाटिका में नाट्यशास्त्रीय दृष्टि

विमलेश कुमार सिंह यादव

संस्कृत नाट्यपरम्परा में कालिदास के पश्चात् जो कवि हैं, वे हर्ष ही हैं, जिन्होंने शासन कार्य की अति व्यस्तता के मध्य भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा की उद्भावना की और उसके द्वारा सहृदयों के हृदय को चमत्कृत किया। उनका साहित्य केवल नाटिकाओं की परम्परा के लिए ही नहीं, अपितु नाटकीय एवं काव्य गुणों के लिए भी संस्कृत साहित्य में अनुपम है। काव्य में कथावस्तु दो भागों में विभक्त होता है आधिकारिक एवं प्रासंगिक - तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः। आधिकारिक कथा मुख्य कथा है- अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः। तन्निवृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।।

अर्थात् इसमें नायक को फल की प्राप्ति होती है। प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन एवं प्रियदर्शिका का वृत्तान्त आधिकारिक कथा है, जिसमें उदयन को प्रियदर्शिका रूप में फल की प्राप्ति होती है। प्रासंगिक कथा दो प्रकार की होती है पताका और प्रकरी-सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभा।

अर्थात् पताका कथा मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है। प्रियदर्शिका में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका कथा है जो नाटिका के प्रारम्भ से लेकर अंत तक छाया रहता है। यह नायक को नायिका की प्राप्ति में सहायक है, क्योंकि बिना वासवदत्ता की कृपा के उदयन को प्रियदर्शिका प्राप्त नहीं हो सकती थी।

नाटिका में ऐसी अनेक घटनाओं के संकेत हैं, जो प्रकरी कथा कहे जा सकते हैं। विन्ध्यकेतु पर विजयसेना का आक्रमण, दृढ़वर्मा के कंचुकी का रंगमंच पर आना, इन्दीवरिका और मनोरमा के वृत्तान्त, सांकृत्यायनी द्वारा नाटक का निबन्धन, अंगारवती द्वारा वासवदत्ता के पास पत्र भेजना, कलिंगराज के युद्ध में पराजय का वृत्तान्त आदि प्रकरी कथा कहे जा सकते हैं।

अर्थप्रकृतियां

नाटकीय कथावस्तु का संघटन पाँच अर्थप्रकृतियों द्वारा होता है ये हैं - बीज, बिन्दु, पताका प्रकरी एवं कार्य। बीजबिन्दुपताकाख्य प्रकरीकार्यलक्षणाः। अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः।।

1. बीज - बीज वह तत्व है जो अभिनय के प्रारंभ में संक्षेप में तथा बाद में जिसका अनेक प्रकार से विस्तार हो-

स्वल्पोदिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।

प्रथम अंक में विजयसेन द्वारा प्रियदर्शिका को राजा के लिए सौपना बीज तत्व को व्यक्त करता है। उसमें सम्भावना होती है कि प्रियदर्शिका को उदयन प्राप्त करेंगे।

2. बिन्दु घटनाओं द्वारा कथासूत्र के टूट जाने पर मूलकथा को पुनः जोड़ने वाला तत्त्व बिन्दु है-

अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।।

द्वितीय अंक में विदूषक द्वारा प्रियदर्शिका से यह कहना कि तुम्हारी रक्षा तो सम्पूर्ण पृथिवी की रक्षा करने में समर्थ वत्सराज उदयन कर रहे हैं। बिन्दु तत्त्व है। यहाँ आरण्यका के हृदय में उदयन के प्रति औत्सुक्य एवं अनुराग की उत्पत्ति हुई है तथा उन दोनों के हृदय में अनुराग उत्पन्न होने से मिलन की सम्भावनाएँ बढ़ गई हैं।

3. पताका आधिकारिक कथा के साथ दूर तक चलने वाली प्रासंगिक कथा पताका कहलाती है- सानुबन्ध पताकाख्यम्। यह नायक के लिए फल की प्राप्ति में सहायक है। 'प्रियदर्शिका' नाटिका में वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका है। वह फल प्राप्ति में नायक का सहायक है।

4. प्रकरी कथानक के एक भाग में रहने वाले कथांश प्रकरी कहलाते हैं प्रकरी च प्रदेशभाव। विन्ध्यकेतु पर विजयसेन का आक्रमण दृढ़वर्मा का रंगमंच पर आना, इन्दीवरिका एवं मनोरमा का वृत्तान्त आदि प्रकरी कथाएँ हैं।

5. कार्य नाटकीय कथा में फल की प्राप्ति कार्य है- कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ।। चतुर्थ अंक में उदयन द्वारा प्रियदर्शिका को प्राप्त करना कार्य है।

कार्यावस्थाएँ - नाटकीय कथा में घटनाओं की पाँच अवस्थाएँ होती हैं, जिनको कार्यावस्था कहते हैं। ये कार्यावस्थाएँ पाँच होती हैं:- अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः। आरम्भयत्नप्राप्त्याशा नियताप्तिफलागमाः ।।

1. आरम्भ- मुख्य फल को प्राप्त करने के लिये नायक द्वारा किया जाने वाला फल आरम्भ है। औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। विजयसेन द्वारा प्रियदर्शिका के लाये जाने पर उदयन का यह कथन 'यदा वरयोग्या भविष्यति तदा मां स्मारय' आरम्भ की अवस्था है। इसमें उदयन द्वारा प्रियदर्शिका को प्राप्त करने की सम्भावना व्यक्त होती है।

2. यत्न - फल को प्राप्त करने के लिए नायक द्वारा किया जाने वाला प्रयास यत्न है। प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। द्वितीय अंक में राजा उदयन द्वारा झाड़ियों में छिपकर प्रियदर्शिका को देखना उसको औरों से बचाने के लिए जाना, मिलन हेतु अभिनय की योजना बनाना यत्न है।

3. प्राप्त्याशा- अनुकूल परिस्थितियों के होने पर फल प्राप्ति की आशा साथ में विघ्नों की भी सम्भावना हो तो वह प्राप्त्याशा होता है। उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिः सम्भवः ।

दूसरे अंक में प्रियदर्शिका की अनुरागावस्था तथा तृतीय अंक में मिलने का उपाय होने पर उदयन को प्रियदर्शिका की प्राप्ति की आशा तो है पर इसमें विघ्नों की संभावना है, क्योंकि वासवदत्ता द्वारा प्रियदर्शिका को उदयन की दृष्टि पथ से अलग रखा जाता है।

4. नियताप्ति- विघ्नों के दूर हो जाने पर जब नायक को फल की प्राप्ति सुनिश्चित हो तो यह नियताप्ति है- अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ।। वासवदत्ता द्वारा प्रियदर्शिका को पहचान लेना ये सब घटनाएँ विघ्नों को दूर करके फल की प्राप्ति को सुनिश्चित करती हैं।

5. फलागम- इष्ट फल की प्राप्ति होने पर फलागम की अवस्था होती है। समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः। चतुर्थ अंक में वासवदत्ता द्वारा उदयन के हाथ में प्रियदर्शिका को अर्पित किया जाना फलागम की अवस्था है। पाँच अर्थप्रकृतियाँ तथा पाँच कार्यावस्थाओं का क्रमशः संयोग संधियाँ कहलाता है। इस प्रकार ये

संधियाँ पाचं होती है-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और उपसंहृतिधनिर्वहण - अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः ।। यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्च सन्धयः । मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः ।

1-मुख- बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरंभ नामक कार्यावस्था के संयोग से मुख संधि की रचना होती है ।

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नार्थरससम्भवा । अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।।

प्रथम अंक में दृढ़वर्मा का कंचुकी द्वारा स्वागत कथन के संवाद से प्रारंभ होकर प्रथम अंक के अंत तक का भाग मुख संधि के अंतर्गत रखा जा सकता है ।

2. प्रतिमुख - बिन्दु नामक अर्थप्रकृति तथा यत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से प्रतिमुख नामक संधि की रचना होती है । **लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भूतस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् । बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ।।**

द्वितीय अंक में उदयन को देखकर प्रियदर्शिका अनुराग से भर जाती है । तृतीय अंक में मनोरमा द्वारा वत्सराज उदयन से प्रियदर्शिका को मिलाने का प्रयास प्रतिमुख संधि है ।

3. गर्भ - पताका नामक अर्थप्रकृति तथा प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था के संयोग से गर्भसंधि की रचना होती है-**गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः । द्वादशाङ्गः पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसंभवः ।।**

इस नाटिका में वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका कथा है, जो नायक को फल प्राप्ति में सहायक है । कौमुदी महोत्सव के अवसर पर नाटकाभिनय में उदयन को प्रियदर्शिका से मिलन की आशा होती है, परन्तु इसमें विघ्न उपस्थित होता है । पुनः चतुर्थ अंक में जब उदयन कहते हैं कि देवी की कृपा के बिना मिलना असंभव है । तो यह अंश गर्भसंधि के अंतर्गत आता है ।

4. अवमर्श- प्रकरी नामक अर्थप्रकृति तथा नियताप्ति नामक कार्यावस्था के संयोग से अवमर्श नामक संधि की रचना होती है । **क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात् । गर्भनिभिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ।।**

जब कलिंगराज के वध तथा दृढ़वर्मा के राज्य में प्रतिष्ठित होने की प्रसन्नता में विदूषक वासवदत्ता से कहता है कि उदयन की पूजा करे तथा कैदी को मुक्त कर दें । यह अवमर्श संधि है ।

5. निर्वहण - अर्थप्रकृति और फलागम नामक कार्यावस्था के संयोग से निर्वहण नामक संधि की रचना होती है । **बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम् । ऐकार्य्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत् ।।** चतुर्थ अंक में उदयन द्वारा प्रियदर्शिका रुपी फल को प्राप्त करना निर्वहण संधि प्रियदर्शिका नाटिका में अनेक सन्ध्यंगों की योजना भी की गई है । प्रियदर्शिका को उपरूपकों की श्रेणी में रखा जाता है । यह नाटिका है । नाटिका में नाटक एवं प्रकरण की कुछ विशेषताएँ आ जाती हैं । नाटक के समान इसका नायक धीरललित एवं प्रख्यात होता है । परन्तु इसका कथानक प्रकरण के समान कविकल्पित होता है । अंगीरस शृंगार, चार अंक, एवं स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है । अन्तपुर से सम्बन्ध कन्या इसकी नायिका होती है । वह संगीत में निपुण होती है । नायक नायिका के प्रति प्रवृत्त तो होता है परन्तु ज्येष्ठा प्रगल्भा पत्नी से भयभीत होता है । उसी की कृपा से नायक-नायिका का मिलन संभव होता है । इसमें शृंगाररस के अनुरूप कैशिकी वृत्ति, एवं पाँच संधियों होती हैं । प्रियदर्शिका नाटिका में ये सारी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं । इसका नायक उदयन इतिहास प्रसिद्ध, धीरललित नायक है जो अपनी ज्येष्ठा पत्नी के प्रति अनुकूल रहते हुए दूसरी नायिका को प्राप्त करना चाहता है । वह कला एवं संगीत का प्रेमी है । नाटिका का कथानक प्रायः कविकल्पित है । इसका अंगीरस शृंगार, चार अंक एवं स्त्री पात्रों की प्रधानता है । अंतःपुर से संबंध राजकुमारी प्रियदर्शिका इसकी नायिका है । वह संगीत में निपुण है । उदयन की प्रवृत्ति प्रियदर्शिका के प्रति होती है किन्तु वह वासवदत्ता से सदा शंकित होता है । किन्तु

उसी की सहमति से उदयन को प्रियदर्शिका प्राप्त होती है। अन्तःपुर में सुलभ गीत, भोगविलास, कामचेष्टा आदि का आयोजन होने से इस नाटिका में कैशिकी वृत्ति है। नाट्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार कवि ने प्रियदर्शिका नाटिका को चार अंको में विभाजित किया है। प्रत्येक अंक में एक/एक से अधिक दृश्यों की योजना है। प्रियदर्शिका के अंको तथा दृश्यों की योजना की विशेषता अन्य रूपकों में सामान्यतः प्राप्त नहीं होता है।

निष्कर्ष

किसी भी नाटिका में वर्णित पार्वर्जों के आचार-विचार एवं विभिन्न घटनायें वस्तु के अंतर्गत आते हैं। श्रीहर्ष की नाटिका में वस्तु धर्म का पालन पूरी निष्ठा से किया गया है। इसमें पंच अर्थप्रकृतियाँ (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य) तथा पंच कार्यावस्थाएँ (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, और फलागम) पंच संधियाँ (मुख प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं अवमर्श) तथा चौसठ संध्यंगो का प्रयोग श्रृंगाररस, कैशिकी वृत्ति, इत्यादि का प्रयोग कुशलता के साथ नाट्यकारों के द्वारा किया गया है। प्रियदर्शिका में प्रयुक्त भाषा एवं शैली भी सरस एवं रोचक है। नाट्यकार हर्ष ने अपनी नाटिकाओं में छन्द पूर्ण योजनाबद्ध तरीके से किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हर्ष विरचित प्रियदर्शिका नाटिका सभी नाट्यशास्त्रीय गुणों से परिपूर्ण है। यह नाटिका सफल हृदयों का मनोरंजन करने में पूर्ण समर्थ एवं सक्षम है। अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हर्ष विरचित प्रियदर्शिका नाटिका एक सफल नाटिका है।

सन्दर्भ -

1. दशरूपक- 1/11
2. वही, 2/12
3. वही, 1/13
4. वहीं 1/18
5. वही 1/17 पूर्वार्द्ध
6. वही 1/17
7. वही 1/16
8. वही 1/19
9. वही 1/20 पूर्वार्द्ध
10. वही 1/20
11. वही 1/21 पूर्वार्द्ध
12. वही 1/21
13. वही 1/22 पूर्वार्द्ध
14. वही - 1/22, 24 पूर्वार्द्ध
15. वही - 1/24
16. वही - 1/30
17. वही - 1/36
18. वही - 1/46
19. वही - 1/48
20. त्यागी, अर्चना नाट्यशास्त्रीय वस्तु विवेचन (शोध प्रबन्ध) संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1994
21. नेगी, दीपा प्रियदर्शिका नाटिका का अध्ययन (लघु शोध प्रबन्ध), दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 1980
22. श्रीहर्ष प्रियदर्शिका नाटिका (डॉ. कृष्ण कुमार) राजकीय विश्वविद्यालय श्री नगर, गढ़वाल 1980
23. प्रमिला, कुमारी संस्कृत नाटिकाओं का नाट्यशास्त्रीय अध्ययन, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2006
24. धनंजय दशरूपकम् (सम्पादक डॉ. वैजनाथ पाण्डेय), मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, 1969
25. हर्षदेव रत्नावली नाटिका (सम्पादक प्रो. शिवबालक द्विवेदी), ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर, 1983
26. चक्रवाल, इन्द्र उपरूपकों का उद्भव एवं विकास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
27. भरत नाट्यशास्त्र (सम्पादक मनमोहन घोष) ग्रन्थालय प्रा. लि., कलकता, 1967

प्रियदर्शिका एवं रत्नावली का नाट्यशास्त्रीय मूल्यांकन

त्रिलोक चन्द अवस्थी

हर्षदेव प्रणीत संस्कृत नाटिका प्रियदर्शिका एवं रत्नावली की समीक्षा उक्त नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर की जाएगी।

वस्तु-विधान

1. प्रियदर्शिका - यह हर्षदेव की सातवीं शताब्दी की प्रथम कृति है। यह 4 अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन और आरण्यिका (प्रियदर्शिका) के प्रणय और परिणय का वर्णन है। इसका नामकरण इसकी प्रमुख नायिका के नाम पर किया गया है।

(अंक 1) कलिङ्ग के राजा द्वारा पिता वृद्धवर्मा के पराजित होने पर राजकुमारी प्रियदर्शिकासंयोगवश राजा उदयन के महल में पहुंचती है और वहाँ अपनी बहन रानी वासवदत्ता की दासी के रूप में आरण्यिका नाम से रहती है। (अंक 2) क्रीडावन में भ्रमर से पीड़ित आरण्यिका की राजा रक्षा करता है फलतः दोनों का पूर्वराम प्रारम्भ होता है। (अंक 3) वासवदत्ता की सखी सांकृत्यायनी उसके मनोरंजनार्थ उदयन वासवदत्ता-प्रेमाख्यान विषयक एक नाटक प्रस्तुत करती है, जिसमें आरण्यिका को वासवदत्ता का तथा मनोरमा को उदयन का अभिनय करना था, किन्तु राजा स्वयं उदयन का अभिनय करते हैं। यह नाटक नकली न रहकर असली हो जाता है। वासवदत्ता इस दृश्य से क्षुब्ध हो उठती है और आरण्यिका को कारागृह में डलवा देती है। (अंक 4) आरण्यिका जीवन से निराश होकर बन्दीगृह में विषपान कर लेती है। सूचना मिलते ही वासवदत्ता उसे विष उतारने की विद्या जानने वाले राजा के सामने मंगाती है। उसी समय -वृद्धवर्मा का कंचुकी आता है और वह राजकुमारी प्रियदर्शिका को पहचान लेता है। उससे वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि आरण्यिका वस्तुतः उसके मौसा वृद्धवर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका है। राजा आरण्यिका का विष उतारता है और वासवदत्ता दोनों का विवाह कराती है। इस नाटिका में भ्रमर-वृत्तान्त शाकुन्तल से तथा प्रणय-व्यापार एवं विषप्रसंग मालविकाग्निमित्र से प्रभावित हैं। तृतीय अंक में 'गर्भनाटक' विशेष महत्त्वपूर्ण है।

2. रत्नावली - यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें राजा उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय और परिणय का वर्णन है।

(अंक 1) समुद्री दुर्घटना से बची हुई सिंहलराज की पुत्री राजा उदयन के महल में रत्नावली वासवदत्ता के पास पहुँच सागरिका नाम से उसकी दासी बनकर रहती है। राजा की सौंदर्यासक्ति से बचाने के लिए यह सागरिका को राजा से दूर रखती है, किन्तु मदनमहोत्सव में दोनों का साक्षात्कार होने से पूर्वराम प्रारम्भ होता है।

(अंक 2) सागरिका अपनी सखी सुसंगता को उदयन-विषयक अपना प्रेम बताती है। एक मैना यह सब समाचार सुन लेती है। राजा का पालतू बन्दर उधर आकर मैना का पिंजड़ा खोल देता है। मैना उड़ जाती है। राजा और विदूषक कदलीवन में आते हैं। मैना से उन्हें सारा समाचार ज्ञात होता है। सुसंगता के प्रयत्न से उदयन और सागरिका मिलते हैं। वासवदत्ता वहाँ आकर क्रुद्ध होती है तथा राजा के मनाने पर भी तमक कर चली जाती है। (अंक 3) सुसंगता और विदूषक ने उदयन और सागरिका को माधवीलता-मण्डप में मिलाने का आयोजन किया। षड्यन्त्र का पता चलने पर वासवदत्ता क्रुद्ध हो सागरिका को कैद में डाल देती है तथा उसे उज्जैन भेज देने की अफवाह उड़ा देती है। (अंक 4) एक जादूगर अपना खेल दिखाता है। महल में आग लगती है। वासवदत्ता की प्रार्थना पर राजा सागरिका को बचा लाता है। इसी समय सिंहल राजा के मंत्री और कंचुकी बातें करते हैं और वे रत्नावली (सागरिका) को पहचान लेते हैं। वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि वह उसके मामा की पुत्री है। यह दोनों का प्रेम-विवाह कराती है। प्रायः सभी आचार्यों ने इतिवृत्त के दो भेद किए हैं - आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक।¹

आधिकारिक एवं प्रासंगिक इतिवृत्त - अधिकारी द्वारा फल प्राप्ति पर्यन्त किया गया वृत्त आधिकारिक² तथा प्रधानवस्तु की साधक एवं प्रसंगतः आई हुई कथा प्रासंगिक कहलाती है।³ 'प्रियदर्शिका' नाटिका में उदयन एवं प्रियदर्शिका का वृत्तान्त आधिकारिक कथा है। जिसमें उदयन को प्रियदर्शिका रूप फल की प्राप्ति हुई है। नायक उदयन को नायिका प्रियदर्शिका की प्राप्ति में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त अत्यन्त सहायक होने से यह प्रासंगिक कथा है। 'रत्नावली' नाटिका में भी उदयन एवं रत्नावली का वृत्तान्त आधिकारिक कथा है जिसमें उदयन को रत्नावली रूप फल की प्राप्ति हुई है। यौगन्धरायण द्वारा उदयन की पूर्व नायिका वासवदत्ता का अग्नि में जलकर मरने की मिथ्या अफवाह फैलाना उदयन को रत्नावली की प्राप्ति में अत्यन्त सहायक होने से प्रासंगिक कथावस्तु है। प्रासंगिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है- पताका एवं प्रकरी।

पताकास्थानक - प्रसङ्ग प्राप्त कथा प्रकरण में भावी घटना की सूचना जिसके द्वारा मिलती है, उसे 'पताकास्थानक' कहते हैं। पताका सदृश होने से इसे पताकास्थानक कहते हैं। यह 'तुल्य इतिवृत्त' और 'तुल्य विशेषण' भेद से दो प्रकार की होती है।⁴ रत्नावली नाटिका में -

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति।।⁴

प्रस्तुत श्लोक में इस उक्ति के द्वारा सूर्य और कमलिनी के वृत्तान्त से महाराज उदयन और सागरिका (रत्नावली) के भावी मिलन की सूचना दी गई है। उक्त पद्य में समान इतिवृत्त रूप अन्योक्ति (अप्रस्तुत प्रशंसा) तरीके का 'पताकास्थानक' है।

अर्थप्रकृति, कार्यावस्था एवं सन्धि-योजना

पुरुषार्थ साधक इतिवृत्त की पाँच अर्थप्रकृतियाँ (बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य) तथा पाँच अवस्थाएँ (आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम) होती हैं। अर्थप्रकृतियों का सम्बन्ध कथावस्तु के उपादानमूलक कारणों से है और अवस्था का सम्बन्ध प्रधानतया नायिकादि पात्रों की मानसिक दशा एवं कथा के विकास-क्रम से। अवस्थामूलक भेद का विकास मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है और उपायमूलक अर्थप्रकृति के भेदों का इतिवृत्त की शारीरिक रचना पर। अतः नाट्य के शरीर रूप इतिवृत्त के लिए उपायमूलक एवं अवस्थामूलक भेदों के समन्वय से भरत ने पाँच नाट्य-संधियों (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण) की कल्पना की है।⁵

बीज- कार्य अथवा फल को सिद्ध करने वाले अनेक रूप में पल्लवित उस प्रकृति उपाय को बीज कहते हैं, जो अल्प शब्दों में कहा जाता है। 'रत्नावली नाटिका' में उदयन को रत्नावली प्राप्ति का हेतुभूत भाग्य की अनुकूलता से युक्त यौगन्धरायण का प्रयत्न रूप व्यापार ही बीज रूप से विष्कम्भक में उपन्यस्त है। यौगन्धरायण के कथन - “**कः संदेहः- द्वीपादन्यस्मात्...**”⁶ से आरम्भ कर **प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ**”⁷ - इस कथन तक बीज का निर्देशन किया गया है। 'प्रियदर्शिका नाटिका' की प्रस्तावना में कञ्चुकी का यह कहना... शदेवस्य -द्वर्माण...स्वदुहिता वत्सराजाय दत्ताश्रौ प्रथमअंक में विजयसेन द्वारा प्रियदर्शिका को राजा के लिए सौंपना 'तदुहिता इत्यस्माभिरानीता' बीज तत्त्व को व्यक्त करते हैं।

आरम्भ- महान् फल की प्राप्ति के लिए हृदय में उत्सुकता ही आरम्भ अवस्था है। रत्नावली नाटिका में- प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे। इत्यादिना सचिवायत्तसिद्धेर्वत्सराजस्य कार्यारम्भो यौगन्धरायणमुखेन दर्शितः।⁸ राजा उदयन के चक्रवर्ती पद की प्राप्ति के लिए प्रारम्भ किये गये तथा भाग्य के द्वारा सहारा दिये गए इस कार्य का औत्सुक्य रूप आरंभ मंत्री यौगन्धरायण के मुख से दिखाया गया है। प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन द्वारा प्रियदर्शिका को प्राप्त करने की संभावना एवं उसे प्राप्त करने की अभिलाषा आरम्भ है। उदयन का यह कथन -**यदा वरयोग्या भविष्यति तदा मां स्मारय**⁹ यह आरंभ की अवस्था है।

मुख सन्धि - बीज नामक अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था के संयोग से मुख संधि की रचना होती है। जिसमें नाना रसों को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पाई जाती है। रत्नावली नाटिका में प्रथम अंक में यौगन्धरायण के एवमेतत् से लेकर द्वितीय अंक में सागरिका के द्वारा चित्र बनाकर राजा के दर्शन तक मुख संधि है। प्रियदर्शिका में प्रथम अंक में दृढवर्मा के कंचुकी के स्वागत कथन रूप संवाद से प्रारंभ करके प्रथम अंक के अन्त तक का भाग मुख संधि के अंतर्गत रखा जा सकता है।

बिन्दु - प्रधान कथा के साथ सम्बंध न टूटने देने वाली वस्तु ही बिन्दु है। बिन्दु नाटक में उसी प्रकार फैला दिखाई पड़ता है जिस प्रकार पानी के ऊपर तेल।¹⁰ 'रत्नावली' नाटिका के प्रथम अंक में 'उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते' से लेकर कथमेष सउदयननरेन्द्रो यस्याहं तातेन दत्ता¹¹ तक का भाग सागरिका के हृदय में उत्सुकता उत्पन्न कर अवांतर कथा-प्रसङ्ग को मूल कथा से जोड़ने में सहायक है, अतः यह बिन्दु है। 'प्रियदर्शिका' नाटिका में नायिका प्रियदर्शिका के अन्तःपुर में प्रवेश के पश्चात् नायिका प्राप्ति के लक्ष्य में अवरोध दिखाई देता है। अचानक पुष्पचयन के लिए नायिका का धारागृह में प्रवेश वहीं नायक का भी पटुमहिषी वासवदत्ता से मिलने आना फलतः भ्रमर-रक्षा के बहाने नायक-नायिका का मिलन। यह सम्पूर्ण घटनाक्रम बिन्दु नामक तत्त्व है।¹²

प्रयत्न - फल प्राप्ति के लिए -दृढप्रतिज्ञ नायक का लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होना 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था है। 'प्रियदर्शिका' में राजा का विदूषक को अपने पूर्व समागम-स्थल पर भेजना राजा का नायिका (प्रियदर्शिका) प्राप्ति के प्रति प्रयत्न है। “तदयं समागमोपायः” द्वितीय अंक में राजा द्वारा झाड़ियों में छिपकर आरण्यका को देखना, उसे भौरों से बचाने के लिए जाना, मिलन हेतु अभिनय की योजना बनाना यत्न है। 'रत्नावली' में वत्सराज उदयन से मिलन का उपाय सागरिका का चित्र-निर्माण रूप चेष्टा प्रयत्न है। 'तथापि नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथा तथाऽऽलिख्य यथा समीहितं करिष्यामि।’

प्रतिमुख सन्धि - 'रत्नावली' के द्वितीय अंक में तथा 'प्रियदर्शिका' में बिन्दु नामक अर्थप्रकृति एवं यत्न नामक अवस्था के संयोग से यहाँ प्रतिमुख नामक संधि है।

पताका :- जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चलती है उस प्रासंगिक कथावस्तु को पताका कहते हैं।¹³ 'प्रियदर्शिका' नाटिका में महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका है, यह नायक को नायिकारूपी फल प्राप्ति में सहायक है। 'रत्नावली' में भी महारानी वासवदत्ता का वृत्तान्त पताका है।

प्राप्त्याशा :- उपाय एवं विघ्नों की संघर्षपूर्ण स्थिति के कारण जहाँ प्राप्ति की संशयास्पद स्थिति रहती है वहाँ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था पाई जाती है। रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक में सागरिका के द्वारा वेष परिवर्तन द्वारा राजा उदयन और सागरिका के मिलन का उपाय प्राप्त्याशा है, उक्त उपायों से सम्भाव्य मिलन में वासवदत्ता रूपी विघ्न की आशंका से निश्चय नहीं होता। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में समागम का उपाय होने पर उदयन को आरण्यका की प्राप्ति की आशा तो है परन्तु इसमें विघ्नों की संभावना है। 'एषा मम प्रियसखी देव्या महाराजस्य दर्शनपथादपि रक्ष्यते।'।

गर्भ संधि : इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति कहीं होती है, कहीं नहीं भी होती है। परन्तु प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था अवश्य होती है। गर्भ संधि के बारह अंग हैं।¹⁴ इस संधि में विघ्न होने से बीज कभी छिप जाता है। कभी प्रकट हो जाता है इसलिए बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाता है। 'रत्नावली' एवं 'प्रियदर्शिका' नाटिकाओं के तृतीय अंक में वासवदत्ता के आगमन से उदयन को नायिका-प्राप्ति रूप आशा का विच्छेद हो जाता है। विघ्न निवारण के लिए वासवदत्ता की प्रसन्नता रूप उपाय का अन्वेषण किए जाने से यहाँ गर्भ संधि है।

प्रकरी :- यह आनुषंगिक कथा है। कथा के किसी सीमित प्रदेश में ही इसका उपयोग रहता है।¹⁵ प्रियदर्शिका में विन्ध्यकेतु पर विजयसेन का आक्रमण, इन्दीवरिका और मनोरमा का वृत्तान्त, सांस्कृत्यायनी द्वारा नाटक का निबन्धन, अंगारवती द्वारा वासवदत्ता के पास पत्र भेजना, कलिंगराज की युद्ध में पराजय का वृत्तान्त आदि घटनाएँ प्रकरी कथा कही जा सकती हैं।

नियताप्ति :- विघ्नों के अभाव के कारण फल प्राप्ति का निश्चय हो जाना नियताप्ति है। रत्नावली नाटिका में राजा- वयस्य! देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि। इत्यादि द्वारा देवी वासवदत्ता प्रसादनरूप उपाय से विघ्ननिवारण हो जाने से फल प्राप्ति (सागरिका) का निर्णय हो जाता है। यही नियताप्ति है।¹⁶ प्रियदर्शिका नाटिका के चतुर्थ अंक में वासवदत्ता का यह कथन-५ भगवति ! तर्कयामि यथा परितोषितास्मार्यपुत्रेणश्वविदूषक का कथन- 'गुरुपूजा, ब्राह्मणस्य सत्कारः सर्वबन्धनमोक्ष इति।' वासवदत्ता द्वारा प्रियदर्शिका को पहचान लेना ये सब घटनाएँ विघ्नों को दूर कर फल प्राप्ति को सुनिश्चित करती हैं। अतः यहाँ नियताप्ति है।

अवमर्श/विमर्श संधि - प्रकरी नामक अर्थप्रकृति तथा नियताप्ति नामक कार्यावस्था के संयोग से अवमर्श नामक संधि होती है। प्रियदर्शिका एवं रत्नावली के चतुर्थ अंक में निर्विघ्नतापूर्वक फल सिद्धि के निश्चय स्वरूप यहाँ उक्त संयोग से अवमर्श संधि है।

कार्य : जिसके निमित्त कार्यारम्भ होता है और जिसकी समाप्ति पर नायक का कार्य व्यापार हो जाता है। वह कार्य अर्थप्रकृति है।¹⁷ प्रियदर्शिकानाटिका के चतुर्थ अंक में राजा उदयन के द्वारा प्रियदर्शिका को प्राप्त करना कार्य है। रत्नावली नाटिका में सागरिका और उदयन के विवाह के पश्चात् कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

फलागम :- समस्त फल की प्राप्ति को फलयोग अथवा फलागम कहते हैं। रत्नावली नाटिका में उदयन को नायिका रत्नावली की प्राप्ति एवं चक्रवर्ती पद की प्राप्ति फलागम है। इसी प्रकार प्रियदर्शिका के चतुर्थ अंक में "वासवदत्ता आरण्यकाहस्तमपैयति।" वासवदत्ता द्वारा उदयन के हाथ में प्रियदर्शिका का अर्पित किया जाना फलागम की अवस्था है।

निर्वहण संधि :- कार्य और फलागम के संयोग से निर्वहण संधि होती है। चतुर्थ अंक में उदयन ने प्रियदर्शिका रूप फल को प्राप्त किया है। अतः यहाँ निर्वहण संधि है।

अर्थोपक्षेपक : प्रयोग की दृष्टि से नीरस और अनुचित कथांश को अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से प्रस्तुत करने पर कथा में शुद्धिलाबद्धता आती है। सूच्य वस्तु को पाँच अर्थोपक्षेपकों विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य तथा अंकावतार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

प्रवेशक : प्रियदर्शिका नाटिका में प्रवेशक मनोरमा नामक चेटी द्वारा प्रायोजित हुआ है जो नीच पात्र है उसके द्वारा द्वितीय एवं तृतीय अंक के मध्य की घटना का परिचय मिलता है कि उदयन के प्रति आरण्यका के हृदय में गहन अनुराग उत्पन्न हो गया है वह निरन्तर उदयन का ध्यान करती है। इससे भावी घटना का संकेत भी मिलता है कि आरण्यका का प्रणय व्यापार गुप्त नहीं रह सकेगा।

चूलिका : नेपथ्य में स्थित सूत आदि निम्न कोटि के पात्रों के द्वारा किसी अर्थ की सूचना देना चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है। चूलिका नेपथ्योक्ति है। चूलिका का प्रयोग अंक के मध्य में होता है। प्रियदर्शिका में कूचुकी की नेपथ्योक्ति कि जिस प्रकार राजा दण्डनीति का पालन करता हुआ अपने नगरों की व्यवस्था को बनाये रखता है उसी प्रकार वृद्धावस्था में सहारा ले के दण्ड को धारण करता हुआ राजा के अन्तःपुर की व्यवस्था करता है। यह चूलिका का उदाहरण है रत्नावली में नेपथ्य से पुरुष पात्र यौगन्धरायण के द्वारा उदयन के आगमन अर्थ को सूचित करने से करना चूलिका है।

अंकास्य : पूर्व अंक के अन्त में आने वाले पात्रों के द्वारा असम्बद्ध अग्रिम अंक अर्थ की सूचना देने के कारण अंकास्य कहा जाता है। प्रियदर्शिका के प्रथम अंक के अन्त में वैतालिक राजा (उदयन) के स्नान करने का समय हो गया है इस माध्यम से द्वितीय अंक के आरम्भ की सूचना देता है। रत्नावली में प्रथम अंक के अन्त में राजा उदयन का कथन 'हे देवि ! अब दिन समाप्त हो गया है इसलिए उठो! हम सभी राजभवन के अंदर चलें' से द्वितीय अंक के आरम्भ की सूचना मिलने से तथा द्वितीय अंक के अन्त में देवी वासवदत्ता के नाराज होने पर राजा कहते हैं कि देवी को प्रसन्न करने के लिए हम सब चलें। इस प्रकार सभी निकल जाते हैं और तृतीय अंक का आरंभ होता है। तदेहि! देवीमेव प्रसादयितुं गच्छावः। अतः यहाँ अंकास्य की योजना द्रष्टव्य है।

अंकावतार : जहाँ किसी अंक की समाप्ति होने पर अगले अंक का अविच्छिन्न कथाप्रवाह के साथ अवतरण अंकावतार कहा जाता है। रत्नावली के द्वितीय अंक में इस प्रकार के कन्यारत्न की तो ऐसे ही वरदान के रूप में अभिलाषा होनी चाहिए यहाँ प्रथम अंक की कथा का विच्छेद हुए बिना ही द्वितीय अंक अवतरित होता है। अतः यहाँ अंकावतार नामक अर्थोपक्षेपक है।

नाट्यधर्म- नाट्यधर्म या नाटक की प्रकृति के अनुसार कथावस्तु तीन प्रकार की होती है- 1. सर्वश्राव्य, 2. नियतश्राव्य तथा 3. अश्राव्य। सर्वश्राव्य वस्तु को प्रकाश एवं अश्राव्य को स्वगत या आत्मगत कहते हैं। इसी का ही एक अवान्तर रूप आकाशभाषित भी है। नियतश्राव्य के दो भेद हैं-अपवारित तथा जनान्तिक।¹⁸

प्रकाश - प्रियदर्शिका में आरण्यका का यह कथन सखी के प्रति पक्षपात करने वाली है सखी! देवी के गुणरूपी जंजीर में बंधे हुये उस व्यक्ति के लिए निश्चय से यह बात कैसे हो सकती है? सर्वश्राव्य होने के कारण प्रकाश है।

स्वगतम् : स्वगत¹⁹ को आत्मगत वचन भी कहते हैं। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में राजा द्वारा मन में कहे गये "कथं प्रत्यभिज्ञातोऽस्मि देव्या।" तथा रत्नावली में सागरिका - 'कथमार्यपुत्रः। तदेतं प्रेक्ष्य पुनरपि मे जीविताभिलाषः संवृतः।' इत्यादि स्वगत कथनों द्वारा यहाँ स्वगत (अश्राव्य) की योजना है।

आकाशभाषित- रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक का प्रारम्भ - कौशाम्बिके कौशाम्बिके अपि दृष्ट्वा त्वया भर्तुः सकाशे काञ्चलमाला न वा । मदनिका उक्त के आकाशभाषित संवाद से हुआ है

अपवारित : किसी पात्र के द्वारा मुख फेरकर अन्य व्यक्ति से गुप्त वार्ता रूप संवाद अपवारित कहा जाता है। रत्नावली के तृतीय अङ्क में वासवदत्ता मुँह फेरकर - काञ्चनमाले अहमीदृशी कटुभाषिणी । आर्यवसन्तकः पुनः प्रियंवदः । यहाँ अपवारित की योजना है ।

समीक्ष्य नाटिकाओं में पात्र-विधान- नाटकीय कथावस्तु को फलागम तक तथा सभी सामाजिकों को रसदशा तक ले जाने वाले को नेता कहा जाता है। नाट्यसिद्धान्त के अनुसार नायक विनीत, मधुर, त्यागी आदि सर्वगुणसम्पन्न होना चाहिए । नायक के चार प्रकार कहे गए हैं - धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरोद्धत एवं धीरललित ।²⁰ नायक अपने सभी सहायक पात्रों की सहायता से उक्त कार्य करता है ।

नाटिका शृङ्गारप्रधान नाट्य है । इसका नायक संगीतादि कला एवं शृङ्गार रस में आसक्त होने के कारण धीरललित होता है । रत्नावली एवं प्रियदर्शिका दोनों नाटिकाओं का नायक उदयन धीरललित कोटि का है । नायक के सहायक पात्रों के रूप में रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण पताकानायक होने से पीठमर्द है । सेनापति विजयवर्मा एवं कञ्चुकी विट तथा वसन्तक विदूषकके रूप में नायक के सहायक हैं । प्रियदर्शिका नाटिका में विजयसेन उपनायक, रुमण्वान एवं विनयवसु विट तथा कञ्चुकी नायक के सहायक हैं ।

रत्नावली नाटिका में सागरिका एवं प्रियदर्शिका नाटिका में प्रियदर्शिका मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित हैं । दोनों नायिकाएँ अनिन्द्य सौन्दर्य सम्पन्न एवं आदर्श नायिका हैं । दोनों नाटिकाओं में कनिष्ठ नायिकाएँ सागरिका एवं प्रियदर्शिका ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता के अधीन होने से परकीयाँ²¹ नायिकाएँ हैं ।

समीक्ष्य नाटिकाओं में रस-विधान : संस्कृत नाटिकाओं में अंगीरस शृङ्गाररस ही शास्त्रसम्मत है । नाटिका में अन्य रसों की स्थिति गौण रूप में विद्यमान रहती है ।

संयोग शृङ्गार : शृङ्गार रस प्रधान प्रियदर्शिकानाटिका में संयोग शृङ्गार का सन्निवेश उचित ढंग से हुआ है । जब नायक उदयन दुष्ट भ्रमरों से पीड़ित आरण्यका को आलिंगन में लेकर अपने उत्तरीय से भ्रमरों को हटाता है, तो उसकी शृङ्गारिक उक्तियाँ शृङ्गार की सृष्टि करती हैं ।

अयि विसृज विषादं भीरु भृङ्गास्तवैते, परिमलरसलुब्धा वक्रपद्मे पतन्ति ।

विकिरसि यदि भूयस्त्रासलीलायताक्षी, कुवलयवनलक्ष्मी तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति । (प्रि.द. 2/8)

प्रियदर्शिका एवं राजा उदयन का प्रथम परिचय संयोग शृङ्गार के रूप में प्रस्फुटित होता है । नायिका प्रियदर्शिका पुष्प चयनार्थ धारागृह में प्रवेश करती है । उसके अद्वितीय रूप को देखकर राजा में रति भावोद्रेक होता है-**आबद्धमुखमपीदं कण्टकितं कमलकाननं तस्याः । सुकुमारपाणिपल्लवसंस्पर्शसुखं कथयतीव ।।**

(प्रियदर्शिका, 2/9) रत्नावली नाटिका में भी शृङ्गार रस की प्रधानता है । द्वितीय अंक में सागरिका के प्रति राजा उदयन का कहना है कि “यह सागरिका लक्ष्मी है और इसका हाथ कल्पवृक्ष का किसलय है” शृङ्गार रस की पुष्टि करता है- **श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः । कुतोऽन्यथा स्त्रवत्येष स्वेदच्छद्मधामृतद्रवः ।।**

(रत्नावली 2/18) द्वितीय अंक में राजा उदयन सागरिका के गुणों में मुग्ध होकर कहते हैं कि तीनों लोकों के अलंकार स्वरूप रमणी को बनाकर ब्रह्मा ने निश्चय ही मेरे प्रति उपकार किया है- **दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष-श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम् । शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा, विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ।।** (रत्नावली 2/16)

विप्रलम्भ शृङ्गार : प्रियदर्शिका नाटिका में इन्दीवरिका के साथ आरण्यका को जाते देखकर उदयन को चारों ओर अन्धकार ही प्रतीत है। आरण्यका के प्रति अनुराग के कारण वह राजकार्यों का भी परित्याग करके उसको देखने के ही उपाय करता है। तापशान्ति के लिए वह उन्हीं कमलिनी के पत्तों को मंगाता है, जो कि आरण्यका के स्पर्श से शीतल हो गए थे। ‘तत्ततोऽपितावदीर्घिकातस्तस्याः करतलस्पर्शदिगुणितसुखशीतलानि नलिनीपत्राणि गृहीत्वागच्छ इति ।’ यह विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यंजक है।

रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक में वासवदत्ता द्वारा सागरिका और विदूषक को बन्दी बना लिए जाने पर अपने जीवन से निराश सागरिका के वियोग से राजा उदयन अत्यन्त दुखित हो उठता है। द्वितीय अंक में ही सागरिका अपने हृदय से कहती है कि जिस नायक उदयन को देखने से तुम्हारा सन्ताप घटने की अपेक्षा बढ़ता ही जाता है, उसे ही बारम्बार देखने की अभिलाषा तुम्हें क्यों हो रही है -येनदृष्टेन तव ईदृशः संतापो ननुवर्धते तमेव पुनरपि प्रेक्षितुमभिलाषसीतयहो ते मूढता। यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार की योजना की गई है तथा शृङ्गाररस होने से यहाँ कैशिकी वृत्ति की प्रधानता है। प्रियदर्शिका के प्रथम अंक में विन्ध्यकेतु का आक्रमण होने पर कोलाहल (भागदौड़) का वर्णन है, अतः वहाँ आरम्भटी वृत्ति है।

निष्कर्षतः : हर्ष प्रणीत रत्नावली एवं प्रियदर्शिका नाटिकाओं में नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों वस्तु, नेता एवं रस का संयोजन-वैशिष्ट्य दृष्टिगत हुआ है। अनेक नाट्याचार्यों द्वारा भी अपने-अपने लक्षण ग्रंथों में प्रस्तुत नाटिकाओं के उद्धरण समीक्षा के साथ प्रस्तुत किए गए हैं, जो नाटककार हर्ष के नाट्य-रचना कौशल के अभिव्यञ्जक हैं।

संदर्भ -

1. इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्पयते । आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम् ।। साहित्यदर्पण, 6/42
2. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः । तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।। दशरूपक, 1/12
3. प्रासंगिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः । वही, 1/13
4. प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम् । पताकास्थानकं तुल्यसंविधानविशेषणम् ।। दशरूपक, 1/14
5. रत्नावली, 3/6
6. भरत और भारतीय नाट्यकला सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृष्ठ 160
7. रत्नावली, 1/6
8. वही, 1/7
9. धनिक, दशरूपक वृत्ति, 1/20
10. प्रियदर्शिका, प्रथम अंक, पृष्ठ 23
11. धनंजय, दशरूपक, 1/17
12. रत्नावली, 1/23
13. प्रियदर्शिका, पृ. 34
14. यद्वृत्तं हि परार्थं स्यात्प्रधानस्योपकारकम् । प्रधानवच्च कल्पेत पताका साभिधीयते ।। नाट्यलक्षणरत्नकोश, पृष्ठ 2
15. अभूताहरणं मार्गो रूपोदाहरणे क्रमः । संग्रहश्चानुमानं च तोटकाधिबले तथा उद्वेगसंभ्रमाक्षेपा लक्षण चप्रणीयते । धनंजय, दशरूपक, 1/37-38

16. फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थं केवलं बुधैः । अनुबन्धविहीनां तां प्रकरीमिति निर्दिशेत् ।। नाट्यलक्षणरत्नकोश,
भाग-3, पृष्ठ 21
17. दशरूपक वृत्ति, 1/21
18. यदर्थे काव्यस्यारम्भः सिद्धे यस्मिन् समापनम् । आनुषंगिकसम्पन्नं तत्कार्यमिति कथ्यते ।। नाट्यलक्षणरत्नकोश,
कारिका, 27
19. दशरूपक, 1/57-58
20. वही, 1/64-65
21. स्यादश्चाव्यं स्वगतं मतम् । वही, 1/64
22. रहस्यकथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् । वही, 1/66
23. वही, 2/3
24. वही, 2/20

हर्ष के नाटकों में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का गहरा प्रभाव देखा जाता है। हर्ष ने करुण, वीर, शृङ्गार, और हास्य रसों का गहन चित्रण किया है। भाव और अभिनय की दृष्टि से देखें तो उनके नाटकों में स्थायी, सञ्चारी, और सात्विक भावों का सजीव प्रदर्शन हुआ है। सम्वाद और वक्रोक्ति के प्रयोग में सम्वादों में हर्ष ने सरलता और गहराई के साथ-साथ वक्रोक्ति का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

रस का प्रयोग - नाट्यशास्त्र के अनुसार, रस नाटक की आत्मा है। कहा भी गया है- नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते यह भावनाओं के माध्यम से दर्शकों को आनन्दित करने का माध्यम है। हर्ष के नाटकों में विभिन्न रसों का प्रभावशाली उपयोग देखा जाता है। हर्ष ने प्रेम के विभिन्न पक्षों यथा संयोग, वियोग, और पुनर्मिलन का सुन्दर चित्रण किया है। रत्नावली में राजा उदयन और रत्नावली के प्रेम प्रसङ्गों में शृङ्गार रस स्पष्ट रूप से झलकता है। नागानन्द में जीमूतवाहन के त्याग और बलिदान के प्रसङ्ग में भी करुण रस को सजीव करते हैं। इस नाटक में हास्य का संयोजन दरबार के विभिन्न सम्वादों और घटनाओं के माध्यम से हुआ है।

भाव का चित्रण- भाव, रस की उत्पत्ति का माध्यम है। भाव का लक्षण करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि-

नानाभिनयसम्बन्धान् भावयन्ति रसान् यतः। तस्माद्भावा अमी प्रोक्ताः स्थायिसंचारिसात्विकाः।¹

हर्ष के नाटकों में मुख्य भावों का उत्कृष्ट प्रयोग मिलता है। प्रियदर्शिका और रत्नावली में प्रेमभाव का प्रमुखता से चित्रण है। नागानन्द में जीमूतवाहन के चरित्र में करुणा का भाव सर्वोपरि है। हास्य भाव का उपयोग रत्नावली में चरित्रों की चपलता और संवादों में प्रायः दृष्टिगत होता है।

नाट्य प्रयोग और अभिनय - भरतमुनि के अनुसार, नाट्य प्रयोग चार प्रकार के होते हैं। आङ्गिक, वाचिक, आहार्य, और सात्विक।

आङ्गिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्विकस्तथा। चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः।²

हर्ष के नाटक इन सभी का प्रभावी प्रदर्शन करते हैं। आङ्गिक अभिनय के अन्तर्गत नायक और नायिका के भाव-भंगिमा और मुद्राओं का वर्णन विशेष रूप से प्रियदर्शिका में प्रभावशाली है। वाचिक अभिनय के अन्तर्गत संवादों की प्रासंगिकता और गहराई नागानन्द में अद्भुत है। जैसे, जीमूतवाहन के आत्मत्याग के सम्वाद। आहार्य अभिनय के अनुसार रत्नावली में दरबारी जीवन और पात्रों की वेशभूषा का वर्णन आहार्य अभिनय के प्रभाव को दर्शाता है। सात्विक अभिनय की दृष्टि से करुणा और त्याग के दृश्य, जैसे नागानन्द में

नागराज की रक्षा के लिए जीमूतवाहन का बलिदान, सात्त्विक अभिनय का सर्वोत्तम उदाहरण है। अलंकार और काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से हर्ष के नाटक अलंकारों और काव्यात्मक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। इनमें रूपक, उपमा, और अनुप्रास जैसे अलंकारों का प्रभावी उपयोग हुआ है। इसी प्रकार नाट्य शिल्प और संरचना के दृष्टिकोण से नाट्यशास्त्र में वर्णित नाटक की संरचना (अंक, प्रवेश, और सन्धियाँ) का पालन हर्ष ने अपने नाटकों में कुशलता से किया है। नागानन्द में पाँच अङ्कों की पारम्परिक संरचना। हर नाटक में प्रारम्भिक मङ्गलाचरण, सन्धियों का क्रम, और समापन आदि का समुचित सन्निवेश हर्ष की नाट्यशास्त्रीय कुशलता का प्रमाण है। एवम्प्रकारेण हर्ष के नाटकों की विशेषताएँ हैं नागानन्द में बौद्ध धर्म के मूल्यों और आदर्शों का प्रचार। रत्नावली और प्रियदर्शिका में राजदरबार का जीवन और प्रेम प्रसंग। सरल और रोचक कथानक, जो सभी वर्गों के लिए रुचिकर है। सारतया हर्ष के नाटक भारतीय नाट्य परम्परा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों का कुशलता से पालन करते हुए अपने नाटकों में रस, भाव, और नाट्य प्रयोगों का उत्कृष्ट प्रयोग प्रदर्शन किया। नागानन्द में करुणा और धर्म, प्रियदर्शिका में प्रेम और वियोग, और रत्नावली में हास्य और शृङ्गार का सजीव चित्रण, उनकी नाट्य प्रतिभा और साहित्यिक कौशल का निरभ्र प्रमाण है। हर्ष के नाटक आज भी न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ में भी प्रासङ्गिक हैं।

स्वानुशीलन- उपरोक्त नाट्य के चार प्रमुख तत्त्वों का महाकवि हर्ष ने किस प्रकार निपुणता से अपने नाटकत्रय में संयोजन किया है उसका समीक्षण कतिपय उदाहरणों के माध्यम से यहाँ विश्लेषित करने का यत्न कर रहा हूँ। नाट्य के चार प्रमुख तत्त्वों में रस का अत्यन्त मूर्धन्य स्थान है। प्रकरणतया रसों का प्रयोग विश्लेषण किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत शृङ्गार रस के उदाहरण रूप में रत्नावली में राजा उदयन और रत्नावली के बीच प्रेम प्रसंग है। जब रत्नावली अपनी पहचान छुपाते हुए राजा उदयन से मिलती है, तो सम्वादों में सङ्कोच, आकर्षण और प्रेम का सुन्दर मिश्रण मिलता है। “सखे! दैवेन दत्तं मणिमेव काञ्चन्याः, अपहृतं यथा रत्नं तथैव मानसं मम।”³ अर्थात् मेरे मन का रत्न तो अपहृत हो गया है, जैसे स्वर्ण में मणि को जड़ा जाता है। अन्तःपुर के गुप्त प्रणय चित्र का चित्रण करने में हर्ष कालिदास से भी श्रागे बढ़ गये हैं तथापि हर्ष प्रणय लीला के गम्भीर पक्ष का चित्रण करने में सफल नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि सागरिका के प्रति राजा की कामुक चेष्टाओं से कुपित होकर वासवदत्ता के चले जाने पर उदयन भयभीत होकर विदूषक की भर्त्सना करता हुआ कहता है कि- कभी इससे पहले न किये जाने वाले मेरे इस अपराध को देखकर, मेरे अपराध को न सहन करने वाली प्रिया वासवदत्ता आज निःसन्देह अपने प्राणों का परित्याग कर देगी क्योंकि उत्कृष्ट प्रेम, अन्य के साथ प्रेम सम्बन्धी अपराध को सहन नहीं कर पाता है इसी भाव को व्यक्त करते हुए हर्ष ने निम्न प्रकार से उदयन की करुणा व्यक्त की है-

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं, व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया।

प्रिया मुञ्चन्त्यद्य स्फुटमहसना जीवितमसौ, प्रकृष्टस्य प्रेम्णः खलितमविसह्यं हि भवति।।⁴

इसी प्रकार नागानन्द में करुण रस का नितान्त सुन्दर उदाहरण जीमूतवाहन का आत्मत्याग रूप है जब नागराज को बचाने के लिए जीमूतवाहन स्वेच्छा से गरुड़ के सामने अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए प्रस्तुत होता है। “अस्मिन् देहे मम जीवितस्य मूल्यं नगण्यं, यदि सर्पजनं त्रातुं शक्नोमि।”⁵ अर्थात् मेरे जीवन का मूल्य कुछ नहीं है, यदि मैं सर्प समुदाय को बचा सकूँ। इसी प्रकार हास्य के वर्णन में रत्नावली में हास्य रस का एक और अतीव सुन्दर उदाहरण आता है। जिसमें रत्नावली के साथ राजदरबार में हास्यपूर्ण संवाद विशेष रूप से, रत्नावली की सेविका और विदूषक के बीच विनोदपूर्ण सम्वाद। यथा द्वितीय अङ्क में विदूषक सारिका

को उलाहना देते हुए कहता है कि- “**भो वयस्य एषा खलु सारिका दास्या दुहिता चतुर्वेदी ब्राह्मण इव ऋचः पठितुं प्रवृत्ता ।।**”⁹ भाव का चित्रण: भाव प्रतिपादन के सन्दर्भ में हर्ष के नाटकों में नाट्यानुकूल भावों का परिपाक अत्यन्त श्लाघनीय व रमणीय है। भाव से तात्पर्य यहाँ रसानुगुणित स्थायिभावों से है। इस क्रम में सर्वप्रथम प्रियदर्शिका में रति भाव का निरूपण करते हुए नायिका मालविका का राजा से वियोग और पुनर्मिलन का संयोग और वियोग दोनों भावों का अत्यन्त मनोहर चित्रण मालविका के द्वारा- “हे नाथ! किमर्थं मम हृदयमधुना स्पन्दति यथाकृतं? अर्थात् हे स्वामी! क्यों मेरा हृदय इस प्रकार स्पन्दित हो रहा है? रति भाव का मनोहारि निगुम्फन रत्नावली में वर्णित करते हुए कवि उदयनमुख से कहता है-

कृच्छ्रादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले, मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निस्पन्दतामागता ।

मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरासृज्य तुङ्गौ स्तनौ, साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।।⁷

अर्थात् मित्र देखो ये रत्नावली नेत्रों को सुख दे रही है इसमें कहना ही क्या? देखो - अत्यन्त कठिनता से जघन स्थल को लॉधकर नितम्बप्रदेश में पर्याप्त भ्रमण करके त्रिवली की तरंगों के ऊँचे नीचे मध्यभाग में निश्चल होकर मेरी दृष्टि अब प्यासे के समान ऊँचे-ऊँचे स्तनों पर धीरे-धीरे चढ़कर इसके अश्रुबिन्दुओं को टपकाने वाले नेत्रों को चाह से देख रही है। एतदनन्तर नागानन्द में जीमूतवाहन की मृत्यु पर परिवार और नागराज के विलाप का दृश्य। शोक भाव का अतिरेक द्योतित करता है। यथा-

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः? क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह विरता दानपरता ।

हतं सत्यं सत्यं व्रजतु कृपणा क्वाद्य करुणा? जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय लोकान्तरगते ।।⁸

यह शोक स्थायी भाव का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार से नागानन्द में गरुड़ से सामना करने के लिए जीमूतवाहन का साहस उत्साह भाव का उदाहरण है।

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्त-मद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन्! ।।⁹

नाट्य प्रयोग: हर्ष के तीनों नाटकों में अभिनय और नाट्य शैली का भी विलक्षण व सुष्ठु परिपाक परिलक्षित होता है। किसी भी नाटककार के लिये विषयवस्तु के अनुकूल पात्र योजना, संवाद, भाषाशैली व पात्रों का चरित्र चित्रण आदि तत्त्वों का विन्यास अत्यन्त महत्त्व रखता है। रस भाव के अनन्तर प्रमुख नाट्यतत्त्व होता है अभिनयय हर्ष के नाट्यत्रयी में भी अभिनय का विन्यास सुतरां दर्शनीय है। सर्वप्रथम आङ्गिक अभिनय जिसमें शारीरिक मुद्राओं का सञ्चालन होता है इसका उदाहरण देखें तो प्रियदर्शिका में नायिका का प्रेम में शारीरिक झिझक और नायक की मुद्राएँ। आङ्गिक अभिनय का उदाहरण है। एवमेव नागानन्द के चतुर्थाङ्क में जीमूतवाहन के आत्मत्याग के समय उनकी उठी हुई भुजाएँ और गरुड़ के प्रति स्थिर मुद्रा तथा वध्यशिला पर आरोहण का अभिनय आङ्गिक अभिनय का उदाहरण है। **न तथा सुखयति मन्ये मलयवती मलयचन्दनरसाऽऽर्द्रा । अभिवाञ्छितार्थसिद्धयै वध्यशिलेयं यथाऽऽश्लिष्टा ।।**¹⁰

प्रियदर्शिका में भी तृतीयाङ्क में कञ्चुकी वर्णन करता है और आङ्गिक अभिनय का प्रतिपादन करते हुए कहता है -

पादैर्नूपुरिभिर्नितम्बफलकैः शिञ्जनकाञ्चीगुणै - हारपादितकान्तिभिः स्तनतटैः केयूरिभिर्बाहुभिः ।

कर्णैः कुण्डलिभिः करैः सवलयैः सस्वस्तिकैर्मूर्धजै - देवीनां परिचारिकापरिजनोऽप्येतेषु सन्दृश्यते ।।¹¹

इसी प्रकार वाचिक अभिनय अर्थात् संवाद और ध्वनिरूप अभिनय का उदाहरण रत्नावली में

रत्नावली और राजा उदयन के संवाद, जिनमें वाणी की चपलता और काव्यात्मकता है। राजा उदयन का एक प्रसिद्ध संवाद है- “रत्नानां खलु संभारः कदाचिदेव दृश्यते।” अर्थात् रत्नों का ऐसा संयोग दुर्लभ ही होता है। आगे प्रियदर्शिका में भी राजा वासवदत्ता के पैरो पर गिरने के पूर्व मन में ही उसके मन्यु का चिन्तन करते हुए कहता है - भ्रूभङ्गं न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धेक्षणे केवलं, नातिप्रस्फुरिताधरानवरतं निःश्वासमेवोज्झसि। वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्याननम्रानना, कोपस्ते स्तिमितो निपीडयति मां गूढप्रहारोपमः।।¹²

सात्त्विक अभिनय के प्रतिपादन में नागानन्द में जीमूतवाहन के त्याग और दृढ़ संकल्प को दर्शाने वाला अभिनय आन्तरिक भावों का निदर्शन कवि नाट्यप्रगल्भता का मनोरम उदाहरण है। “हा धिक् हा धिक्। गुर्वनुरागोत्क्षिप्तहृदयो भर्ताऽसम्बद्धमपि मन्त्रयितुं प्रवृत्तः। तन्न युक्तमतः परमुपेक्षितुम्। भवतु। एवं तावत्। (प्रकाशम्।) सखि। यस्य कृते त्वमागता सोऽयं ते पुरतस्तिष्ठति।।”¹³

उपसंहार - हर्ष के नाटकत्रयी में विभिन्न रसों का अद्वितीय समावेश मिलता है। नागानन्द में करुण और वीर रस की प्रधानता है, जिसमें त्याग, धर्म, और आध्यात्मिकता के गहन सन्देश निहित हैं। इसमें जीमूतवाहन का चरित्र त्याग और परोपकार का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो दर्शकों के हृदयतल को स्पर्श करता है। प्रियदर्शिका में शृङ्गार और हास्य रस के माध्यम से प्रेम और जीवन की जटिलताओं को उकेरा गया है। इस नाटक के पात्रों के बीच संवाद और उनके भावात्मक संघर्ष जीवन के वास्तविक पहलुओं को दर्शाते हैं। वहीं, रत्नावली में हास्य और शृङ्गार रस के अद्भुत संयोजन द्वारा जीवन की सरलता और सौन्दर्य को प्रस्तुत किया गया है। इसमें नायक और नायिका के बीच के हास्य विनोद वाले सम्वाद दर्शकों को आनन्दित करते हैं। हर्ष के नाटकों में सम्वाद, अभिनय, संगीत, और नृत्य के तत्त्व नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुरूप हैं। उनकी रचनाओं में चरित्रों की प्रकृति और घटनाओं का क्रम नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से अत्यन्त सन्तुलित है। नागानन्द में त्रासदी और वीरता के प्रसङ्ग दर्शकों को आत्मनिरीक्षण करने के लिए प्रेरित करते हैं, जबकि रत्नावली में हास्य और सहज सम्वाद मनोरञ्जन का माध्यम बनते हैं। सङ्गीत और नृत्य का भी हर्ष के नाटकों में महत्वपूर्ण स्थान है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, ये तत्त्व नाटक को अधिक जीवन्त और सम्प्रेषणीय बनाते हैं। उनके नाटकों में दृश्य और श्रव्य माध्यमों का ऐसा सन्तुलन मिलता है, जो दर्शकों को मनोरञ्जन के साथ-साथ गहन भावानुभूति भी प्रदान करता है। हर्ष के नाटक केवल मनोरञ्जन तक सीमित नहीं हैं; वे समाज को नैतिकता, धर्म, और सांस्कृतिक मूल्यों का सन्देश भी देते हैं। नागानन्द में त्याग और धर्म का आदर्श प्रस्तुत है, तो प्रियदर्शिका में प्रेम और सहिष्णुता के भाव उभरते हैं। रत्नावली जीवन के सौन्दर्य और सरलता को रेखाङ्कित करती है। हर्ष के नाटकों में भारतीय नाट्य परम्परा और नाट्यशास्त्र के सभी महत्वपूर्ण तत्त्व उत्कृष्ट रूप से समाहित हैं। उनकी नाटकत्रयी रस, भाव, और नाट्य प्रयोगों की दृष्टि से अद्वितीय हैं और भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

सन्दर्भ -

1. साहित्यदर्पणम् 3.181	2. नाट्यशास्त्रम् 6.24	3. रत्नावली पृ. सं. 79
4. रत्नावली 3.15	5. नागानन्दम् चतुर्थाङ्क	6. रत्नावली पृ. सं. 123
7. रत्नावली 2.11	8. नागानन्दम् 5.31	9. नागानन्दम् 5.16
10. नागानन्दम् 4.23	11. प्रियदर्शिका 3.4	12. प्रियदर्शिका 4.3
13. रत्नावली, पृ. सं. 81		

33

श्रीहर्ष के रूपकों में नायिका विमर्श

प्रतिभा आर्या

महाकवि श्री हर्ष द्वारा विरचित प्रसिद्ध तीन रूपकों नागानन्द, प्रियदर्शिका एवं रत्नावली में वर्णित नायिका के गुण, स्वरूप, भेद पूर्वक नायिका विश्लेषण किया जायेगा। रत्नावली नाटिका में उदयन व सागरिका के प्रेम में सागरिका परकीया कन्या नायिका है जिसके विषय में दशरूपक में कहा है –

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्। कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिरसंश्रयम्।¹

दूसरे की स्त्री अर्थात् अपनी न बन पाई नायिका परकीया व अन्य स्त्री कही जाती है, उसके दो भेद होते हैं – परस्त्री एवं कन्या। जिसका अभी विवाह नहीं हुआ है वह कन्या कही जाती है। रत्नावली की सागरिका परकीया कन्या के रूप में वर्णित है। नायिका के भेद मुग्धा जो कि नववय व नवकाम² से युक्त होती है जिसका उदाहरण हमें नागानन्द में प्राप्त होता है। यहां नाटक जीमूतवाहन मलयवती के नवकाम का सुन्दर वर्णन करता है। वह कहता है कि-

दृष्टा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नाऽऽलापमाभाषिता, शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते।

निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते, जाता वामतयैव मेऽद्य सुरतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया।।³

जब मैं इसे देखता हूं तो ये आंखें नीची कर लेती है, वार्तालाप करने पर भी नहीं बोलती है। शय्या पर घूमकर मुझसे विपरीत दिशा में सोती है। बलपूर्वक आलिंगन किए जाने पर कांपती है। सखियों के वासवभवन से चले जाने पर स्वयं भी जाना चाहती है। इस विपरीत आचरण के कारण ही नवोढा प्रिया अधिक प्रीति देने वाली होती है। यहां जीमूतवाहन मलयवती के नवकाम का वर्णन करता है, वह शय्या पर विपरीत आचरण के द्वारा भी अधिक प्रसन्नता प्रदान करती है।

भरतमुनि ने स्त्री के विभिन्न व्यापारों, चेष्टाओं एवं मनःस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करके प्रेम, शृंगार एवं तत्सम्बद्ध व्यापारानुसार नायिका की मनोदशा को आधार बनाकर आठ भेद⁴ किए हैं। जिनमें स्वाधीनपतिका, वासवकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, अभिसारिका ये आठ प्रकार हैं। स्वाधीनपतिका का नाट्यशास्त्र में लक्षण दिया है-

सुरतातिरसैर्बद्धो यस्या पार्श्वे तु नायकः। सान्द्रामोदगुणोपेता भवेत् स्वाधीनभर्तृका।।⁴

जिसका प्रिय सुरत के रस से आबद्ध हो समीप स्थित हो ऐसी अत्यधिक आनन्द युक्त नायिका स्वाधीनभर्तृका होती है।

दशरूपक में कहा- आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका⁶ जिसका पति उसके समीप एवं वश में है, प्रसन्नतायुक्त ऐसी नायिका स्वाधीनभर्तृका होती है। रत्नावली में वासवदत्ता का स्वाधीनभर्तृ का रूप प्राप्त होता है। काम-महोत्सव के समय कामपूजा करती हुई वासवदत्ता के प्रति राजा उदयन की अनन्यासक्ति सूचित होती है-

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः, कौसुम्भरागरुचिस्फुरदंशुकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्तीं, बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ।।⁶

शीघ्र ही स्नान करने से उद्भासित विशिष्ट कान्तिवाली, कौस्तुभ की लालिमा से सुन्दर चमकते हुए वस्त्र की घेर वाली, मकरध्वज की पूजा करती हुई वह वासवदत्ता नवीन अंकुर स्वरूप शाखाओं को उत्पन्न करने वाली लता के समान सुशोभित हो रही है।

अनङ्गोऽयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् । यदनेन न सम्प्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ।।⁷

इस अनङ्ग (कामदेव) ने आज तुम्हारे हाथ के स्पर्श को प्राप्त नहीं किया, अतः निश्चित रूप से आज अपने अनङ्गत्व की निन्दा करेगा। यह प्रसङ्ग रत्नावली के प्रणयारम्भ के पूर्व का है, अतः राजा की पूर्ण आसक्ति वासवदत्ता के प्रति ही है एवं वह स्वाधीनपति का नायिका है। विरहोत्कण्ठता का लक्षण आचार्य भरतमुनि करते हैं- अनेकार्क्यासङ्गद्यस्या नागच्छति प्रियः । तदनागतदुःखवार्ता विरहोत्कण्ठता तु सा ।।⁸

अर्थात्- अनेक कार्यों में लगे रहने के कारण जिसका प्रिय नहीं आता है, उसके न आने के दुःख से व्याकुल नायिका विरहोत्कण्ठता नायिका कहलाती है।

दशरूपक में कहा है- चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कण्ठतोन्मनाः⁹ निरपराध होते हुए भी प्रिय के विलम्ब करने पर उत्कण्ठित रहने वाली नायिका विरहोत्कण्ठता कहलाती है। आचार्य विश्वनाथ ने विरहोत्कण्ठता को इस प्रकार परिभाषित किया है- आने का निश्चय करके भी दैववश जिसका प्रिय न आ सके उसके न आने के दुःख से पीड़ित नायिका विरहोत्कण्ठता होती है-

आगन्तुं कुतचित्तोऽपि देवान्नायाति चेत्प्रियः । तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठता तु सा ।।¹⁰

नागानन्द में मलयवती का विरहोत्कण्ठता का सुन्दर उदाहरण मिलता है-

शशिमणिशिला सेयं यस्यां विपाण्डुरमाननं, करकिसलये कृत्वा वामे घनश्वसितोद्गमा ।

चिरयति मयि व्यक्ताकृता मनाक् स्फुरितैर्भूरुवो-विरमितमनो मर्त्युदृष्टा मया रुदती प्रिया ।।¹¹

यह वही चन्द्रकान्त मणियों की शिला है, जिस पर श्वेत आनन को किसलय के सदृश बाएं हाथ पर रखकर, घनी श्वांसों को उत्पन्न करने वाली, मेरे विलम्ब करने के कारण, भौहो के स्फुरण के द्वारा शान्त भी मन के क्रोध को उत्पन्न करने वाली रोती हुई प्रिया मेरे द्वारा देखी गई। प्रस्तुत उदाहरण में अनपराधी प्रियतम के देर कर देने पर विरह से व्याकुल हुई मलयवती का सुन्दर वर्णन है। जो कि विरहोत्कण्ठता नायिका के रूप में है। प्रिय के देर करने के कारण वह अत्यन्त व्याकुल है। भरतमुनि के द्वारा मनोदशा को आधार बनाकर किये गए आठ भेद में एक भेद कलहान्तरिता भी है जिसका लक्षण नाट्यशास्त्र में दिया है-

ईर्ष्याकलहनिष्क्रान्तो यस्या नागच्छति प्रियः । सामर्षवशसंप्राप्ता कलहान्तरिता भवेत् ।।¹²

ईर्ष्या एवं कलह के कारण गया हुआ जिसका प्रिय नहीं आता है, ऐसी क्रोध से युक्त अपमानित नायिका कलहान्तरिता होती है।

आचार्य धनञ्जय ने कहा है- कलहान्तरिताऽमर्षाद्धूतेऽनुशयार्तियुक्¹³ - कोपवशात् पहले अपराधी

प्रियतम का तिरस्कार करके (बाद में) पश्चाताप की पीड़ा से युक्त नायिका कलहान्तरिता कहलाती है। आचार्य भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में कहा है-

चाटुकारमपि प्राणनायं कोपादपास्य या । पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तृसा ।।¹⁴

जो चाटुकारिता करने वाले प्रिय को कोप के कारण तिरस्कृत करके पश्चाताप को प्राप्त करती है, वह कलहान्तरिता है। रत्नावली में वासवदत्ता को कलहान्तरिता नायिका के रूप में चित्रित किया है। राजा का तिरस्कार करके पश्चाताप करती हुई सखी को वह कहती है- ‘हंजे कांचनमाले, तं तथा चरणपणितमार्यपुत्रम-वधीर्यागच्छन्त्या मयातिनिष्ठुरं कृतम् । तदिदानीं स्वयमेव गत्वार्यपुत्रमनुनेष्यामि’ ।¹⁵ हे सखि काञ्चनमाले! उस चरणों में गिरे हुए उन आर्यपुत्र का तिरस्कार करके आते हुए मैंने यह अति निष्ठुर कार्य किया। इसीलिये अब स्वयं ही जाकर आर्यपुत्र को मनाऊँगी। आचार्य भरतमुनि ने प्रकृति एवं शील के आधार पर नायिका का चतुर्धा विभाजन किया है- धीरा, ललिता, उदात्ता, निभृता । एतास्तु नायिका ज्ञेया नानाप्रकृतिलक्षणाः । धीरा च ललिता च स्यादुदात्ता निभृता तथा ।।¹⁶

उदात्ता का लक्षण शृंगार प्रकाश में किया है- उदात्तागूढमानात्वात्¹⁷- छुपे हुए मान की बुद्धि से युक्त उदात्ता होती है। शारदातवय ने उदात्ता का अत्यन्त विस्तृत एवं स्पष्ट लक्षण दिया है- उदात्ता स्त्री वेश, वस्त्र, अंगमाल्य एवं आभूषणों में आदर रखती है। शय्या, आभूषण, संस्कार, साज-सामान की सुव्यवस्था चाहने वाली, दृढ़ स्नेह वाली, कृतज्ञ, आश्रय देने वाली, सम्मान देने वाली, नित्य उत्सवों में लीन रहने वाली, बन्धुजनों के साथ प्रसन्न रहने वाली एवं उनके उपकार को मानने वाली, प्रिय भाषण करने वाली उदात्ता कही जाती है।¹⁸ महाकवि श्री हर्ष द्वारा विरचित रत्नावली में वासवदत्ता का उदात्त स्वरूप अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। अपने क्रोध को वह राजा पर प्रकट नहीं करती है। राजा ने स्वयं वासवदत्ता के छुपे कोप को पहचान लिया है एवं विदूषक से उसका वर्णन कर रहा है-

भूभङ्गे सहसोद्गतेऽपि वदनं नीतं परां नम्रता, मीषन्मां प्रति भेदकारि हसितं नोक्तं वचो निष्ठुरम् ।

अन्तर्बाष्पजडीकृतं प्रभुतया चक्षुर्न विस्फारितं, कोपश्च प्रकटीकृतो दयितया मुक्तश्च न प्रश्रयः ।।¹⁹

“भूभङ्ग के सहसा उठ जाने पर भी वदन को अत्यधिक झुका लिया, मेरे प्रति व्यंग्यपूर्वक हंसते हुए भी निष्ठुर वचन नहीं कहे गए। आंसुओं को भीतर ही जड़ीभूत करते हुए उसके द्वारा नेत्रों का विस्तार नहीं किया गया- इन सबसे कोप प्रकट हुआ परन्तु प्रिया ने उसे दिखाया नहीं।” इस प्रकार वासवदत्ता ने अपने कोप को कुलीनता के कारण प्रकट नहीं किया। भोज द्वारा प्रदत्त “उदात्ता” का लक्षण इस पर पूर्णतया घटित होता है। आचार्यों ने नायिका के गुणों का वर्णन किया है। नाटक लक्षण रत्नकोष में नायिका के गुणों को इस प्रकार कहा गया है-

शोभाकान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं धैर्यमेव च । प्रागल्भ्यमथ चौदार्य गुणाः स्युः सप्त योषिताम् ।।²⁰

शृंगार-प्रकाशकार भोजदेव ने षोडश गुणों का वर्णन किया है- अथ नायिका गुणाः षोडश, महाकुलीनता, रूपसम्पत्तिः, यौवनं, सुवेषता, सौभाग्यं, शुचिता, शीलसम्पत्, प्रियंवदता, चातुर्यं, वाग्मिन्त्वं, शास्त्र-ज्ञानं, अदीनवाक्यता, अविकल्थनत्वं, मानिता, कृतज्ञता, दृढ़भक्तित्वमिति ।²¹

महाकुलीनता से तात्पर्य यहां उच्च कुल का है। नायिका की किसी उच्च कुल में उत्पत्ति होनी चाहिए। महाकवि श्रीहर्ष विरचित प्रियदर्शिका नाटिका में नायक को चेटी और आरण्यका के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि यह प्रियदर्शिका (आरण्यका) विन्ध्यकेतु की कन्या है। राजा हर्ष सहित बोलता है- “इयं सा

विन्ध्यकेतोर्दुहिता ।..... अहो सुतरां प्रकटीकृतमाभिजात्यं धीरतया ।।”²² इससे स्पष्ट है कि नायिका यहां उच्च कुल की कुलीन कन्या है। रूपसम्पत्ति का तात्पर्य सौन्दर्य गुण से ही है। प्रियदर्शिका नाटिका में राजा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ विदूषक से कहता है-

वयस्य- निरतिशयस्वरूपशोभाजनितबहुविकल्पेयम् । यत्सत्यमहमपि नावगच्छामि । पश्य

पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता, मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी ।।

मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिशा दर्शनं, केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ।।²³

वयस्य अत्यन्त स्वरूप सौन्दर्य के कारण इसके विषय में नाना प्रकार के तर्क हो रहे हैं, अतः मैं भी ठीक निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ, देखो- क्या पृथ्वी को देखने के लिए कोई नागकन्या पाताल लोक से निकल आई है? परन्तु यह कल्पना संगत नहीं है। क्योंकि मैंने पाताललोक में ऐसी कन्या नहीं देखी, वहां गया हूँ। यह शरीरधारिणी चन्द्रिका हो सकती है, परन्तु दिन में चन्द्रिका के दर्शन की आशा नहीं की जा सकती है, तब फिर कमल हाथ में लिये लक्ष्मी के समान यह कौन स्त्री देखने में आ रही है। इस कथन से यह ज्ञात हो रहा है कि नायक नायिका के सौन्दर्य का यहाँ वर्णन कर रहा है। नायिका भेद में प्रगल्भा धीरा का सुन्दर उदाहरण रत्नावली में प्राप्त होता है। विश्वनाथ ने प्रगल्भाधीरा के लक्षण को इस प्रकार स्पष्ट किया है-

प्रगल्भा यदि धीरा होगी तो वह अपने क्रोध के आकार को छिपाकर बाहरी बातों में अत्यधिक आदर का प्रदर्शन करती है परन्तु वस्तुतः सुख में उदासीन रहती है।

प्रगल्भा यदि धीरास्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा । उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान्बहिः ।।²⁴

रत्नावली में वासवदत्ता का भी प्रगल्भा धीरा स्वरूप मिलता है। सागरिका का चित्रफलक देखकर वह राजा का अपराध प्रकट हो जाने पर कुपित हो जाती है परन्तु अपने कोप को छिपाकर राजा के समक्ष विनय का प्रदर्शन करती है- हे आर्यपुत्र! आप अन्यथा संभावना मत कीजिए। सत्य ही मुझे शीर्षवेदना पीड़ित कर रही है, अतः मैं जाऊंगी। आर्यपुत्र! मम पुनरेतं चित्रफलकं प्रेक्षमाणायाः शीर्षवेदना समुत्पन्ना । तद्गमिष्याम्यहम् ।²⁵ भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नायिका के अलंकारों का वर्णन किया है। जिसके कई भेद वहां गिनाये गए हैं। जिसमें एक भेद औदार्य भी है। जिसका उदाहरण रत्नावली में दृष्टिगोचर होता है। औदार्य का लक्षण भरतमुनि करते हैं- औदार्य प्रश्रयः प्रोक्तः सर्वावस्थानुगो बुधैः ।²⁶

सभी अवस्थाओं में विनय बनाए रखना औदार्य है। इसका अर्थ यह है कि क्रोध, दुःख, ईर्ष्यादि की अवस्थाओं में भी कठोर शब्दों का प्रयोग न करना एवं विनय का आचरण करना “औदार्य” नामक अलंकार है। औदार्य का सुन्दर उदाहरण रत्नावली में प्रस्तुत है। राजा वासवदत्ता के विषय में विदूषक से कह रहा है- “प्रियतम ने प्रभुता के कारण भ्रुकुटियों के सहसा टेढ़ी होने पर भी मुख को अत्यन्त नीचा कर लिया, मेरे प्रति मर्मभेदी मंद हास किया किन्तु कठोर वचन नहीं कहा, भीतर भरे हुए आंसुओं से निश्चल की हुई आंखों को नहीं फैलाया, इस प्रकार क्रोध भी प्रकट कर दिया और विनय को भी नहीं छोड़ा।”²⁷ यहां वासवदत्ता ने कुपितावस्था में भी विनय का त्याग नहीं किया, अतः यह उसका “औदार्य” नामक अलंकार है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों के लक्षणों के आधार पर महाकवि श्री हर्ष विरचित तीन रूपकों रत्नावली, प्रियदर्शिका एवं नागानन्द की नायिका नायिका के सभी गुणों, लक्षणों एवं स्वरूपों के आधार पर अक्षरशः घटित होती है। महाकवि श्री हर्ष का यही कवित्व है कि उन्होंने अपने ग्रन्थों में शास्त्रों के अनुसार पात्रों का विधान किया है जिनमें नायिका प्रमुख पात्र के रूप में वर्णित है।

सन्दर्भ -

1. मुग्धा नववयः कामारतौ वामा मृदुः क्रुधि । यतते रतिचेष्टासु पत्युव्रीलामनोहरम् ।
अपराधे रुदत्येव न वदत्यप्रियं प्रिये ।। भावप्रकाशन 4/96/19
2. नागानन्द 3/4
3. नाट्यशास्त्र 22/211-212
4. नाट्यशास्त्र 22/215
5. दशरूपक 2/24-1
6. रत्नावली 1/20
7. रत्नावली 1/22
8. नाट्यशास्त्र 22/214
9. दशरूपक 2/25
10. साहित्यदर्पण 3/86
11. नागानन्द 2/6
12. नाट्यशास्त्र 22/216
13. दशरूपक 2/26
24. सरस्वतीकण्ठाभरण 5/115
15. रत्नावली 3/17 के बाद का गद्य
16. नाट्यशास्त्र 24/24
17. शृंगारप्रकाश 779
18. भावप्रकाशन 4/97-98
19. रत्नावली 2/21
20. ना.ल.को.पृ. 315
21. शृंगारप्रकाश पृ. 777
22. प्रियदर्शिका द्वितीय अंक
23. प्रियदर्शिका 2/6
24. साहित्यदर्पण 3/62-63
25. रत्नावली 2/19 श्लोक के बाद का गद्य
26. ना.शा. 22/31
27. रत्नावली 2/21

34

हर्ष के रूपकों में नायक

संजीव कुमार सिंह

श्रीहर्ष के तीन ग्रन्थ - रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका में रत्नावली नाटिका का नायक प्रसिद्ध वत्सराज उदयन है, तथा नायिका लंकाधीश की राजपुत्री सागरिका है। इन दोनों के प्रेमपूर्ण उद्गार की रोचक कहानी नाटक के रूप में वर्णित है। नाटिका का मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा जान पड़ती है, क्योंकि कथासरित्सागर से यह कथानक मिलता-जुलता है। इस नाटिका पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र की छाया स्पष्ट झलकती है। प्रियदर्शिका की रोचक कथानक भी उदयन के जीवन चरित्र से सम्बन्ध रखता है। यह प्रायः रत्नावली जैसा ही है। इसमें राजा वत्स उदयन के अन्तःपुर की एक प्रणय कथा है। इस नाटिका के नायक प्रसिद्ध वत्सराज उदयन है तथा नायिका अंगदेश के राजा दृढवर्मा की कन्या प्रियदर्शिका है। नागानन्द दोनों नाटिकाओं से बिल्कुल पृथक् है। यह पाँच अंको का नाटक है। इसमें जीमूतवाहन नामक राजकुमार का गरुड़ से नागों को बचाने के लिए आत्मसमर्पण करने की करुणाजनक कहानी मनोहर शब्दों में अभिनीत हुई है। इसकी नान्दी में भगवान बुद्ध की स्तुति की गई है। इस नाटक के नायक जीमूतवाहन हैं तथा नायिका मलयवती हैं।

‘नायक’ शब्द नी (नय) धातु से बना है जिसका अर्थ होता है ले जाना। इस प्रकार, नायक वह कहलाता है, जो नाटक की प्रमुख कथावस्तु को विकास की ओर ले जाता है। नाट्य-फल का प्राप्तिकर्ता नायक ही होता है। इसी से रामचन्द्र - गुणचन्द्र ने उसे ‘मुख्यभिष्टफलं वृत्तं’ कहा है। आगे चलकर उन्होंने नायक के स्वरूप को और भी स्पष्ट कर दिया है- प्रधानफलसम्पन्नोव्यसनी मुख्यनायकः^१ अर्थात्, मुख्य नायक वही होता है, जो चरित्रवान और नाटक के प्रधान फल का अधिकारी होता है। आचार्य धननज्य ने नायक के लिए इक्कीस सामान्य गुणों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है-

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मीरूढवंशः स्थिरोयुवा ॥

बुद्धयुत्साह स्मृति प्रज्ञाकलामान समन्वितः। शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।^२

अर्थात् नायक को विनयशील, मधुरभाषी, त्यागी, चतुर, प्रियभाषी, लोकरंजक, वाक्पटु, कुलीन, स्थिर, तरुण, उत्साही, तेजस्वी, धीर, धार्मिक आदि होना चाहिए। आचार्य विश्वनाथ ने भी नेता में ऐसे गुणों का रहना अनिवार्य माना है-

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही। दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदध्यशीलवान्ध नेता।।^३

वस्तुतः नायक में कम से कम इतने गुण तो होने ही चाहिए जिनसे वह प्रतिनिधित्व करने में समर्थ रहे और लोगों का आदर और विश्वास प्राप्त कर सके। विशिष्ट गुणों के आधार पर नायक के चार भेद माने गये हैं-

(क) धीरोदात्त (ख) धीरललित (ग) धीरप्रशान्त (घ) धीरोद्धत । धीरोदात्त नायक में उदात्तताकी प्रधानता होती है । धनञ्जय ने धीरोदात्त नायक का लक्षण इस प्रकार दिया है.

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान् विकल्थनः ।

स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तोदृढव्रतः ।।⁵

धीरललित नायक का लक्षण यह दिया गया है कि वह कलाप्रेमी, चिन्तामुक्त, कोमल स्वभाववाला और सदा सुख का अनुभव करनेवाला होता है- **निश्चिन्तोधीरललितः कलासक्तः सुखी मूढः ।⁶**

धीरप्रशान्त नायक अहंकार शून्य, विनयशील, दयालु और नीति के अनुसार आचरण करने वाला होता है- **धीरशान्तोऽहङ्कारः कृपालुर्विनयी नयी ।⁷** धीरोद्धत नायक वह होता है जिसमें घमण्ड, ईर्ष्या, चंचलता, क्रोद्ध, आत्मश्लाघा आदि की प्रधानता होती है -

दर्पमात्सर्यभूयष्टो मायाच्छद्मपरायणः । धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकल्थनः ।।⁸

वस्तुतः शृंगारप्रिय होना धीरललित नायक का अपरिहार्य लक्षण है । वह नृत्य गीत आदि में ही अपना अधिक समय व्यतीत करता है- **शृंगारीधीरललितः कलासक्तः सुखी मूढः ।⁹** संस्कृत की रत्नावली नाटिका के नायक उदयनधीरललित नायक के रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं । रत्नावली नाटिका में उदयन के चरित्र का थोड़ा अंश ही सामने आता है क्योंकि इस नाटिका में उदयन तथा सागरिका के प्रणय की दो दिन की कथा ही वर्णित है । रत्नावली में उदयन का प्रणयी रूप ही परिलक्षित होता है । रत्नावली के द्वारा चित्रित चित्रफलक को तन्मयतापूर्वक देखते हुए उदयन को अन्तःपुर की दासी सुसंगता महारानी वासवदत्ता से शिकायत कर देने की धमकी ज्यों ही देती है, महाराज तुरन्त उसका हाथ पकड़कर कहने लगते हैं और महारानी से शिकायत न करने का अनुरोध करते हैं और पुरस्कार रूप में कर्णाभूषण देने लगते हैं ।¹⁰

उदयन को धन अथवा वैभव का कोई घमण्ड नहीं है न ही वह राजसत्ता के घमण्ड से चूर है । उसका सामान्य व्यवहार अत्यधिक सौहार्दपूर्ण तथा प्रेमयुक्त है । अन्तः पुर की सामान्य दासी सुसंगता के साथ राजा का वार्तालाप अत्यधिक प्रेमपूर्ण है ।¹¹ एक सामान्य दासी के साथ उदयन का व्यवहार अत्यधिक प्रशंसनीय है ।

धीरललित नायक का कला परायण होना अत्यावश्यक है । उदयन कलापरायण भी है । मदनमहोत्सव का आयोजन करना उसकी कलापरायणता की द्योतक है क्योंकि कला से युक्त व्यक्ति ही संगीतप्रधान उत्सवों का आयोजन कर सकता है । रत्नावली के चतुर्थ अंक में ऐन्द्रजालिक द्वारा दिखाया गया इंद्रजाल भी उसकी कला के प्रति ज्ञान को दिखलाता है क्योंकि कलाप्रिय व्यक्ति ही इस प्रकार के प्रदर्शनों में अत्यधिक रुचि रखता है । रत्नावली के कुछ प्रसंगों से उदयन का राजनीतिक ज्ञान तथा वीरता आदि गुणों का ज्ञान होता है । कोसलपति की मृत्युकथा सुनकर उदयन के मुख से अकस्मात् निकल पड़ता है - साधु कोसलपते साधु । **मृत्युरपि तेश्लाघ्योऽयस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयन्ति ।¹²** इस प्रकार की उक्ति एक उत्कृष्ट वीर योद्धा की हो सकती है । अपनी वीरतासे उदयन ने राज्य के सभी शत्रुओं का पहले ही अन्त कर दिया है और प्रजा को सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त कर दिया था । अतः हर्ष ने उदयन को एक सुयोग्य शासक के रूप में वर्णित किया है । उदयन अत्यन्त जागरूक शासक था । वह केवल अपने मंत्रियों पर ही आश्रित नहीं रहता था । किसी भी नवीन कार्य में उदयन के विमर्श के बिना मन्त्रिगण कुछ नहीं कर सकते थे । इस बात की सत्यता उदयन की इस उक्ति से होती है - **कथमसौ मामनिवेद्य किंचित्करिष्यति ?¹³** इस प्रकार का प्रश्न वही कर सकता है जिससे मन्त्रिगण हरेक बात में सलाह मशविरा करते हो । अतः स्पष्ट है कि उदयन का राज्य कार्यों में पूर्णरूपेण हस्तक्षेप रहता था ।

उदयन अत्यन्त साहसी एवं उदार था। अन्तःपुर में लगी आग से डरी हुई वासवदत्ता जब अन्तःपुर में कैद सागरिका को आग से बचाने के लिए उदयन से प्रार्थना करती है तो उदयन बिना अपने प्राणों की परवाह किये जल्दी से आग में कूद पड़ते हैं और सागरिका की प्राणों की रक्षा करते हैं।¹⁴

उदयन की सुन्दरता रमणियों को आश्चर्यचकित कर देने वाला था। उदयन कामदेव के समान अतिसुन्दर था तभी तो महनमहोत्सव के अवसर पर सागरिका उदयन को ही साक्षात् कामदेव समझने लगती है।¹⁵ सागरिका जो अतिसुन्दरी है, वह भी उदयन को देखते ही कह उठती है, - क्या यह वही राजा उदयन हैं जिनको मैं पिताजी के द्वारा समर्पित की गई हूँ। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हर्ष ने रत्नावली में उदयन को धीरललित नायक के रूप में प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है।

प्रियदर्शिका नाटिका का नायक उदयनधीरललित कोटि का नायक है। धीरललित नायक के प्रायः सभी गुण उदयन में विद्यमान हैं। उदयन निश्चिन्त, मृदु तथा कलापरायण था। उदयन को राज-काज की कोई चिन्ता नहीं थी क्योंकि राज्य का सम्पूर्ण कार्य मंत्रियों के अधीन था। अतः वह राज्य के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के कारण निश्चिन्त था। प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन के चरित्र का कुछ अंश ही हमारे समक्ष आता है जिसमें उदयन का प्रणयी रूप ही सर्वोपरि है। तथापि कवि ने उदयन के लोकप्रिय चरित्र का भी संकेत किया है- 'लोकेहारि च वत्सराजचरितम्'। उदयन एक वीर होने के साथ-साथ कलावान भी है। संगीत का वह पूर्णरूपेण ज्ञाता है। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में आरण्यका के वीणावादन तथा सुमधुर गीत को सुनकर उदयन अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के रूप में संगीत के पुष्प, कल, तल आदि दस प्रकार के प्रहारों का, द्रुत, मध्य और विलम्बित इन तीन प्रकार के लयों का, समा, स्त्रोतोगता तथा गोपुच्छ नामक तीन प्रकार की यतियों का एवं तत्व, ओध और अनुगत नामक वाद्य के तीन-तीन प्रकारों का उल्लेख करता है।¹⁶ उदयन विष-चिकित्सा में भी निपुण था। आरण्यका के विषपान कर लेने पर वासवदत्ता उसकी चिकित्सा के लिए उदयन से आग्रह करती है क्योंकि उसे ज्ञात है कि उदयन विष-चिकित्सा करने में पूर्णरूपेण सक्षम है।¹⁷ इस प्रकार प्रियदर्शिका में हर्ष ने उदयन का एक धीरललित नायक के रूप में सजीव चित्रण चित्रित किया है।

नागानन्द नाटक के नायक जीमूतवाहन धीरोदात्त कोटि के नायक है। जीमूतवाहन उत्कृष्ट अन्तःकरण वाला, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करनेवाला, स्थिर, अहंभाव को दबाकर रखने वाला तथा दृढव्रती नायक है। जीमूतवाहन हमारे समक्ष एक उच्चकोटि के आदर्श नायक के रूप में उपस्थित होते हैं। इसके चरित्र में दो गुणों का सर्वप्रमुख स्थान है- पहला माता-पिता के प्रति अपार भक्ति दूसरा निःस्वार्थ परोपकार। जीमूतवाहन की दृष्टि में यौवन तभी आनन्ददायी है जबकि वह माता-पिता की भक्ति करते हुए ही बीते।¹⁸ विदूषक से जीमूतवाहन कहते हैं कि- पिता के आगे जमीन पर बैठा हुआ पुत्र शोभायमान होता है न कि सिंहासन पर आसीन, पिता के चरणों को दबाने में जो सुख प्राप्त होता है वह राज्य में भी नहीं मिल सकता है। माता-पिता के खाने से बचे हुए भोजन को खाने में जो सुख और सन्तोष मिलता है वह तीनों लोको के सुखों के भोग करने में भी नहीं मिलता है।¹⁹ जीमूतवाहन का यह कथन है कि अपने शरीर से लेकर सब कुछ मैं परोपकार के लिए ही रख रहा हूँ उनके परोपकारिता को प्रकट करती है।

मित्रवसु के अनुसार जीमूतवाहन विद्याधरों के राजवंश में सर्वश्रेष्ठ हैं, ज्ञानवान हैं, सज्जनों के आदरपात्र हैं, सौन्दर्य में अप्रतीम हैं, सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी हैं, बुद्धिमान हैं, विनम्र व्यवहार वाले तथा युवा हैं और प्राणियों की रक्षा के लिए सर्वथा तत्पर वह करुणावश प्राणों को भी दान कर देने वाले हैं।²⁰ मित्रवसु के ये वचन जीमूतवाहन के सम्पूर्ण गुणों को विवेचन करने में पूर्णतया समर्थ है।

प्रजाजनों के भलाई के लिए इन्होंने कल्पवृक्ष तक दान कर दिया था।²¹ वन में इन्हें याचकों का अभाव अत्यधिक अखरता है क्योंकि इसके कारण ये परोपकार कार्य करने से वंचित रह जाते हैं। परोपकार न करने के कारण उन्हें अपना जीवन व्यर्थ लगता है।²² जीमूतवाहन की दृष्टि में भगवान सूर्य ही एकमात्र स्तुत्य है जो रात-दिन संसार के सर्व कल्याण के लिए सर्वथा अधिक प्रयास करते हैं।²³

जीमूतवाहन अत्यन्त दयालु है तभी तो शंखचूड़ की माता का क्रन्दन वह सहन सके और शंखचूड़ की रक्षार्थ हेतु गरुड़ के भोजनार्थ बिना किसी डर के स्वयं को प्रस्तुत कर दिया। प्रत्येक जन्म में वह परोपकार के लिए ही शरीर धारण करना चाहते थे।²⁴ इनका धैर्य तथा साहस भी उच्च कोटि का है। गरुड़ को माँस खाने से विरत देखकर जीमूतवाहन कहते हैं-मेरी धमनियों के अग्रभागों से रक्त बह ही रहा है, अब भी मेरे शरीर में माँस है और आपकी तृप्ति भी मैं नहीं देखता। अतः हे गरुड़, आप खाने से क्यों रुक गये? यह धैर्य की उच्चतम अवस्था है। जीमूतवाहन दग्धदेह के लिए जीवहिंसा करने वाले लोगों को मूर्ख की संज्ञा देते हैं।²⁵ एक नाग की प्राणरक्षा करने के लिए वे अत्यन्त व्यग्र हो जाते हैं और अन्ततः बिना विचलित हुए स्वयं को नाग रक्षार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। वस्तुतः जीमूतवाहन का उदात्त चरित्र हमारे समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करता है। इनके जीवन से हमें प्रेरणा मिलती है कि हिंसा से कभी हिंसा नहीं रोकी जा सकती।

निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रत्नावली व प्रियदर्शिका का नायक उदयन धीरसलित नायक है। उदयन का चरित्रपूर्ण रूप से नाटिका में सौन्दर्य के उपासक, उदारमना, सच्चे हृदयवाला, अनेक कलाओं में प्रवीण एवं कला प्रणयी और प्रेमी के रूप में चित्रित हुआ है। वहीं नागानन्द का नायक जीमूतवाहन धीरोदात्त कोटि का है जो माता-पिता के प्रति अपार भक्ति व निःस्वार्थ परोपकार का प्रतिमूर्ति है।

सन्दर्भ

1. नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, सूत्र संख्या-8	2. नाट्यदर्पण, चतुर्थ विवेक, सूत्र संख्या-239
3. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 1-2	4. साहित्यदर्पण, 3/35
5. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 4	6. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 2
7. नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, सूत्र संख्या-7	8. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, 5
9. नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, सूत्र संख्या-7	10. रत्नावली, पृष्ठ संख्या 83
11. रत्नावली, पृष्ठ संख्या 83	12. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृष्ठ संख्या 151
13. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृष्ठ संख्या 174	14. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृष्ठ संख्या 167
15. रत्नावली, प्रथम अंक, पृष्ठ संख्या 49	16. प्रियदर्शिका, 3/10
17. प्रियदर्शिका, पृष्ठ संख्या 98	18. नागानन्द, 1/6
19. नागानन्द, 1/7	20. नागानन्द, 2/10
21. नागानन्द, 1/8	22. नागानन्द, 4/2
23. नागानन्द, 3/18	24. नागानन्द, 4/26
25. नागानन्द, 4/7	

हर्ष के रूपकत्रय में नायिका की भूमिका : नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों के आलोक में

प्रिया मजूमदार

महाकवि हर्ष का नाट्य साहित्य, विशेषतः उनके तीन रूपक 'नागानन्द,' 'रत्नावली,' एवं 'प्रियदर्शिका,' भारतीय नाट्य परंपरा में उच्च स्थान रखते हैं। इन नाटकों में नायिका के चरित्र और भूमिका का निर्माण नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार हुआ है। नायिका के स्वभाव, भावनाओं, एवं सामाजिक भूमिका का जो चित्रण हर्ष के नाटकों में मिलता है, वह भारतीय साहित्यिक परंपरा की उत्कृष्टता को दर्शाता है। प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द की नायिकाओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है जो इस प्रकार है –

प्रियदर्शिका :

प्रियदर्शिका नाटिका की नायिका प्रियदर्शिका है जो महाराज दृढ़वर्मा की पुत्री है। प्रियदर्शिका के पिता राजा दृढ़वर्मा कलिंग नरेश के साथ हुए युद्ध में बंदी बना लिए जाते हैं। इधर उदयन का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु को मारकर प्रियदर्शिका को उदयन के समक्ष प्रस्तुत करता है और उदयन के आदेशानुसार प्रियदर्शिका को आरण्यका नाम से वासवदत्ता के संरक्षण में रख दिया जाता है। आरण्य से प्राप्त होने के कारण प्रियदर्शिका का नाम आरण्यका रखा गया और संपूर्ण नाटिका में उसे आरण्यका नाम से ही संबोधित किया गया है, केवल नाटिका के अंतिम भाग में प्रियदर्शिका नाम का उल्लेख है। प्रियदर्शिका मुग्धा कोटि की नायिका है जिसमें मुग्धा नायिका के सभी गुण विद्यमान हैं।

उच्चवंश में उत्पन्न होने के कारण प्रियदर्शिका अभिनयकला, संगीतकला और वीणावादन जैसी ललितकलाओं में निपुण है। प्रियदर्शिका एक अत्यंत स्वाभिमानिनी युवती है। वह अपने उच्च राजकीय वंश की मर्यादा तथा आत्मसम्मान के प्रति पूर्ण सजग है। एक राजकुमारी होने पर भी उसे दूसरों की चाकरी करनी पड़ रही है, इस बात से वह बेहद क्षुब्ध है। इस प्रकार की जीवन से आत्महत्या कर लेना उसकी दृष्टि में अधिक श्रेयस्कर है। उसे इस बात का संतोष है कि उसने अब तक अपनी श्रेष्ठ वंश का परिचय किसी को नहीं दिया है। प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में उदयन के प्रथम दर्शन की घटना को याद करके जब वह एकांत में आत्मविभोर है, तभी उसकी सखी मनोरमा जो पास में ही छिपी हुई थी, उसका स्वागत आज स्वगतवचन सुन लेती है, किंतु आरण्यका शीघ्र ही अपनी यथार्थ में लौट आती है। अंतःपुर में अपनी स्थिति से वह भलीभांति परिचित है। महाराज के प्रति अपने आकर्षक और अपने वर्तमान विपत्तिग्रस्त जीवन के अंतर्द्वन्द्व में जब वह

दिग्भ्रमित होने लगती है तब उसे मृत्यु ही समाधान रूप में दिखाई देती है।¹ संपूर्ण नाटिका में तीन बार आरण्यका की आत्महत्या का संकेत है।

स्वाभिमानी होने के साथ-साथ आरण्यका अद्भुत सौंदर्य से युक्त है जिसे देखकर विदूषक तथा उदयन दोनों ही आश्चर्यचकित हो जाते हैं। आरण्यका को देखते ही विदूषक कह उठता है – “अजी वयस्य, देखो देखो यह कौन स्त्री दिखाई दे रही है जो सामने आई हुई उद्यानदेवता के समान लग रही है, जिसके केशपाश परिमलाकृष्ट भ्रमर हैं, जिसके हाथ विद्रुमलता की तरह रक्ताभ हैं और जिसकी देह लता के समान शोभाशाली है।”² विदूषक की बातों का समर्थन करते हुए राजा भी कह उठते हैं – “वयस्य अत्यंत स्वरूप सौंदर्य के कारण इसके विषय में नाना प्रकार के तर्क हो रहे हैं अतः मैं भी ठीक निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ, देखो क्या पृथ्वी को देखने के लिए कोई नाग कन्या पाताल-लोक से निकल आई है? परन्तु यह कल्पनासंगत नहीं है क्योंकि मैंने पाताललोक में ऐसी कन्या नहीं देखी, वहाँ तो मैं गया हूँ। यह शरीरधारिणी चन्द्रिका हो सकती है, परन्तु दिन में चन्द्रिका के दर्शन की आशा नहीं की जा सकती है, तब फिर कमल हाथ में लिए लक्ष्मी के समान यह कौन स्त्री देखने में आ रही है।”³ तत्पश्चात् विदूषक आरण्यका की तुलना कोमल से करते हुए कहता है – “अजी वयस्य, देखो देखो। आश्चर्य है आश्चर्य है। यह कमलपुष्पों को चुनते समय सलिल चलते हुए करपल्लव की शोभा से कमल बना की सभा को न्यून बना रही है।”⁴ वस्तुतः श्री हर्ष ने आरण्यका को मुग्धाकोटि की नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें वे पूर्णतः सफल हुए हैं।

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता :

प्रियदर्शिका नाटिका में वासवदत्ता ज्येष्ठा नायिका के रूप में चित्रित की गई है जो प्रगल्भा कोटि की नायिका है। यह उज्जयिनी नरेश प्रद्यौत की पुत्री है तथा महाराज उदयन की पटरानी है। वासवदत्ता अतीव सुंदरी है जिसकी प्रशंसा नाटिका के प्रारंभ में ही राजा इस प्रकार करता है – “वसन्तक! तुमने केवल अंधकार पूर्ण कारागार ही देखा, उसके मुखचंद्र के दर्शन नहीं किये, तुम्हें बेड़ी के शब्द से पीड़ा हुई किंतु उसकी मीठी आवाज तुमने नहीं सुनी, तुम्हारे हृदय में क्रूर प्रहरियों की याद है किंतु उसके स्निग्ध कटाक्ष की याद नहीं है, इस तरह तुम बंधन के दोष भर ही देखते हो, प्रद्यौत पुत्री वासवदत्ता के गुण नहीं देख रहे हो।”⁵

वासवदत्ता को उदयन का पूर्ण प्रेम प्राप्त है और वह भी उदयन से अथाह प्रेम करती है। राजा की यह उक्ति वासवदत्ता के प्रति उसकी प्रेम की ही सूचक है – “अतिकृशांगी, केवल मंगलसूत्रक अलंकारधारिणी, प्रयत्नपूर्वक मंदभाषिणी, अतिस्वच्छ मुखकांति से प्रातःकालिक चंद्रमा को जीतनेवाली तथा नियम उपवास आदि के कारण मेरे दर्शन के लिए उत्कंठित अपनी प्रिय वासवदत्ता को पूर्वानुराग अवस्था में दुर्बलत्व को प्राप्त रूप में देखने की उत्कंठा हो रही है।”⁶

प्रगल्भा नायिका होने के कारण वासवदत्ता अतिमानिनी भी है। जब वासवदत्ता को उदयन और आरण्यका की प्रणय के विषय में ज्ञात होता है तो वह उदयन से भी रुष्ट हो जाती है और उदय द्वारा उसके चरणों पर गिरकर भी हाथ जोड़कर क्षमा याचना करने पर भी वह क्रोधित होकर चली जाती है।⁷

वासवदत्ता अत्यंत उदारहृदया है तथा उसका व्यवहार अपने परिचारिका वर्ग पर भी सखीवत् है, किंतु वे अपने और उदयन के मध्य किसी अन्य रमणी को सहन नहीं कर सकती है तभी तो उदयन और आरण्यका के प्रणय-व्यापार के विषय में ज्ञात होते ही वह कठोर बनकर आरण्यका को अन्तरूप में कैद तक कर देती है।

प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में एक नाटकाभिनय की आयोजन की गई है। इस घटना का उदयन और आरण्यका की परस्पर अनुरागवृत्ति में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। इसी अभिनय के अंतर्गत कांचनमाला के आग्रह पर जब आरण्यका उदयन के साथ एक ही आसन पर बैठ जाती है तो महारानी वासवदत्ता तूनककर संस्कृत्यायनी को झट से उपालम्भ दे बैठती है कि अभिनय के प्रस्तुतीकरण में आर्या सीमा को लाँघ चुकी है। वीणा का अभ्यास करते समय अपने पितृगृह में, मैं कभी एकासन पर महाराज के साथ नहीं बैठी।⁹ यहाँ तक वासवदत्ता सहन कर भी लेती है, किन्तु अभिनय के क्रम में रुष्ट कांचनमाला को प्रसन्न करने के लिए प्रियदर्शिका उदयन के हाथ में जब अपना हाथ दे देती है, तो वासवदत्ता क्रोधित होती है और यह कहकर वहाँ से चली जाती है कि मैं मिथ्या कल्पित व्यवहार का अभिनय नहीं देख सकती।¹⁰ वासवदत्ता के उक्त वचनों से प्रतीत होता है कि उसकी दृष्टि में मर्यादा का बहुत अधिक महत्व है। इस प्रकार महारानी वासवदत्ता की चरित्र के उज्ज्वल पक्ष का आकलन करने की क्रम में इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नाटिका में प्रदर्शित ईर्ष्या, मान आदि उसके सारे कलुषित मनोभाव विशेष परिस्थिति के कारण ही हैं न कि उसके चरित्र की स्वाभाविक दुर्बलता के कारण। वस्तुतः नायिका के रूप में उसका चरित्र यथोक्ति ही है।

रत्नावली में वासवदत्ता :

जहाँ तक रत्नावली नाटिका में वासवदत्ता का चरित्र है वह भी प्रियदर्शिका नाटिका में चित्रित वासवदत्ता के समान ही है। सुंदरी व मानिनी होने के साथ उदयन का प्रेम भी उसे संपूर्णतः प्राप्त है। रत्नावली नाटिका में भी वासवदत्ता के क्रोध, उपालम्भ, ईर्ष्या व मान आदि से अपने को बचाने के लिए उदयन सागरिका से छिपकर मिलता है।

अपने पति को सार्वभौम चक्रवर्ती बनाने के लिए वासवदत्ता कितने कष्ट सहती है इसका प्रमाण यौगन्धरायण की उक्ति है। भारतीय संस्कृति के अनुसार पत्नी अपने पति के कल्याण के लिए महान से महान त्याग करती है। क्योंकि वासवदत्ता भी एक भारतीय स्त्री है अतः अपने पति के कल्याण हेतु अनेक कष्टों को भी सहन करती है। इसी कारण वह यौगन्धरायण के कहने पर सागरिका को अन्तरूपुर में रख तो लेती है किन्तु सागरिका की सुन्दरता पर उदयन के मुग्ध हो जाने का भय निरंतर बना रहता है। इसी हेतु वह सागरिका को राजा उदयन के सामने भी नहीं पड़ने देती है।¹¹

रत्नावली के तृतीय अंक में सागरिका की अभिसारिका वाली घटना से कुपित होकर वासवदत्ता वहाँ से चली जाती है। तत्पश्चात् उसी स्थान पर महारानी के वेष में आती हुई सागरिका को पैरों की आहट सुनकर विदूषक का संदेह होने लगता है कि राजा के प्रति अपने कठोर व्यवहार के कारण वासवदत्ता को पश्चाताप हुआ होगा, इसीलिए वह पुनः आ रही है। इस पर उदयन विदूषक से कहता है की महारानी की उदारता स्पृहणीय है,¹² किंतु तभी वहाँ सागरिका आ जाती है और उदयन और सागरिका दोनों प्रलयालाप में डूब जाते हैं। दूसरे ही क्षण में वासवदत्ता भी महाराज के प्रति अपने कठोर व्यवहार पर पश्चाताप करती हुई वहाँ आ पहुँचती है। राजा और सागरिका के प्रेमालाप को वह सुन लेती है तथा लता की ओट से उन्हें देख भी लेती है। वस्तुतः ऐसी स्थिति में किसी भी नारी का धैर्य टूट सकता है और वासवदत्ता के साथ भी ऐसा ही हुआ। वह क्रोध में आकर विदूषक को लतापास से बँधवाकर तथा सागरिका को भी ले जाकर अन्तरूपुर में कैद करवा देती है।¹³ ऐसी स्थिति में वासवदत्ता के स्वभाव की उग्रता स्वाभाविक भी है। चूँकि वासवदत्ता ज्येष्ठा देवी की भूमिका में है, अतः क्रोध, मान और उपालम्भ से तो वह बच नहीं सकती।

महारानी वासवदत्ता के व्यक्तित्व का जो यथार्थ रूप है, उसके दर्शन हमें चतुर्थ अंक में जाकर होते हैं। जहाँ मंत्री योगन्धरायण कहता है – जब मेरे कहने से देवी ने पति वियोग को स्वीकार किया, उस समय मेरे द्वारा महाराज के स्त्रीभाव की योजना से वह (देवी वासवदत्ता) दुःखी हो गई। स्वामी का यह चक्रवर्तित्व उसकी प्रीति बना देगा, यह सत्य है तथापि लज्जा से अपना मुँह दिखा पाने की सामर्थ्य (मुझमें) नहीं है।¹⁴

वासवदत्ता को अपने पितृकुल से अगाध स्नेह है। रत्नावली के चतुर्थ अंक में जब वह उज्जयिनी से आये हुए ऐन्द्रजालिक का समाचार सुनती है तो वह तुरन्त ही उदयन से उस ऐन्द्रजालिक का खेल देखने का आग्रह करती है।¹⁵ ऐन्द्रजालिक का खेल जब चल रहा होता है, तभी उसे अपने मामा विक्रमबाहु के यहाँ से वसुभूति एवं बाभ्रव्य के आने की सूचना मिलती है तो वह खेल को बीच में ही बन्द कराकर उन दोनों से मिलने जाती है।¹⁶ इसे पता चलता है कि उसे अपने मातृकुल से भी अथाह प्रेम है, जैसा कि प्रायः नारियों में देखा जाता है। वह इतनी भावुक है कि जब उसे ज्ञात होता है कि सागरिका उसकी ममेरी बहिन रत्नावली है तो वह सागरिका को प्रति अपनी दुर्व्यवहार पर पश्चाताप करती है। इतना ही नहीं बल्कि अपने हाथों से उसका श्रृंगार करके उसे उदयन को सौंप देती है।¹⁷ इस प्रकार संपूर्ण नाटिका में वासवदत्ता एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में उपस्थित होती है और नाटककार ने उसका व्यवहार अत्यंत उत्तम रूप में चित्रित किया है।

रत्नावली :

रत्नावली नाटिका की नायिका रत्नावली मुग्धा कोटि की नायिका है। रत्नावली विक्रमबाहु सिंहलेश्वर की कन्या है तथा रत्नावली नाटिका में प्रायः सर्वत्र सागरिका नाम से सम्बोधित की गई है। सागर से प्राप्त होने के कारण ही इसे सागरिका नाम से अभिहित किया गया है। वह अनुपम सौन्दर्य से युक्त है यही कारण है कि वासवदत्ता को उसके रूप लावण्य पर उदयन के मुग्ध हो जाने का सन्देह निरन्तर बना रहता है। अतः वह सागरिका को कभी भी उदयन के सामने नहीं आने देना चाहती है। मदनमहोत्सव के अवसर पर वासवदत्ता के मना करने के बाद भी कौतुहलवश वह वहाँ पहुँच जाती है। उसे वहाँ देखकर वासवदत्ता कहती है – ओह सेवकों का प्रमाद, जिसके ही दृष्टिपथ से प्रयत्नपूर्वक बचाई जा रही है उसकी ही दृष्टि में पड़ जायेगी।¹⁸ वासवदत्ता की यह उक्ति इस बात का संकेत है कि उसे सागरिका के रूप लावण्य पर उदयन के आसक्त हो जाने का भय है। इसी भय के कारण वह सागरिका को वहाँ से जाने के लिए कहती है – सखी सागरिका! आज तू मदनमहोत्सव के पराधीन सेवक वर्ग पर सारिका को छोड़कर यहाँ कैसे चली आई। अतएव शीघ्र यहाँ से चली जा और इस सब पूजा की सामग्री को कांचनमाला के हाथ में सौंप दे। वासवदत्ता द्वारा हर संभव प्रयत्न करने के बाद भी सागरिका उदयन की दृष्टिपथ में आ ही जाती है। उसे पर दृष्टि पड़ते ही राजा के मुख से बरबस ही निकल पड़ता है – क्रीडा से कमल को कपित करने वाली, पंखों की फड़फड़ाने को प्रकट करती हुई, सुंदर चाल वाली राजहंसी जैसे मानसरोवर में विलास से लक्ष्मी को तिरस्कृत करने वाली, हमारे प्रति अनुराग करने वाली, चित्र लिखित यह कौन हमारे मन में प्रवेश कर रही है। इसके मुखरूपी अनुपम पूर्ण चंद्र को बना कर निश्चय ही विधाता अपने वासस्थान कमल के संकोचन से कठिनाई से बैठा होगा।¹⁹

जड़ विदूषक तक सागरिका को देखकर कह उठता है – अहा, अहा, आश्चर्य है आश्चर्य है। ऐसा रूप सौंदर्य मनुष्य लोक में दिखाई नहीं पड़ता है। मैं समझता हूँ कि विधाता को भी इन्हें बनाकर विस्मय हुआ होगा।²⁰ विदूषक की बात का अनुमोदन करते हुए राजा पुनः कहते हैं – श्री भगवान की इस अद्वितीय सुंदरी को बना कर ब्रह्मा ने विस्मयवश अपने कमल के पत्तों की कान्ति को जीतने वाले नेत्र विस्फारित किए होंगे। अपने चारों मुखों से एक साथ साधुवाद किया होगा तथा प्रशंसा में अपने सिर हिलाए होंगे।²¹

सुसंगता की यह उक्ति कि ऐसी उत्तम कन्या को अवश्य ही ऐसे वर की अभिलाषा करनी चाहिए,²² से भी सागरिका के अतिशय सौंदर्य का बोध होता है।

उदयन सागरिका को लक्ष्मी, उसके हाथ को पारिजात पल्लव और उसके कर से निष्पन्दित होने वाले सात्विक सीकरों को अमृत स्राव के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि में सागरिका के रूप लावण्य की संतापहारिणी क्षमता अद्भुत है। उसका अंग- प्रत्यङ्ग शान्ति एवं शीलता प्रदान करने वाली सुधा से ओत-प्रोत है। उसका मुख चन्द्रमा है, नेत्र नील-कमल हैं, हाथ कमल सदृश हैं, उरुयुग कदलीगर्भ हैं, भुजाएँ कमलनाल हैं, किंवा उसके सभी अंग संतापहरण में समर्थ हैं।²³

अद्भुत रूप लावण्य की स्वामिनी होने के साथ-साथ रत्नावली चक्रवर्ती सम्राट की साम्राज्ञी होने वाले सामुद्रीक लक्षणों से भी युक्त है यही कारण है कि योगन्धरायण ने रत्नावली से उदयन का विवाह कराने के लिए हर संभव प्रयत्न किया और अन्ततः वह इसमें सफल भी हो जाता है।

रत्नावली न केवल अत्यन्त रूप शोभा सम्पन्न है अपितु अत्यन्त शुभशील, सलज्जा एवं सखीजन वत्सला भी है। वह अनुराग एवं सौहार्द की मूर्ति है। उसके विरह में सुसंगता का यह प्रलाप उसके सखीजनवत्सल को ही प्रमाणित करता है - हाय, प्रिय सखी सागरिका! हाय लज्जाशील! हाय, उदार स्वभावशाली! हाय सखियों से प्रेम रखने वाली! हाय सरल दर्शन वाली! अब मैं तुझे कहाँ देखूँगी? सुसंगता की इस उक्ति से रत्नावली के अनेक गुणों का स्वतः ही ज्ञान हो जाता है। इससे प्रतीत होता है कि वह अलौकिक सौन्दर्य के साथ-साथ उदार गुणों से परिपूर्ण थी।

दिव्य सौन्दर्य के अतिरिक्त जो उसका गुण प्रकाश में आता है वह है उसकी अतिशय भावुकता। सुन्दर होने के साथ-साथ वह अत्यन्त भावुक भी है। उसमें मुग्धासुलभ लज्जा तो है ही बालसुलभ कौतुहल भी कम नहीं है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वह महारानी की आज्ञा के बावजूद मदनोत्सव की अपने पितृगृह सिंहल में मनाये जाने वाले मदनोत्सव से तुलना करने का प्रयास करती है।²⁴ प्रथम दर्शन में ही उदयन को अपना सर्वस्व अर्पित करना उसकी भावुकता का ही प्रमाण है। उदयन के प्रति उसका प्रेम इतना व्यग्र है कि इस मार्ग में आने वाले खतरों की उसे लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। महारानी की परिचारिका के लिए महाराज उदयन से प्रेम करना कोई आसान कार्य नहीं है, ऐसा जानती हुई भी वह अपने ऊपर नियंत्रण रखने में पूर्ण असमर्थ है और स्वयं को भगवान् कामदेव की कृपा पर छोड़ देने में उसे कोई संकोच नहीं होता है। उसका प्रेम अत्यन्त गहन है और इसके लिए वह सब कुछ सहने को तत्पर है।

रत्नावली नाटिका की नायिका उच्चवंशोत्पन्ना होने के कारण ललितकला के अंगविशेष से पूर्ण परिचित है। वह चित्रकला में अत्यन्त प्रवीण है।²⁵ उसने एक बार ही उदयन के दर्शन किये हैं तथापि वह उदयन की प्रिय छवि को रंग और तूलिका के सहारे अनायास ही अंकित कर देती है जो इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि वह चित्रकला में अभ्यस्त है।

मलयवती :

नागानन्द नाटक की नायिका मलयवती मुग्धा कोटि की नायिका है। यद्यपि सम्पूर्ण नाटक में मलयवती का कोई विशेष महत्व नहीं है तथापि मलयवती का चरित्र कुछ हद तक हमें प्रभावित अवश्य करता है। श्री हर्ष ने इसको एक आदर्श हिन्दू नारी के रूप में चित्रित किया है जिसका सर्वस्य उसका पति ही है। यह सिद्धराज विश्वावसु की कन्या है तथा अनुपम सौन्दर्य से युक्त है। मलयवती के रूप सौन्दर्य को देखकर नायक

जीमूतवाहन विस्मित सा रह जाता है और कह उठता है – ‘यदि यह स्वर्गलोक की स्त्री है तो इन्द्र की हजार आँखें सफल हो गई हैं, यदि यह नागलोक की है तो इसके मुख की उपस्थिति में नागलोक चन्द्रमा से शून्य नहीं रहा, यदि यह विद्याधरी है तो हमारी जाति अन्य समस्त जातियों को जितने वाली है और यदि यह सिद्धों के कुल की है तो इससे सिद्ध लोग तीनों ही लोकों में प्रसिद्ध हो जायेंगे।’²⁶ विदूषक भी उसके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहता है कि यह केवल वीणा की निपुणता से ही आनन्द नहीं देती, प्रत्युत वीणा की निपुणता की तरह रूप से भी आँखों को आनन्द देती है। यह कौन है? कोई देवी है अथवा नागकन्या है? या विद्याधरों की पुत्री है अथवा सिद्धों के कुल में पैदा हुई है?²⁷

मलयवती सौन्दर्यवती होने के साथ साथ वीणा वादन में अत्यन्त प्रवीण है। इसके वीणा वादन को सुनकर तो मृग भी दाँतों के बीच के पड़े हुए घास के कोर को चबाना बन्द कर देते हैं। नायक जीमूतवाहन उसके गाने और बजाने की प्रशंसा करते हुए सूक्ष्मता से विवेचन करता है।²⁸ मलयवती गौरी माँ की परम भक्त है। अपनी सखी द्वारा की गई गौरी की आलोचना को वह सहन नहीं कर पाती है और तुरन्त उसका प्रतिवाद करती है।²⁹ फलस्वरूप गौरी उसे स्वप्न में वरदान देती है कि विद्याधरों का सम्राट उसका पति बनेगा। गौरी के कथन पर विश्वास करके वे जीमूतवाहन को देखते ही अपना हृदय दे बैठती है। वह नायक से सच्चा प्रेम करती है लेकिन जब जीमूतवाहन अनभिज्ञतावश विवाह का प्रस्ताव अस्वीकृत कर देता है तो उसे बड़ा आघात लगता है। वह इस बात से इतनी क्षुब्ध हो जाती है की आत्मघात करने को उद्यत हो जाती है।³⁰ वह गले में पाश डाल देती है लेकिन तभी वहाँ जीमूतवाहन आ जाता है और उसे पाश के बन्धन से मुक्त करता है। अन्ततः उसके प्रेम की परिणति परिचय में होती है और वह अत्यधिक आनंदित होती है। एक आदर्श भारतीय नारी के समान वह अन्त तक अपने पति पर सच्चा प्रेम बनाए रखती है।

एक बहू के रूप में भी उसका चरित्र अत्यधिक श्लाघनीय है। जब मलयवती को जीमूतवाहन के आत्मोत्सर्ग की घटना का पता चलता है तो वह मूर्छित हो जाती है। जीमूतवाहन की मृत्यु हो जाने पर इसे अपना जीवन भारस्वरूप लगने लगता है और तत्क्षण ही चिता बनाकर सती हो जाने के लिए उद्यत हो जाती है।³¹ गौरी पर इसकी सच्ची भक्ति होने के कारण गौरी माँ प्रसन्न होकर जीमूतवाहन को पुनः जीवनदान देती है³² और मलयवती को दिए अपने वचन के अनुसार जीमूतवाहन को चक्रवर्ती सम्राट बना देती है।³³ जीमूतवाहन को पुनर्जीवित देखकर मलयवती के हर्ष की सीमा नहीं रहती और इसके लिए वह गौरी का आभार व्यक्त करती है। वास्तव में मलयवती का चरित्र एक आदर्श नारी के रूप में अंकित किया गया है जो की अन्य नारियों के लिए प्रेरणाम्रोत है।

निष्कर्ष :

महाकवि हर्ष के रूपकत्रय में नायिकाओं की भूमिका न केवल नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों के अनुरूप है, बल्कि उनकी अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचायक भी है। उनकी नायिकाएँ स्त्री की आंतरिक शक्ति, बुद्धिमत्ता, एवं संवेदनशीलता का प्रतीक हैं। हर्ष ने अपने नाटकों में नायिकाओं को रसात्मक एवं भावनात्मक गहराई प्रदान कर नाट्य साहित्य को समृद्ध किया है। नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों के आलोक में, हर्ष की नायिकाएँ भारतीय साहित्य में नारी की उच्च भूमिका का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इन नायिकाओं के स्वभाव, भावनाओं, और कर्तव्यों के माध्यम से भारतीय साहित्यिक परंपरा की नायिका के विविध स्वरूपों की प्रकाश मिलती है।

सन्दर्भ -

1. प्रियदर्शिका, प्रथम अंक, पृ. 26
2. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, पृ. 43
3. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृ. 29
4. प्रियदर्शिका 2/6
5. प्रियदर्शिका द्वितीय अंक, पृ. 33
6. प्रियदर्शिका 1/7
7. प्रियदर्शिका 2/1
8. प्रियदर्शिका 3/13
9. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, पृ. 68
10. प्रियदर्शिका, तृतीय अंक, पृ. 71
11. रत्नावली 4/20
12. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ. 34
13. रत्नावली, तृतीय अंक, पृ. 126
14. रत्नावली, तृतीय अंक, पृ. 133
15. रत्नावली 4/20
16. रत्नावली चतुर्थ अंक, पृ. 152
17. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ. 158
18. रत्नावली, चतुर्थ अंक, पृ. 180
19. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ. 30
20. रत्नावली 2/9-10
21. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ. 76
22. रत्नावली 2/16
23. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृ. 48
24. रत्नावली 3/11
25. रत्नावली, प्रथम अंक, पृ. 36
26. रत्नावली, पृ. 44
27. नागानन्द 1/16
28. नागानन्द, पृ. 29-30
29. नागानन्द 1/15, पृ. 26
30. नागानन्द, पृ. 46
31. नागानन्द, पृ. 101
32. नागानन्द, पृ. 237
33. नागानन्द, पृ. 278

36

हर्षदेव के नाटकों में प्रमुख स्त्रीपात्रों का शास्त्रीय स्वरूप एवं व्यावहारिक स्थिति

देवराज

हर्षदेव के नाट्यसाहित्य में प्रमुख स्त्रीपात्रों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। एक तो है नाटक की नायिका, जो वस्तुतः है तो अनूढा (अविवाहिता), परन्तु वह नायक के प्रेमपाश में संलग्न है। दूसरी स्त्रीपात्र राजा की विवाहिता पटरानी है जो इस प्रेम प्रसङ्ग में पदे-पदे बाधा उत्पन्न करती है। अब आगे के सन्दर्भों में इसी दृष्टि से विचार किया जायेगा।

प्रियदर्शिका-नाटिका की नायिका

प्रियदर्शिका नाटिका की प्रमुख पात्र नाटिका की नायिका अङ्गदेश के राजा -इवर्मा की पुत्री आरण्यका (प्रियदर्शिका) है। नाटिका की कथा कविकल्पित होती है, इसमें चार अङ्क होते हैं। रनिवास से सम्बन्ध रखने वाली या गाने वाली राजवंश की कोई नवानुरागवती कन्या इसमें नायिका होती है।¹

नायिका तीन प्रकार की होती है- स्वकीया, परकीया, साधारण स्त्री²

स्वकीया नायिका भी तीन प्रकार की होती है- मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा³

आरण्यका (प्रियदर्शिका) मुग्धा नायिका है। मुग्धा नायिका वह होती है जो अवस्था तथा कामवासना से नवीन होती है, जो रतिक्रीड़ा से कतराती है और जो क्रोध करने पर भी कोमल होती है- मुग्धा नववयः कामारतौ वामा मृदुः क्रुधि।⁴ साहित्यदर्पण में भी इसका लक्षण किया है- प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा। कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।।⁵

आरण्यका विवाह के योग्य नहीं है। इसका वर्णन प्रथम अङ्क में मिलता है, जब वह वत्सराज के दरबार में विजयसेन द्वारा लाई जाती है। वत्सराज आदेश देता है कि इसे वासवदत्ता के हवाले कर दो। जब वह विवाह योग्य हो जाए जब मुझे याद दिलाना-

यशोधरे गच्छ। त्वमेव वासवदत्तायाः समर्पय। वक्तव्या च देवी। भगिनीबुद्ध्या त्वयैव सर्वदा द्रष्टव्या। गीतनृत्तवाद्यादिषु विशिष्टकन्यकोचितं सर्वं शिक्षयितव्या। यदा वरयोग्या भविष्यति तदा मां स्मारयेति।⁶

इससे स्पष्ट होता है कि वह वर योग्या नहीं थी। परन्तु बाद में द्वितीय अङ्क में जब वत्सराज उदयन उसे गृहोद्यानदीर्घिका में फूल चुनते हुए देखते हैं तब वह वर की चिन्ता करने योग्य वय को प्राप्त हो जाती है- तदैषाहं महाराजेन भणिता यथा- यदैषा विन्ध्यकेतुदुहिता वरयोग्या भविष्यति तदाहं स्मारयितव्य इति। तत्संप्रतं महाराजं स्मारयामि येनास्या वरचिन्तापर्याकुलो भविष्यति।⁷

इसलिए वह नववयः है। तृतीय अङ्क में आरण्यका और मनोरमा के वार्तालाप से उसकी नवकामावस्था प्रकट होती है। द्वितीय अङ्क में जब भ्रमर उसे तंग करते हैं तब वह इन्दीवरिका को पुकारती है। इन्दीवरिका के स्थान पर महाराज वत्सराज भ्रमर बाधा निवारण करने को जाते हैं। आरण्यका इन्दीवरिका समझकर महाराज से चिपक जाती है। तत्पश्चात् जानकर कि यह महाराज हैं, वह फिर इन्दीवरिका को पुकारती है, जो उसके रतौवामा होने का उदाहरण है। आरण्यका अप्रतिम सुन्दरी है। विदूषक तो उसे उद्यान की देवता समझ बैठता है- **भो वयस्य पश्य पश्य। कैषा कुसुमपरिमलसुगन्धवेणिमधुकरावलिर्विद्रुमलतारुण हस्तपल्लवा उज्ज्वलत्तनुकोमलबाहुलता सत्यं प्रत्यक्षचरीवोद्यानदेवता स्त्री दृश्यते।**⁸

वत्सराज उदयन भी उसके स्वरूप सौन्दर्य को देखकर ठीक निर्णय नहीं कर पा रहे हैं-

**पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता
मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी।
मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव।**⁹

इससे स्पष्ट होता है कि वह अत्यन्त प्रिय सुन्दरी है। वह अत्यन्त भीरु एवं संवेदनशील है। वह प्रेम के सम्बन्ध में निराशावादिनी है। वह अपने प्रेम को किसी के सामने प्रकट नहीं कर सकती है। वह अपने हृदय की शान्ति के लिए मृत्यु के अतिरिक्त दूसरा स्थान नहीं पाती है-

सर्वथा मरणं वर्जयित्वा कुतो मे हृदयस्यान्या निवृत्तिः।¹⁰

वह मुग्धा मात्र रह जाती है। वह पितृकुल की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए सब कष्टों को चुपचाप सहन कर लेती है। इससे उसका स्वाभिमान और कुलीनता प्रकट होती है। आरण्यका अभिनय कलाकुशलता में भी निपुण है। इसका वर्णन तृतीय अङ्क में मिलता है। आरण्यका जब वासवदत्ता का अभिनय करती है तो इससे उसकी गीत, वाद्य, नृत्य एवं अभिनय कलाकुशलता का परिचय मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि नाटिका की नायिका में जो गुण होने चाहिए वे सभी गुण आरण्यका में हैं।

रत्नावली नाटिका की नायिका

रत्नावली नाटिका में नायिका सागरिका मुख्य स्त्री पात्र है। सागरिका (रत्नावली) सिंहल नरेश विक्रमबाहु की पुत्री है। अप्रतिम सुन्दरता और रत्नमाला उसकी सुन्दरता के दिग्दर्शक हैं। समुद्र में नौका के भ्रष्ट हो जाने से वह वसुभूति और बाभ्रव्य से छूट जाती है। संयोगवश कौशाम्बी के व्यापारियों के द्वारा उसको बचाया जाता है। तत्पश्चात् वह वत्सराज के अन्तःपुर तक पहुँचाई जाती है। वह वासवदत्ता की परिचारिका के रूप में कार्य करती है। उसका व्यक्तित्व, स्वभाव एवं प्रभृतियाँ असाधारणता के द्योतक हैं-

**दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष,
श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम्।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा,
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमात्।**¹¹ (2.6) पृ.108

और भी

**श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः।
कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः।**¹²

सागरिका वास्तव में अप्रतिम सुन्दरी है। वासवदत्ता उसकी सुन्दरता के कारण ही उसे वत्सराज से दूर रखना चाहती है। सुसङ्गता वत्सराज रूपी कामदेव के साथ सागरिका रूपी रति का चित्र बनाती है जिससे उसकी सुन्दरता का अनुमान किया जा सकता है। विदूषक ही उसके सौन्दर्य की सराहना नहीं करता, बल्कि स्वयं वत्सराज भी उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं।¹³

सागरिका में भावुकता अत्याधिक है। वह महारानी की दासी होने पर महाराज से प्रेम करने लगती है। यह उसकी भावुकता ही तो है। सागरिका की भावप्रवणता इतनी बढ़ जाती है कि वह थोड़ी सी बाधा होने पर अपनी बेकदरी समझने लगती है, उतने भर के लिए वह प्राण त्यागने के लिए उतारू हो जाती है। महाराज वत्सराज को देखने के बाद उसे कामव्यथा सताती है। उसके लिए काम व्यथा इतनी असह्य हो गई है कि वह कह उठती है-**सर्वथा मम मन्दभागिन्या मरणमेवानेन दुर्निमित्तेनोपस्थितम्।**¹⁴

उसका प्रेम उस सीमा तक पहुँच जाता है जहाँ से लौटना असम्भव होता है। वह कहती है-**‘(ससाध्वसमात्मगतम्) किमेष भणिष्यतीति यत्सत्यं जीवितमरणयोरन्तराले वर्ते।’**¹⁵

एक बार किसी को देखकर इतना आगे बढ़ जाना उसकी भावुकता ही तो है। उसका हृदय इतना कमजोर है कि जब वह महाराज वत्सराज से मिलने के लिए आती है तो उसे ज्ञात हो जाता है कि महारानी ने उसकी बातें जान ली हैं तब उसे इस अपराध के लिए मृत्यु की ही शरण दीखती है। वह कहती है-

वरमिदानीं स्वयमेवात्मानमुद्धव्योपरता न पुनर्जन्तसंकेतवृत्तान्तया देव्या परिभूतास्मि।¹⁶

सागरिका अत्यन्त सङ्कोचशील एकान्त प्रकृति की युवती है। इसलिए वह अपने विषय में किसी से खुलकर बात नहीं करती है-**(सुसंगतां हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्।) प्रियसखि महती खलु मे लज्जा। तत्तथा कुरु यथा न कोऽप्यपर एतं वृत्तान्तं जानाति।**¹⁷ एक नाटिका की नायिका में जो गुण उपेक्षित हैं वह सभी गुण सागरिका में हैं। वह नवयौवना है। इसका वर्णन द्वितीय अङ्क और तृतीय अङ्क में महाराज के कथन से मिलता है।

**कृच्छ्रादूरयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निस्पन्दतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव संप्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
सांकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने।।**¹⁸ (2.12) पृ. 94

और

**शीतांशुमुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ
रम्भागर्भनिभं तथोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ।
इत्याह्लादकराखिलाङ्गि रभसान्निःशङ्कमालिङ्गय माम्
अङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येहोहि निर्वापय।।**¹⁹ (3.11) पृ. 151

वह नवकामा²⁰ और रतौवामा²¹ भी है। रतौवामा का वर्णन तृतीय अङ्क में भी मिलता है जब वह आत्महत्या करने से बचाई जाती है। तत्पश्चात् वह महाराज से प्रेम करने लगती है। वह मृदुक्रुधि भी है। इसका वर्णन सुसङ्गता के कथन से द्वितीय अङ्क में होता है-

भर्तः अतिकोपना खल्वेषा। तद्वस्ते गृहीत्वा प्रसादयैनाम्।²²

सागरिका केवल मुग्धा नायिका की रुढिबद्ध प्रतिनिधित्व करने वाली ही नहीं अपितु धार्मिक कृत्यों एवं देवताओं के प्रति उसकी श्रद्धा है। वह दानशील प्रवृत्ति की भी है- **इयं च रत्नमाला जीवितनिराशया तथा**

कस्यापि ब्राह्मणस्य हस्ते प्रतिपादयेति भणित्वा मम हस्ते समर्पिता ।²³ इसके साथ-साथ उसका अपने कुल के प्रति तीव्र प्रेमोद्रेक और उसकी रागात्मिका वृत्ति का भी संकेत मिलता है। उसके 'कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्त'²⁴ इत्यादि कथन से पतिभक्ति के आदर्श में उसका विश्वास प्रकट होता है। अतः वह मुग्धा नायिका के स्वरूप को प्रत्यक्ष करती हुई अपनी कुछ निजी विशेषताएँ भी रखती है।

नागानन्द नाटक की नायिका

नागानन्द नाटक की नायिका मलयवती है जो कि सिद्धराज विश्वावसु की पुत्री है। वह अत्यन्त रूपवती नायिका है। उसके सौन्दर्य की छटा शोभनीय है। नायक जीमूतवाहन भी उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करते हुए उसे स्वर्ग की अप्सरा से भी सुन्दर मानता है-

स्वर्गस्त्री यदि तत् कृतार्थमभवञ्चक्षुः सहस्रं हरे-
नर्गगी चेन्न रसातलं शशभृता शून्यं मुखेऽस्याः स्थिते ।
जातिर्नः सकलान्यजातिजयिनी विद्याधरी चेदियं
स्यात् सिद्धान्वयजा यदि त्रिभुवने सिद्धाः प्रसिद्धास्ततः ।।²⁵

वह एक आदर्श हिन्दू नारी है। दिल से जिसे एक बार चाहती है, उसके वियोग में जीवित नहीं रहना चाहती है। मलयवती सङ्गीतकला और वीणावादन में अत्यन्त निपुण है। जीमूतवाहन उसके वीणावादन से ही अत्यन्त चमत्कृत होता है। वह भगवती गौरी की उपासिका है। वह अपनी भक्ति से भगवती गौरी को प्रसन्न कर यथायोग्य वर पाने का आशीर्वाद प्राप्त करती है। वह चेटी से भगवती गौरी की निन्दा सुनकर क्रोधित हो जाती है। जिससे भगवती गौरी के प्रति उसकी सच्ची भक्ति का परिचय मिलता है। उसको गौरी पर अटूट विश्वास है। इसी विश्वास के कारण भगवती गौरी उसके पति जीमूतवाहन को उसकी श्रद्धा और विश्वास देखकर जीवित कर देती है-निजेन जीवितेनापि जगतामुपकारिणः । परितुष्टाऽस्मि ते वत्स ! जीव जीमूतवाहन ।²⁶

मलयवती भी मुग्धा नायिका है। उसके नववय कामा रतौवामा²⁷ का वर्णन नाटक के तृतीय अङ्क में मिलता है तथा मृदुःक्रुधि वह द्वितीय अङ्क में चित्रित है-

(सरोषम्) चतुरिके । अस्ति किमतोऽप्यपरं श्रोतव्यम् ? तदेहि, गच्छावोऽन्यतः ।²⁸

मलयवती अपने पति से अत्यधिक प्रेम करती है। जब उसे जीमूतवाहन को गरुड़ द्वारा ले जाने का पता चलता है तो वह मूचिञ्छत हो जाती है। सचेत होने पर वह जीमूतवाहन के चूडामणि को छाती से लगाकर अग्नि में प्रविष्ट होना चाहती है। जिससे उसके पातिव्रत्य होने का परिचय मिलता है।²⁹ वह अत्यन्त सुन्दर नायिका है- न केवलं वीणाविज्ञानेनैव सुखं करोति । यावत् अनेन वीणाविज्ञानानुरूपेण रूपेणापि अक्ष्णोः सुखमुत्पादयति ।³⁰

वह नायक को देखकर उस पर आसक्त होती है और उसके वियोग में वह सन्तप्त हो जाती है। चेटी उसके हृदय पर चन्दन के पल्लवों को निचोड़कर लगाती है तथा केलो के पत्तों से हवा देती है। किन्तु नायिका की स्थिति उससे और बिगड़ जाती है। उसको पत्तों की हवा गर्म लगती है जिससे उसकी हृदय सन्तपतता का परिचय मिलता है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि हर्षदेव के नाट्यसाहित्य की नायिकाओं में नाटकधनाटिका की नायिका के सभी गुण उपलब्ध हैं। वह लज्जाशील, भीरु, आदर्शहिन्दू नारी, सङ्गीतकला में निपुण, भगवती गौरी की उपासिका, सुन्दर सुशील नायिका और पतिव्रता नारी है।

प्रियदर्शिका की ज्येष्ठा नायिका

वासवदत्ता उज्जयिनी नरेश महासेन प्रद्योत की पुत्री है। वह वत्सराज उदयन की पट्टमहिषी है। प्रस्तुत नाटिका में वह ज्येष्ठा नायिका (महारानी) के रूप में चित्रित है। ज्येष्ठा नायिका की विशेषता दशरूपक में दी है-

देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा। गम्भीरा मानिनी कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसङ्गमः।।³¹

साहित्यदर्पण भी ज्येष्ठा नायिका की विशेषता में कहता है-

संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः।

देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नपवंशजा।।

पदे-पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः।³²

ज्येष्ठा नायिका की सभी विशेषताएँ वासवदत्ता में हैं। ज्येष्ठा नायिका (महारानी) होने के कारण अन्तःपुर में इसकी प्रभुसत्ता है। वह वत्सराज से अत्याधिक प्रेम करती है। वत्सराज के प्रति उसका प्रेम सच्चा है। वह महाराज पर अपना अधिकार रखना चाहती है। वह आरण्यका को महाराज से दूर रखना चाहती है क्योंकि वह जानती है, यदि कहीं पर महाराज की दृष्टि इस आरण्यका पर पड़ गई तो महाराज उससे प्रेम करने लगेंगे और उसके प्रति महाराज का प्रेम कम हो जायेगा। वह महाराज के हृदय में अपना ही अधिकार चाहती है। वासवदत्ता का हृदय दयालुता से परिपूर्ण है। वह आरण्यका को पहले बन्धन में डाल देती है परन्तु जब उसे इस बात का पता चलता है कि आरण्यका ने विष पी लिया है तब वह अत्यन्त दयालु बनकर महाराज से उसकी चिकित्सा करने को कहती है। इसकी दयालुता का वर्णन चतुर्थ अङ्क में उस स्थान पर मिलता है जब उसे मालूम होता है कि वह प्रियदर्शिका है तब वह आँखों में आँसू भरकर प्रियदर्शिका से कहती है- प्रियदर्शने, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। पश्यैष महाराजस्तिष्ठति। कथं वेदनाप्यस्या नष्टा। किमिदानीं मयापराद्धमजानत्या, येन कुपिता नालपसि। तत्प्रसीद प्रसीद। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। न खलु पुनरपरात्स्यामि।

वासवदत्ता का व्यवहार कठोर भी है। उसका कठोर व्यवहार तृतीय अङ्क में देखने को मिलता है। महाराज मनोरमा के स्थान पर स्वयं अभिनय करने जाते हैं और वासवदत्ता को जब यह पता चलता है तो वह विदूषक और आरण्यका को पकड़ कर ले जाती है। आरण्यका को अपने कठोर व्यवहार से बन्धन में डाल देती है। वह उदयन से भी रूढ़ होकर चली जाती है। इस प्रकार वासवदत्ता में नाटिका की ज्येष्ठा नायिका के गुण उपलब्ध हैं। वह प्रगल्भा ज्येष्ठा और नायक को हमेशा त्रस्त और शङ्कित रखने वाली, महाराज के प्रेम प्रसङ्ग के सम्बन्धों को अपने अधीन रखने वाली है।

रत्नावली-नाटिका की ज्येष्ठा नायिका

रत्नावली-नाटिका की ज्येष्ठा नायिका भी वासवदत्ता है। वह महाराज उदयन की प्रधान महिषी है। उसकी प्रभविष्णुतापूर्ण स्थिति का वर्णन तृतीय अङ्क में मिलता है जब वह महाराज उदयन से रूठ कर चली जाती है तब वत्सराज उदयन विदूषक से कहते हैं कि मुझे देवी को मनाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं दीखता। इसीलिए वह महारानी को मनाने जाते हैं। जिससे उसके प्रभाव का पता चलता है। वह निर्भय भी है। वह चरणों पर गिरे महाराज की अवहेलना करती है।

वासवदत्ता बहुत ही चतुर है। वह सागरिका को महाराज के सामने नहीं आने देती क्योंकि वह महाराज की रूपपिपासा से परिचित है। जब सागरिका महाराज के सामने आ गई थी तब वह उसे सारिका के बहाने से वहाँ से निकाल देती है। वह अपने परिजनों पर क्रोधित होकर फटकार सुनाती है-

अहो ! प्रमादः परिजनस्य। यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत्।³³

वासवदत्ता चतुर होने के साथ हृदय से सरल भी है। अतिऋजुकेदानीं सा देवी यैव प्रत्येति।³⁴ वह परिजनवत्सला भी है। सुसंगते हतासि खलु त्वं मैवं परिजनवत्सललां देवी वञ्चयसे।³⁵ वह उदारशीला³⁶ दानशीला³⁷ भी है। वह धर्मश्रद्धालु भी है। इसका वर्णन प्रथम अङ्क में मिलता है जब वह मकरन्दोद्यान में कामदेव की पूजा करती है। वह सागरिका को महाराज की दृष्टि से दूर रखना चाहती है जिससे उसकी पति-प्रेम पर एकाधिकार रखने की इच्छा प्रकट होती है। वह महाराज से सागरिका मिलन पर रुष्ट होकर चली जाती है परन्तु उसका प्रेमी हृदय उसे चौन से नहीं रहने देता। वह बाद में सोचती है कि मैंने महाराज को उस स्थिति में छोड़कर अच्छा नहीं किया। इसलिए पीछे से जाकर महाराज के गले में बाहें डालकर उनको मना लूं। इससे उसकी कोमल मनःस्थिति का परिचय मिलता है।³⁸ इस कारण वासवदत्ता कलहान्तरिता नायिका भी मालूम होती है। कलहान्तरिता नायिका वह होती है जो प्रियतम के अपराध करने पर उसका क्रोध से तिरस्कार करती है तथा बाद में पश्चाताप करके दुःखी होती है। कलहान्तरिताऽमर्षाद्धूतेऽशयार्तिर्युक्।³⁹ साहित्यदर्पणकार ने भी कलहान्तरिता का लक्षण दिया है-

चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या। पश्चातापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा।।⁴⁰

अर्थात् जो क्रोध के मारे प्रार्थना करते हुए प्रियतम को ठुकरा दे और फिर पछतावे, वह कलहान्तरिता कहलाती है। वासवदत्ता धीर और गम्भीर स्वभाव की है। विदूषक जब उससे सागरिका से कहने योग्य बातें कहता है तो वह एकदम क्रोधित नहीं होती, अपितु महाराज के मुख से स्पष्ट प्रेम प्रसङ्ग को सुनकर ही अपने को प्रकट करती है। जिससे उसकी धीरता और गम्भीरता के अतिरिक्त मानव हृदयसुलभ अपमानसहिष्णुता भी व्यक्त होती है। वह दयालु हृदया नारी है। रत्नावली के समुद्र में डूब जाने की बात सुनकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं जिससे उसकी पारिवारिक ममत्व की अभिव्यक्ति प्रकट होती है। अग्निकाण्ड का दृश्य उपस्थित होने पर उसके दयालु हृदय की झलक मिलती है। उसे याद आता है कि उसने सागरिका को अन्तःपुर में कैद कर रखा है। उसे महाराज से तुरन्त छुड़ाने को कहती है। वह सागरिका से अपनी गलती के लिए क्षमा माँगती है। जिससे उसके सरल हृदयता का परिचय मिलता है। वह सती-साध्वी पत्नी है। इसका परिचय चतुर्थ अङ्क में मिलता है जब महाराज सागरिका को बचाने के लिए अग्नि में कूद पड़ते हैं, तब वासवदत्ता भी महाराज का अनुगमन करती है। जिससे उसके पतिव्रता का पता चलता है। नाटिका के अन्त में वासवदत्ता महाराज को सागरिका का हाथ समर्पित करती है। वह महाराज से उससे विशेष प्रेम करने को कहती है जिससे उसकी उदारता प्रकट होती है। इस प्रकार कह सकते हैं कि वासवदत्ता में ज्येष्ठा नायिका के सभी गुण उपलब्ध हैं और साथ में दानशील, सरलहृदया, पतिव्रता, उदारशील इत्यादि गुण भी मिलते हैं।

नायिका की सखियाँ

प्रियदर्शिका-नाटिका में नायिका आरण्यका की प्रियसखी मनोरमा है। नायिका के प्रति उसकी सहानुभूति रहती है और नायिका की सहायता के लिए वह सदैव तत्पर रहती है जो उसके हृदय की विशालता का परिचायक है। वह नायिका की स्थिति को देखकर अपनी सहानुभूति प्रकट करके उसकी सहायता करती है। तृतीय अङ्क में वह आरण्यका की स्थिति को देखकर आँखों में आँसू भरकर सहानुभूति प्रकट करती है। वह आरण्यका और वत्सराज का मिलन कराने में उसकी सहायता करती है। नाटिका के अन्त में वह नायिका की प्राण रक्षा करने का प्रमुख साधन बनती है। यदि वह वासवदत्ता को आरण्यका के विष पीने की बात न कहती तो वह मर भी सकती थी। उसमें परिस्थिति के अनुकूल चतुराई से अपने आपको बचा लेने का गुण भी है। वह

महाराज और आरण्यका के मिलन का सारा दोष विदूषक पर लगा देती है जिससे उसकी चतुरता का परिचय मिलता है। इस प्रकार वह एक चालाक, परिस्थिति के अनुसार बदलने वाली है। इस नाटिका में आरण्यका को बचाने में तथा आरण्यका और वत्सराज को मिलाने में उसकी प्रमुख भूमिका है।

रत्नावली-नाटिका में नायिका की सखी सुसङ्गता है। उसका नाटिका में विशेष स्थान है। वह सदैव नायिका सागरिका के साथ रहती है। वह सभी परिस्थिति में नायिका का साथ देती है। वह सागरिका के कार्य में रुचि लेती है और उसे कष्ट होने पर उसके साथ अपनी सहानुभूति प्रकट करती है। चित्रलेखन में भी उसकी रुचि है। वह महाराज उदयन के साथ सागरिका का चित्र अङ्कित करती है, जिससे उसकी चित्रकला लेखन कुशलता का परिचय मिलता है। सुसङ्गता अपनी सखी सागरिका से सच्चा प्रेम करती है। वह नायिका के प्रेम के लिए महारानी को धोखा तक दे देती है। नायक से नायिका को मिलाने के लिए वह वस्त्रपरिवर्तन करती है। वह सागरिका को वासवदत्ता तथा स्वयं काञ्चनमाला का भेष बनाकर महाराज से मिलने जाती है। इससे उसका सखी से सच्चे प्रेम का वर्णन मिलता है। सागरिका के साथ उसके सच्चे प्रेम का प्रमाण द्वितीय अङ्क में भी मिलता है जब महाराज उसे कर्णाभरण देते हैं परन्तु वह उसे लेने से इन्कार करती है। वह महाराज से सागरिका को मनाकर उससे बातें करने को ही अपना पारितोषिक समझती है। इससे स्पष्ट होता है कि वह अपनी सखी से सच्चा प्रेम करती है। वह उसके लिए कुछ भी करने के लिए सदैव तत्पर रहती है।

ज्येष्ठा नायिका की सखियाँ

प्रियदर्शिका-नाटिका की ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता की सखी धर्मपरायणा साधु महिला साङ्कृत्यायनी है। वह महारानी वासवदत्ता की पितृकुलागत परिव्राजिका और आदरणीय सखी है। वह पहले तो गर्भाङ्क नाटक की मनोरमा-विदूषक की योजना को न जानने के कारण नाटक के अभिनेयातिरेकों का समर्थन करती जाती है किन्तु रहस्योद्घाटन हो जाने पर 'कथमन्यदेवेदं प्रेक्षणीयकं संवृतम् अभूमिरियमस्मद्विधानाम्।' यह कहकर चली जाती है। साङ्कृत्यायनी के चरित्र की ऐसी कोई भी विशेष बात नहीं है जो सामाजिकों को प्रभावित कर सके।

रत्नावली-नाटिका में ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता की सखी काञ्चनमाला है। वह नाटिका में वासवदत्ता के साथ रहती है। वह नाटिका में वासवदत्ता का पथ-प्रदर्शन कराती है। वह वासवदत्ता की आज्ञाकारिणी है। काञ्चनमाला नाटिका में बहुत ही चतुर पात्र है। वह अपनी चतुराई से विदूषक और सुसङ्गता के मध्य वत्सराज और सागरिका मिलन के वार्तालाप को सुन लेती है। वह इस वार्तालाप को महारानी से कह देती है। जिस कारण वासवदत्ता स्वयं आकर महाराज को रंगे हाथों पकड़ लेती है। उसके हृदय में महारानी के प्रति प्रेम है। वह प्रेम के अर्थ को भलीभांति समझती है। इसलिए वह वासवदत्ता को प्रसन्न होने तथा पादपतित महाराज को क्षमा करने को कहती है ताकि उसे बाद में पछतावा न हो। इस प्रकार काञ्चनमाला आज्ञाकारिणी, मार्गदर्शक, वासवदत्ता की सहचरी, सरलहृदया के रूप में नाटिका में चित्रित है।

निष्कर्ष

संस्कृत साहित्य में नाटकों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। वह संस्कृत नाटककारों में रोमांचक प्रणय-नाटिका के निर्माता के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। श्रीहर्ष ने भी अपने नाट्यसाहित्य में चरित्र-चित्रण में अपनी स्वाभाविक निपुणता प्रदर्शित की है। जहाँ हर्षदेव के नाट्यसाहित्य की नायिका प्रियदर्शिका और रत्नावली-नाटिका की नायिका रूप में बहुत ही सुन्दर और चरित्र में बहुत ही उदात्त हैं वहीं नागानन्द नाटक की नायिका मलयवती के सौन्दर्य की छटा भी शोभनीय है। हर्ष के नाट्यकृतियों में प्रमुख पात्रों का प्रत्येक कार्य

औदात्य के द्वारा प्रेरित होता है। उनका प्रणय रोमाञ्चक होकर भी संयत तथा मर्यादित है। उनके हृदय में नायक के प्रति गाढ़ प्रेम प्रदर्शित होता है। इसलिए हर्षदेव की कृतियों में प्रमुख पात्रों का चरित्र उदात्त, प्रणयपूर्ण तथा कोमल है।

सन्दर्भ -

1. साहित्यदर्पण, 6.269-272
2. वही, 3.56
3. वही, 3.57
4. दशरूपकम्, पृ. 137
5. साहित्यदर्पण, 3.58
6. प्रियदर्शिका-नाटिका, पृ. 23-24
7. वही, पृ. 42
8. वही, पृ. 38-39
9. वही, 2.6
10. वही, पृ. 56-57
11. रत्नावली-नाटिका, 2.16
12. वही, 2.18
13. वही, 2.9, 10, 16, 18 और 3.11, 12, 13
14. वही, पृ. 58
15. वही, पृ. 86
16. वही, पृ. 145
17. वही, पृ. 64
18. वही, 2.11
19. वही, 3.11
20. वही, पृ. 56-64, 67
21. वही, 2.16, 17
22. वही, पृ. 99
23. वही, पृ. 157
24. वही, पृ. 49
25. नागानन्द-नाटकम्, 1.16
26. वही, 5.34
27. वही, 3.4, 12, 13
28. वही, पृ. 76
29. वही, पृ. 197
30. वही, पृ. 39
31. दशरूपक, 3.45
32. साहित्यदर्पण, 6.271-272
33. रत्नावली-नाटिका, पृ. 41
34. वही, पृ. 113
35. वही
36. वही, 2.21, 4.1
37. वही, पृ. 47, 157
38. वही, पृ. 149
39. दशरूपकम्, पृ. 158
40. साहित्यदर्पण, 3.82
41. प्रियदर्शिका-नाटिका, पृ. 98

37

हर्ष के नाटकत्रय में हास्य रस

स्वागतिका दास, ओम जी

रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका नाटकों में मूल रूप से नायक एवं नायिका के प्रणय-व्यापार का वर्णन किये जाने के कारण यह नाटक त्रय का मुख्य रस शृङ्गार रस है, किन्तु नाटकों के सफल तथा मनोज्ञ रूपायन हेतु वीर, करुण, हास्य, रौद्र आदि रसों का भी सन्निवेशन किया गया है। इन रसों में से नाटक त्रय में हास्य रस का प्रयोगस्थल विचार्य है। किसी भी रस की अनुभूति के लिए तीन प्रमुख उपादान होते हैं- विभाव, अनुभाव तथा स्थायी भाव। रस की उत्पत्ति मन की अलग-अलग प्रवृत्तियों से होती है। यह प्रवृत्तियाँ हृदय में संस्कार रूप में स्थित होते हैं, वे चिरकाल तक रहने वाले होते हैं और रसरूप में परिवर्तित होते हैं। इन प्रवृत्तियों को रस का स्थायी भाव कहते हैं। हास्य रस का स्थायी भाव हास है। किसी व्यक्ति या वस्तु की असाधारण वेशभूषा, आकृति, वाणी, और चेष्टा को देखकर मन में जो आनंद या विनोद का भाव आता है, उसे हास कहते हैं। जब यह हास विभाव, अनुभाव, और संचारी भावों से पुष्ट हो जाता है, तो वह हास्य रस में परिवर्तित होता है। हास्य रस का आलंबन विलक्षण प्राणी या हंसी जगाने वाली वस्तु होता है और आश्रय दर्शक होता है। हास्य रस के देवता प्रमथ हैं। रत्नावली, नागानन्द एवं प्रियदर्शिका नाटक त्रय में विदूषक के चरित्र के माध्यम से हास्यरस का प्रवर्तन किया गया है।

रत्नावली नाटक में विदूषक का नाम वसन्तक है। प्रथम अङ्क में मदन महोत्सव के समय दोनों चेटियों के साथ विदूषक नृत्य करता है। जब वो चेटियों को पूछता है की यह चर्चरी नृत्य मुझे भी सिखा दो। तब चेटियां बोली की यह चर्चरी नहीं है द्विपदी खण्ड है। द्विपदी खण्ड को विदूषक खण्ड नामधेय भोजन द्रव्य समझ लेता है जो हास्य उत्पन्न कराता है। यथा-

विदूषक:- भवति मदनिके भवति चूतलतिके मामप्येतां चर्चरीं शिक्षयतम् ।

उभे (विहस्य) - हताश न खल्वेषा चर्चरी ।

विदूषक:- तत् किं खल्वेतत् ।

मदनिका - द्विपदीखण्डं खल्वेतत् ।

विदूषक:- (सहर्षम्) किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियन्ते ।

चेट्यौ (विहस्य) - नहि नहि पठ्यते खल्विदम् ।

विदूषकः (सविषादम्) - यदि पठ्यते तदलं ममेतेन । वयस्यस्य सकाशमेव गमिष्यामि ।

पुनश्च द्वितीय अङ्क में वृक्ष पर बैठी सारिका की स्वर सुन कर विदूषक को भूत का भ्रम हो जाता है। इस प्रसङ्ग में हास्य रस की अवतारणा की गयी है। यथा-

विदूषकः - (उभौ सगर्व परिक्रामतः) (आकर्ण्य सभयं परावृत्य राजानं गृहीत्वा ससंभ्रमम्) (भो वयस्य एहि पलायामहे।)

राजा- किमर्थम्।

विदूषकः:- एतस्मिन्बक्कुलपाध्ये कोऽपि भूतः प्रतिवसति।

राजा - धिक् मूर्ख विस्रब्धं गम्यताम्। कुत ईदृग्विधानामत्र प्रभावः।

विदूषकः:- भोः एष खलु स्फुटाक्षरमेव मन्त्र्यते। तथदि मम वचनं न प्रत्येपि तदग्रतो भूत्वा स्वयमेव तावदाकर्णय।

राजा - (तथा कृत्वा श्रुत्वा च)

स्पष्टाक्षरमिदं यस्मान्मधुरं स्त्रीस्वभावतः। अल्पाङ्गत्वादिनिर्हादि मन्ये वदति सारिका।।6।।

(ऊर्ध्वं निरूप्य) कथं सारिकैवेयम्।

विदूषकः:- (ऊर्ध्वमवलोक्य)आः कथं सत्यमेव सारिका। (सरोषं दण्डकाष्टमुद्यम्य) आः दास्याः पुत्रि किं त्वया ज्ञातं सत्यमेव वसन्तको बिभेतीति। तत्तिष्ठ मुहूर्तम्। यावदनेन पिशुनधनहृदयकुटिलेन दण्डकाष्टेन परिपक्वमिव कपित्थफलमस्माद्वकुलपादपादाहृत्यभूमौ त्वां पातयिष्यामि। (इति हन्तुमुद्यतः।)

राजा - (निवारयन्) मूर्ख किमप्येषा रमणीयं व्याहरति। तत्किमेनां त्रासयसि। शृणुवस्तावत्।

(उभावाकर्णयतः)

विदूषकः - (आकर्ण्य) भो वयस्य श्रुतं त्वया यदेतया मन्त्रितम्। एषा भणति सखि क एष त्वयात्रलिखितः। सखि प्रवृत्तमदनमहोत्सवे भगवाननङ्ग इति। पुनरप्येषा भणति सखि कस्मात्त्वयाहमत्रलिखिता। सखि किमकारणं कुप्यसि। यादृशस्त्वया कामदेवआलिखितस्तादृशो मया रतिरालिखितेति। तदन्यथा संमाविनि किं तवैतेनालिखितेन। कथय सर्वं वृत्तान्तम्। भो वयस्य किं न्विदम्। नागानन्द नाटक में विदूषक का नाम आत्रेय है। इसे भूख बहुत सताया करती है, इसलिए यह खाने पीने की वस्तुओं से बहुत प्रसन्न रहता है। इस प्रसङ्ग में इसका अङ्गभङ्गी हास्यरस का उद्रेक करता है। यथा द्वितीय अङ्क में-

विदूषकः:- (नृत्यन्) ही ही भोः ! सम्पूर्णा मनोरथाः प्रियवयस्यस्य। अथवा न हि न हि भवत्या मलयवत्याः। अथवा न एतयोः, (भोजनमभिनयन्) ममेव एकस्य ब्राह्मणस्य।।

यह तृतीय अंक में विट-चेट चेटियों के द्वारा दासी के भ्रम के कारण बेवकूफ बनाया जाता है। इसे 'कपिलमर्कट' पुकारा जाता है। इसके यज्ञोपवीत तक की दुर्गति की जाती है। इसे वेदमंत्रों के अक्षर तक उच्चारण करना नहीं आता। अन्ततोगत्वा इसका मुँह काला किया जाता है। पात्रों के इस प्रकार के आचरण के माध्यम से हास्यरस की अवतारणा की गयी है। यथा-

विटः:- (विदूषकं निरूप्य) अरे कपिलमर्कट ! त्वमपि शेखरकं प्रतारयसि ? अरे चेट, गृहाणैनं यावन्नवमालिकां प्रसादयामि।

चेटः:- यद्भर्ता आज्ञापयति।

विटः:- 'विदूषकं मुक्त्वा चेट्याः पादयोः पतति) प्रसीद नवमालिके ! प्रसीद।

विदूषकः:- (आत्मगतम्) एष मेऽपक्रामितुमवसरः।

(पलायितुमीहते)

चेटः- (विदूषकं यज्ञोपवीते गृह्णाति । यज्ञोपवीतं त्रुटयति) कुत्र कुत्र कपिलमर्कट ! पलायसे ?

‘तदुत्तरीयेण गले बद्ध्वाऽऽकर्षति)

विदूषकः- भवति नवमालिके ! प्रसीद ! मोचय माम् ।

चेटी- ‘विहस्य) यदि भूमौ शीर्षं निवेश्य पादयोर्म पतसि ।)

विदूषकः- (सरोषं सप्रकम्पञ्च) भोः ! राजमित्रं ब्राह्मणो भूत्वा दास्याः पुत्र्याः पादयोः पतिष्यामि ?

चेटी- (अङ्घ्रिगुल्या तर्जयन्ती सस्मिन्) इदानीं पातयिष्यामि । शेखरक ! उत्तिष्ठ, प्रसन्ना तेऽहम् । (कण्ठे गृह्णाति । एष पुनर्जामातुः प्रियवयस्यस्त्वया खलीकृतः । एवञ्च श्रुत्वा कदाऽपि भर्ता मित्रवसुस्तुभ्यं कुप्यति । तदादरेण सम्मानयैनम् ।

विटः- यन्नवमालिका आज्ञापयति । (विदूषकं कण्ठे गृहीत्वा) आर्य ! त्वं मया ‘प्रियसम्बन्धिक’ इति कृत्वा परिहासितः । (घूर्णन्) किं सत्यमेव शेखरको मत्तः ? कृतः परिहासः । (उत्तरीयं वर्तुलीकृत्य आसनं ददाति) इह उपविशतु सम्बन्धी ।

प्रियदर्शिका नाटक में भी विदूषक चरित्र के माध्यम से हास्यरस की अवतारणा की गयी है । इस नाटक में विदूषक का नाम वसन्तक है । यहाँ विदूषक पण्डित नहीं है पर अपने आप को पण्डित मानता है । उस को अत्यन्त निद्रा आता है । वह अत्यन्त दयालु है । विदूषक के यही सब भाव के कारण नाटक में हास्यरस देखने को मिलता है । द्वितीयअङ्क में रानी वासवदत्ता व्रत के उद्यापन के लिए ब्राह्मणभोजन की व्यवस्था की गई है जहाँ एक उत्तम वेदज्ञ ब्राह्मण को स्वस्तिवाचन के लिए बुलाए जाने की व्यवस्था की गयी है । चेटी से यह बात सुन कर विदूषक स्वयं को वेदज्ञ ब्राह्मण मान के रानी के पास स्वस्तिवाचन के लिए जाने को तैयार हो जाता है जबकि उसको वेदों की संख्या कितनी है यह भी नहीं पता । राजा यह सुन के उस को महाब्राह्मण सम्बोधन कर के उसकी अल्पज्ञता का उपहास करते हैं जो दर्शक को हास्यरस प्रदान करता है । यथा-

विदूषकः- ननु भणितोऽस्मीन्दीवरिकया यथा-आर्य उपवासनियमस्थिता देवी वासवदत्ता स्वस्तिवाचननिमित्तं शब्दापयेत् इति । तद्यावद्धारा- गृहोद्यानदीर्घिकायां स्नात्वा देवीपार्श्वं गत्वा कुक्कुटवादं करिष्यामि । अन्यथा कथमस्माभिः सदृशा ब्राह्मणा राजकुले प्रतिग्रहं कुर्वन्ति । (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथमेव प्रियवयस्योऽद्य देव्या विरहोत्कण्ठाविनोदनानिमित्तं धारागृहोद्यानमेव प्रस्थितः । तद्यावद्वयस्येन सहैव गत्वा गथो- दितमनुष्ठास्यामि ।

राजा - (विलोक्य ।) वसन्तक । कस्मात्प्रहृष्ट इव लक्ष्यते ।

विदूषकः- अर्चति खलु देवी ब्राह्मणम् ।

राजा- यद्येवं ततः किम् ।

विदूषकः- (सगर्वम् ।) भोः । ईदृशः खलु ब्राह्मणः । यश्चतुर्वेदपञ्चवेदषड्वेदब्राह्मण सहस्रपर्याकुले राजकुले प्रथममहमेव देवीसकाशात्स्वस्तिवाचनं लभे ।

राजा- (विहस्य) वेदसंख्ययैवावेदितं ब्राह्मण्यम् । तदागच्छ महाब्राह्मण । धारौगृहोद्यानमेव गच्छावः ।

विदूषक को अत्यन्त निद्रा आती है । जब उदयन वासवदत्ता से छिप कर आरण्यका के साथ मञ्च पर अभिनय कर रहे होते हैं तब निद्रा में ही विदूषक वासवदत्ता को सब सत्य बता देता है । यथा-

विदूषकः- (निद्राजडमुत्थाय सहसा विलोक्य ।) मनोरमे किं नर्तित्वागतः प्रियवयस्यः । अथवा नृत्यत्येव ।

वासवदत्ता - (सविषादम् ।) कथमार्यपुत्रे नृत्यति । मनोरमेदानीं कुत्र ।

विदूषकः- एषा चित्रशालायां तिष्ठति ।

मनोरमा- (सभयमात्मगतम्) कथमन्यथैव हृदये कृत्वा देव्या मन्त्रितम् । एतेनापि मूर्खचटुकेनान्यथैव बुद्ध्या सर्वमाकुलीकृतम् ।

क्रुद्धा वासवदत्ता जब आरण्यिका को बन्दी बना लेती हैं तब उदयन अत्यन्त दुःखी हो कर विदूषक से उस को बन्दीशाला से मुक्त करने का उपाय पूछते हैं । तब विदूषक अपने सैन्यवाहिनी के सहायता से अन्तःपुर पर आक्रमण कर के आरण्यिका को मुक्त करने का परामर्श देता है । उदयन रानी वासवदत्ता को देवी सम्बोधन कर के उनको प्रसन्न करने का उपाय पूछते हैं तो विदूषक देवी चण्डी को प्रसन्न करना समझ के उपवास आदि व्रत करने का परामर्श देता है । उस की ऐसे मूर्खतापूर्ण वचनों से नाटक में दर्शक हास्यरस की अनुभूति करते हैं । यथा-

राजा- वयस्य क इदानीमभ्युपायः प्रियां मोचयितुम् विदूषकः- भो वयस्य मुञ्च विषादम् । अहं तम् उपायं कथयिष्यामि ।

राजा- (सहर्षम्) वयस्य त्वरिततरमभिधीयताम् ।

विदूषकः- भो त्वं तावदनेकसमरसंघट्टप्रभावबाहुशाली । पुनरप्यनेकगजतुरगपदातिदुर्विषहबल समुदितः । तत्सर्वत्र संदोहेनान्तःपुरं सुपीडितं कृत्वेदानीमेवारण्यिका मोचय ।

राजा- वयस्य अशक्यमुपदिष्टम् ।

विदूषकः- किमत्रशक्यम् । यतस्तानकुब्जवामनवृद्धकञ्चुकिवर्जितो मनुष्योऽपरो नास्ति तत्र ।

राजा- (सावज्ञम्) मूर्ख किमसंत्रद्ध प्रल्पसि । देव्याः प्रसादं मुक्त्वा नान्यस्तस्या मोक्षणाभ्युपायः । तत्कथय कथं देवीं प्रसादयामि ।

विदूषकः- भो, मासोपवास कृत्वा जीवित धारय । एनं देवी चण्डी प्रसत्स्यति ।

राजा- (विहस्य ।) अलं परिहासेन ।

उपरोक्त आलोचना से स्पष्ट प्रमाणित होता है की कवि हर्षदेव ने अपने नाटकों में हास्यरस का भरपूर सन्निवेशन किया है । यह उनके कवित्व की पराकाष्ठा है कि शृंगार एवं वीर रस प्रधान नाटकों में वे न केवल हास्य रस का अनेक स्थल पर प्रयोग किये हैं, अपितु उत्तम शैली से हास्य रस को अन्य सहायक रसों के साथ समाहित भी किये हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमा शङ्कर शर्मा ऋषि, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन
3. संस्कृत साहित्य का प्रामाणिक इतिहास, डॉ. रमाशङ्कर त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
4. रत्नावली नाटिका, पण्डित श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सिरिज, बनारस
5. नागानन्द नाटक, संसारचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी
6. *The Priyadarshika of Shree Harshadeva*, M.R. Kale, Messrs- Gopal Narayan & co-, Kalbadevi road, Bombay

रत्नावली नाटिका में शृंगारेत्तर रसों का अनुप्रयोग

कृपा भास्कर सचदेव

रस शब्द का प्रयोग संस्कृत जगत में वैदिक काल से लेकर अभी तक विभिन्न अर्थों में होता आया है। वेद, वेदांग, ब्राह्मण, उपनिषद, आयुर्वेद, कामशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र तथा अन्य ग्रंथों से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि रस का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। वेद वेद शब्द विद् धातु (विद् ज्ञाने) से घञ् (अ) प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। जिसमें समस्त विद्याओं के आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान के साथ-साथ रस का प्रयोग गौ, दुग्ध, मधु और सोमरस आदि अर्थों में हुआ है। यथा- **जन्म रसस्य बावृधे । स्वाद रसो मधुपेय वराय ।**^१ अर्थात् इससे स्पष्ट है कि वस्तुतत्त्व को ही कालान्तर में रस कहा गया, सम्भवतः इसी आधार पर धातुशक्ति, वास्तु, स्वाद, द्रव्य गुण आदि अनेक अर्थों में रस का उपयोग बताया गया है। वेदोक्त में सम्भवतः अनेकानेक आधिभौतिक कल्पनाओं की तरह रस को भी उपनिषत्काल में आध्यात्मिक स्वरूप में देखा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्म को रसमय का स्वरूप बताया गया है। क्योंकि इसे पीने (प्राप्त करने) से आत्मा को आनंद का अनुभव होता है। जैसा-

रसो वै सः । रसं ह्योवाय लाब्ध्वानंदी भवति ।^२

शृंगारेत्तर रस :

महाकाव्य अथवा नाट्य में सूक्ष्म रूप से विनियोजित शृंगारेत्तर रसों को अङ्ग रस के नाम से वर्णित किया जाता है। ये अन्य रस अत्यन्त रोचक, चमत्कार जनक होने के साथ ही प्रमुख रूप से संयोजित अङ्गी रस को परिपुष्ट करते हैं। जैसे रत्नावली नाटिका में हर्ष ने मुख्यतः श्रृङ्गार रस की योजना के साथ साथ गौण रूप में अन्य रसों का भी उचित संयोजन इस प्रकार प्राप्त होता है।

हास्य:

हास्य रस अपने या अन्य व्यक्ति के विकृत अलंकरण, वाणी, वेषभूषा, तथा चंचलता, निर्लज्जता, व्यर्थालाप, चेष्टा आदि के नाट्य से उत्पन्न होता है।^३ इसका स्थायीभाव हास है। हास्य आत्मस्थ तथा परस्थ के भेद से दो विभाग किया गया है।^४ हास के निमित्त जब विदूषक नाट्य में विकृत अलंकरण, वाणी, वेषभूषा, तथा चंचलता, निर्लज्जता, चेष्टा इत्यादि से स्वयं हँसता है तो वह आत्मस्थ कहा जाता है और जब वह सहृदय, सामाजिकों, दर्शकों को हँसाता है तो वह परस्थ कहा जाता है। भरतमुनि एवं अन्य आचार्यों ने स्वभाव भेद से छह प्रकार के हास्य बताये हैं। यथा -उत्तम प्रकृतिगत 'स्मित' तथा 'हसित' हास्य। मध्यमः स्वाभाविकः 'घृणितः' 'हास्यास्पदः' च हास्यः। नीचस्वभावः, 'अहास्य' अत्यन्तं हास्यं च हास्यम्।^५ रत्नावली नाटिका में विदूषक की

उक्तियों, अभिनयों में हास्य का पुट मिलता है। विदूषक कभी आत्मचेतन तो कभी पारमार्थिक मध्यम स्वभाव के कथन से हास्य विनोद का आभास हुआ। रत्नावली नाटिका में विदूषक मदन महोत्सव में नृत्य कर रही चेटियों के साथ नृत्य करने लगता है और उनके स्वर को चरचरी कहता है। तदोपरान्त मदनिका ने चरचरी गीत का विवेचन, विदूषक से दो-पंक्ति वाले अंश के रूप में किया। इसलिए विदूषक दो पाद वाले टुकड़े के टुकड़ों से लहू बनाने की बात करते हैं- ‘किमेतेना खंडेना मोदकः क्रियते’⁶ यहाँ पर विदूषक आलम्बन तथा उसकी वाक्वेष्टा उद्दीपन विभाव तथा प्रसन्नता आदि अनुभावों से परिपुष्ट हास स्थायी भाव हास्य रस को अभिव्यक्त कर रहा है। द्वितीय अंक में वृक्ष पर बैठी हुई सागरिका की स्वर सुनकर विदूषक नृप से कहता है कि हे मित्र इस पर भूत रहता है किन्तु वास्तविक स्थिति से प्रतीत होता है की वह डींगे हौंकने लगता है और क्रोध से छड़ी उठाकर कहता है। (सरोषं दण्डकाष्टमुघम्य) आ दास्याः पुत्रि, किं त्वं जानासि सत्यमेव वसन्तको बिभेतीति। तत्तिष्ठ मुहुर्त यावदतेन पिशून जनहृदयकुटिलेन दण्डकाष्टेन परिपक्वमिव कपित्थफलमस्माद्वकुलपादपादा हत्य भूमौ त्वां पातयिष्यामि।।⁷ यहाँ विदूषक का भाव और वाक् उत्तेजना का भाव तथा प्रसन्नता का भाव है। इस प्रकार हँसी हास्य के स्थायी भाव को व्यक्त कर रही है। विदूषक ने अन्यत स्थलों पर अपने वाक् पटुता से हास्य रस की सृष्टि की है।

करुण रस :

करुण शोक, क्लेश में किसी प्रियजन से वियोग, संपत्ति की हानि, दुर्घटना और व्यसन, मृत्यु, कारावास, पलायनमें पड़ना जैसे कष्टसे उत्पन्न होता है। शोक नामक स्थायी भाव से युक्त रस करुण रस कहलाता है।⁸ रत्नावली नाटक में सागरिका का बंधन के कारण उत्पन्न दुःख दयनीय है। ततः सोर्ध्व प्रेक्ष्य दीर्घ निःश्वस्य सुसङ्गते किमिदानीं तवानया कथया इति भणित्वा रोदितु प्रवृत्ता।⁹ यहाँ वासवदत्ता द्वारा बन्दी बनाये जाने पर सागरिका का यह शोक विलाप है। रत्नावली में सागरिका नायक के वियोग को सहन करने में असमर्थ होकर आत्महत्या करने का प्रयास करती हुई अपने माता पिता का स्मरण करते हुए अश्रुपूर्ण स्वर में बोलती है। ‘हा तात। हा अम्ब। एषेदानीमहमनाथा शरणा विपद्येमन्दभागिनी।’¹⁰ अन्तःपुर में अग्नि की घटना के द्वारा कवि ने वासवदत्ता तथा सागरिका के करुण की भी व्यंजना की है। शृङ्खाला से बंधी हुई सागरिका चारों ओर अग्नि देखकर बोलती है। ‘हा धिक समन्ततः प्रज्वलितो हुतवहः। अद्या हुतवहो दिष्टया करिष्यति में दुखावसानम्।’¹¹ उपरोक्त उदाहरणों में, सागरिका, जिसे देवी समझती है उसे वासवदत्ता ने बंदी बना लिया था, एक आश्रित विभाव है। सागरिका के उत्थान से स्नेह और उसका शोक विछोह भावनाओं को उत्तेजित कर रहे हैं। यह अत्यंत दुःख, पीड़ा की अनुभूति है। चिंता, खेद, स्मृति, वैराग्य, भ्रम और अवसाद की विकृत भावनाओं से पोषित स्थायी दुःख की शोकमय दृश्यप्रतीत हो रहा है।

रौद्र रस :

रौद्र रस क्रोध नामक स्थायी भाव से युक्त होता है। इसका उद्भवदानव, राक्षस, तथा उद्धत प्रकृति, के व्यक्तियों में होता है। किन्तु समयानुसार अन्य प्रकृतिस्थि व्यक्तियों में भी यह उत्पन्न हो सकता है। यह दुर्वचन, अपमान, बालादाकर्षण, असत्य वचनों के माध्यम से आरोपित द्रोह मात्सर्य आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है।¹² रत्नावली नाटिका के प्रथम अंक में नंदी में शिव को पार्वती को दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विध्वंस की घटना बताते हुए वर्णित किया गया है। जिसमें भयानक आकर्षण की अभिव्यक्ति है। “क्रोधे द्वैर्दृष्टि पात्रैस्त्रिभिरुपशमिता वह्नयोऽभी त्रयोऽपि। त्रासार्ता ऋत्विजोऽधश्चपलग्ना हतोष्णीषपट्टाः पतन्ति। दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं विद्रुतं चापि देवैः। शंसन्तित्यात्तहासो मखमंथन विधौ पातु देव्यै शिवो वः।।”¹³

उपर्युक्त श्लोक में क्रोध स्थायी भाव है, गण आलम्बन विभाव है। पुरोहित आदि गत भय संचारिभाव है और उनका नीचे गिरना, दक्षपत्नी का विलाप तथा देवों का भागना आदि चेष्टाएँ अनुभाव हैं।

वीर रस :

उत्साह नामक स्थायी भाव से उत्पन्न रस को वीर रस कहा गया है। यह असम्मोह, नीति, बल, पराक्रम, अध्यवसाय, शक्ति प्रताप प्रभाव आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है।¹⁴ इसके युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर, संज्ञक तीन विभाग किये गये हैं।¹⁵ आचार्य विश्वनाथ के अनुसार उत्तम पात्र में आश्रित वीर रस होता है। यथारत्नावली के चतुर्थ अङ्क में विजयवर्मा द्वारा कोसलाधिपति के युद्ध वर्णन के प्रसङ्ग में वीर रस की योजना की गयी है। यथा-

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्बभागा न्विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन् ।
वेगाद्गणान्विमुञ्चन्समदकरिघटोत्पिष्टपतिर्निपत्य - प्रत्यैच्छद्वान्छितापिद्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ।।¹⁶

तथा - “अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृतोत्तमाङ्गोःक्षणं - व्यूढासृक्सरिति स्वप्नव्यहरणे वर्मोद्वलद्वहिनि ।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभव न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।।¹⁷

उपरोक्त स्थानों में शत्रु कोसलाधिपति आलंबन तथा रुमानवन का पराक्रम प्रेरक भाव हैं तथा शत्रु को परास्त करने का साहस, स्थिरता तथा धैर्य भाव हैं। रुमानवांगट उत्साह नामक स्थायी भावना, जो गर्व, धैर्य और हर्ष जैसी विचलित भावनाओं से पोषित होती है, अतः वीर रस की प्रतीति है।

वीभत्स रस :

‘जुगुप्सा’ भयानक स्वाद का स्थायी भाव है। यह अवमानना अरुचिकर और अवांछनीय बातें देखने और कहने जैसी भावनाओं से उत्पन्न होती है। आचार्य भरतमुनि ने इसके तीन भेद किया है। क्षोभण, उद्वेगी तथा शुद्ध। जिसमें क्षोभण वीभत्स माँस, मज्जा, रक्त इत्यादि विभावों से उत्पन्न होता है। उद्वेगी वीभत्स कीड़े दुर्गन्ध, वमन आदि विभावों से तथा जघन स्तन आदि के प्रति वैराग्य से होने वाले घृणा विभावों से शुद्ध वीभत्स होता है।¹⁸ रत्नावली नाटिका में क्षोभण वीभत्स रस की योजना विजयवर्मा द्वारा वर्णित युद्धभूमि के प्रसंग में दृष्टित होती है। यथा - “अस्त्राव्यस्तशिरस्त्राशस्त्राकषणोत्कृतोत्तमाङ्गोःक्षणं- व्यूढासृक्सरिति स्वप्नव्यहरणे वर्मोद्वलद्वहिनि । आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभव न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।।¹⁹ वर्तमान सन्दर्भ में युद्धक्षेत्र का मोह और अरुचिकर एवं अरुचिकर गंध वाले मांस, सिर, रक्त आदि का रोमांचक भाव है। मिर्गी, भ्रम, आवेग, मृत्यु आदि व्यभिचारी भावनाओं से पोषित ‘तिरस्कार’ भय के स्थायी भाव को व्यक्त कर रहा है।

अद्भुत रस :

‘विस्मय’ नामक स्थायी भाव से उत्पन्न रस को अद्भुत रस कहा गया है। यह दिव्य जन के दर्शन, सुलभ एवं दुर्लभ इष्ट की प्राप्ति, उपवन तथा देवकुलादि गमन, इन्द्रजाल दर्शन आदि विभावों से उत्पन्न होता है। अद्भुत रस के दो भेद स्वीकार किए गये हैं दिव्य और आनन्दज।²⁰ रत्नावली नाटिका में ऐन्द्रजालिक के इन्द्रजाल में अत्यन्त मनोहारी अद्भुत रस की योजना हुई है। जो कि दिव्य तथा आनन्दज उभयरूप है। ऐन्द्रजालिक द्वारा दिखाये गये इन्द्रजाल में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि को देखकर राजा उदयन अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर देवी वासवदत्ता से कहता है। यथा - “एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंकरोऽयं दोर्भिर्देत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिहैश्चतुर्भिः । एषोऽत्यैरावतरथस्त्रिदश पतिरमी देवि देवास्तथान्ये नृत्यन्ति

येमि चैताश्चल चरण रणन्पूरा दिव्यनार्यः । ¹⁷ प्रस्तुत पद्य में आकाश आलम्बन तथा आकाश में स्थित ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इन्द्र आदि देवता और नृत्य करती हुई अप्सरायें उद्दीपन विभाव है। नेत्र का विकास आदि अनुभाव है। हर्ष, आवेग तथा रोमांच इत्यादि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट विस्मय स्थायीभाव अद्भुत रस को अभिव्यजित करता है। यहाँ पर देवगण का वर्णन होने के कारण दिव्य अद्भुत रस है।

इसी प्रकार रत्नावली के चतुर्थ अंक में अन्तःपुर में लगी हुई भीषण अग्नि की ज्वालाओं से अत्यन्त भयभीत हुई देवी वासवदत्ता राजा उदयन से अन्तःपुर में बन्धित सागरिका को बचाने का निवेदन करती है। तब सागरिका को बचाने हेतु गया हुआ उदयन सागरिका को देखकर विस्मय तथा उसके स्पर्श के आनन्द का अनुभव करते हुए कहता है। **व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः । यतः संतापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ।** ²² और जब अंतःपुर की अग्नि अचानक शांत हो जाती है तो राजा उदयन बड़े आश्चर्य से कहते हैं, **श्ववासौ गतो हुतवहस्तादवस्थमेतद् ।** ²³ यहाँ उदयन और सागरिका निर्भरता है और दुर्लभ अभीष्ट प्राप्ति प्रेरक भावना है। आश्चर्य की स्थायी भावना, लालसा, बिना पलक झपकाए अवलोकन और आनंद, रोमांच आदि जैसी विचलित भावनाओं से पोषित, अद्भुत स्वाद व्यक्त करती है। यहां प्रियतम के दर्शन से आनंद का अद्भुत स्वाद मिलता है।

भयानक रस :

‘भय’ भयानक स्वाद का स्थायी भाव है। यह विकृत ध्वनि यानि डरावनी आवाज, भूत-प्रेत आदि का दिखना, हिंसक जानवरों की लड़ाई का दृश्य, जंगल आदि सूने घर में जाना, गुरु तथा राजा का अपराध करना आदि कार्यों से भयानक रस उत्पन्न होता है। ²⁴ स्वजन वध अथवा बन्धनादि का दर्शन श्रवण तथा कथनादि भयानक रस के विभाव हैं। इसमें समस्तपसीना छूटना, मुँह सूख जाना, शरीर का काँपना, रङ्ग फीका पड़ना आदि अनुभाव होते हैं। दीनता, सम्भ्रम सम्मोह, त्रास आदि जिसमें व्यभिचारी भाव होते हैं। रत्नावली नाटिका में वानर को देखकर तथा अन्तःपुर में अचानक आग लगने की घटना द्वारा अन्तःपुर के भय का वर्णन हुआ है। जो भयानक सत्व के दर्शन से उत्पन्न होने वाला भय है। यथा - **“नष्टं वर्षवरेर्मुष्यगणनाभावादपास्य त्रपा मन्तः कञ्चुकीकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः । पर्यन्ताश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैःकृतं कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाशङ्किनः ।** ²⁵ यहाँ वानर आलम्बन विभाव तथा अङ्गनाओं को आतङ्कित करने वाली उस बन्दर की उछल कूद उद्दीपन विभाव है। तथा उसके डर से लोगों का भागना, छिपना इत्यादि अनुभाव और दैन्य, सम्भ्रम, सम्मोह आदि व्यभिचारी भावों से पुष्ट भय नामक स्थायीभाव भयानक रस को अभिव्यक्त कर रहा है। इसीप्रकार अन्तःपुर में अग्नि लगने के कारण जो आतङ्क उपस्थित होता है, उससे भयानक रस का सञ्चार हुआ है। यथा-

“हर्ष्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः । सान्द्राद्यानदुमाग्रग्लप्लपनपिषु नितात्यन्ततीव्राभितापः । कुर्वन्क्रीडामहीघ्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातैः । रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः । ²⁶

उपर्युक्त प्रसङ्ग में भयानक आग आलम्बन तथा उसकी तीव्र ज्वालाओं से उत्पन्न ताप उद्दीपन विभाव है। तथा उसके भय से लोगों का चिखना-चिल्लाना, घबराना, भागना, डरना आदि अनुभावों और दैन्य सम्भ्रम, सम्मोह आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट भय नामक स्थायीभाव भयानक रस को सृष्टिकरता है।

निष्कर्ष :

इस शोधपत्र में शृंगारेत्तर रस का विवेचन किया गया है जिसमें हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, वीभत्स आदि है। इन रसों का अनुप्रयोग रत्नावली नाटिका में अनेकशः वृत्तांतों में प्राप्त होता है। रत्नावली

नाटिका का अध्ययन से प्रतीत होता है कि किसी कथा, नाटक या नाटिका में मुख्य रस की आवश्यकता है उतना ही गौण रसों की जरूरत है। जैसे - रत्नावली के चतुर्थ अङ्क में विजयवर्मा द्वारा कोसलाधिपति के युद्ध वर्णन के प्रसङ्ग में वीर रस की योजना की गयी है। यथा- **योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्वभागा न्विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन्। वेगाद्वाणान्विमुञ्चन्समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिर्निपत्य-प्रत्यैच्छद्वान्छितापिद्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन।**

उसी प्रकार करुण रस का वर्णन मिलता है- रत्नावली नाटक में सागरिका का बंधन के कारण उत्पन्न दुःख दयनीय है। ततः सोर्ध्व प्रेक्ष्य दीर्घ निःश्वस्य सुसङ्गते किमिदानीं तवानया कथया इति भणित्वा रोदितु प्रवृत्ता। निष्कर्षतः इस शोध पत्र में प्राचीन इतिहास के साथ ही साथ सहृदयों, सामाजिकों सुखात्मक बोध का प्रकाश प्रकशित हो ऐसा प्रतीत होता है।

सन्दर्भ -

1. (ऋग्वेद 01/37/05)
2. (ऋग्वेद 06/24/21)
3. (तैत्तरीय उपनिषद् 02/07)
4. विकृताकृतिवाग्देवैरात्मनोऽथ परस्थ वा। हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यस्त्रिप्रकृतयः स्मृतः।। 4/75
5. “विकृताकरावाग्देवेष्वेष्टादेः कुहकाद्भवेत्। हास्यो हासस्थायिभावः ‘वेतः प्रथमदैवतः।। (सा.द.3/214)
“ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितायहसिते च। नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेव षडभेदः।।
(सा. द. 3/217), (दशरूपक 4/76,77)
6. रत्नावली, 1/22 पृष्ठ
7. रत्नावली, 2/58 पृष्ठ
8. इष्टनाशाद् निष्ठापती शोकात्मा करुणोऽनुतम्। (दशरूपक 4/81)
9. रत्नावली 4/132 पृ.
10. रत्नावली 3/118 पृ.
11. रत्नावली 4/160 पृ.
12. दशरूपक 4/74 पृ.
13. रत्नावली 1/3
14. वीरः प्रतापः विनयाध्यवसायसत्त्वमोहा विषादनयविस्मय विक्रमाद्यैः। उत्साह भूः स च दयारणदानर्योगात्त्रेधाकिलात्र मतिगर्वधृति प्रहर्षाः।। (दशरूपक 4/72)
15. न। शा. 6/79
16. रत्नावली 4/5
17. रत्नावली 4/6
18. दशरूपक 4/74, न। शा. 6/79
19. रत्नावली 4/6
20. न। शा. 6/82
21. रत्नावली 4/11
22. रत्नावली 4/18
23. रत्नावली 4/162 पृ.
24. विकृतरवसत्त्व दर्शनसंगामारण्य शून्यगृहममनात्। गुरुनृपयोर पराधात्कृतञ्च भयानको ज्ञेयः।। (ना. शा. 6/69)
(दशरूपक 4/89)
25. रत्नावली 2/3
26. रत्नावली 4/1

39

हर्षवर्धन के रूपकत्रय में रस विमर्श

विष्णु कुमार मिश्र

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में नवरसों में शृंगार रस को ही प्राथमिकता दी गई है क्योंकि शृंगार ही एक ऐसा रस है जिसमें मानव हृदय को आह्लादित करने की क्षमता है। यही कारण भी माना जा सकता है कि अधिकांशतः आचार्यों ने शृंगार रस प्रधान नाटक, नाटिका और काव्यों की रचना की है। हर्षवर्धन ने सभी रसों को बहुत ही सहजतया अवसरानुकूल उपयोग किया है जो इस प्रकार से दृष्टिगोचर होते हैं -

शृंगार रस - जैसे कि विदित है कि प्रियदर्शिका और रत्नावली नाटिका का तो प्रधान रस ही शृंगार है। तो इन दोनों नाटिका में तो बहुत ही रमणीय उदाहरण देखे जा सकते हैं। यथा - प्रियदर्शिका नाटिका के द्वितीय अंक में जब राजा प्रथम बार प्रियदर्शिका (आरण्यका) को देखता है तो उसका वर्णन कुछ इस प्रकार करता है। क्या पृथ्वी को देखने के लिए कोई नागकन्या पाताललोक से निकल आई है? परन्तु यह कल्पना संगत नहीं है, क्योंकि मैंने पाताललोक में ऐसी कन्या नहीं देखी, वहाँ तो मैं गया हूँ। यह शरीर धारिणी चन्द्रिका हो सकती है परन्तु दिन में चन्द्रिका के दर्शन की आशा नहीं की जा सकती है, तो फिर कमल हाथ में लिए लक्ष्मी के समान यह कौन स्त्री दिखाई दे रही है : **पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता । मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी । मूर्तौ स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिग् दर्शनं । केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ।** इसी प्रकार रत्नावली में भी शृंगार रस की अद्भुत छटा देखने को मिलता है। यथा - रत्नावली के द्वितीय अंक में राजा उदयन सागरिका के सौन्दर्य वर्णन करते हुए कहता है -

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयतस्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः कृशाङ्गयाः संतापं वदति नलिनीपत्रशयनम् ।।²

स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत् कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम् ।

अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्यां यथास्याः स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति ।।³

अर्थात् पीन स्तनों और जाँघों के सम्पर्क से दोनों ओर से म्लान कटिभाग के सम्पर्क को न पाकर मध्य में हरी और शिथिल बाहुलताओं के इधर-उधर प्रक्षेप की चञ्चलता से अस्त-व्यस्त यह कमलिनीदल की शय्या, दृशाङ्गी सुन्दरी के सन्ताप को प्रकट करती है। छाती पर रखा गया यह बड़ा सा कमलिनी-दल इसके अन्दर कामदेव से उत्पन्न हुई दशा (व्याकुलता) को उस प्रकार नहीं बतला रही है जिस प्रकार कि अत्यधिक संताप से मुरझाये हुए मण्डलाकार इसके दोनों स्तनों की विशालता को बतला रहा है। हर्ष ने तृतीय अंक में संकेत स्थल पर कामिनी की दशा का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है -

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्ते ददाति न शंकिता घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहोमयतितरां संकेतस्था तथा हि कामिनी ।।¹

अर्थात् संकेतस्थल पर स्थित कामिनी (जान लिये जाने के भय से शंकित अनुरागभरी दृष्टि को सामने नहीं करती है, कण्ठालिंगन करने पर विशेष अनुराग से वक्षःस्थल को सटने नहीं देती, प्रत्यक्ष करके रोकने पर भी मैं जा रही हूँ इस प्रकार बार-बार कहती है, तथापि कामिनी वास्तव में आनन्ददायिनी होती है। हर्षवर्धन केवल शृंगार रस का ही नहीं अपितु प्रेम के गहनतम पक्ष की अभिव्यंजना का भी सामर्थ्य रखते हैं जो इस पद्य से दृष्टिगोचर होता है-

समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानादनुदिनं व्यलीकं वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्व खलु मया ।

प्रिया मुञ्चत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसह्यं हि भवति ।।¹

अर्थात् अत्यन्त प्रेम के सम्मान से स्नेह दिन पर दिन बढ़ता ही गया, पहले कभी न किया गया यह अपराध वास्तव में आज मेरे द्वारा किया गया देखकर सहन न कर सकने वाली यह प्रिया स्पष्ट है कि जीवन त्याग कर देगी क्योंकि बड़े हुए प्रेम का टूटना असह्य हो जाता है। इसी प्रकार का आह्लादजन्य शृंगार रस का पद्य नागानन्द में भी प्राप्त होता है। नागानन्द के तृतीय अंक में नायक अपनी नायिका के विषय में कहता है - दृष्ट्वा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभषिता शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते। नियर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहेते जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया।¹ मेरो नवोढा प्रिया, मेरे देखने पर आँखें नीची कर लेती है, मेरे बात-चीत करते पर मुँह नहीं खोलती, शय्या पर (साथ लेटने पर) मुँह फेर लेती है, किसी प्रकार गले लगाने पर काँपने लगती है, शयनगृह से सखियों के बाहर निकल जाने पर स्वयं भी बाहर निकल जाने की चेष्टा करती है। बस, इस उलटे-पलटे आचरण से ही वह अब मुझे बहुत प्यारी लगती है। तृतीय अंक में ही नायिका के सौन्दर्य वर्णन करते हुए नायक कहता है कि -

खेदाय स्तनभार एव किमु ते मध्यस्य हारोऽपरः । ताम्यत्यूरयुगं नितम्बभरतः काञ्च्याऽनया किं पुनः ।

शक्तिः पादयुगस्य नोरुयुगलं वोढुं, कुतो नूपुरे । स्वाङ्गैरेव विभूषिताऽसि वहसि बलेशाय किं मण्डनम् ।¹

अर्थात् अर्थात् कुचों का भार ही तुम्हारे कटिभाग को थकाने के लिए (पर्याप्त) है, फिर दूसरे हार से क्या करना है? नितम्बों के भार से ही दोनों जंघाएँ थकी जा रही हैं, फिर इस करधनी से क्या करना है? दोनों पैरों की शक्ति दोनों जंघाओं को वहन नहीं कर पा रही है, फिर पायजेबें क्यों? तुम अपने अंगों से ही शोभित हो रही हो, फिर क्लेश के लिए आभूषण क्यों धारण कर रही हो? इस प्रकार अनेकों शृंगार रस के सुंदर उदाहरण हर्षवर्धन के रूपकत्रय में यत्र तत्र प्राप्त होते हैं। जिनके द्वारा उन्होंने सभी वर्णनों को सजीव सा कर दिया हो, ऐसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार की सजीवता अन्य रसों के विषय में भी प्राप्त होता है।

वीर रस - नागानन्द नाटक में प्रधान रस वीर है। धर्नूजय ने वीर रस के तीन भेद किये हैं- दयावीर, युद्धवीर, दानवीर।¹ इनमें से दयावीर ही इस नाटक का अभिमत प्रधान रस है। लेकिन दयावीर के अतिरिक्त अन्य रसों की भी अंग रूप में इस नाटक में नियोजना की गई है। वैसे तो नागानन्द नाटक में दयावीर सर्वत्र ही व्याप्त है किन्तु यहाँ पर कुछ उदाहरणों को ही प्रस्तुत किया जा रहा है, जब जीमूतवाहन शंखचूड़ की वृद्धा माँ को रोते-बिलखते देखता है तो वह व्यथित हो उठता है और कह उठता है- **आर्त्तं कण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबन्धुभिः । त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण में गुणः ।।¹** अर्थात् पीड़ित, कण्ठगत प्राण वाले और अपने बंधुओं के द्वारा त्यागे गये इसको यदि मैं नहीं बचाता हूँ तो शरीर से क्या लाभ? दयावीर का एक अन्य उदाहरण-

ममैतदम्बार्पय वध्यचिह्नं प्रावृत्य यावद्विनतात्मजाय । पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयितुं ददामि ।।¹⁰

अर्थात् माता यह वध्यचिह्न मुझे दो, जिससे अपने शरीर को ढक कर तुम्हारे पुत्र के जीवन रक्षा के लिए अपना शरीर गरुड़ को खाने के लिए दूँ। नायक जीमूतवाहन के दया वीर गुण की पराकाष्ठा उस समय चरम पर पहुँच जाती है जब वह गरुड़ से कहता है - **सिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति । तृप्तिं न पश्यामि तवेह तावत् किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन ।**¹¹ अर्थात् (मेरी) धमनियों के अग्रभागों से रक्त बह ही रहा है, अब भी मेरे शरीर में मांस है और आपकी तृप्ति भी मैं नहीं देखता । है गरुड़ । आप खाने से क्यों रुक गये? इसी प्रकार दयावीर के कई अन्य उदाहरण भी नागानन्द में प्राप्त होते हैं। शृंगार प्रधान रस होने पर भी प्रियदर्शिका में वीर रस का भी बहुत से सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा - उदयन वासवदत्ता को बताता है-

अस्मद्वलैर्विजयसेनपुरः सरस्तैराक्रान्तबाह्यविषयो विहितसप्रतापः ।

दुर्ग कलिङ्गहतकः सहसा प्रविश्यप्राकारमात्रशरणोऽशरणी कृतोऽसौ ।।¹²

अर्थात् विजयसेन की प्रधानता में गई हुई हमारी सेना ने बाह्य प्रदेशों पर अधिकार करके अभागे कलिङ्ग के प्रताप को अपने प्रताप से शून्य कर दिया। अनन्तर कलिंग को ही शरण नहीं मिलने के कारण सहसा दुर्ग में प्रवेश करके दुर्ग के घेरे की दीवारों के शरण में आना पड़ा।

हास्य रस - हास्य रस काव्य के सबसे महत्वपूर्ण रसों में से एक है क्योंकि यह वह साधन है जिससे काव्य रोचक बनता है। इसका एक उदाहरण प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में राजा और विदूषक के बीच संवाद में प्राप्त होता है। यथा - **विदूषक (सगर्वम) : भोई-शः खलु ब्राह्मणः यश्चतुर्वेद पञ्चवेदषड्वेदब्राह्मणसहस्रपर्याकुले प्रथममहमेव देवीसकाशात्स्यस्तिवायनं लभे । राजा (विहस्य) रुवेदसंख्ययैवावेदितं ब्राह्मण्यम् ।**¹³ अर्थात् विदूषक (सहर्ष) अजी मैं ऐसा ब्राह्मण हूँ कि हजार चतुर्वेद, पञ्चवेद, षड्वेद ब्राह्मणों के रहते हुए भी राजकुल में देवी मुझे ही स्वस्तिवायन देती हैं। राजा (हँसकर) वेदों की संख्या से ही तुम्हारा ब्राह्मण्य स्पष्ट हो रहा है। इसी प्रकार का हास्य रस का मनोरम दृश्य रत्नावली में भी प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है - विदूषक (उठकर सेविकाओं के बीच नाचता गाता हुआ) हे देवि मदनिके, देवि चूतलतिके, मुझे भी यह चर्चरी सिखाओ।

दोनों (हँसकर) : अरे टूटे दिल वाले। यह चचेरी नहीं है।

विदूषक : तो फिर यह क्या है ?

मदनिका : यह तो द्विपदी खण्ड है।

विदूषक : (प्रसन्नता से) क्या इस खण्ड से लड्डू बनाये जाते हैं ?

दोनों चेटियों : (हँसकर) नहीं, नहीं, यह तो पढ़ी जाती है। विदूषक रूयदि पढ़ी जाती है तो मुझे इससे क्या? मित्र के पास ही चला जाऊँ। नागानंद के तृतीय अंक में हास्य रस का अनेकों दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। नायक मित्र तुम धन्य हो, जो हमारे रहते आपका ऐसा वर्णन किया जा रहा है।¹⁴

करुण रस - नागानंद नाटक का चतुर्थ और पंचम अंक में करुण रस का दिग्दर्शन होता है। शंखचूड़ की वृद्धा माँ का विलाप किसके हृदय को व्यथित नहीं कर देता है। जब किंकर शंखचूड़ को वध्यचिह्न रूपी लाल वस्त्र का जोड़ा देता है तो उसकी माँ छाती पीटती हुई रो-रोकर मूर्च्छित हो जाती है। फिर होश में आने पर बेटे को बार-बार गले लगाकर रोती है। उसके विलाप को सुनकर नायक कह उठता है। ओह गरुड़ की कैसी निर्दयता है-

मूढाया मुहुर्भुसन्ततिमुचः कृत्या प्रलापान् बहून् कस्त्राता तव पुत्रकेति कृपणं दिक्षु क्षिपन्त्या दृशम् ।

अंके मातुरवस्थितं शिशुमिमं त्यक्त्वा घृणामश्नतः चञ्चुर्नैव खगाधिपस्य हृदयं वज्रेण मन्ये कृतम् ।।¹⁵

अर्थात् प्रिय वत्स! तुझे कौन बचाएगा - ऐसा कह कर अनेक प्रकार से विलाप करती, आंसू की झड़ी लगाती हुई शोकविह्वल माता की गोद में स्थित इस बालक को, दया त्याग कर खाने वाले गरुड़ की चोंच ही नहीं, बल्कि हृदय भी वज्र से बना हुआ है। इसी प्रकार पंचम अंक में नायक का पिता नायक के आत्मोत्सर्ग की घटना सुनकर कहता है कि - निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः? क्षमः क्षान्तिं वोई क इह? विरता दानपरताः? हतं सत्यं सत्यं ब्रजतु कृपणा क्वाद्य करुणा ? जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय लोकान्तरगते ।।¹⁶

अर्थात् पुत्र। तुम्हारे परलोक चले जाने पर धैर्य बिना आधार का हो गया। नम्रता (अब) किसकी शरण में जाये? कौन यहाँ क्षमा के धारण में समर्थ होगा? दानपरायणता उठ गई। सत्य की सचमुच हत्या हो गई। बेचारी करुणा अब कहाँ जाये? संसार शून्य हो गया। इस प्रकार अनेकों पद्य एवं संवाद है जिसमें करुण रस का बहुत सुंदर समायोजन किया गया है। प्रियदर्शिका के चतुर्थ अंक में आरण्यका द्वारा विषपान कर लिये जाने पर वासवदत्ता अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगती है। उसकी निम्नलिखित उक्ति करुण रस की प्रतीति कराती है (रोकर) प्रियदर्शनि, उठो उठो। देखो, यह महाराज खड़े हैं। इसकी तो संज्ञा भी नष्ट हो चुकी है। अनभिज्ञता में मैंने क्या अपराध किया है कि तुम क्रोध से बोल नहीं रही। प्रसन्नता प्रकट करो, मान जाओ। और उठो उठो, फिर कभी मैं अपराध नहीं करूँगी। (ऊपर देखकर हा दुर्भाग्य मैंने तेरा क्या अपकार किया था कि तुमने इस अवस्था को प्राप्त बहिन के दर्शन कराये।)¹⁶

रौद्र रस - प्रियदर्शिका के प्रथम अंक में विन्ध्यकेतु के साथ विजयसेन के युद्ध वर्णन में रौद्र रस के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। विन्ध्यकेतु की यह उक्ति रौद्र रस का उदाहरण है - यही है विन्ध्यकेतु इस विचार से हमारा द्वेष और उत्साह दोनों दुगुने हो गये, हमने आक्रमण करके उसके सभी सहायकों को समाप्त कर दिया, फिर भी वह अकेले ही अपने क्रोध वेग से हमारी सेना को मर्दित कर भयानक युद्ध करने लगा। रत्नावली के चतुर्थ अंक में भी युद्ध वर्णन में रौद्र रस के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा -

अस्त्रव्यस्त शिरस्त्रशस्त्रकषणोत्तुत्तमाङ्गोक्षणं ब्यूढासृक्सरिति स्वन्रहरणे वर्मोदलद्वहिननि।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भृङ्गः मप्रतीपीभवन्नैकेनैव रूमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः।।¹⁷

अर्थात् अस्त्रों से इधर-उधर शिरस्त्रण (लोहे से बने हुए शिर रक्षक टोप) फेंके जाने लगे, शस्त्रों के प्रहार से काटकर शिर फेंके जाने लगे। क्षण भर में विशाल रक्त की नदी बहने लगी, आयुधों की परस्पर प्रहारों से खनखनाहट होने लगी, कवचों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उस युद्धके आरम्भकाल में अपनी भागती हुई सेना को रोकते हुए मत्त हाथी पर बैठे हुए उस कोमल नरेश को ललकार कर अकेले रूमण्वान ने ही सैकड़ों वाणों से उसका वध कर दिया। नागानंद नाटक में भी रौद्र रस की अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा पंचम अंक में गरुड़ कहता है-

पक्षैः पीत्वाऽम्बुनाथं पटूजवपवनः प्रेर्य्यमाणः समीरैनेत्रचिःप्लोषमूर्च्छाविधुर विनिपतत्सानलद्वादशार्कः।

चञ्च्वा सञ्चण्य शक्राशनिधनदगदाप्रेतलोकेशदण्डानन्तः संमग्नपक्षः क्षणममृतमयी वृष्टिमभ्युत्सृजामि।¹⁸

अर्थात् (पंखों द्वारा प्रेरित किये गये अत्यन्त समर्थ और वेगयुक्त पथनों के द्वारा पंखों से समुद्र को ऊपर फेंककर नेत्रों के अग्निदाह की अतिशयता के कारण व्याकुल हुए अग्नि सहित बारह सूर्यों को गिराता हुआ, चोंच से इन्द्र के वज्र को कुबेर की गदा को और यम के दण्ड को चूर-चूर करके युद्ध में देवताओं को जीतकर थोड़ी देर अमृत की वर्षा कर दूँगा।

अद्भुत रस - प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में आरण्यका वापी में से कमल पुष्पों को चुन रही है। उसे देखकर विदूषक विस्मय से बोल उठता है। मित्र, देखो देखो, यह कौन स्त्री दिखाई दे रही है जो सामने आई हुई

उद्यानदेवता के समान लग रही है, जिसके केशपाश परिमलाकृष्ट भ्रमर है, जिसके हाथ विद्रुमलता की तरह रक्ताभ हैं और जिसकी देह लता के समान शोभाशाली है - विदूषक : (सकौतुकम्) भो वयस्य, पश्य पश्य सत्य कैषाकुसुमपरिमलसुगन्धवेणिमधुक रावलि विद्रुमलतारुणहस्त पल्लवा प्रत्यवचरीवोद्यानदेवता स्त्री दृश्यते ।¹⁹

रत्नावली में भी अद्भुत रस के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । यथा - एष ब्रह्मा सरोजे रज्जुनिकर कलाशेखरः शङ्करोऽयं दोभिदैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्र चित्तैश्चतुर्भिः । एषोऽप्यैरावतस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथाऽन्येनृत्यन्ति व्योम्नि चौताश्चलचरणरणन्पूरा दिव्यनार्यः । । इसी प्रकार ऐन्द्रजालिक द्वारा आकाश में प्रमुख देवी देवताओं को देखकर महाराज उदयन के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता और वह कौतूहलवश कह उठते हैं- आश्चर्य है, आश्चर्य है । देवि, देखो है देवि । आकाश में कमल पर यह ब्रह्मा जी हैं, चन्द्रकला को सिर पर धारण करने वाले यह शंकर जी हैं, धनुष, तलवार, गदा तथा चक्र, चार चिन्हों वाली भुजाओं से दैत्यों का विनाश करने वाले यह भगवान् विष्णु हैं, ऐरावत हाथी पर बैठे हुए यह देवराज इन्द्र हैं तथा अन्य देवता हैं, यह चञ्चल चरणों में बजते हुए नूपुरों वाली दिव्याङ्गनाएँ नाच रही हैं ।²⁰ नागानन्द में भी अद्भुत रस के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । नागानन्द के प्रथम अंक में मलयवती को देखकर विदूषक तथा जीमूतवाहन आश्चर्य से भर उठते हैं । विदूषक कहता है- (देखकर आश्चर्य के साथ) हे मित्र देखो देखो, अहा आश्चर्य है । यह न केवल वीणा के विशिष्ट ज्ञान के द्वारा ही आनन्दित कर रही है, बल्कि वीणा के विशिष्ट ज्ञान के अनुरूप ही रूप के द्वारा भी नयनसुख उत्पन्न कर रही है । यह कौन है? क्या (कोई) देवी है? अथवा नागकन्या है? अथवा विद्याधर कुमारी है ? अथवा सिद्धों के वंश में उत्पन्न हुई है - विदूषक भो वयस्य । प्रेक्षस्व । अहह आश्चर्यम् । न केवल वीणाविज्ञानेनैव रूपेणापि अक्ष्णोः सुखमुत्पादयति । का पुनरेषा? किं तावत् देवी? अहोस्वित् सिद्धकुल-सम्भवेति? ।²¹ इस प्रकार अन्य रसों के भी पर्याप्त उदाहरण हर्षवर्धन के रूपक में दृष्टिगोचर होते हैं । जिनमें भयानक, बीभत्स रस आदि हैं । अतः कहा जा सकता है कि नाटककार हर्षवर्धन ने अपने तीनों रूपकों में सभी रसों का समयोजन किया है ।

संदर्भ -

1. प्रियदर्शिका 2/6	2. रत्नावली 2/13
3. वही 2/14	4. वही 3/9
5. वही 3/15	6. नागानन्द 3/4
7. वही 3/6	8. दशरूपक 4/72
9. नागानन्द 4/11	10. वही 4/14
11. वही 5/16	12. प्रिय दर्शिका 4/4
13. वही द्वितीय अंक पृ.22	14. रत्नावली द्वितीय अंक पृ.29
15. वही 4/9	16. प्रियदर्शिका चतुर्थ अंक पृ. 101- 102
17. रत्नावली 4/6	18. नागानन्द 5/32
19. प्रिय दर्शिका द्वितीय अंक पृ.29	20. रत्नावली , 4/11
21. नागानन्द प्रथम अंक पृ.44	

40

हर्ष कृत रूपकों में रस चिन्तन

सुचित्रा भारती, रंजन कुमार त्रिपाठी

हर्ष की सभी कृतियाँ रस निष्पत्ति में अनुपम है। प्रस्तुत शोध पत्र में हर्ष कृत रूपकों में रस योजना पर प्रकाश डाला जाएगा जिसके माध्यम से हर्ष के काव्यत्व को समझने में सरलता होगी।

प्रियदर्शिका में रस शृंगार

प्रियदर्शिका नाटिका का अंगीरस शृंगार है तथा अन्य रसों की भी अंग रूप में योजना की गई है। प्रियदर्शिका नाटिका में शृंगार रस के कई सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं। जब राजा उदयन प्रथम बार प्रियदर्शिका (आरण्यका) का दर्शन करता तो उसका वर्णन कुछ इस प्रकार करता है- क्या पृथ्वी के दर्शन हेतु कोई नागकन्या पाताललोक से आई है? किन्तु यह कल्पनासंगत नहीं है, क्योंकि मैंने पाताललोक में ऐसी कन्या का दर्शन नहीं किया, यहाँ तो मैं गया हूँ। यह शरीरधारिणी चन्द्रिका है किन्तु दिन में चन्द्रिका के दर्शन की आशा नहीं की जा सकती, फिर कमल हाथ में लिए लक्ष्मी के सदृश यह कौन है?'

एक अन्य उदाहरण- राजा भ्रमरों से आक्रान्त आरण्यका की रक्षा हेतु जाता है तो उसको सान्त्वना देता हुआ वर्णन करता है- अरे, विषाद का त्याग करो, सुगन्धि से आकर्षित यह भ्रमर तुम्हारे मुख रुपी कमल पर आ रहे हैं, फिर भी यदि तुम इन भ्रमरों के भय से नेत्रों को इधर-उधर घुमाकर कुमुद की शोभा का विस्तार करोगी तो तुम्हें यह कैसे छोड़ेंगे? 'उपर्युक्त पद्यों में कवि ने नायिका के सौंदर्य का चित्रण किया है।

संभोग शृंगार

राजा उदयन आरण्यका के हाथ का स्पर्श कर कहता है- एतेन बालविद्रुमपल्लवशोभापहारदक्षेण । हृदये मम त्वयायं न्यस्तो रागः स्वहस्तेन ।। अर्थात्, तुमने बालविद्रुम और नवपल्लव की शोभा के अपहरण में सक्षम अपने इस हस्त से मेरे हृदय में राग उत्पन्न कर दिया है।'

विप्रलम्भ शृंगार

प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में आरण्यका से वियुक्तावस्था का वर्णन उदयन कुछ इस प्रकार करता है- हत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीगता, रागोऽस्मिन्मम चेतसीय सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।

चक्राह्वोमिव स्थितः सहचर्या ध्यायन्नलिन्यास्तटे, सज्जाता सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिशः ।।'

अर्थात्, जैसे दिनश्री कमलवन की शोभा को साथ लेकर चली जाती है उसी प्रकार कमलों के हरण द्वारा कमलाकर की शोभा का अपहरण कर प्रेयसी आरण्यका चली गई, सूर्य रक्त वर्ण का हो गया तथा मन भी

सराग हो गया है, चक्रवाक जैसे अपनी सहचरी का ध्यान करते हुए कमलवनी के समीप रहते हैं उसी तरह में भी अपनी प्रियतमा का ध्यान करता हुआ इस वापी के समीप स्थित हूँ, जैसे संसार में चारों ओर अन्धकार व्याप्त है उसी प्रकार मेरे चारों ओर भी अन्धकार व्याप्त होता जा रहा है।

वीर रस

प्रियदर्शिका में वीर रस का भी स्वल्प पोष हुआ है। यथा- प्रियदर्शिका के चतुर्थ अंक में वीर रस के कुछ सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदयन वासवदत्ता से कहता है -

अस्मद्बलैर्विजयसेनपुरः सरस्तै-राक्रान्तबाह्यविषयो विहतप्रतापः।

दुर्ग कलिङ्ग गहतकः सहसा प्रविश्य, प्राकारमात्रशरणोऽशरणः कृतोऽसौ।⁵

अर्थात्, विजयसेन के नेतृत्व में गई हुई हमारी सेना ने बाह्य प्रदेशों पर अधिकार करके अभागे कलिङ्ग के तेज को अपने तेज से शून्य कर दिया है। तदुपरान्त कलिङ्ग को ही शरण नहीं प्राप्त होने से सहसा दुर्ग में प्रवेश करके दुर्ग के घेरे की दीवारों के शरण में आना पड़ा।

हास्य रस

हास्य रस के भी अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, जैसे प्रियदर्शिका में राजा और विदूषक के मध्य हुए वार्तालाप में हास्य रस-

राना - मित्र, प्रिया को बन्धनमुक्त करने का क्या मार्ग है?

विदूषक - मित्र। विषाद त्याग दीजिये, मैं आपको प्रिया को मुक्त करने का मार्ग बताऊँगा।

राजा - मित्र, शीघ्र से शीघ्र बोलो।

विदूषक - आपयुद्ध में प्रभाव उत्पन्न करने वाले बाहु से संपन्न और अनेक हाथी, घोड़े, पद सेना, आदि से युक्त हैं, अतः सम्पूर्ण सैन्य के साथ अन्तःपुर को आक्रान्त करके इसी समय आरण्यका को मुक्त करवा दीजिये।

राजा - मित्र, आपने जो उपाय बताया है वह अव्यावहारिक है।

विदूषक-इसमें असंभव क्या है? कुबड़े, बौने और वृद्ध कूचुकियों के अतिरिक्त अन्य मनुष्य तो वहाँ होते नहीं हैं।⁶

रौद्र रस

राजा होने के कारण हर्ष ने युद्ध का वर्णन यथार्थ शैली में तथा ओजस्वी रूप में किया है-

पादातं पत्तिरेव प्रथमतरमुरः पेषमात्रेण पिष्ट्वा, दूरान्नीत्वा शरौघैर्हरिणकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशाः।

सर्वत्रोत्सृष्टसर्वप्रहरणनिवहस्तूर्णमुत्खाय खड्गं, पश्चात्कर्तुं प्रवृत्तः करिकरकदलीकाननच्छेदलीलाम्।⁷

अर्थात्, वह पैदल ही पैदल सैनिकों को छाती में कसकर ही पीस डालता, फिर त्रस्त घुड़सवारों को हरिणों के झुंड की तरह दूर भगाकर, सारे शस्त्रों को छोड़कर केवल तलवार उठाकर इस तरह काट रहा था जैसे केले के वन का उच्छेद कर रहा हो।

अद्भुत रस

प्रियदर्शिका के द्वितीय अंक में आरण्यका वापी से कमल पुष्पों का चयन कर रही है। उसे देखकर विदूषक विस्मय से कह उठता है- मित्र, देखो देखो, यह कौन स्त्री दिख रही है जो प्रत्यक्ष आई हुई उद्यानदेवता के सदृश दिखाई दे रही है, जिसके केशपाश परिमलाकृष्ट भ्रमर हैं, जिसके हाथ विद्रुमलता की तरह रक्ताभ हैं तथा जिसका शरीर लता के सदृश शोभाशाली है।⁸

इस नाटिका का कथानक इतना कुतूहलपूर्ण एवं सरस है कि उपन्यास सा आनन्द आता है। नाटिका के लक्षण के अनुरूप ही प्रियदर्शिका नाटिका का प्रमुख रस शृंगार रस है। शृंगार के प्रभेद सम्भोग की ही नाटिका में बहुलता है तथापि विप्रलम्भ का वर्णन भी मिलता है। अंग के रूप में वीर रस, हास्य रस, रौद्र रस, अद्भुत रस तथा करुण रस की भी कवि द्वारा योजना की गई है। बृहत्कथा से गृहीत मूलकथा को रंग भरकर अत्यन्त रोचक बना दिया है। अपनी प्रासादिक शैली, वस्तु रचना की सरलता, अनेक रोचक घटनाओं एवं अवस्थाओं की सृष्टि तथा उत्कृष्ट वर्णनों द्वारा हर्ष अपनी प्रियदर्शिका नाटिका को रोचक बनाने में सफल हुए हैं।

रत्नावली

रत्नावलीनायिका प्रधान नाटिका है। रत्नावली में राजा उदयन के सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली से प्रेम और विवाह की कथा है। उसमें प्रमुख रूप से रत्नावली के प्रेम भावना से ओत-प्रोत कोमल चरित्र की मार्मिक नाटकीय भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। रत्नावली में शृंगार रस प्रधान है। प्रारम्भ में ही वसन्तोत्सव के रूप में मदनोत्सव की योजना की गई है और इस सुन्दर वातावरण में वासवदत्ता एवं उदयन के प्रेम का अंकन हुआ है, जो सरस एवं मधुर है। इसके उपरान्त सागरिका (रत्नावली) के साथ उदयन का प्रणय चलता है। यही इस नाटिका का प्रतिपाद्य है। शृंगार रस की पुष्टि के लिए वसन्त, सन्ध्या आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। रूपकों के लिए सामान्यतः कहा गया है 'अङ्गमन्ये रसाः सर्वे' तदनुसार इस नाटिका में विदूषक की उक्तियों में हास्य रस, संग्राम वर्णन में वीर रस और वानर के खुल जाने पर स्त्रियों में भयानक रस का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। रत्नावली शृंगार रस प्रधान नाटिका है, यथास्थान वीर, हास्य और करुण रसों का भी समावेश है।

संभोग शृंगार

रत्नावली में भयभीत कामिनी के संयोग-शृङ्गार का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष नये रूप की सृष्टि करते हैं-

प्रणय-विशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता, घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो, रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी।।⁹

अर्थात्, संकेतस्थान में स्थित कामिनी शङ्कित होकर, प्रेम के कारण, अपनी विकसित दृष्टि प्रेमी के मुख पर नहीं डालती है। कण्ठ के आलिङ्गन में रसावेश में स्तनों को नहीं लगाती है। प्रयत्न से रखने पर भी बार-बार कहती है कि मैं जा रही हूँ, तथापि आश्चर्य है कि वह अत्यधिक आनन्द ही देती है।

एक अन्य उदाहरण-

सागरिका वसन्तोत्सव में उदयन को देखकर मोहित होती है, उसे साक्षात् कामदेव ही समझती है। उदयन के हृदय में भी सागरिका के प्रति प्रेम जागृत है। उदयन चित्रस्थ सागरिका के सौन्दर्य का मार्मिक वर्णन करता है-

कृच्छ्रादूरयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले, मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरंगविषमे निस्पन्दतामगता।

मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ, साकांक्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्पन्दिनी लोचने।।¹⁰

अर्थात्, किसी तरह ऊरु देश को लांघकर और देर तक नितम्बों पर चक्कर काटकर इसकी त्रिवली रूप तरंगों से उलझी हुई मेरी आंखें प्यासी सी होकर धीरे धीरे इसके ऊंचे स्तनों पर चढ़कर जलकी बूंदें गिराती हुई इसकी आंखों को उत्सुकता से देख रही है।

विप्रलम्भ-शृंगार

रत्नावली में विप्रलम्भ-शृंगार की मार्मिकता दर्शनीय है। उदयन की विरह जनित वेदना का वर्णन भी सुन्दर बन पड़ा है। उदयन के विरह में सागरिका भी अत्यन्त व्यथित है। उदयन कामदेव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं - अरे कामदेव! आपके पाँच ही बाण हैं, और उनसे असंख्य वियोगीजन पर आपको प्रहार करना होता है यह बात लोक में प्रसिद्ध है, किन्तु यह बात मुझे आज विपरीत लग रही है, क्योंकि मैं देखता हूँ कि उन पाँचों बाणों का अकेला मैं ही लक्ष्य होकर पञ्चतत्त्व को जा रहा हूँ।¹¹

उदयन के विरह में सागरिका भी अत्यन्त व्यथित है- सागरिका कभी अपने हृदय को कोसती है कि वह दुर्लभ जन की इच्छा क्यों कर रहा है? कभी कामदेव को उलाहना देती है कि यह क्यों मुझ पर प्रहार कर रहा है? जब उसे मिलन का कोई उपाय नहीं मिलता है तो वह उदयन का चित्र बनाकर ही कामावेग को शान्त करने का प्रयास करती है। कमलपत्र तथा मृणाल भी उसके कामावेग को शान्त करनेमें समक्ष नहीं है। विरह व्यथा से वह इतनी अधिक पीड़ित है कि उसे मृत्यु ही एकमात्र मार्ग दिखाई देता है।¹²

वीर रस - रुमण्वान् तथा कोसलाधिपति के युद्ध-वर्णन में वीर रस के उदाहरण देखे जा सकते हैं, यथा-

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागा-न्विन्ध्येनेवापरेण द्विपतिपृतनापीडबन्धेन रुन्धन् ।
वेगाद्बाणान्विमुञ्चन्समदकरिघटोत्पिष्टपत्तिर्निपत्य, प्रत्यैच्छद्वाङ्मिताप्तिद्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ।।¹³

अर्थात्, विन्ध्यदुर्ग से लड़ने के लिये निकलकर विन्ध्य-समान अपने सैन्य गजों से दिशाओंको घेरता हुआ कोसलाधिपति मैदान में उतरा, और मतवाले हाथियों से हमारी पैदल सेना को रौंदवाने लगा, इसी समय तेजबाण की वर्षा करने वाला हमारा सेनापति रुमण्वान् ने युद्ध प्राप्ति से दुगुना उत्साहित हो उसे रोक लिया।

रौद्र रस - युद्ध वर्णन में रौद्र रस का पाया जाना स्वाभाविक ही है। यथा-

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृतोत्तमाङ्गो क्षणं, ब्यूढासुक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्वलद्वहिन्नि ।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभव- न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।।¹⁴

अर्थात्, तलवारों से टोपियाँ उधेड़ी जाने लगीं, शिर काटे जाने लगे, शोणितकी नदी बहने लगी, हथियार खनखनाने लगे, और तलवारों की चोट से कवचों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। इसी समय विजय को रोकने वाले गजारूढ़ कोसलाधिपति रुमण्वान् ने ललकारा, और सैकड़ों बाणों से उसे स्वर्ग भेज दिया।

अद्भुत रस

रत्नावली में ऐन्द्रजालिक प्रसंग में अद्भुत रस का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। ऐन्द्रजालिक द्वारा आकाश में प्रमुख देवी देवताओं के दर्शन कर के महाराज उदयन आश्चर्यचकित और कौतूहलवश कह उठते हैं-

एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंकरोऽयं, दोभिदैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिन्हैश्चतुर्भिः ।

एषोऽप्यैरावतरथस्त्रिदशपतिरमी देवि देवास्तथान्ये, नृत्यन्ति व्योम्नि चौताञ्चलचरणरणन्पूरा दिव्यनार्यः ।।¹⁵

अर्थात्, यह कमल में ब्रह्मा, यह चन्द्रशेखर शङ्कर, धनुष, तलवार, गदा चक्र से युक्त चारों हाथों से भूषित यह भगवान् विष्णु, यह ऐरावतारूढ़ देवराज और यह अन्य देवगण दीखते हैं। इधर देवाङ्गनायें नूपुर झनकारती हुई नृत्य कर रही हैं। वासवदत्ता भी यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है। अद्भुत रस के अन्य उदाहरण भी रत्नावली में सहजता से प्राप्तव्य हैं।

भयानक रस

‘रत्नावली’ में हास्य, भयानक, करुण आदि रसों की व्यंजना भी मार्मिक है। अन्तःपुर में आग लग जाने से भयभीत होकर स्त्रियों का आर्तनाद देखिए-

हमज्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः, सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रलपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।

कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै- रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तःपुरेऽग्निः ।।¹⁶

अर्थात्, आग की लपटोंसे ऐसा मालूम पड़ रहा है जैसे राज प्रसादों के शिखर सोने के बने हों, उद्यान वृक्षों को मुरझा देने से उसकी तीव्रता प्रकटित हो रही है, क्रीड़ा पर्वतों पर फैली हुई उसकी धूमराशि काले बादलों के सदृश दिख रही है। भय से स्त्रियाँ आर्तनाद कर रही हैं। अन्तः पुर में अकस्मात् आग लग गई है। रत्नावली के द्वितीय अंक में वानर के खुल जाने पर स्त्रियों में भयानक रस का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है-

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादाम कर्ष- न्क्रान्त्वा द्वाराणि हेलालचलचरणरणात्किंकिणीचक्रवालः ।

दत्तातड्डकोङ्गनानामनुसृतसरणिः सभ्रमादश्वपालैः प्रभ्रष्टोऽयं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः ।।¹⁷

अर्थात्, रहने की जगह से खुला हुआ बन्दर राजभवन में प्रवेश कर रहा है, उसके पालक घबड़ाये हुए उसका पीछा कर रहे हैं, स्त्रियाँ भयभीत हो रही हैं, उसके पैरों में बंधा घुंगरू बज रहा है, वह दरवाजे लांघता जा रहा है, और उसके गले में बची हुई सोनेकी जंजीर लटक रही है, जिसे तोड़कर बह भागा है। नाटिका के लक्षण के अनुरूप ही रत्नावली नाटिका का प्रमुख रस शृंगार रस है। यह शृंगार रस भी सम्भोग शृंगार का रूप है। यद्यपि इस नाटिका के आरंभ में वियोग शृंगार का किञ्चित् स्वरूप प्राप्त होता है, परन्तु यह वियोग का रूप प्रेम का पूर्वरूप होने के कारण सम्भोग शृंगार का पोषक ही है, वियोग नहीं। संयोग शृंगार की सफलता के लिये ही कवि ने वसन्तक और सुसंगता के सहयोग का चित्रण किया है, और प्रकृति का उद्दीपन-चित्र बड़ी मर्म-ग्राहिता के साथ चित्रित किया है। शृंगार रस के अलावा इस नाटिका में विदूषक के सम्वादां में हास्य रस, युद्ध-वर्णन के सन्दर्भ में वीर रस और पालतू वन्दर के सहसा खुल जाने से बौनों के कंचुकियों (वस्त्र विशेष) के वस्त्र में छुप जाने एवं महिषियों आदि के भयभीत होने का दृश्य चित्रित होने के कारण भयानक रस का भी स्वाद प्राप्त होता है। परन्तु दूसरे प्रतीयमान रस तो शृंगार रस को पुष्ट करने वाले के रूप में ही अभिव्यक्त हो रहे हैं प्रमुख रूप से नहीं।

नागानन्द -

इस नाटक के प्रथम तीन अंकों में शृंगार रस और अन्तिम दो अंकों में करुण रस की प्रमुखता है। किन्तु दयावीर रस को इसका मुख्य रस माना जाता है। कुछ लोगों ने शान्तरस को इसका अंगीरस माना था किन्तु धनिक ने इसका प्रबल खण्डन किया है।¹⁹

प्रथम तीन अंकों में विशेष रूप से जीमूतवाहन और मलयवती के विवाह के पश्चात् विद्याधरों के द्वारा किये जाने वाले आमोद प्रमोद के चित्रण में हास्य रस का अंग के रूप में अच्छा परिपाक हुआ है। चौथे और पाँचवें अंकों में नाटककार ने अंगरस के रूप में करुण रस की भी अजस्र धारा बहायी है। इसके साथ ही कवि ने मलय पर्वत के आसपास के नैसर्गिक परिवेश का दानवीर और धर्मवीर के उद्दीपन विभाव के रूप में असाधारण कौशल के साथ चित्रित किया है। बलि के लिये जाते अपने इकलौते बेटे के लिये शंखचूड़ की माता का कारुण्य और विलाप मर्म को छूने वाले हैं। इसी प्रकार शंखचूड़ के स्थान पर जब जीमूतवाहन बलि चढ़ जाता है, तो मलयवती और मित्रवसु की करुणा भी नाटक में शोक का श्लोकों में स्मरण कराती है।

दयावीर रस

नागानन्द नाटक में दयावीर रस के अनेक उदाहरण हैं जैसे यहाँ कुछ प्रसंग प्रस्तुत है-

नागानन्द के चतुर्थ अंक में जब जीमूतवाहन शंखचूड़ की माँ को रोते-बिलखते देखता है तो वह व्यथित हो उठता है और कहता है-

आर्तुतं कण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबन्धुभिः । त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः ।।²⁰

अर्थात्, यदि दुखी, मरणासन्न एवं बंधुओं के द्वारा त्यागे हुए इसे यदि में नहीं बचाता हूँ, तो मेरे शरीर से क्या लाभ? दयावीर रस का एक अन्य उदाहरण-

ममैतदम्बार्पय वध्यचिह्नं प्रावृत्य यावद्विनतोत्सजाय । पुत्रस्य ते जीवितरक्षणाय स्वदेहमाहारयितुं ददामि ।।²¹

अर्थात् माताजी, यह वध्यचिह्न मुझे दे दो, जिसे ओढ़कर मैं तुम्हारे पुत्र के प्राणों को बचाने के लिए गरुड़ के प्रति अपना शरीर खाने के लिए दूँ। जीमूतवाहन में दयावीर गुण की पराकाष्ठा उस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब जीमूतवाहन गरुड़ से यह कहता है -

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्त- मद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात्त्वं विरक्तो गरुत्मन्?²²

अर्थात्, मेरी धमनियों के अग्रभागों में से रक्त बह ही रहा है, अब भी मेरे शरीर में मांस है, तुम्हारी अभी तृप्ति भी में नहीं देखता हूँ, हे गरुड़। तुम खाने से क्यों रुक गये? इसी प्रकार दयावीर के कई अन्य उदाहरण भी नागानन्द में द्रष्टव्य हैं।

भयानक रस - नागानन्द के चतुर्थ अंक में गरुड़-झुकटीकरण के समय भयानक रस की उत्पत्ति होती है। यथा-

डर के मारे घेरा बनाकर बैठे हुए शेषनाग की आकृति को मन ही मन याद करता हुआ, चन्द्रमण्डल को (एक ओर) फेंक करके तथा रथ के घोड़ों के विदक जाने के कारण सूर्य को भी झकोलकर बड़े भाई-अरुण-से आनन्द-पूर्वक देखा हुआ और (अंगों के) किनारों को छूते हुए मेघों के पटलों से लम्बे-लम्बे पंखों वाला सर्पों को खाने का लोभी यह मैं समुद्र तटवर्ती मलय पर्वत पर शीघ्र ही पहुँच गया हूँ।²³ यहाँ गरुड़ के आगमन से प्रलयकाल की सी स्थिति हो गई है। अतः यहाँ भयानक रस की प्रतीति होती है।

बीभत्स रस - नागानन्द के चतुर्थ अंक में महाशमशान के वर्णन के प्रसंग में बीभत्स रस का चित्रण हुआ है यथा-

फड़कती चोंच से उठाये गये तथा बीच मार्ग में ही गिरते मांस के टुकड़े को पकड़कर खाने के लिए बड़ी भारी तृष्णा रखे हुए गिद्धों द्वारा अपने पंखों की फड़फड़ाहटों से जिस में अंधेरा-सा हो रहा है, ऐसे इस मरघट में शृगालों के मुख से निकल कर गिरती हुई आग की लपटें निरन्तर टपकती हुई घनी चर्बी के संसर्ग से दुर्गन्ध वाली खून की धार में छिम्-छिम् शब्द कर रही हैं।²⁴

करुण रस

नागानन्द का चतुर्थ तथा पञ्चम अंक करुण रस से ओत-प्रोत है। शंखचूड़ की वृद्धा माँ का विलाप किसके हृदय को करुणामय नहीं कर देता है। जब किंकर शंखचूड़ को वध्यचिह्न रूपी लाल वस्त्र का जोड़ा प्रदान करता है तो उसकी माँ रो-रोकर मूर्च्छित अवस्था में चली जाती है। पुनः होश आने पर पुत्र को बार-बार गले लगाकर रोती है। उसके विलाप को सुनकर नायक कह उठता है - ओह! गरुड़ कितना निर्दयी है!

मूर्छित हुई, बहुत विलाप करके आँसुओं की झड़ी लगाती हुई एवं “हे पुत्र ! तेरा रक्षक कौन है”- यह कहकर (रक्षक की तलाश में) चारों दिशाओं में दृष्टि दौड़ाती हुई माता की गोद में बैठे हुए इस बालक को निर्दयी होकर खाते हुए गरुड़ की न केवल चोंच ही, प्रत्युत हृदय भी वज्र से बना हुआ प्रतीत होता है।²⁵ पंचम अंक में करुण रस का एक अन्य उदाहरण - अपने बेटे के निधन की आकस्मिक व अप्रत्याशित घोर विपत्ति से उद्विग्न जीमूतवाहन के पिता का यह करुणामय उद्गार प्रभावशाली है-

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः? क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह विरता दानपरता ।

हतं सत्यं सत्यं व्रजतु च कृपणा क्वाघ करुणा? जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय लोकान्तरगते ।।²⁶

अर्थात्, हे पुत्र, तुम परलोक क्या गये कि धैर्य निराधार हो गया, विनय किसकी शरण में जायेगी, क्षमा को धारण करने में अब और कौन समर्थ होगा, अब तो दानशीलता भी समाप्त हो गयी। सत्य नष्ट हो गया, कृपण कृपा अब कहाँ जाये? अब तो सारा संसार ही शून्य हो गया।

रौद्र रस -

नागानन्द के चतुर्थ अंक में गरुड़ कहता है यदि मेरे प्रार्थना करने पर भी इन्द्र अमृत वर्षा नहीं करता है तो मैं युद्ध में देवताओं को जीतकर क्षणभर के लिए अमृत की वर्षा कर देता हूँ। गरुड़ की यह उक्ति रौद्र रस का सुन्दर उदाहरण है-

श्वक्षोत्क्षिप्ताम्बुनाथः पटुत्तरजवनैः प्रेर्यमाणैः समीरैः, नेत्राग्निप्लोषमूर्च्छाविधुरविनिपतत्सानलद्वादशार्कः।

चञ्च्वा सञ्चूर्ण्य शक्राशनिधनदगदाप्रेतलोकेशदण्डानूखाजौ निर्जित्य देवान् क्षणममृतमयीं वृष्टिमभ्युत्सृजामि।।²⁷

अर्थात्, पंखों द्वारा उत्पन्न किए गए अति सशक्त और वेगवाली वायु से तथा पंखों से समुद्र को ऊपर उछालता हुआ तथा आँखों की आग के दाह से व्याकुल हुए अग्नि-सहित बारह सूर्यों को (अपने अपने स्थानों पर से) गिराता हुआ मैं चोंच से इन्द्र के वज्र को, कुबेर की गदा को तथा यम के दण्ड को चूर-चूर करके युद्ध में देवताओं को जीतकर क्षणभर के लिए अमृत की वर्षा कर देता हूँ।

अद्भुत रस

नागानन्द के प्रथम अंक में मलयवती के दर्शन कर के विदूषक तथा जीमूतवाहन आश्चर्य से भर उठते हैं। विदूषक कहता है- (देखकर आश्चर्य के साथ) मित्र, देखिए, देखिए। कितना आश्चर्य होता है कि यह न केवल वीणा की निपुणता से ही आनन्द नहीं देती, प्रत्युत बीणा की निपुणता की तरह रूप से भी आँखों को आनन्द देती है। यह कौन है? कोई देवी है? अथवा नागकन्या है? या विद्याधरों की लड़की है? या सिद्धों के कुल में पैदा हुई है?²⁸ नायक भी उत्कट अभिलाषा से कहता है - यदि यह स्वर्गलोक की स्त्री है, तो इन्द्र की हजार आँखें सफल हो गई हैं, यदि यह नागलोक की है तो इसके मुख की उपस्थिति में नागलोक चन्द्रमा से शून्य नहीं रहा, यदि यह विद्याधरी है, तो हमारी जाति अन्य समस्त जातियों को जीतने वाली है और यदि यह सिद्धों के कुल की है, तो इससे सिद्ध लोग तीनों ही लोकों में प्रसिद्ध हो जायेंगे।²⁹ यहाँ अद्भुत रस का चित्रण हुआ है। नागानन्द की नाटकीय वस्तु न केवल अतीव सरस है, अपितु प्राणिमात्र के कल्याणार्थ उत्कृष्टतम परोपकार व्रत की कथा से सम्पन्न है। संस्कृत में अनुरागमूलक शृंगार रसप्रधान नाटक अधिकतर मिलते हैं। किन्तु प्रस्तुत नाटक में कवि ने शृंगार का गौण रूप दिखाकर दयावीर की ही प्रधानता का वर्णन किया है।

निष्कर्ष

शृंगार रस का प्रियदर्शिका में चित्रण बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ है। शृंगार के प्रभेद सम्भोग की ही नाटिका में बहुलता है तथापि विप्रलम्भ का वर्णन भी मिलता है। अंग के रूप में वीर रस, हास्य रस, रौद्र रस, अद्भुत रस तथा करुण रस की भी कवि द्वारा योजना की गई है। रत्नावली नाटिका का अंगी रस भी शृंगार ही है। यह शृंगार रस भी सम्भोग शृंगार का रूप है। यद्यपि इस नाटिका के आरंभ में वियोग शृंगार का किञ्चित् स्वरूप प्राप्त होता है, परन्तु यह वियोग का रूप प्रेम का पूर्वरूप होने के कारण सम्भोग शृंगार का पोषक ही है, वियोग नहीं। शृंगार रस के अलावा इस नाटिका में विदूषक के सम्वादों में हास्य रस, युद्ध-वर्णन के सन्दर्भ में वीर रस और पालतू वानरके सहसा खुल जाने से बौनों के कंचुकियों (वस्त्र विशेष) के वस्त्र में छुप जाने एवं महिषियों आदि के भयभीत होने का दृश्य चित्रित होने के कारण भयानक रस का भी स्वाद प्राप्त होता है।

परन्तु दूसरे प्रतीयमानरस तो शृंगार रस को पुष्ट करने वाले के रूप में ही अभिव्यक्त हो रहे हैं प्रमुख रूप से नहीं। नागानन्द की नाटकीय वस्तु न केवल अतीव सरस है, अपितु प्राणिमात्र के कल्याणार्थ उत्कृष्टतम परोपकार व्रत की कथा से सम्पन्न है। संस्कृत में अनुरागमूलक शृंगाररस प्रधान नाटक अधिकतर मिलते हैं। किन्तु प्रस्तुत नाटक में कवि ने शृंगार का गौण रूप दिखाकर दयावीर की ही प्रधानता का वर्णन किया है। हर्ष की वर्णन-क्षमता और शैली हर्ष ने अपने रूपकों में कथानक संयोजन, चरित्र-चित्रण एवं रसोद्भावन की दृष्टि से यथासाध्य उत्कृष्ट नाट्यकला का परिचय दिया है। इस नाटक के प्रथम तीन अंकों में शृंगार रस और अन्तिम दो अंकों में करुण रस की प्रमुखता है। किन्तु दयावीर रस को इसका मुख्य रस माना जाता है।

सन्दर्भ

1. प्रियदर्शिका, 2/6
2. प्रियदर्शिका, 2/8
3. प्रियदर्शिका, 3/12
4. प्रियदर्शिका, 2/10
5. प्रियदर्शिका, 4/4
6. प्रियदर्शिका, चतुर्थ अंक, पृष्ठ संख्या- 84
7. प्रियदर्शिका, 1/9
8. प्रियदर्शिका, द्वितीय अंक, पृष्ठ संख्या- 25
9. रत्नावली, 3/9
10. रत्नावली, 2/11
11. रत्नावली, 3/3
12. रत्नावली, द्वितीय अंक, पृष्ठ संख्या -48-53
13. रत्नावली, 4/5
14. रत्नावली, 4/6
15. रत्नावली, 4/11
16. रत्नावली, 4/14
17. रत्नावली, 2/2
18. रत्नावली, 3/4
19. दशरूपक
20. नागानन्द, 4/11
21. नागानन्द, 4/14
22. नागानन्द, 5/16
23. नागानन्द, 4/25
24. नागानन्द, 4/18
25. नागानन्द, 4/9
26. नागानन्द, 5/31
27. नागानन्द, 5/32
28. नागानन्द, 4/11
29. नागानन्द, 1/16

रत्नावली नाटिका में कविसमयगत प्रसिद्धियाँ

कामेश्वर शुक्ल

संस्कृत साहित्य में कविसमय की एक समृद्ध परंपरा रही है, जिसमें विभिन्न वृक्षों, पुष्पों और प्राकृतिक तत्वों से जुड़ी अनेक मान्यताएँ और प्रसिद्धियाँ मिलती हैं। इन कविसमयों का प्रयोग कवियों ने अपनी रचनाओं में शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिए किया है। महाकवि हर्षदेव की रत्नावली नाटिका में भी ऐसे अनेक कविसमयों का सुंदर प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में रत्नावली नाटिका में वर्णित प्रमुख कविसमयों का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से अशोक, बकुल और चम्पक वृक्षों से जुड़ी मान्यताओं, अकाल-पुष्पोद्भव की परंपरा तथा कामदेव से संबंधित विभिन्न प्रसिद्धियों का विस्तृत विवेचन किया गया है। साथ ही इन कविसमयों की तुलना अन्य प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में वर्णित संदर्भों से करके इनकी सार्थकता को प्रमाणित किया गया है।

विषयोपस्थापन -

हर्षदेव की रत्नावली नाटिका के प्रथम तथा द्वितीय अंक में कविसमयगत वृक्षदोहद से संबद्ध कविप्रसिद्धियों का वर्णन मिलता है। दोहद पद के लिए ओ अमरकोषकार ने स्पृहा, श्रद्धा, इच्छा, वाञ्छा, लालसादि बारह पर्यायवाची शब्दों का परिगणन किया है।¹ शब्दकल्पद्रुम में गर्भवती स्त्री की इच्छा के लिए भी दोहद का उल्लेख मिलता है।² इसीलिए याज्ञवल्क्य स्मृति में गर्भवती स्त्री को सदा प्रसन्न रखने और उसके हितसाधन का निर्देश मिलता है।³ हेमचन्द्र इस अर्थ में दौहद पद का प्रयोग करते हैं।⁴ इसका व्युत्पत्त्यर्थ दुहदो भावः, दौहदः अर्थात् हृदयरोग होता है। परन्तु साहित्य में दोहद के ही अर्थ में इसका प्रयोग प्राप्त होता है। इसलिए वृक्षदोहद में पुष्पोद्भव के लिए वनस्पतिविशेष के उपचार अथवा नियमाधान का भाव सन्निहित रहता है। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में कविसमय के अन्तर्गत वृक्षदोहद का स्पष्टतः परिगणन नहीं किया है। विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में यद्यपि अशोक और बकुल की दोहद वृत्तियों को स्वीकार किया है, किन्तु वृक्षदोहद का नाम्ना निर्देश नहीं किया है।⁵ अलंकारसेखरकार केशवमिश्र ने भी कविसमय के असत्-निबन्धन में उपर्युक्त उभय वृक्षों की दोहद-वृत्तियों का वर्णन किया है।⁶ इनके अतिरिक्त अन्य किसी काव्यशास्त्री ने अपने काव्यशास्त्र में वृक्षदोहद का विस्पष्टतया निदर्शन नहीं किया है। किन्तु मेघदूत के टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ ने मेघदूत में उपनिबद्ध एक पद्य में⁷ अशोक और बकुल वृक्ष से सम्बन्धित वृक्षदोहद को कविप्रसिद्धि के रूप में स्वीकार करते हुए निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है -

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति बकुलः शीघ्रगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटु-मृदु-हसनाच्यम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्ममेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकारः ।।⁸

उक्त पद्य में आचार्य मल्लिनाथ ने स्त्रियों की अलग-अलग चेष्टाओं से विकसित होने वाले दश वृक्षों की दोहद वृत्तियों का वर्णन किया है ।

रत्नावली नाटिका के प्रथम अंक में मदन महोत्सव मनाया जा रहा है । सुवर्णाभरणों से सुसज्जित प्रजागण कुतूहल से नाच गा रहे हैं । चारो ओर बजते हुए वाद्यों एवं तालियों की गड़गड़ाहट से कौशाम्बी की गलियाँ मुखरित हो रही हैं । प्रिय मिलन की कामना से अब और अधिक प्रतीक्षा में असमर्थ उद्विग्न युवतियों का वर्णन करते हुए कविवर हर्षदेव लिखते हैं कि जिनके मुख-मदिरा के सेचन से बकुल और पादाघात से अशोक विकसित होता है, जिन्हें अपने प्रियतम से मिलने की उत्कण्ठा है, और जिनमें अब प्रतीक्षा करने का सामथ्र्य नहीं है, ऐसी युवतियाँ व्याकुल हो रही हैं - विकसितबकुलाशोककः काङ्क्षितप्रियजनमेलकः । प्रतिपालना-समर्थकस्ताम्यति युवतिसार्थकः ।।⁹ इसी अंक में मदन महोत्सव के उपरान्त महारानी वासवदत्ता के अनुरोध पर राजा उदयन मकरन्दोद्यान में कामदेव की पूजा में सम्मिलित होने के लिए उपस्थित होते हैं । राजा के मुख से मकरन्दोद्यान की अतिशय सुन्दरता का वर्णन करते हुए नाटिकाकार हर्षदेव कहते हैं -

मूले गण्डूषसेकासव इव बकुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या, मध्वातप्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्वयभान्ति ।

आकर्ण्यशोकपादाहतिषु च रणतां निर्भरं नूपुराणां, झङ्कारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृङ्गसार्यैः ।।¹⁰

बकुल वृक्षों के जड़ तरुणियों के मुख मदिरा से सिंचित हैं और इन वृक्षों से गिरते हुए फूलों से वासित हो रहे हैं । स्त्रियों के मुखमण्डल मद से रक्तिम हैं और उससे बहुत दिनों के उपरान्त चम्पक पुष्प अपनी अभिनव एवं अतिशय मनोरम छवि प्रकट कर रहे हैं । दोहद वृत्ति के लिए अशोक वृक्ष पर होनेवाले तरुणियों के पाद प्रहार से उनके नूपुर बजते हैं, जिसे सुनकर भौरें अनुरणन करने लगते हैं । हर्षदेव का यह पद्य कालिदास के अधोलिखित पद्य से तुलनीय हो सकता है - स्मरतेव सशब्दनूपुरं चरणानुग्रहमन्यदुर्लभम् । अमुना कुसुमाश्रुवर्षिणा त्वमशोकेन सुगात्रि ! शोच्यसे ।।¹¹ रत्नावली नाटिका में उपन्यस्त उक्त दो पद्यों में अशोक, बकुल और चम्पक वृक्षों की कविसमयगत दोहद वृत्तियों का जो वर्णन मिलता है, संक्षेप में अधोलिखित रूप से उनका समीक्षात्मक विवेचन किया जा सकता है -

अशोक -

अशोक सुपरिचित वृक्ष है । विवाहादि मांगलिक उत्सवों में मण्डप और तोरणादि सजाने के लिए इसके पत्रों का प्रयोग होता है । इसके विषय में यह प्रसिद्धि है कि इसमें फल नहीं होते हैं और यह स्त्रियों के पाद प्रहार से विकसित होता है । इसको 'सोक वीरो' के नाम से भी जानते हैं । 'सोक वीरो' के फूल सफेद होते हैं और वर्षाकाल में निकलते हैं । इसका एक और प्रकार भी है । इसके फूल लाल रंग के होते हैं और वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु में निकलते हैं । संस्कृत काव्य परम्परा में विभिन्न वर्ण के अशोक पुष्पों का वर्णन प्राप्त होता है । राजशेखर ने काव्यमीमांसा में श्वेत, लाल, पीले एवं नीले रंग के अशोक पुष्पों का उल्लेख किया है -

प्रसूनकैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विविधा । बहुसिद्धिकरः श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्द्धकः ।।

चैत्रे चित्रो रक्तनीलावशोकौ । स्वर्णाशोकस्तत्तृतीयश्च पीतः ।।¹²

महाकवि कालिदास की रचनाओं में भी प्रायः अशोक के लाल पुष्पों का ही वर्णन मिलता है। रत्नावली नाटिका के परिशीलन से विस्पष्टतया ज्ञात होता है कि हर्षवर्धन को भी रक्ताशोक ही अभिप्रेत है।

यद्यपि अशोक के वृक्षों में फल लगते हैं, किन्तु सौन्दर्य की दृष्टि से उनका कोई विशेष महत्त्व अथवा उपयोग दृष्टिगोचर नहीं होता। सम्भवतः इसीलिए काव्य-परम्परा में अशोक के फलों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

अशोक वृक्ष के विषय में दूसरी काव्यप्रसिद्धि है कि यह स्त्रियों के पादाघात से विकसित होता है। कालिदास ने अपनी रचनाओं में इस काव्यप्रसिद्धि का सर्वाधिक प्रयोग किया है। मालविकाग्निमित्र, रघुवंश और कुमारसंभव में विभिन्न शृंगारपरक वर्णनों में इस कविप्रसिद्धि का उपयोग किया गया है। मालविकाग्निमित्र के तृतीय अंक का जो इतिवृत्त है वह इसी कविप्रसिद्धि पर आधारित है। महाकवि हर्षदेव ने भी अपनी रत्नावली नाटिका में इस कविप्रसिद्धि का सम्यक निर्वहन किया है।

बकुल -

संस्कृत साहित्य-परम्परा में शृंगारपरक व्यंजनाओं के लिए बकुल पुष्प का वर्णन प्राप्त होता है। इसके विषय में यह कविप्रसिद्धि है कि यह स्त्रियों के मुखमदिरा से सिंचकर विकसित होता है। इसे मौलश्री, केशर अथवा केसर के नाम से भी जाना जाता है। इसके पुष्प भूरापन लिए हुए सफेद रंग के होते हैं। मुख्यतः वसन्तकाल में बकुल पुष्पों का वर्णन परिलक्षित होता है। इसके पुष्पों में मादक सुगन्ध होती है। युवतियों की मुख-मदिरा की मादक गन्ध का समुत्कर्ष अभिव्यंजित करना ही इस कविसमय का हेतु माना जाता है। हर्षदेव ने भी इसी आधार पर इस कविप्रसिद्धि का वर्णन किया है।

चम्पक -

काव्यमीमांसाकार ने ग्रीष्म ऋतु में वणज्य पुष्पों में चम्पा का परिगणन किया है। “विकिलकेसरपाटलि- चम्पकपुष्पानुवृत्तयो ग्रीष्मे”।¹³ कवि-समयानुसार स्त्रियों के पटु-मृदु हास से यह विकसित होता है। संस्कृत साहित्य में कवियों ने मुख्य रूप से वसन्त ऋतु में ही चम्पक के पुष्पित होने का वर्णन किया है। आदिकवि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास के काव्य इस कविसमय के अविरल समर्थक एवं संपोषक माने जाते हैं। उदाहरणार्थ ऋतुसंहार का अधोलिखित पद्य तुलनीय है - ईषत्तुषारैः कृतशीतहर्म्यं सुवासितं चारुशिरश्च चम्पकैः। कुर्वन्ति नार्योऽपि वसन्तकाले स्तनं सहारं कुसुमैर्मनोहरैः।¹⁴ उक्त वृक्षों की दोहद-वृत्तियों द्वारा स्त्रियों की चेष्टाओं की उत्कर्ष-व्यंजना ही महाकवि हर्षदेव को अभीष्ट है।

अकाल-पुष्पोद्भव -

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वास्तविक पुष्पोद्भव से दोहद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त हर्षदेव ने अकाल पुष्पोद्भव का भी वर्णन किया है। रत्नावली नाटिका के प्रथम तथा द्वितीय अंक में स्वाभाविक पुष्पोद्गम से भिन्न काल में नवमालिका को विकसित करने का प्रसंग प्राप्त होता है। प्रथम अंक में मकरन्दोद्यान में अवस्थित रक्ताशोक के नीचे महारानी वासवदत्ता कामदेव की पूजा के निमित्त जाती है। महारानी वासवदत्ता को मकरन्दोद्यान की ओर ले जाती हुई वासवदत्ता की सहचरी काञ्चनमाला नवमालिका को दिखाती हुई वासवदत्ता से कहती है यह वही नवमालिका है जिसे असमय में विकसित करने की इच्छा से महाराज उदयन सतत यत्नशील रहते हैं।¹⁵ द्वितीय अंक में दासी निपुणिका सुसंगता को सम्बोधित कर कहती है कि आज महाराज श्रीपर्वतनिवासी श्रीखण्डनामक धार्मिक से अकाल पुष्पोद्भव की

कला सीखकर अपनी नवमालिका को पुष्पों से समृद्ध कर देंगे।¹⁶ महाराज उदयन का यह प्रयास सफल होता है। दोहद दानोपरान्त अकाल में विकसित पुष्पों से नवमालिका की डालियाँ लद जाती हैं। विदूषक कहता है – “साधु रे श्रीखण्डदास धार्मिक साधु । येन दत्तमात्रेणैव तेन दोहदेने-शी नवमालिका संवृत्ता येन निरन्तरोद्भिन्नकुसुमगुच्छशोभितविटपा उपहसन्तीव लक्ष्यते देवीपरिगृहीतां माधवीलताम्”।¹⁷

आचार्य मल्लिनाथ ने मेघदूत के उत्तरमेघ के अष्टादश संख्यक श्लोक की टीका में एक पद्य उद्धृत किया है, जिसमें बताया गया है कि दोहद वह क्रिया है जिसमें कुशल जनों द्वारा तरु-गुल्म-लतादि का असमय पुष्पोद्भव कराया जाता है। मल्लिनाथ द्वारा समुद्धृत श्लोक अधोलिखित है -

तरु-गुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् । पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात् तत्क्रिया ।।

इस सन्दर्भ में इन्दुमति के निधन पर विलाप करते हुए अज की निम्नलिखित उक्ति द्रष्टव्य है -

कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति । अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ।।¹⁸

राजशेखर ने ग्रीष्मकाल में नवमल्लिका के विकसित होने का वर्णन किया है -

विकासकारी नवमल्लिकानां दलच्छिरीषप्रसवाभिरामः ।

पुष्पप्रदः काञ्चनकेतकीनां ग्रीष्मोऽयमुल्लासितधातकीकः ।।¹⁹

कविवर हर्षदेव ने रत्नावली नाटिका में वसन्तकाल में विकसित पुष्पों से परिपूर्ण नवमालिका का निबन्धन किया है। इसलिए यह अकाल पुष्पोद्भव का सुन्दर निदर्शन है।

वाल्मीकि रामायण में वनवासी श्री राम के विषय में सोचते हुए अयोध्यावासी पुष्पों और फलों के अकाल उद्गम को विशेष हर्ष तथा अनुग्रह का सूचक मानते हैं -

अकाले चापि मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च । दर्शयिष्यन्त्यनुक्रोशाद्गिरयो राममागतम् ।।²⁰

“एष खलु प्रियवयस्यस्तस्य दोहदस्य लब्धप्रत्ययतया परोक्षामपि तां नवमालिकां प्रत्यक्षामिव कुसुमितां प्रेक्षमाणः हर्षोत्फुल्ललोचन इत एवागच्छति”।²¹ दोहद प्रदान करने के उपरान्त नवमालिका को देखे बिना उसे कुसुमित मानकर हर्षान्वित राजा उदयन के विषय में विदूषक का यह वचन रामायणीय उपर्युक्त आशय का ही पोषण करता है।

कामदेव -

रत्नावली नाटिका में कामदेव से संबद्ध कतिपय कविप्रसिद्धियों का प्रसंगतः वर्णन मिलता है। कामदेव के विषय में कविप्रसिद्धि है कि उसके धनुष-बाण पुष्पमय हैं। उसके पुष्पमय पाँच बाणों में अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल की गणना होती है। जैसा कि अमरकोषकार ने लिखा है -

अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पंचौते पंचबाणस्य सायकाः ।।²²

अपनी रत्नावली नाटिका में हर्षदेव ने एतद्विषयक अधोलिखित दो पद्य उद्धृत किया है -

कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलायितबहुचूतकः । शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिणपवनकः ।।

इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि । पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसैः कुसुमबाणैः ।।²³

इसमें कुसुम मायुध कामदेव और उनके पुष्पमय बाणों का उल्लेख है। यहाँ कामदेव को पुष्पायुध और पुष्पबाण जैसे शब्दों से अभिहित किया गया है, जो वास्तव में कामदेव की उपाधियाँ हैं। कविसमय के अनुसार उपाधि एवं नाम एकार्थक होते हैं। वाल्मीकि तथा हनुमान की स्तुति में कवीश्वर एवं कपीश्वर उपाधियों का उल्लेख इस तथ्य का समर्थक है। उदाहरणार्थ यथा -

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ । वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वर-कपीश्वरौ ।²⁴

कामदेव के विषय में एक और कविप्रसिद्धि है कि उसके बाणों से युवकों के हृदय बिंधते हैं। शृंगारिक व्यञ्जना के लिए स्त्रियों की कटाक्षों अथवा अन्य किसी वस्तु या पदार्थ विशेष का अंग-विशेष में आक्षेप करके युवकों के हृदय विद्ध होने का वर्णन कविगण करते हैं। रत्नावली नाटिका के उपर्युक्त प्रथम अंक के पञ्चदश संख्यक श्लोक इस कविप्रसिद्धि का सार्थक प्रयोग हैं, जिसमें कहा गया है कि वसन्त पहले लोगों के हृदय को मृदुल बना देता है और फिर कन्दर्प अपने पुष्पमय बाणों से उन्हें बेधता है। उपर्युक्त कामदेव के पुष्पमय पाँच बाणों के अतिरिक्त मानसिक रूप से प्रभावशाली अन्य पाँच बाणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे –

उन्मादनस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्तथा । सम्मोहनश्च कामस्य पञ्चबाणाः प्रकीर्तिताः ।²⁵

उन्मादन, तापन, शोषण, स्तम्भन एवं सम्मोहन ये कामदेव के पाँच अमूर्त बाण हैं। संस्कृत-साहित्य में कामदेव के मूर्त एवं अमूर्त रूपों का वर्णन मिलता है। रत्नावली नाटिका के तृतीय अंक में कवि वर हर्षदेव राजा उदयन के मुख से उनकी मनोवस्था वर्णन करते हुए लिखते हैं –

मनश्चलं प्रकृष्यैव दुर्लभ्यं च तथापि मे । कामेनैतत्कथं विद्धं समं सर्वैः शिलीमुखैः ।²⁶

राजा को अपनी मनोदशा पर आश्चर्य हो रहा है। क्योंकि स्वभावतः चञ्चल और अणु होने के कारण मन अभेद्य होता है। फिर उस मन को कामदेव ने एक साथ अपने सभी बाणों से कैसे वेध दिया? राजा कामदेव के पाँच बाणों का लक्ष्य एकाकी स्वयं को बताते हुए उसको उलाहना दे रहे हैं। यहाँ पुष्पमय पाँच बाणों के अतिरिक्त मानसिक प्रभाव के सम्मोहनादि कामदेव के अमूर्त बाणों का सफल प्रयोग परिलक्षित होता है।

संस्कृत साहित्य में कविसमयों की परंपरा अत्यंत समृद्ध और गहन रही है। हर्षदेव ने इन परंपरागत मान्यताओं का प्रयोग न केवल कुशलतापूर्वक किया है, बल्कि उन्हें नवीन आयाम भी प्रदान किया है।

नाटिका में वर्णित अशोक, बकुल और चम्पक वृक्षों से संबंधित कविप्रसिद्धियाँ काव्य परंपरा का अनुसरण करते हुए भी अपनी विशिष्टता लिए हुए हैं। अशोक वृक्ष का स्त्री-पादाघात से खिलना, बकुल का मुख-मदिरा से विकसित होना और चम्पक का मधुर हास्य से प्रफुल्लित होना - ये सभी वर्णन शृंगार रस की अभिव्यक्ति को चरम पर पहुँचाते हैं। इन वृक्षों की दोहद-वृत्तियों के माध्यम से कवि ने नारी सौंदर्य और उनकी चेष्टाओं की उत्कर्ष-व्यञ्जना को अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से अकाल-पुष्पोद्भव का वर्णन हर्षदेव की काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। नवमालिका के असामयिक पुष्पन का प्रसंग कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक ओर यह तत्कालीन वनस्पति विज्ञान के विकास को प्रदर्शित करता है, तो दूसरी ओर काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने की कवि की असाधारण क्षमता को भी प्रकट करता है। यह प्रसंग यह भी दर्शाता है कि किस प्रकार प्राचीन भारत में वैज्ञानिक ज्ञान और काव्य कल्पना का अद्भुत समन्वय था।

कामदेव के वर्णन में भी हर्षदेव की विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने कामदेव के पुष्पमय बाणों (अरविंद, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल) और मानसिक प्रभाव डालने वाले बाणों (उन्मादन, तापन, शोषण, स्तम्भन और सम्मोहन) का वर्णन इस प्रकार किया है कि शृंगार रस की अभिव्यक्ति और भी प्रभावशाली बन गई है। हर्षदेव ने कालिदास, वाल्मीकि और राजशेखर जैसे पूर्ववर्ती कवियों की परंपरा का निर्वाह करते हुए भी अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने इन कविसमयों के माध्यम से काव्य परंपरा और लोक मान्यताओं का सफल समन्वय किया है। उनकी रचना में कविसमयों का प्रयोग कहीं भी कृत्रिम या बोझिल नहीं लगता, बल्कि वह काव्य के स्वाभाविक प्रवाह का अंग बन जाता है।

संस्कृत काव्य परंपरा में कविसमयों का प्रयोग मात्र परंपरा का निर्वाह या रूढ़ि का पालन नहीं था। यह काव्य सौंदर्य की अभिवृद्धि का एक सशक्त माध्यम था। हर्षदेव ने रत्नावली नाटिका में इन कविसमयों का प्रयोग कर यह सिद्ध कर दिया है कि परंपरागत मान्यताओं को नवीन संदर्भों में प्रयुक्त कर काव्य को कैसे उत्कृष्ट बनाया जा सकता है। यह अध्ययन न केवल रत्नावली नाटिका की काव्य कला को समझने में सहायक है, बल्कि समग्र संस्कृत काव्य परंपरा में कविसमयों के महत्व और उनके सौंदर्यशास्त्रीय मूल्य को समझने में भी विशेष महत्व रखता है।

सन्दर्भ -

1. ... अथ दोहदम् । इच्छा काङ्क्षा स्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः ।। अमरकोष, 1/7/27
2. दोहमाकर्षं ददातीति । गर्भिण्याभिलाषः ।। शब्दकल्पद्रुम, पृ. 754
3. दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात् कार्यं प्रियं स्त्रियाः ।। याज्ञवल्क्य स्मृति, 3/79
4. हेमचन्द्र, 3/205
5. पादघातादशोकं विकसति बकुलं... ।। साहित्य दर्पण, 7/24
6. केसराशोकयोः सत्स्त्रीगण्डूषात्पादघातत... ।। अलंकारशेखर, 15/4
7. रक्ताशोकश्चलकिसलय... ।। मेघदूत, 2/18
8. मल्लिनाथ टीका, मेघदूत, 2/18
9. रत्नावली नाटिका, 1/14
10. रत्नावली नाटिका, 1/18
11. रघुवंश, 8/63
12. काव्यमीमांसा, अध्याय 18
13. काव्यमीमांसा, अध्याय 18
14. ऋतुसंहार, 6/3
15. एषाऽप्यपरा नवमालिका लता यस्या अकालकुसुमसमुद्गमश्चन्द्रालुना भत्रीनुदिनमायास्यत आत्मा । रत्नावली नाटिका, पृ. 54-55
16. अद्य किल भर्ता श्रीपर्वतादागतस्य श्रीखण्डदासनामधेयस्य धार्मिकस्य सकासादकालकुसुमसंजननदोहदं शिक्षित्वात्मनः परिगृहीतां नवमालिकां कुसुमसमृद्धिसोभितां करिष्यतीति... ।। रत्नावली नाटिका, पृ. 54-55
17. रत्नावली नाटिका, पृ. 69
18. रघुवंश, 8/62
19. काव्यमीमांसा, अष्टादश अध्याय, पृ. 222
20. वाल्मीकि रामायण, 2/48/13
21. रत्नावली नाटिका, अंक -2, पृ. 69-70
22. अमरकोष, 1/1/27
23. रत्नावली नाटिका, 1/14-15
24. रामचरितमानस, मंगलाचरण, 1
25. अमरकोष, 1/1/27
26. रत्नावली नाटिका, 3/2

राजा हर्षवर्धन एक महान् कवि एवं नाटककार थे। प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द उनकी नाट्यकृतियां हैं। प्रियदर्शिका राजा हर्ष की प्रथम रचना है। यह चार अंकों में निबद्ध एक नाटिका है जिसमें नाटक के सभी लक्षण पूर्णरूपेण घटित होते हैं। इसकी कथा कल्पित है। इसमें स्त्री पात्रों की अधिकता है एवं इसके नायक प्रसिद्ध धीरललित राजा वत्स और नायिका राजकुमारी प्रियदर्शिका है। कथावस्तु में शिथिलता होने पर भी तृतीय अंक में गर्भ नाटक का विन्यास बड़े कौशल से किया गया है। घटनाओं का संयोजन तथा भावों की अभिव्यक्ति अत्यंत सुंदर है।

चार अंकों की नाटिका रत्नावली प्रियदर्शिका का ही संशोधित और परिमार्जित रूप है। यह नाटकीय तकनीक के आदर्श, कलात्मक चमत्कार और प्रौढ़ परिष्कृत रचना-नैपुण्य का उदाहरण है। इसमें राजा उदयन और उनकी रानी वासवदत्ता की परिचारिका सागरिका (रत्नावली) के प्रेम और विवाह की कथा का वर्णन है। नाटिका का कथानक सुगठित एवं गतिशील है। इसमें अर्थप्रकृतियों, संधियों तथा अवस्थाओं का पूर्णरूप से निर्वाह किया गया है। शास्त्रीय दृष्टि से भी यह अनुपम ग्रंथ है।

नागानन्द बौद्ध कथाश्रित एक नाटक है जिसमें आदर्श पितृ प्रेम, तथा परोपकारार्थ आत्म बलिदान की उदात्त भावना का प्रतिपादन है। इसमें जीमूतवाहन नमक विद्याधर राजकुमार का मित्रावसु की बहन मलयवती से विवाह का वर्णन है। इसमें अहिंसा, आत्मत्याग, दान, दया, परोपकार आदि का महत्व प्रतिपादित किया गया है। दूसरों के लिए अपने प्राणों को न्योछावर करने वाले और वध्यशिला के सुख को माता की गोद के सुख से भी अधिक समझने वाले इसके नायक जीमूतवाहन का परोपकार सदैव अविस्मरणीय है। औचित्य के विभिन्न प्रकारों के अंतर्गत उनके तीनों रूपकों में औचित्य-विधान का अध्ययन एवं विश्लेषण प्रासंगिक होगा।

1.विषयौचित्य- कवि द्वारा वर्णित विषय वस्तु में औचित्य की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन विषयगत औचित्य की परिधि में आता है। इसके अध्ययन के लिए समग्र विषय सामग्री को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

रसभावौचित्य- काव्य के विभिन्न अंगों का रस अनुकूल होना अत्यन्त आवश्यक है। आचार्य क्षेमेन्द्र से पहले रस- ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा मानते हुए भी रस विधान में औचित्य की अनिवार्य स्थिति को स्वीकार किया।¹ औचित्यपूर्ण विधान को रसोत्कर्ष का परम रहस्य एवं अनौचित्य को रसभंग का कारण स्वीकार करके उन्होंने रस तथा औचित्य की पारस्परिक अविच्छेद्यता को प्रतिपादित किया है-
“अनौचित्या-ते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्। प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा।।”² उन्होंने काव्य के

अलंकार, रीति, गुण, वृद्धि, संघटना आदि शैली-तत्त्वों तथा व्यवहार, विचार, कथा, आदि विषय-तत्त्वों सब का रसानुकूल होना ही औचित्य माना है। रसौचित्य की सिद्धि विभावादि के उचित निबंधन से होती है। आनंदवर्धन कहते हैं कि रस में सबसे आवश्यक वस्तु है औचित्य। वस्तु अलंकार आदि रस के बाह्य परिधान मात्र हैं-

रसभावादित्वात्ययमाश्रित्य विनिवेशनम् । अलङ्कृतीनां सर्वासामलङ्कारत्वसाधनम् ।।^१

रस में रसनीयता लाने का श्रेय औचित्य को ही है। औचित्य के बिना आस्वाद्यता के अभाव में रस, रस कहलाने योग्य नहीं होता। शृंगार आदि रस औचित्यपूर्वक संयोजित होने पर ही अलौकिक आनंदानुभूति कराते हैं।^४ इस प्रकार काव्य के प्रत्येक अंग में औचित्य की सत्ता अपेक्षित है जिससे रस प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो।

आचार्य अभिनवगुप्त ने भी रस और औचित्य के अटूट संबंध पर अपने साहित्यालोचन में प्रकाश डाला है। जहाँ उन्होंने रस या रसध्वनि के अभाव में औचित्य की व्यर्थता को स्वीकार किया है, वहीं औचित्य के बिना रस को भी सहृदय के लिए उद्देजक बताया है।^५ इस प्रकार रस और औचित्य का पारस्परिक संबंध होने पर ही सहृदय को अलौकिक आनंदानुभूति हो सकती है। हर्ष के विभिन्न रूपकों में रसगत औचित्य की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है- हर्ष की दो नाटिकाओं और नागानंद नाटक का भी पूर्वार्द्ध शृङ्गार रस प्रधान है परंतु उनका शृङ्गार रस संयमित तथा मर्यादित है। इसके संभोग तथा विप्रलंब दोनों ही पक्षों का चित्रण कवि ने सफलतापूर्वक किया है। प्रियदर्शिका और रत्नावली दोनों का प्रधान रस शृङ्गार है। हास्य, करुण, अद्भुत आदि अन्य रस अंग रूप में उसके पोषक होकर आए हैं। रत्नावली में भयभीत कामिनी के संयोग शृङ्गार का अत्यंत सुंदर वर्णन है-

प्रणय-विशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता, घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो, रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ।^६

सागरिका के वियोग में उदयन की विरहावस्था के चित्रण में विप्रलम्भ शृङ्गार की मार्मिक एवं भावप्रवण अभिव्यक्ति हुई है। कामदेव के यद्यपि पाँच बाण हैं तथापि उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो वह उसके असंख्य बाणों से बीधा जाता हुआ मृत्यु की तरफ ले जाया जा रहा हो।^७ रत्नावली में विदूषक की उक्तियों में कवि ने हास्य रस की, रुमण्वान् के युद्ध में वीर रस की, राजकीय बन्दर के छूट जाने तथा अन्तःपुर में आग लगने की घटना में भयानक रस की, ऐन्द्रजालिक के चमत्कारों में अद्भुत रस की व श्मशान वर्णन में बीभत्स रस की योजना सफलतापूर्वक की है। गरुड़ के प्रहार से मृतप्राय जीमूतवाहन को देखकर उसके पिता विलाप करते हुए कहते हैं- हे पुत्र, तुम्हारे परलोक-गमन से धैर्य, विनय, क्षमा, दानशीलता, सत्य, कृपा आदि सभी गुण निराश्रित हो गयेय सारा संसार सूना हो गया। यहां करुण रस की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है-

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातु विनयः? क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह? विरता दानपरता?

हतं सत्यं सत्यं ब्रजतु कृपया क्वाद्य करुणा? जगज्जातं शून्यं त्वयि तनय! लोकान्तरगते ।।^८

विवाह के पश्चात् प्रथम मिलन के समय नवोढा की लज्जा का कोमल कान्तपदावली में अत्यन्त स्वाभाविक और यथार्थ चित्रण भावौचित्य का सुन्दर उदाहरण है है-

दृष्ट्वा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नाऽऽलापमाभाषिता, शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते ।

निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते, जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया ।।^९

वियोगावस्था में प्रिय से सम्बन्धित वस्तु भी अत्यन्त सुखप्रद प्रतीत होती है। इसी कारण सागरिका द्वारा पहनी गई रत्नमाला से ही सान्त्वना प्राप्त करता हुआ राजा कहता है-

कण्ठाश्लेषं समासाद्य तस्याः प्रभ्रष्टयाऽनया । तुल्यावस्था सखीवेयं तनुराश्वास्यते मम ।।¹⁰

वासवदत्ता के प्रणयजनित क्रोध का वर्णन कवि ने बहुत रोचक एवं स्वाभाविक रूप से किया है-
स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा तथापि द्युति-मार्धुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम् ।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिताः, कोपस्ते प्रकटप्रयत्नविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।।¹¹

नागानन्द में नायक का अपूर्व उत्साह दिखाया गया है। गरुड़ जब उसे खाना बन्द कर देते हैं तब मरणासन्न होने पर भी वह कहता है कि रक्त शिराओं से अभी भी रक्त निकल रहा है, मेरे शरीर में अभी भी मांस शेष है, आपके मुख पर तृप्ति के लक्षण भी नहीं दिखायी पड़ते; तो आप भोजन से विरत क्यों हो गये हैं?

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।

तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात्वं विरतो गरुत्मन् ।।¹²

बुद्धितत्त्वगत औचित्य-

प्रेरक विचार, जीवन के आदर्श तथा तत्त्व काव्य में स्थिरता को जन्म देते हैं और स्थिरता ही काव्य का औचित्य है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार काव्योक्तियों में उचित विचार का अभिधान होने से अधिक चारुता आती है- उचितेन विचारेण चारुतां यान्ति सूक्त्यः । वेद्यतत्त्वावबोधेन विद्या इव मनीषिणाम् ।।¹³ उदात्त विचारों से ही रस में उदात्तता का उन्मेष हो पाता है। विचार तत्त्व या बुद्धि तत्त्व काव्य के मूल तत्त्वों में से एक है। स्पष्ट है कि काव्य-नाटक में उदार, उदात्त, सार्वभौम एवं सार्वकालिक उचित विचारों का निबंधन विचार या बुद्धि तत्त्वों के औचित्य के अंतर्गत आता है। 'नागानन्द' में नायक के जीवन की और यौवन की सार्थकता पिता की सेवा में ही है यह बताकर श्री हर्ष ने नायक जीमूतवाहन के जीवन का औचित्य सिद्ध किया है-

रागस्यास्पदमित्यवैमि न हि मे ध्वंसीति न प्रत्ययः, कृत्याकृत्यविचारणासु विमुखं को वा न वेत्ति क्षितौ ।

एवं निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं, भक्त्या याति यदीत्यमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे ।।¹⁴

सभी काव्याङ्गों का औचित्य प्रतिपादन कवि-प्रतिभा से ही संभव है। कवि प्रतिभा का विशेष संबंध बुद्धि-तत्त्व से ही है। प्रतिभा-संपन्न कवि ही काव्य में औचित्य गर्भित सौंदर्य का सन्निवेश कर सकता है।

हर्षवर्धन ने 'रत्नावली' नाटिका में, जब सागरिका के चले जाने पर राजा और विदूषक दोनों चित्रफलक को देख रहे हैं तभी वहाँ वासवदत्ता के आगमन का अत्यंत स्वाभाविक वर्णन किया है -

काञ्चनमाला- भर्त्रि! एतत् कदलीगृहमतिक्रम्य दृश्यत एव ।

वासवदत्ता- तदादेशय मार्गम् ।

काञ्चनमाला- एत्वेतु भर्त्री ।

राजा- वयस्य! क्वेदानीं प्रिया द्रष्टव्या ?

काञ्चलमाला- भर्त्रि! यथा समीपे भर्ता मन्त्रयते तथा तर्कयामि भर्त्रीमिव प्रतिपालयंस्तिष्ठतीति । तदुपसर्पतु भर्त्री ।

वासवदत्ता-(उपसृत्य) जयतु जयत्वार्यपुत्रः ।

राजा-(अपवार्य) वयस्य । प्रच्छादय चित्रफलकम् ।

विदूषकः- कक्षायां फलकं प्रक्षिप्योत्तरीयेण प्रच्छादयति ।

लोक-व्यवहारगत औचित्य- विचारौचित्य काव्य का बुद्धि पक्ष है तो व्यवहारौचित्य प्रवृत्ति पक्ष। पात्रों की प्रवृत्तियाँ देश, काल, स्थिति, वातावरण, प्रसंग एवं प्रस्तुति के अनुरूप होनी चाहिए। उचित व्यवहार ही काव्य संवेदना के द्योतक होते हैं। लोक-व्यवहार का ज्ञाता कवि ही व्यवहारौचित्य का निर्वाह कर सकता है। लोक

जीवन की अधिकांश परिस्थितियाँ श्री हर्ष के नाटकों में चित्रित है। नायक नायिका के प्रणय व्यवहार के उत्तम चित्रण के साथ-साथ वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवहारों का उज्ज्वल स्वरूप उनके रूपकों में उपलब्ध होता है। 'नागानन्द' में नायक और नायिका के मिलने वाले उद्यान की परिस्थितियों को श्री हर्ष अत्यंत सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत करते हैं- निष्यन्दश्चन्दनानां शिशिरयति लतामण्डपे कुट्टिमान्ता - नाराद् धारागृहाणां ध्वनिमनु तनुते ताण्डवं नीलकण्ठः। यन्त्रोन्मुक्तश्च वेगाच्चलति विटपिनां पूरयन्नालवाला नापातोत्पीडहेलाहत-कुसुमरजः पिञ्जरोऽयं जलौघः।।

2. भाषा-शैलीगत औचित्य - हर्ष के रूपकों में पात्रों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है अतः भाषा की विविधता पायी जाती है। भाषा सर्वथा प्रौढ़, शुद्ध, परिष्कृत, व्याकरण-सम्मत और भावाभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम है। श्री हर्ष वैदर्भी रीति के कवि हैं। अतः उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण पूर्णतः व्याप्त हैं। इन्होंने अपनी रचनाएँ प्रायः समासरहित भाषा में की हैं। श्री हर्ष का वाक्य-विन्यास वैदर्भी रीति के अनुरूप ही है। अलंकारों का यथावसर सुन्दर प्रयोग हुआ है। संवादों में प्रयुक्त वाक्य, चुस्त, नातिदीर्घ और स्वाभाविक वार्तालाप के समान है। श्री हर्ष ने महाराष्ट्री और शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है। श्रीहर्ष की काव्य शैली सरल तथा सुबोध है। वर्णन इतना विशद् है कि सम्पूर्ण दृश्य आंखों के सामने से गुजरता दिखाई पड़ता है। रत्नावली में कामोत्सव और वसन्तोत्सव का रम्य एवं का रंगारंग वर्णन अपने आप में अद्वितीय है। नागानन्द का आश्रम वर्णन सर्वथा नैसर्गिक और सरस है। शुद्ध अरण्य-प्रकृति के चित्रण का अवसर मिलने पर विदूषक-जैसे पात्र से भी हर्ष कहल वाते हैं -मित्र, देखो यह मलय-मारुत आपको रोमाञ्चित कर रहा है; गीले, घने, चिकने चन्दनवृक्षों के वनों की गोद में लोटने के कारण इससे सघन सुगन्ध आ रही है, ऊँचे-नीचे तट पर गिरने से छिन्न-भिन्न हो जाने वाले झरनों से निकले हुए शीतल कणों की बौछार को यह वहन कर रहा है। कवि में प्रौढ़ कवित्व और उच्चकोटी की कल्पना शक्ति है। नागानन्द में वन की विशिष्टताओं का निरूपण अत्यंत आकर्षक बन पड़ा है- शय्या शादलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः, शीतं निर्झरवारि पानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः।¹⁵

वैदर्भी शैली का “आश्रय लेने के कारण हर्ष के वर्णन सहज-ग्राह्य हैं, सहृदयों पर अपना पुष्कल प्रभाव छोड़ते हैं।। प्रियदर्शिका में ग्रीष्मकाल का वर्णन प्रेक्षणीय है-

आभात्यर्काशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्तनैदीर्घिकाम्भ, छत्रभं नृत्तलीलाशितिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरूपैत्यालवालाम्बुलुब्धः, सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य।।¹⁶

सरोवरों में मछलियाँ गर्मी से उछल रही हैं मानों सूर्य-ताप से वे खौल रहे हैं; नृत्यलीला से थके हुए मोर शिथिल पंखों को सिर पर छाते के समान धारण कर रहे हैं; प्यासा हरिण-शावक थाँवले के जल के लोभ से वृक्षों की छाया में जा रहा है और भौंरा हाथी के कपोल को छोड़कर (गर्मी के कारण) उसके कान में घुस रहा है।

इसी प्रकार राजा वत्स की दुविधापूर्ण मनः स्थिति का वर्णन भी कवि ने प्रभावशाली ढंग से किया है। एक तरफ तो वह वासवदत्ता के क्रोध से भयभीत है और दूसरी तरफ आरण्यिका के सौन्दर्य से आकर्षित भी -

स्वेदाम्भः कणभिन्नीषणतरभ्रभङ्गमेकं रुषा, त्रासेनापरमुत्प्लुतोत्प्लुतमृगव्यालोलनेत्रोत्पलम्।

उत्पश्यन्नहमग्रतो मुखमिदं देव्याः प्रियायास्तथा, भीतश्चोत्सुकमानसश्च महति क्षिप्तोऽस्म्यहम् संकटे।।¹⁷

इस श्लोक की विशिष्टता यह है कि क्रोध का वर्णन करने के लिए कवि ने गौड़ी रीति का आश्रय लिया है तो मुख के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए वैदर्भी रीति का। यह रीत्यौचित्य का उदाहरण है।

श्री हर्ष की रचनाओं में सर्वत्र प्रसाद और माधुर्य गुण पाया जाता है। कविता का माधुर्य भी रत्नावली में देखने ही लायक है। सूर्य अपनी प्रियतमा कमलिनी को आश्वस्त करते हुए कहता है-

यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष सुता मयैव भवती प्रतिबोधनीया ।

प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ।।¹⁸

कमलिनी के झुके हुए मस्तक पर हाथ फेरते हुए अथवा अस्ताचल के शिखर पर अपनी किरणों को फैलाते हुए प्रस्थानोन्मुख सूर्य कमलिनी को विश्वास दिला रहे हैं कि हे कमलमुखी, अब मैं चला, मेरे जाने का समय हो गया है। तुम विश्वास करो, कल प्रातःकाल जब तुम सोती ही रहोगी, मैं आकर तुमको जगाऊंगा। कितना मर्मस्पर्शी है यह आश्वासन। सन्ध्यावर्णन के प्रसङ्ग में राजा वासवदत्ता के सौन्दर्य भी वर्णन करते जा रहे हैं, और सन्ध्या भी उचित- रूप में वर्णित होती जाती है, साथ साथ पद्माधुरी तो अत्यन्त रमणीय है ही-
देवि, त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणः, पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।

श्रुत्वा त्वत्परिवारवारविनातीतानि भृङ्गाङ्गना, लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः सज्जातलब्जा इव' ।।¹⁹

परन्तु युद्ध वर्णन में ओजगुण ने सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है। रुमण्वान् द्वारा कोसल के राजा के युद्ध में मारे जाने का सजीव चित्रण कवि ने किया है। वर्णन के अनुरूप ही गौड़ी रीति, क्लिष्ट कठोर पदावली तथा विपुलकाय समासों का प्रयोग किया गया है।

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तोत्तमाङ्गे क्षणं, व्यूढासृक्स रिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्धलद्वह्निनि ।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभव-न्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।।²⁰

नागानन्द में श्मशान का वर्णन कठोर क्लिष्ट पदावली व गौड़ी रीति का प्रयोग करने के कारण अत्यन्त प्रभावशाली व सजीव बन पड़ा है- चञ्चच्चञ्चूदधृतादध्व्युतपिशितलवग्राससंवृद्धगदध्वै- गृद्धैरारब्धपक्ष द्वितयविधुतिभिर्बद्धसान्द्रान्धकारे । वक्तोद्धान्ताः पतन्त्यलमितिशिखिशिखाश्रेणयोऽस्मिन् शिवाना मस्रस्रोतस्यजस्रस्तुनतिबहुलवसावासविघ्ने स्वनन्ति ।।²¹ कवि का प्रकृति वर्णन भी रमणीय है। सूर्योदय, सूर्यास्त, वन, उपवन, पर्वत, महल, ग्रीष्म आदि सभी का सुन्दर वर्णन कवि ने किया है। सन्ध्याकाल में शनैः शनैः बढ़ते हुए अन्धकार समूह का वर्णन स्वाभाविक एवं मनोरम है। कवि के छन्दों में भी गति है क्योंकि उनका प्रयोग भावानुकूल है। प्रायः अनुष्टुभ, आर्या, उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, शालिनी, शार्दूलविक्रीडित, म्रगधरा और शिखरिणी आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

हर्ष के रूपकों में अलंकारौचित्य

अलंकार योजना तथा औचित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः उचित ढंग से उचित स्थान पर ही उनका विन्यास शोभादायक होता है, अन्यथा नहीं। औचित्य और अलंकार के इसी रहस्य का उद्घाटन करते हुये आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा है - उचितस्थानविन्यासादलङ्घ कृतिरलङ्कृतिः औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्यैव गुणाः गुणाः ।।²² हर्षवर्धन के रूपकों में अलंकारों का स्वाभाविक रूप से सहज सुन्दर विन्यास हुआ है। उनकी कविता-कामिनी अलंकारों के भार से बोझिल नहीं है। उनके रूपकों में उत्प्रेक्षा, उपमा एवं स्वभावोक्ति अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। यमक अलंकार का सर्वथा अभाव है। अनुप्रास, श्लेष और वक्रोक्ति के कतिपय उदाहरण ही प्राप्त होते हैं। हर्षवर्धन की कृतियों में प्रयुक्त अलंकारों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि उनकी रचनाओं में अलंकार रस-सिद्धि में सहायक हुए हैं अतः उनके रूपकों में अलंकारौचित्य विधान भी सर्वथा हृदय है। अनुप्रास अलंकार का एक उदाहरण 'नागानन्द' से द्रष्टव्य है-

ज्वालाभङ्गैस्त्रिलोकप्रसनरसचलत्कालजिह्वाग्रकल्पैः, सपद्भिः सप्तसर्पिष्कणमिव कवलीकर्तुमीशे समुद्रान् ।

स्वैरोत्पातवातप्रसर पटुतरैधुक्षिते पक्षवातैरस्मिन् कल्पावसानज्वलनभयकरे वाडवाग्नौ पतामि ।।²³

वर्षा प्रलय काल की वायु के चलने से और भी तेज बनी, मेरे अपने ही पंखों की हवा से भड़की, तीनों ही लोकों के निगलने के स्वाद के कारण लपलपाती काल की जिह्वा के अग्रभाग जैसी लगने वाली, फैलती हुई लपटों की तरंगों से सातों समुद्रों को ग्रास बनाने- भस्म कर डालने को समर्थ तथा प्रलय की आग की तरह भयानक इस बड़वानल में ही गिर पड़ता हूँ। उपमा अलंकार का एक उदाहरण 'रत्नावली' से द्रष्टव्य है -

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् । आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ।।²⁴

अर्थात् पुष्प के समान सुकुमार शरीर वाली (पुष्प मय होने से सुकोमल मूर्ति वाली), वृतादि के पालन से (निश्चय ही चाप के आर्कषण से), क्षीण कोटि प्रदेश को धारण करती हुई (पतले मध्य भाग को धारण करती हुई), कामदेव के पास में स्थित धनुर्लता के समान (महारानी) प्रतीत हो रही हैं।

नागानन्द में उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है - **मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दैर्नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः । मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टीः किरन्तः कथमतिथिसपर्य्यां शिक्षिताः शाखिनोऽपि ।।** (नागानन्द 1.12)

अर्थात् ये पेड़ भौरों के गुंजार से मानों स्वागत कह रहे हैं, फल के भार से झुके हुये शाखारूपी सिरों से मानों प्रणाम कर रहे हैं और फूलों की वर्षा करते हुये मानों मुझे पूजा के उपहार सौंप रहे हैं ऐसा लगता है तपोवन के पेड़ों को भी अतिथि सत्कार की शिक्षा दी गई है।

3. हर्ष के रूपकों में रचना शिल्पगत औचित्य

नाना भावों से संपन्न विभिन्न अवस्थाओं के चित्रण से संयुक्त लोकवृत्त का अनुकरण ही नाट्य है।²⁵ नाट्य संबंधी सभी नियमों का निबंधन किसी एक रचनाकार से संभव नहीं इसलिए आचार्य भारत ने विस्तृत और व्यापक नियम के ज्ञान के लिए लोक को ही प्रमाण माना है।²⁶ भरत के अनुसार अभिनय, प्रकृति, पाठ, छंद, अलंकार, स्वर, संगीत- नाटक की इस विशाल सामग्री का अवसान दर्शकों के हृदय में अनुकूल रस-भाव के उन्मीलन में ही होता है। उन्होंने अभिनय के सिद्धांत का रहस्य प्रकट करते हुए कहा है- **वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषो वेषानुरूपश्च गतिप्रचारः । गति प्रचारानुगतं च पाठ्यं पाठयानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः ।।²⁷**

अर्थात् सर्वप्रथम अवस्था के अनुरूप वेष होना चाहिए। वेष के अनुरूप गति तथा क्रिया होनी चाहिए। गति प्रचार के अनुरूप पाठ्य और पाठ्य के अनुरूप अभिनय करना चाहिए। वे कहते हैं कि गले में मेखला और हाथ में नूपुर धारण करना शोभाधायक नहीं होता। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भरत मुनि ने यद्यपि औचित्य पद का उल्लेख नहीं किया है तथापि वे औचित्य तत्त्वों के उद्भावक हैं जिसकी परवर्ती अलंकारिकों ने विस्तृत व्याख्या की है। श्री हर्ष के रूपकों के अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि हर्ष एक कुशल नाटककार हैं। लोक प्रसिद्ध वत्सराज उदयन और बोधिसत्त्व जीमूतवाहन के चरित्रों की योजना करके उन्हें नाटकीय रूप प्रदान किया है। भारतीय रंगमंच के प्रति उनका योगदान सर्वथा अविस्मरणीय रहेगा।

श्री हर्ष ने अपने रूपकों के मूल कथानक प्राचीन स्रोतों से ग्रहण किया और अपनी प्रतिभा चातुरी से कथानकों को नवीन उद्भावनाओं से युक्त करके उन्हें रोचक एवं लोकप्रिय बना दिया। मनुष्य के भावों को जाग्रत करने के लिए सुंदर प्राकृतिक परिस्थितियों प्रस्तुत करने की योजना में वे अत्यंत सफल हुए हैं। मानव एवं प्रकृति के संबंध को निरूपित करने वाला एक उदाहरण दर्शनीय है -

उदा मोत्कलिको विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणादायासं श्वसनोदगमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः ।

अद्योद्यानलतामिमां समदनां गौरीमिवान्यां ध्रुवम् पश्यन्कोपविपाटलद्युतिमुखं देव्याः करिष्याम्यहम् ।।²⁸

प्रियदर्शिका नाटककार की प्रथम रचना है फिर भी कथानक में परिवर्तन करके अनुरूप दृश्य विधान के द्वारा हर्ष ने उसमें पर्याप्त मौलिकता लाने का प्रयास किया है। प्रियदर्शिका में गर्भाङ्क नाटक की योजना करके एक ओर उन्होंने उसे अत्यधिक आकर्षक और रमणीय बना दिया है तो दूसरी ओर शास्त्रीय वैशिष्ट्य की भी छाप छोड़ दी है। रत्नावली में नाट्य शास्त्रीय नियमों का परिपालन पूर्णरूपेण हुआ है यही कारण है कि साहित्यदर्पण एवं दशरूपक में नाट्य-सिद्धांतों के उदाहरणस्वरूप रत्नावली के अनेक पद्य उद्धृत किए गए हैं। दामोदर गुप्त ने रत्नावली की प्रशस्ति में कुट्टनीमत में लिखा है -

आश्लिष्टसन्धिबन्धं सत्पात्र सुवर्णयोजितम् सुतराम् । निपुणपरीक्षकदृष्टं राजनीति रत्नावली रत्नम् ।²⁹

नागानन्द अन्य नाटकों से विलक्षण है। इसमें परोपकार एवं जीव-कल्याणार्थ अहिंसा वृत्ति का उपनिबन्धन है। इस नाटक का अंगी रस वीर रस है। अंग रस के रूप में शांत एवं शुङ्गार की भी योजना हुई है। भाव-सौंदर्य, भाषा की विशदता, सरलता, सरसता आदि गुणों की दृष्टि से यह नाटक अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें मुख्य रूप से वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है।

पात्रों का चरित्रगत औचित्य

श्री हर्ष की तीनों कृतियों में पात्रों के चरित्रों की उत्तम योजना देखने को मिलती है। इनमें योजनानुसार नायक-नायिका एवं सहायक पात्र प्रस्तुत किये गये हैं। तीनों नाटकों में विदूषक नायक का मित्र है। औचित्यानुसार पुरुष और नारी पात्र रखे गये हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि कथानक के सुचारु निर्वह में पात्रों का चरित्र कैसा होना चाहिए। तभी उनके नाटकों में पात्रों की चरित्रगत योजना पूर्ण सफल हुई है।

प्रियदर्शिका में गर्भनाटक (या गर्भाङ्ग) उनकी मौलिक कल्पना है तो रत्नावली में ऐन्द्रजालिक के समावेश के अति प्राकृतिक तत्त्व के प्रति आस्था दिखाकर उन्होंने कविगत स्वच्छन्दता का भी परिचय दिया है। रूपकों के अन्तिम दृश्यों में अद्भुत रस का विन्यास उनकी विशिष्टता है प्रियदर्शिका में सर्पदंश, रत्नावली में अग्निदाह और नागानन्द में नायक का गरुड द्वारा खाया जाना चरम बिंदु हैं जहाँ सामाजिक रोमाञ्चित होते हैं किन्तु सहसा दृश्य सुखद हो जाता है।

उपसंहार

औचित्य सिद्धान्त काव्यशास्त्र का एक समादृत सिद्धान्त है। भारतीय काव्यशास्त्र के अन्य सभी सिद्धान्तों (रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति) के अस्तित्व में आने के पश्चात् आदित्य सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ। औचित्य की मूल स्थिति साहित्य के समस्त उपादान तत्त्वों और सभी उपकरणों में है। काव्य के विभिन्न अङ्ग, प्रत्यङ्ग में औचित्य होने पर ही सौन्दर्य का सृजन हो सकता है तथा उससे सहृदय सहानुभूति प्राप्त कर सकता है। कवि के मौलिक भावों के अनुरूप गुण, अलंकार, रीति, शब्द-शय्या, छंद-रचना, विभावादि की योजना का समुचित विन्यास ही औचित्य है। यही नहीं अभिधा, लक्षणा और व्यंजना जैसी शब्द-शक्तियों तथा शब्दार्थ के परस्पर संबंधों के भीतर भी औचित्य कारणरूपेण स्थित है। औचित्य एक विवेक-बुद्धि है जो विभिन्न काव्यों के उचित-अनुचित संयोजन का बोध कराती है। यह एक दृष्टि है जो सभी तत्त्वों का सामरस्य उपस्थित कर सौंदर्य-सृजन करती है। औचित्य पर बल देकर क्षेमेन्द्र ने काव्य को जीवन मूल्यों के निकट ला दिया है क्योंकि औचित्य जीवन को स्वस्थ, सुंदर और सामंजस्यपूर्ण बनाता है।

हर्षवर्धन एक विदग्ध और कुशल नाटककार हैं। उन्होंने अपने रूपकों में रसोद्भावन, चरित्र-चित्रण एवं कथानक संयोजन की दृष्टि से यथासाध्य उत्कृष्ट नाट्यकला का परिचय दिया है। जहाँ तक उनकी कृतियों

में औचित्य विधान का प्रश्न है, उन्होंने इस विषय में अत्यंत निपुणता का परिचय दिया है। उनके रूपकों में हमें विषयगत, शब्दार्थगत, रस-भावगत, बुद्धि-तत्त्वगत, लोक-व्यवहारगत औचित्य का युक्तियुक्त प्रयोग परिलक्षित होता है। उन्होंने न केवल उचित भाषा का प्रयोग किया बल्कि उनकी शैली भी अत्यंत प्रवाहपूर्ण है, अलंकारों का यथेष्ट और उचित मात्र में सुंदर प्रयोग है। वैदर्भी रीति में रचित उनकी कृतियाँ मधुर छंदों में निबद्ध हैं। उन्होंने काव्य एवं लोक व्यवहार के साथ-साथ मानव एवं प्रकृति की पूर्ण समरसता स्थापित करने का प्रयत्न किया है। रत्नावली में हर्ष की नाट्य कला अपनी चरम सीमा पर है। यही कारण है कि नाट्यशास्त्रकारों ने कथावस्तु, नाटकीय तत्त्व आदि के लिए अधिकांश उदाहरण रत्नावली से ही लिये हैं। अस्तु हर्ष के रूप में औचित्य विधान का विश्लेषण अत्यंत रोचक विषय है जो हर्ष की नाट्य शैली की उत्कृष्टता को हमारे समक्ष लाने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ -

1. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत
2. ध्वन्यालोक 3.14 की वृत्ति
3. ध्वन्यालोक परिकर श्लोक, 11.5
4. औचित्यविचारचर्चा- कारिका 3
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ.597
6. रत्ना. 3.9
7. नागानंद 5.31
8. नागानन्द 3.4
9. रत्नावली 3.3
10. प्रियदर्शिका 3.13
11. नागानन्द 5.16
12. औचित्यविचारचर्चा- कारिका 36
13. नागानंद 1.6
14. नागानंद 3.7
15. नागानन्द- 4.2
16. प्रियदर्शिका 1.12
17. प्रियदर्शिका 3.15
18. रत्नावली 3.6
19. रत्नावली 1.25
20. रत्नावली 4.6
21. नागानन्द 4.17
22. औचित्यविचारचर्चा कारिका-6
23. नागानन्द 5.22
24. रत्नावली 1.19
25. नाट्यशास्त्र, 1.109
26. नाट्यशास्त्र, 26.113
27. नाट्यशास्त्र, 14.68
28. रत्नावली 2.
29. संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. 514

श्री हर्षदेव कृत रूपकों में रीति तत्त्व

मिथिलेश कुमार पाण्डेय

संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ केवल काव्य की शैली या रचना पद्धति नहीं है, बल्कि यह काव्य में विचारों और भावों को सुसंगठित और प्रभावशाली रूप से व्यक्त करने की एक विशिष्ट प्रणाली है। रीति वह मार्ग है जिसके माध्यम से कवि अपने विचारों और भावनाओं को कला की दृष्टि से अभिव्यक्त करता है। इसका संबंध काव्य के सौंदर्य से है, जो कविता को अधिक आकर्षक और मार्मिक बनाता है। रीति का अर्थ है काव्य में भाषा, शैली और भावों की अभिव्यक्ति का विशेष रूप। काव्यशास्त्र में वामनाचार्य ने रीतियों को काव्य की आत्मा कहा है। उनके अनुसार, जिस प्रकार शरीर की शोभा के लिए विभिन्न आभूषणों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार काव्य की सुंदरता के लिए रीतियाँ आवश्यक हैं। रीति की परिभाषा (वामन के अनुसार) “रीतिरात्मा काव्यस्य ।” (अर्थ: रीति काव्य की आत्मा है।)

आचार्य वामन ने पुनः काव्यालंकार सूत्र में कहा है : “रीतिर्नाम काव्यस्य मार्गः” रीति काव्य का मार्ग है।

यह श्लोक दर्शाता है कि काव्य में रीति का वही महत्व है जो किसी मार्गदर्शक का होता है। रीति काव्य को दिशा प्रदान करती है और उसके भावों को प्रभावी बनाती है। यही कारण है कि संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति को काव्य की आत्मा माना गया है। विभिन्न आचार्यों ने रीति के महत्व को समझाया है, और इसके माध्यम से काव्य को गहन और प्रभावी बनाने के उपायों का वर्णन किया है। मम्मट, आनंदवर्धन, और विश्वनाथ जैसे आचार्यों ने रीति के महत्व पर झुकाव डाला है और इसके विभिन्न रूपों का वर्णन किया है।

रत्नावली, नगनद और प्रियदर्शिका में वैदर्भी, पांचाली और गौड़ी रीति का प्रयोग एवं उसका उदहारण बहुतायत प्राप्त होता है। जो की दृष्टिगम्य हैं –

भृत्यानामविकारिता परिगता दृष्टा मतिर्मन्त्रिणां मित्राण्यप्युपलक्षितानि विदितः पौरानुरागोऽधिकम् ।

नियूढा रणसाहस्यसनिता स्त्रीरत्नमासादितं निर्याजादिव धर्मतः किमिव न प्राप्तं मया बन्धनात् ।।³

इस श्लोक में भाषा की जटिलता और गूढ़ता स्पष्ट है, जो गौड़ी रीति का लक्षण है। यहाँ राजा की वीरता, प्रजा का प्रेम, और पत्नी का आदर्श वर्णन अलंकारयुक्त शैली में किया गया है, जिससे काव्य की गंभीरता बढ़ती है।

अच्छिन्नामृत बिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रोति ददत्या दृशा । याताया विगलत्पयोधरपटाद्रष्टव्यतां कामपि ।

अस्याश्चन्द्रमसस्तनोरिव करस्पर्शास्पदत्वं गता । नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम् ।।⁴

यह श्लोक नायिका के रूप और उसके आकर्षण का वर्णन करता है। यहाँ न तो अत्यधिक जटिल भाषा का प्रयोग है और न ही बहुत सरल। भावों की मधुरता और शब्दों का संतुलित प्रयोग पांचाली रीति का संकेत है।

आभाति रत्नशतशोभिशातकुम्भस्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदाम रम्यम् ।

अध्यासितं युवतिभिर्भात्रजिताप्सरोभिः प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ।।⁵

इस श्लोक में राजमहल की भव्यता और वैभव का वर्णन जटिल और अलंकारयुक्त भाषा में किया गया है, जो गौड़ी रीति का संकेत है। यहाँ शब्दों का प्रभावी और सज्जित प्रयोग किया गया है।

रूपं तन्नयनोत्सवास्पदमिदं वेधः स एवोज्ज्वलः । सा मत्तद्विरदोचिता गतिरियं तत्सत्त्वमत्यूर्जितम् ।

लोला सैव स एव सान्द्रजलदहादानुकारो स्वरः । साक्षाद्वर्णित एष नः कुशलया वत्सेश एवानया ।।⁶

यहाँ नायक के रूप और उसकी उपस्थिति का वर्णन संतुलित भाषा में किया गया है, जहाँ शब्द सरल और जटिल दोनों का संतुलन दिखाते हैं। यह पांचाली रीति का एक आदर्श उदाहरण है।

भ्रूभङ्गं न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धेक्षणे केवलं । नातिप्रस्फुरिताधरानवरतं निःश्वासमेवोज्जसि ।

वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्याननम्रानना । कोपस्ते स्तिमितो निपीडयति मां गूढप्रहरोपमः ।।⁷

इस श्लोक में भाषा सरल और मधुर है, जो वैदर्भी रीति की विशेषता है। यहाँ भावनाओं को सीधे और प्रभावी रूप से व्यक्त किया गया है, जिसमें अलंकारों का सीमित प्रयोग है।

● रत्नावली :-

पुरः पूर्वमेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं क्रमात्क्रामन्न्द्रिद्रुमपुरविभागांस्तिरयति ।

उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणफलं तमः संघातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ।।⁸

इस श्लोक में भव्यता, ओज और गूढ़ता का प्रयोग किया गया है। शब्दों में अलंकारिकता और प्रभावशाली भाषा दिखाई देती है, जहाँ तमस (अंधकार) का हरण और हर के कंठ (नीलकंठ) का वर्णन भव्य रूप से किया गया है। विस्तार और गंभीरता से भरी अभिव्यक्ति गौड़ी रीति का मुख्य गुण है।

हिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं द्वयो-दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।

सखीषु स्मेरासु प्रगटयति वैलक्ष्यमधिकं प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातंकविधुरा ।।⁹

इस श्लोक में प्रेम की कोमलता, मनोवेदना, और भावनात्मक उलझन को दर्शाया गया है। नायिका के हृदय में छिपी व्यथा और उसकी सहज लेकिन गहन भावनाओं का वर्णन हुआ है। भाषा में सरलता और भावनात्मक गहराई है, जो पाञ्चाली रीति का मुख्य गुण है।

औत्सुक्येन कृतत्वर सहभुवा व्यावर्तमाना हिया, तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताभिमुख्यं पुनः ।

दृष्टाग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे, संरोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु वः ।।¹⁰

इस श्लोक में भव्यता और गूढ़ता का समावेश है। नायिका और नायक के मिलन के समय भावनाओं के तीव्र उतार-चढ़ाव और अलंकारिक भाषा का प्रयोग इसे गौड़ी रीति की श्रेणी में रखता है। शब्दों में ओज और गहराई भी स्पष्ट है।

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष, श्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम् ।

शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा, विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ।।¹¹

इस श्लोक में कोमलता, सहजता और सौंदर्य का वर्णन मिलता है। “अब्जपत्र” (कमल की पंखुड़ी) जैसी उपमाएँ प्रेम और सौंदर्य के भावों को व्यक्त करती हैं, जो पाञ्चाली रीति की विशेषता है। इसमें प्रेम और

आनंद की गहनता को सरल और सीधे रूप में व्यक्त किया गया है। विधायापूर्वपूर्णन्दुमस्या मुखमभूद् ध्रुवम् । धाता निजासनम्भोजविनिमीलनदुः स्थितः ।।¹² इस श्लोक में सरलता, सौम्यता और मनोहरता का प्रयोग हुआ है। नायिका के मुख की तुलना पूर्णिमा के चंद्रमा से की गई है, जो वैदर्भी रीति की कोमल अभिव्यक्ति का परिचायक है। भाषा में भव्यता या वीरता की बजाय शालीन सौंदर्य को प्राथमिकता दी गई है।

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं विभ्रतो, भृंगालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः ।

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहै मुहु-भान्ति प्राप्य मधुप्रसंगमधुना मत्ता इवामी द्रमाः ।¹³

इस श्लोक में वृक्षों का वर्णन अत्यंत भव्य रूप में किया गया है, जहाँ उनकी शाखाएँ मलय पवन के झोंकों से हिलती हैं, और वृक्षों को मत्त (उन्मत्त) मधुमक्खियों के साथ उपमित किया गया है। यह प्रकृति के उत्साह और भव्यता को प्रकट करता है, जो गौड़ी रीति का एक प्रमुख गुण है।

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम् । परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ।¹⁴

इस श्लोक में कोमलता और प्रेम की अभिव्यक्ति है। प्राची दिशा का वर्णन प्रेम में रमी हुई रमणी की उपमा के साथ किया गया है। भाषा में सौम्यता और भावनाओं की सहजता है, जो पाञ्चाली रीति का मुख्य लक्षण है। लीलावधूतपद्मा कथयन्ती पक्षपातमधिकं नः । मानसमुपैति केयं चित्रगता राजहंसीव ।।¹⁵ इस श्लोक में सरलता, माधुर्य और सौम्यता का प्रयोग हुआ है। राजहंस की तुलना नायिका के सौंदर्य और मनोहरता से की गई है। यहाँ कोमल भावों के साथ मनोस्थिति का वर्णन है, जिसमें अलंकारों का प्रयोग संयमित और सहज है, जो वैदर्भी रीति का प्रमुख लक्षण है।

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृत्तमांगे क्षणं ब्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोद्धलद्धह्नि ।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभवन्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।।¹⁶

इस श्लोक में वीरता, भव्यता और युद्ध की उग्रता का वर्णन किया गया है। शब्दों में ओजस्विता और आलंकारिकता है, जहाँ युद्ध की विभीषिका और नायक की वीरगाथा को उकेरा गया है। अस्त्र-शस्त्रों और रक्त-स्रवण का जीवंत चित्रण, तथा युद्ध में राजा का पराजय—ये सभी गौड़ी रीति के प्रमुख गुण हैं, जो भव्यता और गूढ़ता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं।

किं पद्मस्य रुचं न हन्ति नयनानन्दं विधत्ते न किं वृद्धिं वा झषकेतनस्य कुरुते नालोकमात्रेण किम् ।

वक्त्रेन्दौ तव सत्ययं यदपरः शीतांशुरभ्युद्गतो दर्पः स्यादमृतेन चेदिह तदप्येवास्ति बिम्बाधरे ।¹⁷

इस श्लोक में कोमलता, प्रेम और सौंदर्य का मनोहारी वर्णन है। नायिका के मुखचंद्र और अधरों की तुलना पद्म (कमल) और शीतांशु (चंद्रमा) से की गई है, जो पाञ्चाली रीति का विशिष्ट गुण है। इसमें प्रेमपूर्ण भावनाएँ और आकर्षण को सरल और मधुर भाषा में व्यक्त किया गया है, जो पाठक के मन में कोमल अनुभूति उत्पन्न करता है।

● नागानन्द :-

रागस्यास्पदमित्यवैमि न हि मे ध्वंसाति न प्रत्ययः कृत्याकृत्यविचारणासु विमुखं को वा न वेत्ति क्षितौ ।

एवं निन्द्यमपीदमिन्द्रियवशं प्रीत्यै भवेद् यौवनं भक्त्या याति यदीत्यमेव पितरौ शुश्रूषमाणस्य मे ।।¹⁸

इस श्लोक में वैदर्भी रीति के लक्षण दृष्टिगत होते हैं, जैसे सरल और मधुर शब्दावली, भावों की स्पष्टता और कोमलता। यहाँ ‘इन्द्रियवशं’ और ‘भक्त्या’ जैसे शब्दों का प्रयोग कर कोमलता और शांति का चित्रण किया गया है, जो वैदर्भी रीति का प्रमुख गुण है।

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृङ्गशब्दै, नन्तिमिव फलनस्त्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः ।

मम ददत खार्ध्व पुष्पवृष्टीः किरन्तः, कथमतिथिसपर्या शिशिताः शाखिनोऽपि ।।¹⁹

यहाँ फिर से मधुरता और कोमलता प्रधान है, जहाँ प्राकृतिक सुंदरता और भृंगों की मधुर ध्वनि का वर्णन किया गया है। स्वागत का दृश्य कोमलता और मधुर भावों से युक्त है, जो वैदर्भी रीति का संकेत देता है।

स्थानप्राप्त्या दधानं प्रकटितगमकां मन्द्रतारव्यवस्थां, निर्हादन्या विपञ्च्या मिलितमलिरुतेनेव तन्त्रीस्वरेण ।
एते दन्तान्तरालस्थिततृणकवलच्छेदशब्दं नियम्य, व्याजिह्वाङ्गाः कुरङ्गाः स्फुटललितपदं गीतमाकर्णयन्ति ।।²⁰

श्लोक में “प्रकटितगमकां मन्द्रतारव्यवस्थां” जैसे शब्दों के प्रयोग से संगीत की मधुरता और कोमलता को दिखाया गया है। हिरणों के व्यवहार और उनके सौम्य स्वरूप का वर्णन भी बहुत सुंदर और सहज शब्दों में किया गया है, जो वैदर्भी रीति का एक और उदाहरण है।

व्यावृथैव सितासितेक्षणरुचा तानाश्रमे शाखिनः कुर्वत्या विटपावसक्तविलसत्कृष्णाजिनौघानिव ।

यद् दृष्टोऽस्मि तथा मुनेरपि पुरस्तेनैव मय्याहते पुष्पेषो! भवता मुधैव किमिति क्षिप्यन्त एते शराः ।।²¹

इस श्लोक में गौड़ी रीति के लक्षण दिखाई देते हैं। यहाँ वर्णन विस्तृत और अलंकारिक है, जैसे “सितासितेक्षणरुचा”, “कृष्णाजिनौघानिव” शब्दों का प्रयोग करके प्राकृतिक दृश्य को अलंकरण के साथ प्रस्तुत किया गया है। गौड़ी रीति में विस्तृत और जटिल वर्णन होते हैं, जो इस श्लोक में स्पष्ट है।

क्षिप्वा विम्बं हिमांशोर्भयकृतवल्यां संस्तरुषेष्मूर्तिं सानन्दं स्यन्दनाश्वत्रसनविवलिते पूष्णि दृष्टोऽग्रजेन ।

एष प्रान्तावसज्जलधरपटलात्यायती भूतपक्षः प्राप्तो वेलामहीघ्नं मलयमहमहिग्रासगृध्नुः क्षणेन ।।²²

यह श्लोक अलंकारों से भरा हुआ है, जहाँ विस्तृत और जटिल विवरण का प्रयोग हुआ है। “हिमांशोर्भयकृतवल्यां” जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए एक चित्रत्मक और अलंकारिक शैली को अपनाया गया है, जो गौड़ी रीति का लक्षण है। इसलिए, यह श्लोक गौड़ी रीति के अंतर्गत आता है।

निष्कर्षः

श्रीहर्ष ने अपनी तीनों कृतियों—प्रियदर्शिका, रत्नावली, और नागानन्द—में भाषा और शैली के विभिन्न प्रयोगों द्वारा विभिन्न रीतियों को कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

गौड़ी रीति में भाषा की गंभीरता और शब्दों की भव्यता का विशेष ध्यान रखा गया है, जो विशेष रूप से ‘नागानन्द’ में प्रमुखता से देखने को मिलता है। वैदर्भी रीति, जो सरलता, माधुर्य और कोमलता की प्रतीक है, ‘प्रियदर्शिका’ और ‘रत्नावली’ में मुख्य रूप से प्रेम और सौंदर्य के चित्रण के दौरान उभरती है। वहीं, पांचाली रीति में भाषा की स्वाभाविकता और प्रवाह देखा जाता है, जो श्रीहर्ष की सभी रचनाओं में पात्रों के संवादों में विशेष रूप से परिलक्षित होता है। इन रीतियों के प्रयोग ने श्रीहर्ष के रूपकों को न केवल काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट बनाया, बल्कि उनके साहित्यिक योगदान को भी अमूल्य बनाया है। उनके नाटकों में रीति तत्वों का सजीव प्रयोग दर्शाता है कि कैसे भाषा और शैली नाटकीयता और काव्य सौंदर्य को संवर्धित कर सकती हैं।

सन्दर्भ -

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास (लौकिक खण्ड), प्रितिप्रभा गोयल, पृष्ठ -312.
2. वही
3. प्रियदर्शिका, टीकाकार-पंडित रामचंद्र मिश्र, 2009, अंक एवं श्लोक 1/6, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी.

4. प्रियदर्शिका, अंक एवं श्लोक 2/7.
5. प्रियदर्शिका, अंक एवं श्लोक 3/2.
6. प्रियदर्शिका, अंक एवं श्लोक 3/7.
7. प्रियदर्शिका, अंक एवं श्लोक 4/3.
8. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 3/7.
9. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 3/4.
10. रत्नावली प्रस्तावना 2, पेज क्रमांक 10.
11. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 2/16.
12. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 2/10.
13. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 1/17.
14. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 1/24.
15. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 2/9.
16. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 4/6.
17. रत्नावली, अंक एवं श्लोक 3/13.
18. नागानन्द, अंक एवं श्लोक 1/6.
19. नागानन्द, अंक एवं श्लोक 1/12.
20. नागानन्द, अंक एवं श्लोक 1/13 .
21. नागानन्द, अंक एवं श्लोक 2/2.
22. नागानन्द, अंक एवं श्लोक 4/25 .

रत्नावली में अर्थप्रकृति एवं कार्यावस्थाओं का अनुप्रयोग

ललित कुमार

नाट्यशास्त्र, दशरूपक तथा साहित्यदर्पण आदि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में रूपक तथा उपरूपकों में प्रयुक्त नियम, परिभाषा तथा नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का विवेचन प्राप्त होता है। नाटकादि रूपकों के तीन भेदक तत्त्वों में परिगणित कथावस्तु के बहिरङ्ग विश्लेषण हेतु अर्थप्रकृतियों तथा अन्तरङ्ग विश्लेषण हेतु कार्यावस्तुओं का अनुशीलन आवश्यक होता। अर्थप्रकृतियाँ कथावस्तु से साक्षात् सम्बद्ध होने के कारण समस्त कार्य व्यवहार के फल का अधिकारी नायक होता है। इस साध्य प्रयोजन की सिद्धि की हेतु अथवा उपाय अर्थप्रकृतियाँ होती हैं तथा फल की प्राप्ति के लिए नायक जिस कार्य-व्यापार का आश्रय लेता है, उसकी अवस्थाएँ ही कार्यावस्थाएँ कही जाती हैं। इन अर्थप्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं का क्या स्वरूप है ? रूपकों में इनका क्या उपयोग है? इनके कितने भेद हैं? इत्यादि विषयों का इस शोध-पत्र के द्वारा श्रीहर्ष कृत रत्नावली नाटिका के सन्दर्भ में अनुशीलन किया जायेगा।

आचार्य भरत के मतानुसार रूपकों में नायक के द्वारा जिस साध्य फल की प्राप्ति करने के लिए जो कार्य-व्यापार का प्रसार किया जाता है, उसे कार्यावस्था कहते हैं। कार्यावस्था का स्वरूप स्पष्ट करते हुए दशरूपक में कहा गया है- रूपकों में फल की इच्छुक नायक के द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्य-व्यापार की आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम नामक पाँच अवस्थाएँ होती हैं। इन कार्यावस्थाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि लोक के व्यवहार से प्रभावित रूपकों तथा उपरूपकों में मनुष्य के जीवन की भाँति ही नायक को भी निश्चित फलप्राप्ति के लिए बहुत संघर्षों से गुजरना पड़ता है।

इसी प्रकार कथावस्तु के अभीष्ट लक्ष्य फल की प्राप्ति करने लिए ग्रन्थ प्रणेता के द्वारा नाटकादि रूपकों में जो उपाय निबद्ध किए जाते हैं, उन्हें अर्थप्रकृति कहते हैं। अर्थप्रकृति का अर्थ स्पष्ट करते हुए आचार्य धनिक ने अपनी वृत्ति में लिखा है- अर्थप्रकृति से तात्पर्य उन तत्त्वों से है, जो प्रयोजन-सिद्धि के हेतु होते हैं। दशरूपक में अर्थप्रकृतियों के भेदों का उल्लेख कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है - बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य नामक अर्थप्रकृतियों के पाँच भेद होते हैं। इन पाँचों भेदों के लक्षण एवं उदाहरणों का यथाक्रम रत्नावली नाटिका के सन्दर्भ में अनुशीलन किया जायेगा।

बीज -

जिस प्रकार संसार में एक लघु बीज से विशाल वृक्ष तथा उस वृक्ष से फल की उत्पत्ति देखते हैं। उसी प्रकार नाट्यशास्त्र में बीज अर्थप्रकृति की स्थिति होती है। जैसे बीज में फल विद्यमान रहता है, वैसे ही बीज

नामक अर्थप्रकृति में नाटकादि का फल विद्यमान होता है। बीज का स्वरूप स्पष्ट करते हुए दशरूपक में कहा गया है- नाटकादि रूपकों के प्रारम्भ में स्वल्प रूप में सङ्केतित वह तत्त्व, जो फल का हेतु होता है तथा अनेक प्रकार से विस्तार को प्राप्त करता है, वह बीज कहा जाता है। बीज को सङ्क्षेप में कहा जाता है, सर्वथा वैसे ही जैसे भूमि में सूक्ष्म बीज को बोया जाता है। रूपक में जैसे-जैसे कार्य-व्यापार बढ़ता है, वैसे-वैसे बीज में विस्तार होता है। इसको इस प्रकार से भी समझा जा सकता है, जैसे भौतिक जगत् में बीज के बिना फल की प्राप्ति असम्भव है, वैसे ही नाटकादि रूपकों में बीज अर्थप्रकृति के अभाव में फल की प्राप्ति करना सम्भव नहीं है।

बीज का उदाहरण रत्नावली नाटिका में कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है- कथावस्तु का कार्य उदयन व रत्नावली का मिलन कराना है। रत्नावली के विष्कम्भक में मन्त्री यौगन्धरायण की इस कार्य को पूर्ण कराने का प्रयास जिसे भाग्य की सहायता भी प्राप्त है, बीज रूप में उपस्थापित की गई है। मन्त्री यौगन्धरायण 'क्या सन्देह है? यह कहते हुए- **द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलेनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्। आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।।** अर्थात् अनुकूल हुआ भाग्य अभिलिषित वस्तु को अन्य द्वीप से, समुद्र के मध्य से तथा दिशाओं के अन्त से अर्थात् कहीं से भी लाकर प्राप्त करा देता है। तथा

प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवेनेत्यं दत्तहस्तावलम्बे। सिद्धेभ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीत एवास्मि भर्तुः।।

अर्थात् अपने राजा की उन्नति के कार्य को प्रारम्भ कर भाग्य के अनुकूल रहने पर मैं अपने इस कार्य में सफलता प्रारम्भ करूँगा। उपर्युक्त दोनों श्लोकों के माध्यम से रत्नावली नाटिका में बीज अर्थप्रकृति का उपस्थापन किया गया है। इसी पर वत्सराज उदयन को सागरिका की प्राप्ति होना निर्भर है।

बिन्दु

अर्थप्रकृतियों में द्वितीय अर्थप्रकृति बिन्दु है। बिन्दुरिव बिन्दुः अर्थात् बिन्दु अर्थप्रकृति जल में तैल की बिन्दु के समान होती है। आचार्य धनिक ने भी अवलोकवृत्ति में 'बिन्दुः जले तैलबिन्दुवत् प्रसारित्वात्' अर्थात् जल में तैल बिन्दु की भाँति इसका प्रसार नाटकादि में बताया है। जैसे जलपात्र में तैल बिन्दु का प्रसार होता है। वैसे ही बिन्दु अर्थप्रकृति की रूपकादि में स्थिति रहती है। बिन्दु का स्वरूप स्पष्ट करते हुए दशरूपक में कहा गया है - अवान्तरार्थविच्छेदेबिन्दुरच्छदकारणम्। अर्थात् किसी अन्य कथा अर्थ से विच्छिन्न होने पर कथावस्तु को पुनः जोड़ने का कारण बिन्दु कहा जाता है। जब रूपकादि में कथावस्तु का प्रवाह दिशा से भिन्न दिशा में परिवर्तित होने लगता है, तब रचनाकार नाटक के पात्रों की सहायता से उसे वाञ्छित दिशा में ले जाने का प्रयास करता है। बिन्दु अर्थप्रकृति को रत्नावली नाटिका के एक उदाहरण से समझा जा सकता है। रत्नावली नाटिका में महारानी वासवदत्ता के द्वारा कामदेव की पूजा करना एक अवान्तर कथावृत्त है। तदनन्तर कथा टूट जाती है तथा एक अर्थ समाप्त होने लगता है। इसे फिर से जोड़ने या संयुक्त करने के लिए बिन्दु नामक अर्थप्रकृति का सहारा लिया जाता है। 'अस्तापास्त समस्तभासि... उदयनस्येदोरिवोद्दीक्षते।' इस उक्ति के श्रवण से रत्नावली, जो सागरिका के रूप में वत्सराज उदयन के यहाँ रह रही थी, उनके द्वारा यह कहा जाता है- सागरिका (श्रुत्वा) कहां एसो सो उदयनगरिन्दो जस्स अहं तादेण दिण्णा (कथमेष स उदयननरेन्द्रो यस्याहं तातेन दत्ता) अर्थात् क्या ये वही राजा उदयन हैं, जिनके लिए पिताजी ने मुझे दे दिया है? इस कथन से कथा को जोड़ दिया गया है। रत्नावली का यह प्रसंग विच्छेद का निराकरण कर कथावस्तु को आगे की कड़ी से जोड़ने का कारण बनता है। जो नाटिका के समाप्ति पर्यन्त विद्यमान दिखाई देता है। इसे हम बिन्दु कह सकते हैं।

पताका

अर्थप्रकृतियों में तृतीय स्थान पर पताका की गणना होती है। आपने पूर्व भेदों के अन्तर्गत पताका के विषय में अध्ययन किया है। कथावस्तु के आधिकारिक तथा प्रासङ्गिक दो भेदों में से प्रासङ्गिक कथावस्तु के पुनः दो भेद होते हैं, जिसमें एक पताका है। पताका नाट्य की कथावस्तु का वह उपकथानक होता है, जिसका नायक आधिकारिक कथावस्तु के मुख्य नायक का सहयोग करते हुए स्वयं के लक्ष्य की प्राप्ति भी कर लेता है। पताका का स्वरूप स्पष्ट करते हुए दशरूपक में निर्दिष्ट है-‘सानुबन्धं पताकाख्यम्..’ अर्थात् अनुबन्ध से युक्त जो प्रासङ्गिक कथावस्तु नाटिकादि में दूर तक चलती है, उसे पताका कहते हैं। यह नायक के पताकाचिह्न की तरह मुख्य कथावस्तु तथा नायक की पोषक होती है। रत्नावली नाटिका में पताका नामक अर्थप्रकृति का अभाव है।

प्रकरी

चतुर्थ अर्थप्रकृति प्रकरी है। पताका के समान आपने पूर्व में वस्तु के भेदों के अन्तर्गत इसका अध्ययन किया है। यह प्रासङ्गिक कथावस्तु के दो भेदों में से एक है। पताका अनुबन्ध से युक्त होती है किन्तु प्रकरी अनुबन्ध से हीन होती है। इसका उद्देश्य भी पताका की तरह आधिकारिक कथावस्तु को सहायता देना है। ‘प्रकर्षेण स्वार्थानपेक्षया करोतीति प्रकरी’ अर्थात् जिस कथावस्तु में फल की प्राप्ति आधिकारिक कथा के नायक की अपेक्षा के बिना होती है वह प्रकरी है, प्रकरी का लक्षण दशरूपक में निम्नवत् है- ‘...प्रकरी च प्रदेशभाक्।’ अर्थात् जो कथा एक प्रदेश तक ही सीमित रहती है, उसे प्रकरी कहा जाता है। यह पताका अर्थप्रकृति की भाँति अधिक दूर तक नहीं चलती, किन्तु थोड़ी दूर तक ही जाती है। इसकी कथा स्वार्थ-निरपेक्ष रहती है। इसका कथानक रूपक में प्रदेशभाक् - एक ही स्थान पर रखा जाता है तथा उसी स्थान पर वह समाप्त भी हो जाती है। मुख्य रूप से पताका और प्रकरी में यही अन्तर है। रत्नावली नाटिका में विजयवर्मा द्वारा वर्णित रुमण्वान् का कोसलोच्छेद प्रकरी नामक अर्थप्रकृति है।

कार्य

अर्थप्रकृतियों में पाँचवी एवं अन्तिम अर्थप्रकृति कार्य है। इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है-कार्यते फलमिति कार्यम्। कार्यवस्तु की सफलता के लिए रूपकों में कार्य नामक अर्थप्रकृति की योजना आवश्यक होती है। इसका स्वरूप बताते हुए दशरूपक में उल्लेख है-

कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानुकानुबन्धि च। धर्मार्थकामाः फलं तच्च शुद्धमेकैकानुबन्धं द्वित्यनुबन्धं वा।।

अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम यह त्रिवर्ग कार्य (फल) है। यह इन धर्म, अर्थ तथा काम में से कभी एक भी हो सकता है, कभी इनमें से कोई दो अथवा ये तीनों भी सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कथावस्तु में कार्य अर्थप्रकृति वह होती है, जहाँ नायक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् जिस साध्य की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है, जो नाटकादि रूपकों में फल होता है, वही कार्य अर्थप्रकृति होती है। रत्नावली नाटिका में कार्य नामक अर्थप्रकृति अन्त में है, जब रत्नावली से विवाह करने की अनुमति मिल जाती है।

रत्नावली नाटिका में अर्थप्रकृतियों के पश्चात् क्रमानुसार प्राप्त कार्यावस्थाओं के अनुप्रयोग का अनुशीलन किया जाएगा। दशरूपक में कार्यावस्था के भेदों का वर्णन करते हुए लिखा है- फलार्थी नायक के द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य की पंच अवस्थाएँ होती हैं- आरम्भ, यत्न, प्राप्याशा, नियताप्ति तथा फलागम। वस्तुतः कार्य की सिद्धि हेतु नायक की प्रवृत्ति का विश्लेषणात्मक चित्र इस अवस्थापंचक से स्वरूप प्राप्त करता है।

आरम्भ

रूपकों में कथा का प्रारम्भ आरम्भ अवस्था है। कथावस्तु के प्रारम्भ में जहाँ बीज के औत्सुक्य का क्रियान्वयन किया जाता है, उस स्थिति को आरम्भ कहते हैं। दशरूपक में आरम्भ का स्वरूप बताते हुए कहा गया है –

औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। इदमहं संपादयामीत्यध्यवसायमात्रमारम्भ इत्युच्यते।।

अर्थात् नायकादि पात्रों में अत्यन्त फललाभ की उत्सुकता का उत्पन्न होना आरम्भ अवस्था है। नाटकादि के प्रारम्भ में नायकादि के मन में यह उत्सुकता उत्पन्न हो कि मैं इस कार्य को करूँ, इस उत्सुकता मात्र को ही आरम्भ कहा जाता है। इस कार्यावस्था को सरल रूप से समझाने के लिए आचार्य धनिक ने अपनी अवलोक टीका में ‘रत्नावली’ नाटिका का उदाहरण प्रस्तुत किया है। जहाँ वत्स देश के मन्त्री यौगन्धरायण ने ‘प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवो चेत्यं दत्तहस्तावलम्बे ।.....’ अर्थात् अपने स्वामी (राजा) की उन्नति के लिए किए गए तथा भाग्य के द्वारा सहारा दिए गए इस कार्य में...इत्यादि कथन के द्वारा कार्यारम्भ की सूचना देते हुए फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता प्रदर्शित की है। यहाँ फलप्राप्त्यर्थ मन्त्री यौगन्धरायण की यह उत्सुकता ही आरम्भ कार्यावस्था की सूचक है।

यत्न

आरम्भ के पश्चात् द्वितीय कार्यावस्था यत्न है। नाटकादि में फल प्राप्ति की उत्सुकता उत्पन्न होने के पश्चात् योजनायुक्त कार्य-व्यापार में प्रवृत्त होना द्वितीय कार्यावस्था यत्न है। आप इसे प्रथम कार्यावस्था ‘आरम्भ’ की उत्तरावस्था भी कह सकते हैं। दशरूपक में यत्न कार्यावस्था का लक्षण निर्देशित करते हुए कहा गया है- **प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारो तित्वरान्वितः।। तस्य फलस्याप्राप्तावुपाययोजनादिः पश्चेष्टाविशेषः प्रयत्नः।**

अर्थात् नाटकादि रूपकों की कथावस्तु में अपेक्षित फल की प्राप्ति न होने पर, उसे प्राप्त करने के लिए अत्यधिक शीघ्रता के साथ कार्य-व्यापार में प्रवृत्त होना अथवा चेष्टा करना यत्न नामक कार्यावस्था है। इस कार्यावस्था में नायक या नायिका अपने अभिलषित फल की प्राप्ति के लिए संलग्न हो जाते हैं।

जिस प्रकार रत्नावली नाटिका में सागरिका का चित्रलेखन रूपी कार्य में यह कहते हुए प्रवृत्त होना कि वत्सराज उदयन को देखने का और कोई उपाय नहीं है, पुनरपि जैसे-तैसे उनका चित्र बनाकर ही अपनी इच्छा पूर्ण करती हूँ। इस कथन के द्वारा रत्नावली नाटिका में यत्न अर्थप्रकृति की योजना नाटककार के द्वारा की है। क्योंकि नायिका रत्नावली, जो नाटिका में सागरिका बनकर वत्सराज के अन्तःपुर में छिपकर रह रही है, उसका तथा उदयन का मिलन ही नाटिका का फल है। रत्नावली उदयन को प्रेम करती है व उसे पाना चाहती है। एतदर्थ वह योजना बनाकर चित्रलेखन कार्य में प्रवृत्त होती है। इसके अतिरिक्त ‘रामचरित’ में समुद्रबन्धन आदि कार्य में प्रवृत्त होना भी यत्न कार्यावस्था का उदाहरण है।

प्राप्त्याशा

तृतीय कार्यावस्था प्राप्त्याशा है। सामान्यरूप से यह अवस्था नायक के अर्न्तद्वन्द्व तथा बहिर्द्वन्द्व की परिचायक कही जा सकती है। यह द्वन्द्व ही रूपकों में कौतुहल का आधायक होता है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि इस कार्यावस्था में इच्छित फल को पाने की आशा उत्पन्न होती है, किन्तु साथ में विफलता का संशय भी बना रहता। दशरूपकार ने प्राप्त्याशा का लक्षण बताते हुए कहा गया है – **उपायापायशंकाकभ्यां प्राप्त्याशाप्राप्तिसम्भवः।**

अर्थात् जहाँ उपाय तथा अपाय (विघ्न) की आशंका समुपस्थित होने के कारण नायक आदि को अभिलषित फल की प्राप्ति होने के विषय में ऐकान्तिक निश्चय नहीं दिखता है, वहाँ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था होती है। इसमें फलप्राप्ति की सम्भावना उपाय तथा विघ्नाशंका दोनों के मध्य दोलायमान सी रहती है। नायक का मन द्वन्द्व से आशङ्कित रहता है। वह फलालाभार्थ अपने उपायों का क्रियान्वयन तो कर देता है, किन्तु विघ्न समुपस्थित होने के कारण सफलता को लेकर पूर्ण रूप से विश्वस्त नहीं रहता है। यह स्थिति नाटक आदि में कौतुहल तथा रोमांच उत्पन्न करती है। संघर्षजन्य यह कौतुहल व रोमांच ही नाटकादि का प्राण है।

रत्नावली नाटिका के तृतीय अङ्क में नायिका रत्नावली महारानी वासवदत्ता का वेष धारण कर वत्सराज उदयन से अभिसार रूप सङ्गम के उपाय होने पर भी विदूषक के 'यदि अकाल वायु की तरह आकर वासवदत्ता दूसरी ओर न ले जाए' इत्यादि कथन के द्वारा वासवदत्ता जन्य विघ्न की आशंका होने से फलप्राप्ति के प्रति आशङ्कित हो जाती है। इस उदाहरण में नायिका रत्नावली को नायक उदयन की प्राप्ति के उपाय तथा अपाय = विघ्न दोनों का चित्रण होने से प्राप्त्याशा कार्यावस्था की स्पष्ट प्रतीति होती है।

नियताप्ति

कार्यावस्थाओं में चतुर्थ क्रम में नियताप्ति प्राप्त होती है। विगत प्राप्त्याशा कार्यावस्था में जहाँ फल की प्राप्ति को लेकर नायकादि के मन में अनिश्चय की भावना रहती है, उससे विपरीत इस कार्यावस्था में फल की समुपलब्धि निश्चित हो जाती है। दशरूपक में नियताप्ति का लक्षण निम्नवत् उल्लिखित है- अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। अपायाभावदवधारितैकान्ता फलप्राप्तिर्नियताप्तिरिति।

अर्थात् प्राप्त्याशा के पश्चात् जब विघ्न का अभाव होने के कारण नायकादि को फल की प्राप्ति का निश्चय हो जाए, तब नियताप्ति कार्यावस्था होती है। विगत कार्यावस्था प्राप्त्याशा में आपने देखा है कि उपाय व अपाय के कारण नायक फलप्राप्ति के लेकर सशङ्कित रहता है। किन्तु इस कार्यावस्था में विघ्नों का शमन होने से उसके मन में यह निश्चय हो जात है कि फल की प्राप्ति अवश्य होगी। इसमें फल की प्राप्ति को लेकर नायक के मन में द्वन्द्व की स्थिति नहीं रहती है। जिस प्रकार रत्नावली नाटिका के तृतीय अङ्क में नायिका रत्नावली को तहखाने बन्दी बनाए जाने पर विदूषक विचारपूर्वक कहता है कि रत्नावली बहुत कठिनाई से जीवन व्यतीत कर पाएगी। इसके पश्चात् वह राजा उदयन से प्रश्न करता है कि हे मित्र! आप उसके लिए कोई उपाय क्यों नहीं सोचते? तब राजा कहता है कि मित्र! अब देवी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के अतिरिक्त मुझे कोई अन्य उपाय दृष्टिगत नहीं हो रहा है। इस प्रकार महारानी वासवदत्ता के प्रसादन रूपी उपाय के द्वारा रत्नावली की मुक्ति होने से विघ्नों की निवृत्ति में फलप्राप्ति का निश्चय होता है। यहाँ नाटिकाकार के द्वारा नियताप्ति कार्यावस्था की कुशलतापूर्वक योजना की गई है।

फलागम

अन्तिम कार्यावस्था का नाम फलागम अथवा फलयोग है। जैसे कि आपको नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि इस अन्तिम कार्यावस्था में नायक को फल का आगम प्राप्ति सुश्चित हो जाती है। इसका लक्षण निबद्ध करते हुए दशरूपक में लिखा है - समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः। अर्थात् नाटकादि में समस्त फल की प्राप्ति हो जाना फलयोग या फलागम कहा जाता। इस लक्षण में फल-प्राप्ति के साथ प्रयुक्त समग्र पद विशेष अर्थ को अभिव्यक्त करता है। यदि नाटकादि में असमग्र अपूर्ण फल की प्राप्ति होती हो तब फल योग कार्यावस्था नहीं मानी जाती है। ऐसी स्थिति में उसे नियताप्ति कार्यावस्था में ही परिगणित किया जाएगा।

नाटक के अन्त में जब नायक को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है, तब ही उसे फलागम कार्यावस्था कहा जा सकता है। जैसे कि रत्नावली नाटिका के अन्त में नाटिका के नायक वत्सराज उदयन को रत्नावली की प्राप्ति तथा उसके फलस्वरूप चक्रकर्तित्व का लाभ होना फलागम की योजना है। क्योंकि इसके पश्चात् नायक को कुछ अन्य फल प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है। अतः इस स्थिति को ही समग्र फल की प्राप्ति का उदाहरण माना जा सकता।

इस शोधपत्र में रत्नावली नाटिका के सन्दर्भ में अर्थप्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। रूपक की कथावस्तु में सम्बद्धता तथा परिणामकारकता उत्पन्न करने के लिए प्रयोजन की सिद्धि की कारणभूत बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य नामक पाँच अर्थप्रकृतियों की योजना नाटकादि में की जाती है। वस्तुतः ये कथावस्तु को अभीष्ट लक्ष्य पर्यन्त ले जाने के लिए कवि के द्वारा किये गये उपाय हैं। सम्पूर्ण नाटकीय इतिवृत्त इन पाँच अर्थप्रकृतियों में विभक्त होता है। बीज, वृक्ष के बीज के समान वह तत्त्व है, जो नायक को फल की ओर ले जाता है। बिन्दु वह स्थिति है, जब वह पानी में तैल के बिन्दु की तरह फैलता है। पताका व प्रकरी फल की प्राप्ति में सहायक होते हैं तथा कार्य साध्य होता है। अर्थप्रकृतियों के साथ-साथ रूपकों में कार्यावस्थाओं का भी समान महत्त्व है। जिस प्रकार मनुष्य के जीवन में बाल, युवक तथा वृद्ध आदि अवस्थाएं होती हैं, उसी प्रकार रूपकादि में नायकादि के द्वारा प्रारब्ध कार्य-व्यापार की भी आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम नामक कार्यावस्थाएं होती हैं। कार्यावस्थाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोकजीवन से प्रभावित नाटकादि रूपकों में रस तथा रोमांच उत्पन्न करने के लिए इन कार्यावस्थाओं का आयोजन किया जाता है। नाटकादि में कथावस्तु का प्रवाह सरल व निर्बाध रूप से गतिमान नहीं होता है। उसमें नायकादि को फलप्राप्त्यर्थ आशङ्कओं व विघ्नों का सामना करना पड़ता है। यह संघर्ष जितना गहन होगा रूपक भी उतना ही हृदयवर्जक होगा। कवि को इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए दशरूपकादि ग्रन्थों में वर्णित अर्थप्रकृति तथा कार्यावस्था के पथ का अनुसरण करना होता है।

सन्दर्भ -

1. अष्टाध्यायी, 4/3/110
2. महेन्द्रप्रमुखैर्वैदेरुक्तः किल पितामहः ।
क्रीडनीयकमिच्छाया दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत् 1 ।।
न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु । तस्मात्त्रापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम् 2 ।।
एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च । सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित् 3 ।।
धमज्यमयं यशस्यञ्च सोपदेशं ससंग्रहम् । भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् 4 ।।
सर्वशास्त्रार्थ-सम्पन्नं सर्वशिल्प-प्रदर्शकम् । नाट्यसंज्ञमिमं देवं सेतिहासं करोम्यहम् 5 ।।
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् । नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम् 6 ।।
3. अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।
आरम्भ-यत्न-प्राप्त्याशा-नियताप्ति-फलागमाः ।। दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/19
4. अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धि हेतवः ।।
5. बीज बिन्दु पताकाख्य प्रकरी कार्य लक्षणाः ।
अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः ।। दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/18

6. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा । स्तोकोद्दिष्टः कार्यसाधकः पुरस्तादनेकप्रकारं विस्तारी हेतुविशेषो बीजवद् बीजम् ॥ दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/17
7. रत्नावली, श्लोक-7, पृ.16
8. रत्नावली, श्लोक-8, पृ.16
9. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 19
10. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 19
11. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 19
12. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 13
13. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 13
14. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 17
15. अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्ति फलागमाः ॥ दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 21
16. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 21
17. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 12// पृ. 22
18. तहावि णात्थि अण्णो दंसणुवाओ त्ति जहा - तहा आलिहिअ जधासमीहिअं करिस्सम् । (तथापि नास्त्यन्यो दर्शनोपाय इति यथा-तथालिख्य यथासमीहितं करिष्यामि ।), दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/20, पृ. 22
19. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/20, पृ. 22
20. एवं यदि अआलवादाली विअ आअच्छिअ अण्णदो ण णइस्सदि वासवदत्ता । (एवं यद्यकालवातावली वागत्यान्यतो न नेष्यति वासवदत्ता), दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/21, पृ. 22
21. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/21, पृ. 22
22. सागरिका दुक्करं जीविस्सदि, (सागरिका दुष्करं जीविष्यति ।) इत्युपक्रम्य किं ण उपायं चिन्तेसि? (किं नोपायं चिन्तयसि?) इत्यनन्तरं शराजा=वयस्य! देवीप्सदनं मुक्त्वा नान्यमन्त्रेपायं पश्यामि । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 23
23. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, 1/22, पृ. 23
यथा रत्नावल्यां रत्नवलीलाभचक्रवर्तित्वावाप्तिरिति । दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 23

45

रत्नावली का व्याकरण-सौन्दर्य

करुणा आर्या

श्री हर्ष ने रत्नावली में व्याकरण का स्पष्ट प्रयोग उदाहरणों में उनके छन्द तथा गद्य दोनों में निदर्शित होता है। उन्होंने न्याय, दर्शन, साहित्य आदि सभी विद्याओं का अध्ययन किया है उसका फल उनके नाटकों में दर्शित हो रहा है। तद्धितों का प्रयोग, कृदन्तों और समासों की तो छटा ही छा दी है। सरल और विशदपदावली लम्बे-लम्बे वाक्य दिखायी देते हैं।

तद्धित प्रत्ययों का अपना माहात्म्य है, तस्मै हितम् तद्धितम्। इन प्रत्ययों की अपनी रमणीयता है।

तद्धितान्त शब्द- रत्नावली में प्रयुक्त कुछ तद्धित प्रत्यय-टाप्, तल्, डु, डीप्, ष्यञ्, थम्, मतुप्, यक्, अण् तुट्, ट्युल्, डाच्, तरप्,

नम्रता¹ - नम्+र प्रत्यय+तल् - **नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः²**। यह नाटिका में द्वितीया विभक्ति में प्रयुक्त है नम्रताम्। कृदन्त शब्द है। पाणिनि के द्वारा तद्धितान्तों का प्रयोग बहुत ही सुलभ होता है। भाषा को सुमनोहर और युक्तिसंगत बना देता है।

शम्भोः³ - शम्भू+डु-डु प्रकरणे मितद्ववादिभ्यः उपसंख्यानम्⁴। यह शम्भू दीर्घ ऊकारान्त शब्द का पञ्चमी एकवचन में प्रयोग है।

प्रच्छादयन्ती⁵ - प्र+च्छद+णिच्+शतृ+डीप् ऋन्नेभ्यो डीप्⁶। यहां व्याकरणगत ही प्र पूर्वक छद् धातु से णिच् होकर शतृ प्रत्यय होकर, तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में डीप् होकर पूर्ण पाणिनीय नियमानुसार रूप बना है। कवि ने पाणिनीय प्रयोग किया है।

विप्रतीपम्⁷ - विप्रतिगता आपो यस्मिन् (अप्रत्यय- ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे, ईत् - द्वयन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्)। यह शब्द भी पाणिनि के व्याकरणानुसार सुन्दर प्रयोग है।

औत्सुक्येन⁸ - उत्सुकस्य भावः - ष्यञ् (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च)। उत्सुकता स्वयं में एक भाव है। पर उसका भी भाव औत्सुक्य है।

इत्थम्⁹ - इदमथम् (इदमस्थम्¹⁰) इत्थम् (एतैतो रथोः) इत्थम्। सामान्य व्याकरण का रूप है।

रुमण्वता-रुमण+मत्तुप् (आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती) रुमण्वत् ये संज्ञा इस सूत्र से निपातित की गई है। स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग हुआ है।

दुर्लक्ष्यम्¹¹ - दुर् + लक्ष + णिच् + खल् (ईषद्ः सुषु कृच्छाकृच्छार्थेषु खल्) इस सूत्र से खल् प्रत्यय हुआ। दुःखेन लक्ष्यम् (कुगतिप्रादयः) से समास है।

राज्यम्¹² - राजन्+यक् (पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्¹³) (नस्तद्धिते¹⁴ -टिलोपः) शब्द सिद्ध होने पर कितना सुन्दर है।

सायन्ते¹⁵ - सायम्+तुट्+ट्युल् (सायंचिरप्राप्तेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च¹⁶) तब यह शब्द निष्पन्न होता है।

तनुतरम् - तनुतरप्, द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ¹⁷ जब दो लोगों में से एक का विभाजित करना हो तो में निर्धारण निर्धारण करना हो करने पर तरप् होता है। बहुत सुन्दर प्रयोग है इससे पद्य की रचना सौन्दर्यीकरण हुआ।

चतुर्वेदी - चतुरो वेदानधीते वेद वेति।(तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च¹⁸) तदधीते तद्वेद-अण्। अण्लुक्, द्विगोलुगनपत्ये¹⁹ (अपाणिनीय)। चतुरवयवा वेदाः चतुर्वेदाः। चतुर्वेदाः सन्ति अस्य विषयत्वेन इति चतुर्वेद+इनि मत्वर्थे।

नमः सुरेभ्यो - नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालं वषड्योगाच्च²⁰। जिस प्रकार पाणिनिव्याकरण में नमः के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग बताया है उसी नियम का पालन कर सुष्ठू प्रयोग है। कृदन्त प्रत्यय भाषा को सरल और सगठित व्यावहारिक बना देते हैं जिससे भाषा का लावण्य और भी बढ़ जाता है। रत्नावली नाटिका में कवि ने बहुत सारे तिङन्तपदों का प्रयोग किया है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

कृदन्त शब्द - रत्नावली में प्रयुक्त प्रमुख कृदन्त प्रत्यय यथा-

घञ्, क्त्वा को ल्यप्, औणादिक ऊषन्, खच्, क्वि, ल्युट्,

प्रासाद²¹ - प्र+सद्+घञ् (दीर्घ- उपसर्गस्य घञ्मनुष्ये बहुलम्²²) महल जहां प्रकर्षण सीदन्ति उपविशन्ति जनाः यत्र सः प्रासादः। अनेकों ग्रन्थों में यह प्रयोग प्राप्त होता है लोक में भी।

आहूय²³ -आ+हु+क्त्वा+ल्यप् यहां दीर्घ अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः²⁴। पाणिनिव्याकरण के नियमानुसार सुन्दर प्रयोग किया है।

मुकुलायितः²⁵ - मुकुल+क्यङ् (कर्तुः क्यङ् सलोपश्च²⁶) मुकुलाय+णिच्+क्तः। गण्डूषः²⁷-गण्ड=णिच्+ऊषन् (गण्डेश्चेति²⁸) औणादिक, गण्ड्यते स्थाप्यते असौ।।

प्लवङ्ग- प्लवेन उत्प्रेषण गच्छति, प्लव+गम्+खच्-प्रियवशेवदः खच् इसी सूत्र में वार्तिक है। (गमेः सुपि वक्तव्यम्²⁹) बहुत ही सुन्दर प्रयोग दर्शाया है।

क्रान्त्वा-क्रम्+क्त्वा (समानकर्तृकयोः पूर्वकाले³⁰) कान्त्वा (उपधा दीर्घ-क्रमश्च क्त्वि)। क्त्वा प्रत्यय का सुन्दर प्रयोग है।

प्रतीकारम्³¹ (रत्नावली तृतीय अंक) - प्रति+कृ + घञ् (हलश्च, दीर्घ- उपसर्गस्य घञ्मनुष्ये बहुलम्) यह भी व्याकरण के नियमों से युक्त है जिसका अर्थ है कृतापकार।

समासशब्द- रत्नावली में प्रयुक्त प्रमुख समास शब्द -

बहुव्रीहि, ष.त.समास, उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे, उपपदमतिङ्, मयूरव्यंसकादयश्च,

बहुव्रीहि समास का प्रयोग-

पादाग्रस्थितया³² = पादयोः चरणयोः अग्रे स्थिता या सा पादाग्रस्थिता तया- पादाग्रस्थितया(बहुव्रीहि स.)।।

पाद के अग्र भाग पर अंगुलियों पर स्थित है। पार्वती पैरों के अग्र भाग पर स्थित है।

सस्पृहलोचनत्रयम्³³ = लोचनानां त्रयम्, सस्पृहलोचनत्रयम्, तस्य पन्थाः तम् यहां ऋक्पूरब्धूः प्रथामानक्षे³⁴ से समासान्त अ प्रत्यय। यथाविधि शास्त्रानुसार नियमों का उपयोग है।

सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया³⁵ = पुलकेन सह सपुलकं, स्वेदश्च+उद्गमश्च=स्वेदोद्गमः, सपुलकया च, स्वेदोद्गमा च, उत्कम्पा च इति सपुलकस्वेदोद्गमकम्पा गिरिजा तया सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया ।। अर्थात् रोमाञ्चित स्वेदोद्गम कम्पन के द्वारा । यहां कवि के द्वारा नायिका के (स्थायी भाव रति का) रूप अनुभावों का व्यक्तीकरण है । क्योंकि पार्वती को स्वेद आ जाने से और शिव के द्वारा देखे जाने से वह लजाती हुई रोमाञ्च स्वेदोद्गम तथा कम्पन से युक्त है ।

सहभुवा³⁶ – भुवा सह इति सहभूः (बहुव्रीहि स.) – तेनसहेति तुल्ययोगे । और वोपसर्जनस्य । यथाविधि शास्त्रानुसार बहुव्रीहि समास के नियमों का उपयोग है । समासान्त होने के पश्चात् बहुत ही सुन्दर भाव को प्रकट कर रहा है ।

गृहीतकुसुमा³⁷ = गृहीतानि कुसुमानि (√ग्रह+क्त) यया (बहुव्रीहि समास) सा गृहीतकुसुमा । पुष्पचयनं समाप्य इति आशयः । ग्रहण कर लिए हैं ऊल जिसके द्वारा वह, अर्थात् फूलों को लेकर ..यह आशय है । कि फूल चुनने का कार्य समाप्त करके । कवि ने सुन्दर मनोभाव से बहुव्रीहि समास का प्रयोग किया है ।

उडुपतिना³⁸ – (ष.त.समास) उडूनां नक्षत्राणां पतिः, तेन, तारापतिना चन्द्रेणेत्यर्थः । यहां लक्षणा से उडुपति का अर्थ धरती पर चन्द्रमा का एक प्रतिनिधि अर्थात् चन्द्रवंशीय राजा श्री हर्ष । व्या.=पति शब्द की घि संज्ञा समास में ही होती है- प्रत्युत सूत्र के द्वारा (पतिः समास एव) घि संज्ञा होने से आङ्गो नास्त्रियाम् इस सूत्र से ना आदेश होकर उडुपतिना शब्द सिद्ध होता है ।

कुसुमसुकुमारमूर्तिः³⁹ – कुसुममिव सुकुमारा कोमला मूर्तिःयस्याःसा, पक्षे कुसुमान्येव सुकुमारा मूर्तिः यस्याः सा इति (बहु.स.) । इस शब्द के दो अर्थ हैं पहला-फूलों के समान कोमल शरीर है जिसका और दूसरा कुसुम ही हैं सुकुमार मूर्ति जिसकी (कामदेव) । कामदेव का धनुष फूलों से बना है । अतः इसे पुष्पधन्वा भी कहा जाता है । कवि ने कितना सुन्दर प्रयोग किया है ।

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः⁴⁰ = प्रत्यग्रोऽचिरनिर्वृत्तोमज्जनविशेषः(स्नानविशेषः तेन विविक्ता पूता कान्तः देहप्रभा यस्याः सा, सद्यः स्नानविशेषनिर्मलप्रभा, पक्षे प्रत्यग्रं यन्मज्जन जलसिञ्चनं तेन विशेषण विविक्ता स्वच्छा कान्तिर्यस्याः तादृशी सा (बहु.स.) सद्यः स्नान से विशेष निर्मल कान्ति वाली, उसकी प्राकृतिक बनावट ही बड़ी स्पष्ट तथा सुन्दर थी किन्तु स्नान करने से ठीक बाद में वह और भी स्पष्ट और सुन्दर जान पड़ती है । बहुव्रीहि समास के प्रयोग से इतना बड़ा शब्द विन्यास एक प्रातिपदिक बन गया ।

कौसुम्भरागरुचिरस्फुरवंशुकान्ता⁴¹ = कौसुम्भेन कुसुम्भपुष्पसम्भवेन रागेण रज्जनद्रव्येण रुचिरं मनोज्ञं स्फुरत्सत् अंशुकस्य पटस्य अन्तः अञ्चलं यस्याः सा-कौसुम्भरागमनोज्ञलसत्पटाञ्चलाः, पक्षे कौसुम्भस्य कुसुम्भपुष्पस्यैव या रागो लौहित्यं तेन रुचिरा स्फुररुद्भिरणशुभिः किरणैः कान्ता रमणीया च, कौसुम्भलौहित्यस्फुरत्किरणरमणीयाः-(बहु.स.) । अर्थात्-वह कुसुम्भी रंग से सुन्दर चमकते हुए आंचल वाली । नायिका, कवि की उच्चतम प्रतिभा को दर्शाता है, अत्यधिक सुन्दर प्रयोग प्रदर्शित है ।

शिथिलितमानग्रहणकम्⁴² – शिथिलितं मन्दीकृतं मानस्य प्रणयकलहस्य ग्रहणम् स्वीकरणं येन (बहु. स.) शिथिल कर दिया है प्रणयकलह जिसके द्वारा वह या प्रणयकलह को शिथिल कर देने वाला । इतनी सारी पदावली को कवि ने एक प्रातिपदिक में संक्षिप्त कर दिया । यही काव्य की दिव्यता है ।

बालप्रबालविटपिप्रभवा⁴³ = बालाः नूतनाः अचिरोद्गताःवा प्रबालाः नवपल्लवाः यस्मिन्स विटपो वृक्षः प्रभव उत्पत्तिस्थानं यस्याः सा(बहु. स.) । नूतन पल्लवों वाला उत्पत्ति स्थान है जिस लता का वह । वृक्ष से लता जुड़ी

रहेगी तो उसका सौन्दर्य नित्य नया बना रहता है, वृक्ष से अलग होते ही वह मुरझा जाती है। जीवन्त प्रकृतिपरक उदाहरण देकर कवि ने पद्य की चारुता को और भी बढ़ा दिया है।

उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय⁴⁴ = उद्भिन्न उद्गतः अपरोऽन्यो मृदुतरः कोमलतरः किसलयः पल्लवो यस्य, उद्गतान्यकोमलतरपल्लवः, स इव लक्ष्यते दृश्यते प्रतीयते वा। (बहु.स.)। फूट गया है दूसरा कोमलतर किसलय जिसमें वह। इतनी बड़ी वाक्य शृङ्खला बोलने से बचने के लिए समासशास्त्र की शरण से वाक्य सौष्ठव और सुन्दरता बढ़ गयी। भाषा का अनुशासन भी चिरस्थायी हो गया।

अपवारितशरीरा⁴⁵ = अपवारितम् आच्छादितं शरीरं यस्याः (बहु.स.)। ढका हुआ है शरीर जिसका। यह भी बहुत सुन्दर प्रयोग है। लोक में महोत्सवों या पारिवारिक कार्यक्रमों में लोग किसी को देख कर कह ही देते हैं कि यह स्त्री ढकी हुई जो स्त्री है उसको अमुक वस्तु दे दो। उसी प्रकार यह प्रयोग है।

अमोघदर्शनम्⁴⁶ = अमोघम् अव्यर्थं फलप्रदमित्यर्थः दर्शनं यस्य (बहु.स.) अर्थात् जिसका दर्शन सफल हो। बड़ा ही सटीक प्रयोग किया है।

तत्पुरुष समास का प्रयोग -

स्मरपूजाव्यापृतेन⁴⁷ = स्मरस्य कामदेवस्य पूजा, अर्चना तस्यां व्यापृतेन व्यग्रेण, कामदेवार्चनालग्नेन (सप्तमी तत्पुरुष)। कामदेव की पूजा, अर्चना में संलग्न होने से। कवि ने तत्पुरुष समास का प्रयोग कर काव्य का सौन्दर्य बढ़ा दिया।

अस्तापास्तसमस्तभासि⁴⁸ = अस्ताचले अपस्ताः क्षिप्ताः समस्ता अखिलाः भासः किरणाः येन तस्मिन् (बहु.स.)। अस्तगिरि पर बिखर गयीं हैं किरणें जिसकी अर्थात् (सूर्य की) समस्त किरणों के अस्ताचल पर बिखर जाने पर।

कुसुमलोभोल्लिप्तहृदयया⁴⁹ = कुसुमेषु लोभः (ष.त.) तेन उल्लिप्तं हृदयं यस्याः तया- (बहु.स.)। फूलों के लोभ से व्याकुल हृदयवाली मेरे द्वारा। यहां षष्ठीतत्पुरुषगर्भबहुव्रीहि समास है और दोनों समासों के कारण काव्य की चारुता स्पष्ट है।

सरोरुहद्युतिमुषः⁵⁰ = सरोरुहाणां पद्मानां द्युतम् आरक्ततां मुष्णन्ति हरन्ति स्वयं दधति इति (ष.त.) द्मारक्तताहरस्य (उदयनस्य इति आशयः)। चन्द्रमा के उदय हो जाने पर ही कमल मुकुलित होते हैं यह विशेषण इन्दुपाद और त्वद्पाद दोनों का है। इन्दुपाद को सरोरुहद्युतिमुट् इसलिए कहा जाता है। क्यों कि चन्द्रमा के उदित हो जाने पर कमल मुकुलित होते हैं। त्वद्पाद भी कमल की आरक्तता को चुराने वाला है। - क्यों कि तुम्हारे चरणों की कोमलता और आरक्तता कमल की सी है इससे जान पड़ता है कि इन चरणों ने कमल की रक्तिमा चुरा ली है। ये मनमोहक रुचिर शब्द प्रयोग हैं जो बार-बार संस्कृतानुरागियों को पढ़ने के लिए विवश करता है।

कुसुमाञ्जलिः⁵¹ = कुसुमानाम् अञ्जलिः कुसुमाञ्जलिः, षष्ठी तत्पुरुष समास है। (पञ्चपुष्पाञ्जलीन्दत्वा परिवारारच्यन्ञ्वरेत्⁵²)। फूलों की अञ्जलि लोक में ज्यादातर पुष्पाञ्जलि प्रयोग में देखा गया है।

परनिपात समास- द्विजवृषभाः⁵³ = द्विजाः वृषभा इव इति द्विजवृषभाः⁵⁴। (उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे) से समास यहां समास है। वृषभ का अर्थ है वृषभ इव और यह द्विज का विशेषण है। द्विजाश्च ते वृषभाश्च के ही समान है। तब भी पूर्वपदार्थनियमार्थ सूत्रम् के कारण वृषभद्विजाः नहीं होता है। उपमित. ... नियम का उद्देश्य है विशेषण का परनिपात करना। वह यहां सिद्ध हो रहा है। परनिपात होकर द्विजवृषभाः यह समस्तरूप सिद्ध हो रहा है। इसकी चारुता उपमित नियम के अनुसार बढ़ गयी।

मुखशशिनि⁵⁵ – मुखं शशीव, तस्मिन् (उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोग⁵⁶)। तत्पुरुष समास कर उपमान का सुन्दर प्रयोग दर्शाया है जो कि स्वाभाविक प्रतीत हो रहा है।

अनवरतनिपततवाष्पसलिलेन⁵⁷ = वाष्परूपं सलिलं वाष्पसलिलं यथा तथा निपतत् यत् वाष्पसलिलं तेन यहां हेतु में तृतीया है। अनवरतनिपतत –न अवरतम् विरामः तन्नास्ति यस्य निरन्तर विश्रामशून्ये। निरन्तर अविरल आंसुओं का प्रवाह हो रहा है उसके कारण। बहुत ही सुन्दर प्रयोग है। इसमें कई सारे पर्यायनिष्ठ शब्द जो अलग- अलग अर्थों को व्यक्त करते हैं वे सभी साथ मिलकर एक शब्द में उपस्थित हैं।

प्रीत्युत्कर्षकृत्⁵⁸ = प्रीतेः उत्कर्षं करोति इति प्रात्युत्कर्षकृत् तस्य प्रीतिशयकरस्य तस्य प्रीत्युत्कर्षकृत्। आनन्द का अतिशय करने वाले। अत्यधिक प्रीति दिलाने वाला। ऐसा सुन्दर प्रयोग किया

परप्रेषणदूषितम्⁵⁹ = परस्य प्रेषणं तेन दूषितम् (ष.त.)। दूसरे के प्रेषण से दूषित। सुन्दर प्रयोग है, पूर्ण व्यावहारिक है।

सन्ध्यातिक्रमः⁶⁰ = सन्ध्यायाः अतिक्रमः इति (ष.त.) सन्ध्या का अतिक्रम। सुन्दर प्रयोग है, पूर्ण नियमानुसार है।

परिपाण्डुना⁶¹ = विरहजनित पाण्डुभावेनपीतेन वा। सुन्दर प्रयोग है, पूर्ण रूप से नियमों तथा व्यावहारिक है।

उदयतटान्तरितम्⁶² = उदयस्य उदयाचलस्य तटेनान्तरितं तिरोहितम्। सुन्दर प्रयोग है, सुन्दर और पूर्ण व्यावहारिक है।

हृदयस्थित⁶³ = हृदिस्थितः इति (स.त.) जो हृदय में स्थित हो। कितना सुन्दर प्रयोग है।

मत्तमधुकरः⁶⁴ = मत्तैमधुकैरैभ्रमैरुक्त उत्सृष्टो यो झङ्करो गुञ्जनशब्दस्तेन मिलितो यो मधुकरः कोकिलानामारावः शब्दः स एव संगीतं तेन श्रुतभ्यां सुखयतीति सुखं सुखकरं।, मतवाले भौंरो से की गई झंकार के मिली हुई कोयलों की मीठी कूक के संगीत से कानों को सुख देने वाला- मकरन्दोद्यान मत्तमधुकर है। वह मकरन्दोद्यान मतवाले भौंरों से की गई झंकार से मिली हुई कोयलों की मीठी कूक के संगीत के कानों को सुख देने वाला है।

मधुप्रसङ्गम्⁶⁵ – मधोः प्रसङ्गः –मधुप्रसङ्गः- (ष.त.) मधोः वसन्तस्य प्रसङ्गं सम्पर्कः मद्यसम्पर्कं वा इति मधुप्रसङ्गम्। यहां मधु शब्द के दो अर्थ हैं मदिरा और वसन्त और वेद में घी, जल, शहद भी देखा गया है। मदिरावाचक मधु शब्द नपुंसकलिङ्ग का है और वसन्त वाचक पुल्लिङ्ग का है।

निशानाथम्⁶⁶ = निशायाः नाथः निशानाथः या निशा नाथो यस्य सः निशानाथः तम् निशानाथम्। इसमें दोनों समास हैं षष्ठी त. और बहुव्रीहि।

स्मरानलकृतः⁶⁷ – स्मर एव अनलः तेन कृतः (मयूरव्यंसकादयश्च - समास) है। समासशास्त्र की विधि अनुसार है।

सान्द्रोद्यानदुमाग्रण्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः⁶⁸ – सान्द्राणि उद्यानस्य दुमाः तेषां अग्राणां ग्लपनेन पिशुनितः अत्यन्ततीव्रः अभितापः यस्य सः। समासशास्त्र की विधि अनुसार है। सदीर्घ प्रयोग है।

सजलजलधरश्यामलम्⁶⁹ – जलेन सहितः सजलः यो जलधरः तमेव श्यामलम्। समासशास्त्र की विधि अनुसार है। चारुतम प्रयोग है।

विस्मृतसिंहलेन्द्रविभवः⁷⁰ – विस्मृतः सिंहलेन्द्रस्य विभवः येन तथोक्तः। पाणिनीयसमासशास्त्र की विधि अनुसार है।

रजनिकरकलाशेखरः⁷¹ – रजनिकरः चन्द्रमसः कला शेखरे यस्य सः।

मायासुप्रतिष्ठितयशः⁷² - सुष्ठु : प्रतिष्ठितः सुप्रतिष्ठितः । सुप्रतिष्ठितः यशः यस्य सः सुप्रतिष्ठितयशः, मायायां सुप्रतिष्ठितयशः, तस्य । समासशास्त्र की विधि अनुसार है ।

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृतोत्तमाङ्गो⁷³ - अस्त्रैः व्यस्तानि शिरस्त्राणि यैः तथोक्तैः शस्त्रकषणैः कृतानि उत्तमाङ्गानि यत्र तत् । समासशास्त्र की विधि पूर्वक है ।

समदकरिषटोत्पिष्टपत्तिः⁷⁴ - समदानां करिणां घटा तथा उत्पिष्टाः पत्तयः येन । समासशास्त्र की विधि अनुसार है ।

अविशदव्याहारलीलाभृतः⁷⁵ - अविशदं व्याहारस्य लीलां बिभ्रति ये ते । समासशास्त्र की कथनानुसार है ।

रतिसनाथम्⁷⁶ = नाथेन सह इति सनाथम्, अर्थात् प्रभुसहित-(यहां तृ.त.स.) । रत्या सनाथम् इति रतिसनाथम्, अर्थात् रतियुक्त-(ष.त.स.) । सहनाथम् भी शुद्ध है । समासशास्त्र की विधि अनुसार है ।

आयासमात्राफलेन⁷⁷ - आयास एव आयासमात्रम् (मयूरव्यंसकादयश्च⁷⁸) । तत्फलमस्य इति आयासमात्रफलः तेन (बहु.स.) । समासशास्त्र की विधि अनुसार है । और बहुत सारे समास के सुन्दर-सुन्दर प्रयोग हैं जिनका विवेचन हो सकता था, शोधपत्र विशद होने के कारण केवल यहां परिगणन मात्र किया जा रहा है । जिज्ञासुवृन्द रत्नावली में उनको देखकर उनका अध्ययनसुख प्राप्त कर सकें ।

अनुसृतसरणिः, अकारणम्, रतिव्यपदेशेन, शोभातिस्कारिणा, त्वन्मुखपङ्कजेन, विनिर्जितानि, परिवारवारवनितागीतानि, भृङ्गाङ्गनाः, सञ्जातलज्जा, मुकुलान्तरेषु, सारिकापञ्जरव्यग्रहस्ता, विस्मयोत्क्षिप्तहृदया, अकालकुसुमसञ्जनदोहदम्, कुसुमसमृद्धिशोभितां, गृहीतसमुद्रकचित्रफलकवर्तिका, दुर्जनप्रार्थनानुबन्धेन, सहसंवर्धितम्, क्षणमात्रदर्शनपरिचितम्, अग्रहस्तः, प्रवृत्तमदनमहोत्सवे, अन्यथासम्बिनि, दुर्लभजनानुरागः, कृत्तावशेषम्, शृङ्खलादासः, हेलाचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवालः, दत्तातङ्कः, अनुसृतसरणिः, मनुष्यगणनाभावात्, कञ्चुकिकञ्चुकस्य, किरातैः, आत्मेक्षिणाशङ्किनः, पर्यन्ताश्रायिभिः, निरन्तरोद्भिन्नपुष्पस्तबकशोभितविटपा, देवीपरिगृहीताम्, ।

कृदन्तशब्द-ल्युट्

मथनम्⁷⁹ = $\sqrt{\text{मथ्} + \text{भावे ल्युट्}}$ ⁸⁰ । दोनों अर्थ निहित हैं कृ तो कामदेव को भस्म करना और दूसरा समुद्र को मन्थन करना । धातु का मुख्यार्थ है हिलना विलोडन करना, $\sqrt{\text{मथे विलोडने ?मन्थन करना तो धातु के मुख्यार्थ के साथ सम्मिलित अर्थ है किन्तु मारना नितान्त गौण अर्थ है । इस धातु से ए का लोप होता है, इ का नहीं अतः मन्थन नहीं बल्कि मथन शब्द ही व्याकरण सम्मत है यहाँ मथे धातु के, एकार का लोप होता है इकार का नहीं । अतः इदित न होने से नुम् नहीं होगा (इदितो नुम्धातोः⁸¹ से) ।$

णिच्कृत्, शानच्, शतृ, श्यन्,

व्यावर्तमाना⁸² = वि.आ. $\sqrt{\text{वृत्} + \text{शानच्}^{83} + \text{टाप्}^{84}} = (\text{परावर्तमाना})$ लौटती हुई । व्याकरण की विधि अनुसार है ।

णिच्कृत्-मुखमुत्तानीकृत्य = उत्तान + च्वि + $\sqrt{\text{को मुख को ऊपर की ओर करके । आंसुओं को रोकने के लिए सागरिका ने अपना मुंह उठा लिया था । एक नया प्रयोग है, ऐसा लोक में नहीं देखा जाता ।$

णिच्कृत्-शिथिलितम्⁸⁵ = शिथिलं कृतं इति (शिथिल + णिच्क कर्मणि) व्याकरण की विधि अनुसार है ।

शतृ-हसता⁸⁶ = हस् + शतृ तृतीया एकवचन । व्याकरण की परम्परा विधि अनुसार है ।

क्रियापद -- विभ्राज से, अर्चयन्ती, आस्थानीम् (93पेज), विश्लिष्यन् (वि $\sqrt{\text{श्लिष्} + \text{शतृ}}$) । इसी प्रकार अनेकों क्रियारूप हैं जो द्रष्टव्य हैं ।

श्लिष्टपद -- पादान्, उदयन्, व्याकरण की मान्यता विधियों के अनुसार है ।

कारक - विजयमहोत्सवदर्शनाय⁸⁷ तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या । इसी प्रकार अनेकों पद हैं जिनका विवेचन किया जा सकता है ।

तिङन्त अभ्युपैति⁸⁸ अभि +उप +इण् +लट् +तिप् । व्याकरणशास्त्र की विधि अनुसार है ।

अतिक्रामसि⁸⁹ = अति +क्रम + परस्मैपद प्रत्यय । अतिक्रमणं करोसि ,अर्थात् कहाण और क्यों जा रही हो । इसी प्रकार अनेकों नाम धातु और णिजन्त, सन्ननत धातुक्रिया रूपों का प्रयोग है । व्याकरण की विधि अनुसार है ।

उपसंहार- किसी भी साहित्यिक ग्रंथ का व्याकरण की दृष्टि से अध्ययन करना अत्यधिक आयास साध्य होता है । उपर्युक्त शोधपत्र में श्रीहर्षवर्धन विरचित रत्नावली नाटिका में प्रयुक्त व्याकरण की दृष्टि से किञ्चित् पदों का समान रूप से अध्ययन किया गया है ।

साहित्यिक ग्रंथों में सामासिक पदों का अधिक मात्रा में प्रयोग प्राप्त होता है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि समस्त पदों के द्वारा वाक्य की संरचना में चारुता एवं आकर्षकता दृष्टिगोचर होती है । उदाहरण के लिए निशायाः नाथः के स्थान पर निशानाथःलिख देने से तथा अस्ताचले अपस्ताः क्षिप्ताः समस्ता अखिलाः भासः किरणाः येन तस्मिन् इतने दीर्घ वाक्य के स्थान पर अस्तापास्तसमस्तभासि के प्रयोग करने से पद की शोभा में वृद्धि प्रतीत होती है । एवं समास युक्त पदों के प्रयोग करने से कम शब्दों में अधिक अर्थों का स्पष्टीकरण भी हो जाता है । रत्नावली नाटिका में कवि ने अपने काव्य कौशल के माध्यम से यदा कदा अलंकार शैली में व्याकरण की गंभीरता से युक्त पदों का प्रयोग किया है, जिन पदों का विवेचन उपर्युक्त शोध पत्र में किया गया है । निश्चित ही यह शोध पत्र साहित्य एवं व्याकरण के अध्येताओं तथा शोधार्थियों को एक नई दृष्टि प्रदान करते हुए शोध के क्षेत्र की नई संभावनाओं को प्रकट करेगा ।

सन्दर्भ -

1. रत्नावली 1/5
2. कुट्टनीमतम् (12वीं शती लेखक दामोदर गुप्त) ।
3. सुभाषितरत्नभण्डागार (में संगृहीत एक पद्य)
4. अष्टाध्यायी- 1/2/51
5. रत्नावली अङ्क 1/1
6. अष्टाध्यायी- 3/2/167
7. रत्नावली अङ्क-3/3
8. रत्नावली अङ्क 1
9. अष्टाध्यायी- 5/1/124
10. रत्नावली अङ्क 1
11. अष्टाध्यायी,-8/2/12
12. रत्नावली अङ्क 1
13. अष्टाध्यायी- 5/1/128
14. अष्टाध्यायी-6/4/144
15. रत्नावली अङ्क 1
16. अष्टाध्यायी- 4/3/23
17. अष्टाध्यायी- 5/3/57
18. अष्टाध्यायी -2/1/51
19. अष्टाध्यायी-4/1/88
20. अष्टाध्यायी-2/1/16
21. रत्नावली अङ्क 1/1
22. अष्टाध्यायी- 6/3/122
23. रत्नावली अङ्क 1
24. अष्टाध्यायी- 7/4/25
25. रत्नावली अङ्क 1/1
26. अष्टाध्यायी- 3/1/11
27. रत्नावली अङ्क 1/19
28. उणादि- 4/78
29. अष्टाध्यायी- 3/2/38
30. अष्टाध्यायी- 3/4/21
31. रत्नावली अङ्क-3/गद्य भाग से ।
32. रत्नावली अङ्क 1/1
33. रत्नावली अङ्क 1/1
34. अष्टाध्यायी- 5/4/74

35. रत्नावली अङ्क 1/1
36. रत्नावली अङ्क 1/2
37. रत्नावली अङ्क 1/22 के बाद गद्य भाग से ।
38. रत्नावली अङ्क 1/4
39. रत्नावली अङ्क 1/20
40. रत्नावली अङ्क 1/21
41. रत्नावली अङ्क 1/21
42. रत्नावली अङ्क 1/14
43. रत्नावली अङ्क 1/21
44. रत्नावली अङ्क 1/22
45. रत्नावली अङ्क 122 के बाद गद्य ।
46. रत्नावली अङ्क 1/22 के बाद गद्य ।
47. रत्नावली अङ्क 1/22
48. रत्नावली अङ्क 1/24
49. रत्नावली अङ्क 122 के बाद गद्य ।
50. रत्नावली अङ्क 1/24
51. रत्नावली अङ्क 1/4
52. इति तन्त्रसारधृतभट्टः ।।
53. रत्नावली अङ्क 1/4
54. उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे
55. रत्नावली अङ्क 1/19
56. अष्टाध्यायी-2/1/56
57. रत्नावली अङ्क -2/गद्य भाग से
58. रत्नावली अङ्क 1/24
59. रत्नावली अङ्क 1/24
60. रत्नावली अङ्क 1/25 से पहले गद्य भाग से
61. रत्नावली अङ्क 1
62. रत्नावली अङ्क 1
63. रत्नावली अङ्क 1/19
64. रत्नावली अङ्क 1/ के बाद गद्यभाग से ।
65. रत्नावली अङ्क 1/ के बाद गद्यभाग से ।
66. रत्नावली अङ्क 1/25
67. रत्नावली अङ्क-3/1
68. रत्नावली अङ्क-4/14
69. रत्नावली अङ्क-4/14
70. रत्नावली अङ्क-4/12
71. रत्नावली अङ्क-4/11
72. रत्नावली अङ्क-4/7
73. रत्नावली अङ्क-4/6
74. रत्नावली अङ्क-4/5
75. रत्नावली अङ्क-1/16
76. रत्नावली अङ्क-2/ गद्य भाग से
77. रत्नावली अङ्क-2/ गद्य भाग से
78. अष्टाध्यायी -2/1/72
79. रत्नावली अङ्क 1
80. अष्टाध्यायी -3/3/18
81. अष्टाध्यायी-7/1/58
82. रत्नावली अङ्क 1/2
83. अष्टाध्यायी -3/2/124 लटः शत्रुशानचाव ।
84. अष्टाध्यायी -4/1/4
85. रत्नावली अङ्क 1/14
86. रत्नावली अङ्क 1
87. रत्नावली अङ्क 1/ गद्य भाग से
88. रत्नावली अङ्क 1/ गद्य भाग से
89. रत्नावली अङ्क 2/ गद्य भाग

46

हर्षदेव की नाट्यकृतियों का सूक्तिसौन्दर्य

नौनिहाल गौतम

काव्यों में नाट्य की रमणीयता सुप्रसिद्ध है। यह रमणीयता रसिक सहृदयों को आह्लादित करने वाली होती है। नाट्य आह्लादक होने के साथ ही हितकारी भी होता है। वह सरस सूक्तियों के माध्यम से कान्तासम्मित उपदेश प्रदान कर लोक को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। सरस कथानक के माध्यम से कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान कराता है। उसके कथानक के माध्यम से समकालीन समाज को तो दिशा मिलती ही है, उसमें निबद्ध सूक्तियाँ शाश्वत उपदेश प्रदान कर लोक के लिए भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं। सूक्तियों की उपयोगिता द्रष्टव्य है- “संस्कृत नाटकों में भी सूक्तियों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। संवादों में पिरोयी गयी सूक्तियाँ प्रसंगानुसार तो अर्थ देती ही हैं, सामान्य रूप से प्रयोग करने पर भी सहृदयों को आनन्द देने वाली होती हैं। इनसे नाटकीयता में भी वृद्धि होती है। कम शब्दों में अधिक अर्थ देने वाली सूक्तियाँ नाट्य में चमत्कार को बढ़ाने वाली होती हैं।”¹

महाकवि भवभूति ने भी अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति उत्तररामचरितम् में सुवचनों के महत्त्व को इस प्रकार निरूपित किया है-

‘भ्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ।’²

संस्कृत नाट्य परम्परा के एक महत्त्वपूर्ण रचनाकार श्रीहर्षदेव हैं। उनकी तीन नाट्य कृतियाँ हैं- प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द। ये कृतियाँ सहृदयों के आदर की पात्र रही हैं। रत्नावली तो नाट्यशास्त्रियों द्वारा अत्यधिक समादृत और उद्धृत है। इन कृतियों में आयी हुई सूक्तियाँ विभिन्न विषयों के संबंध में सैद्धान्तिक निर्णय देती हुई प्रतीत होती हैं।

भाग्य या दैव - भाग्य से संबंधित सूक्तियों के आधिक्य से प्रतीत होता है कि श्रीहर्षदेव भाग्य या दैव में विश्वास करते हैं। भाग्य के अनुकूल होने पर विधाता ईप्सित वस्तु को झट से लाकर मिला देता है- ‘आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ।’³

भाग्य की वृद्धि से सारे गुणों का समूह एकत्रित हो जाता है- ‘मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गुणः ।’⁴ भाग्य के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है- ‘नास्ति खलु दुष्करं दैवस्य ।’⁵ उसकी गति अत्यन्त कुटिल होती है- ‘दुरवगाहा गतिर्दैवस्य ।’⁶ भाग्य के विपरीत रहने पर मनोरथ सिद्ध नहीं हो पाते हैं-

‘सञ्जातसान्द्रमकरन्दरसां क्रमेण । पातुं गतश्च कलिकां कमलस्य भृङ्गः ।

दग्धा हिमेन सहसैव निपत्य चैषा ।

वामे विधौ न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि ।।’⁷

इस प्रकार श्रीहर्षदेव भाग्य की अनुकूलता और प्रतिकूलता का प्रभाव निरूपित करते हैं ।

प्रेम - प्रणय भाव के विभिन्न पक्षों को उकेरतीं सुन्दर सूक्तियाँ श्रीहर्षदेव की नाट्यकृतियों में पायी जाती हैं ।
समभाव वाले प्रिय से समागम पुण्यशालियों का ही होता है-

‘अन्योन्यदर्शनकृतः समानरूपानुरागकुलवयसाम् ।

केषाञ्चिदेव मन्ये समागमो भवति पुण्यवताम् ।।’⁸

मिलने के लिए निश्चित किये गये संकेत स्थल पर आयी कामिनी प्रणय व्यवहार में संकोच रखने पर भी अत्यन्त आनन्द देती है-

‘प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्कता

घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो

समयतितरां संकेतस्था तथा हि कामिनी ।।’⁹

यहाँ तक कि मुग्धा नववधू प्रतिकूल आचरण करे तो भी वह प्रीति को बढ़ाने वाली होती है- ‘जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया ।’¹⁰

प्रिया के साहचर्य में सुख के भाव को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि लक्ष्मी को अपने वक्षस्थल पर धारण किये बिना विष्णु सुखी नहीं रह सकते हैं- ‘किं मधुमथनो वक्षःस्थलेन लक्ष्मीम् अनुद्वहन् निर्वृतो भवति ।’¹¹

प्रियजन अपने घर के बगीचे में भी जाते हैं तो अत्यधिक स्नेह के कारण उनके विषय में अनिष्ट की आशंका होने लगती है- ‘स्वगृहोद्यानगतेऽपि स्निग्धे पापं विशङ्क्यते स्नेहात् ।’¹²

कठोर पक्ष का संकेत करते हुए कहते हैं कि प्रकृष्ट प्रेम से च्युत होना असह्य होता है- ‘प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविसङ्गं हि भवति ।’¹³

एक प्रियजन में अनुराग रहते समय ही अन्य में आकर्षण हो सकता है, इस तथ्य की ओर भी संकेत प्राप्त होता है । कमलिनी से अनुराग रखने वाला भौरा जब मालती को देखता है तो उसके अभिनव रस के आस्वादन के लिए लालायित हो उठता है । वह उसे पाये बिना धैर्य नहीं रख पाता है-

‘कमलिनीबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवरसास्वादलम्पटः कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति ।’¹⁴

परोपकार - भर्तृहरि ने शरीर की शोभा परोपकार करने से बताते हुए कहा है- ‘विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।’¹⁵ श्रीहर्षदेव शरीर धारण करने का प्रमुख प्रयोजन परोपकार को मानते हैं । परोपकार के लिए ही शरीर प्राप्ति होनी चाहिए- ‘भूयात् परोपकाराय शरीरलाभः ।’¹⁶

केवल परोपकार के लिए प्रयास करने वाले सूर्य को श्रीहर्षदेव प्रशंसनीय मानते हैं- ‘एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः ।’¹⁷

मनुष्य का शरीर अन्दर से बीभत्स दर्शनीय होता है । ऐसे शरीर में भला क्या सुन्दरता हो सकती है- ‘शरीरनाम्नि का शोभा सदा बीभत्सश्चिने ।’¹⁸ शल्य क्रिया की जानकारी रखने वाले लोग इस तथ्य से परिचित

होंगे। फिर भी जो लोग नश्वर शरीर के लिए पाप किया करते हैं, वे मूर्ख हैं - 'शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते।' ¹⁹

पात्रता/अर्हता/योग्यता - श्रीहर्षदेवदेवताओं की वन्दनीयता को मानते हैं- 'वन्द्याः खलु देवताः।' ²⁰ वे कार्योत्पत्ति में कारण की अर्हता स्वीकार करते हैं। जैसे- समुद्र के अलावा चन्द्र का जन्म भला कहाँ हो सकता है- 'रत्नाकराद् ऋते कुतश्चन्द्रलेखायाः प्रसूतिः।' ²¹ नवमालिका पुष्प के बिना शिरोमाल्य सुशोभित नहीं होती है- 'कीदृशो नवमालिकया विना शेखरकः।' ²² राजहंसी कमलवन को छोड़कर अन्यत्र विहार नहीं करती- 'न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।' ²³ सज्जन प्रिय बात को छोड़कर कुछ और कहना नहीं जानते हैं- 'किं सुजनः प्रियं वर्जयित्वा अन्यद् भणितुं जानाति' ²⁴ स्वाभाविक रूप से सुन्दर होने पर आभूषण की आवश्यकता ही नहीं होती है- 'स्वाङ्गैरेव विभूषितासि वहसि क्लेशाय किं मण्डनम्।' ²⁵ साहसी पुरुषों के लिए क्या सम्भव नहीं है- 'किं पुनः साहसिकानां पुरुषाणां न सम्भाव्यते।' ²⁶

प्रायः कोई भी वस्तु महान् आश्रय प्राप्त करने पर उत्कर्ष को प्राप्त करती है। भस्म भी मतवाले हाथी के कुम्भ पर पहुँच कर शृंगार कहलाने लगता है-

‘प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महतः।

मतेभकुम्भतटगतमेति हि शृङ्गारतां भस्म।’ ²⁷

गुणज्ञ जनों को शत्रुओं के गुणों से भी आनन्द होता है- 'गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति।' ²⁸

मणि, मन्त्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्तनीय होता है- 'अचिन्त्यो हि मणि-मन्त्रौषधीनां प्रभावः।' ²⁹

स्वामि-सेवक संबंध - स्वामिभक्ति का व्रत अति माननीय व्यक्तियों के प्रति भी निरपेक्ष व्यवहार करा देता है- 'ईदृशमत्यन्तमाननीयेष्वपि निरनुरोधवृत्ति स्वामिभक्तिव्रतम्।' ³⁰

कुछ समय पहले राजभवन से बाहर निकले हुए राजभृत्य भी पुनः राजकुल में प्रवेश करते समय दोषी व्यक्ति की भाँति शंका ग्रस्त रहते हैं, भले ही उनका कोई दोष न हो-

‘तत्क्षणमपि निष्क्रान्ताः कृतदोषा इव विनापि दोषेण।

प्रविशन्ति शंकमाना राजकुलं प्रायशो भृत्याः।।’ ³¹

सेवक समूह स्वामी को देखकर सुखपूर्वक रहने वाला हो जाता है। स्वामी के द्वारा प्रदत्त शत्रु नाश के कार्य को सम्पन्न कर लौटने वालों का तो कहना ही क्या है-

‘सुखनिर्भरोऽन्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजनः।

किं पुनरिबलविघटननिर्व्यूढप्रभुनियोगभरः।।’ ³²

दासत्व कर्म कष्टदायक तो होता ही है- 'कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः।' ³³

अन्य सूक्तियाँ - प्रकीर्ण विषयों पर कुछ प्रमुख सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे मन स्वाभाविक रूप से चंचल और दुर्लक्ष्य होता है- 'मनश्चलं प्रकृत्यैव'। (रत्नावली, 3.2)

अधन्य लोगों को अभिलषित वस्तु बिना विघ्न के प्राप्त नहीं होती- 'न खल्विघ्नमभिलषितमधन्यैः प्राप्यते।' (प्रियदर्शिका)

लोक बड़ा दुर्जन होता है- 'अतिदुर्जनः खलु लोकः' (प्रियदर्शिका, पृ. 98)

सबको अपने समान जन से प्रसन्नता होती है- 'सदृशाः सदृशे रज्यन्ते' (प्रियदर्शिका, पृ. 57)

गुरुजन का परित्याग करके राज्य करना केवल दुःखदायी है- ‘आयासः खलु राज्यमुज्झितगुरोस्तत्रास्ति कश्चिद् गुणः ।’ (नागानन्द, 1.7)

वर्षा ऋतु में आसन्नवृष्टि वाला दिन निरन्तर तपता (उमस भरा) रहता है- ‘तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्ण जलागमो दिवसः ।’ (रत्नावली, 3.10)

कन्याओं को देखने में कोई दोष नहीं है- ‘निर्दोषदर्शनाः कन्यका भवन्ति ।’ (नागानन्द, पृ. 38) इसका आशय है कि अविवाहित कन्या के दर्शन में कोई दोष नहीं। यही भाव अन्यत्र भी प्रकट हुआ है- ‘निर्दोषदर्शनका कन्यका खल्वियम् ।’ (प्रियदर्शिका, पृ. 32) भारतीय परम्परा में विवाहित परस्त्री के दर्शन में दोष माना गया है- ‘अनार्यः परदारव्यवहारः’ । (अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

बीच में रसभंग कर जाना उचित नहीं है- ‘न युक्तमस्थाने रसभङ्गं कृत्वा गन्तुम्’ (प्रियदर्शिका)

संयोग की संभाव्यता जैसे- कभी-कभी घुणाक्षर भी बन ही जाता है- ‘घुणाक्षरमपि कदापि सम्भवत्येव ।’ (रत्नावली, पृ. 118)

पतंग वत् आचरण की हेयता- ‘किमिदमकारणमेव पतङ्गवृत्तिः क्रियते ।’ (रत्नावली)

दुष्टों के कठोर एवं दुर्जय वचन पूर्ण रूप से शान्त हो जाएं- ‘निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपाः ।’ (रत्नावली, 4.22)

श्रीहर्षदेव की नाट्यकृतियाँ अपने नाट्य वैशिष्ट्य के लिए जानी जाती हैं। रत्नावली तो नाट्यरसिकों के कण्ठ की रत्नावली ही है। सूक्तियों की दृष्टि से तीनों ही कृतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। मुख्य रूप से भाग्य या दैव, प्रेम, परोपकार, पात्रता/अर्हता/योग्यता, स्वामि-सेवक संबंध और प्रकीर्ण विषयों पर भी सूक्तियाँ विद्यमान हैं। ये सूक्तियाँ मानवमूल्य की भी परिचायक हैं।

सन्दर्भ -

1. नाट्यम् अंक 89-90, पृ. 134, मुद्राराक्षस का सूक्तिसौन्दर्य, डॉ. नौनिहाल गौतम
2. उत्तररामचरितम्, 1.36
3. रत्नावली, 1.6
4. वही, 1.5
5. प्रियदर्शिका, 2.3 पश्चात्
6. रत्नावली, 4.14 पूर्व
7. प्रियदर्शिका, 4.8
8. नागानन्द, 2.14
9. रत्नावली, 3.9
10. नागानन्द, 3.4
11. नागानन्द, 2.1 पूर्व
12. नागानन्द, 5.1
13. रत्नावली, 3.15
14. प्रियदर्शिका, 3.1 पूर्व
15. नीतिशतकम्, 72
16. नागानन्द, 4.26
17. वही, 3.18
18. वही, 5.24
19. वही, 4.7
20. वही, 1.14 पूर्व
21. वही, 2.12 पश्चात्
22. वही, 3.2 पश्चात्
23. रत्नावली, 2.1 पूर्व, पृ. 60
24. नागानन्द, 2.1 पूर्व, पृ. 64
25. वही, 3.6
26. रत्नावली, 3.12 पूर्व
27. प्रियदर्शिका, 3.1
28. वही, 1.10 पश्चात्
29. रत्नावली, 2.5 पूर्व, पृ. 76
30. वही, 4.20 पश्चात्
31. प्रियदर्शिका, 1.8
32. वही, 4.6
33. रत्नावली, 1.7 पूर्व

हर्ष के रूपकों में छन्द विधान

सौरभ मिश्र

श्रीहर्षदेव की तीन नाट्यकृतियाँ प्राप्त होती हैं। जिसमें प्रथम रचना प्रियदर्शिका, द्वितीय रत्नावली तथा तृतीय नागानन्द है। नाट्य कृतियों में जो मुख्य तत्व होते हैं वे वस्तु, नेता, रस। इन मुख्य तत्त्वों में जो प्रथम है कथावस्तु उसका निरूपण सम्वादों के माध्यम से होता है संवाद कहीं गद्य और कहीं पद्य में होता है। पद्य हमेशा छन्द से ही अलंकृत होता है। पद्य शब्द पाद शब्द से ही निष्पन्न है। वर्णों और मात्राओं की सीमा में बंधे शब्दों को छन्द कहते हैं। छन्द के प्रयोग से वाणी में माधुर्य एवं चित्त आह्लादित होता है। **चिन्ताह्लादजनकं छन्दः।¹**

जिस प्रकार पुरुष अपने पैरों से ही गतिशील होता है। बिना पैरों के पङ्गु हो जाता है, ठीक यही स्थिति वेदों की है। इसीलिए वेदों को भी छन्दस् कहा जाता है। नाट्यशास्त्र में छन्दों के बारे में कहा गया है -

छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दश्शब्दवर्जितम्।

यस्मात्तूभयसंयोगो नाट्यस्योद्योतकः स्मृतः।।²

अर्थात् बिना छन्दों के कोई शब्द नहीं होता है और शब्दों के बिना कोई छन्द नहीं होता है। अतः किसी भी काव्य का सम्यक् अध्ययन अथवा रचना करने के लिए छन्द ज्ञान परम आवश्यक है। छन्द दो प्रकार के होते हैं - वार्षिक छन्द और मात्रिक छन्द। वार्षिक छन्दों में वर्णों की गणना छन्द निर्धारित करती है तथा मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गणना छन्द का निर्धारण करती है। वार्षिक छन्द के तीन भेद होते हैं-समवृत्त, अर्धवृत्त और विषमवृत्त। मूलतः दोनों प्रकार के छन्दों में स्वर गणना ही प्रधानत्वेन कार्य करती है और ह्रस्व स्वर के लिए '।' ऐसा चिन्ह और दीर्घ (गुरु) स्वर के लिए 'ऽ' ऐसे चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। छन्द निर्धारण के लिए गण भी बनाए जाते हैं। ये गण ह्रस्व गुरु भेद से तीन अक्षरों पर निर्धारित होने के कारण त्रिक भी कहलाते हैं। ये गण (त्रिक) आठ प्रकार के होते हैं।

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।

जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः।।³

तीनों वर्ण गुरु होने पर मगण, तीनों वर्ण लघु होने पर नगण, प्रथम वर्ण गुरु एवं शेष द्वितीय तृतीय वर्ण लघु होने पर भगण, और इसके ठीक विपरीत प्रथम वर्ण लघु एवं शेष दोनों वर्ण गुरु होने पर यगण हो जाता है। मध्यम अर्थात् द्वितीय वर्ण गुरु और शेष प्रथम और तृतीय वर्ण लघु होने पर जगण, ठीक इसके विपरीत मध्यम (द्वितीय) वर्ण लघु और प्रथम एवं तृतीय वर्ण के गुरु होने पर रगण, अन्त (तृतीय) वर्ण गुरु एवं प्रथम

और द्वितीय वर्ण लघु होने पर सगण, और इसके विपरीत अन्तिम वर्ण लघु और प्रथम, द्वितीय वर्ण गुरु होने पर तगण होता है। इस प्रकार का वर्णन नाट्यशास्त्र में भी प्राप्त होता है। छन्दशास्त्र बहुत ही समृद्ध और महत्वपूर्ण है। इसके व्यवस्थित प्रयोग से पद्यों में गान शक्ति का प्रस्फुरण हो जाता है और पद्य चित आह्लादक और मनोहर बन जाता है। श्रीहर्षदेव ने अपने रूपकों में व्यवस्थित ढंग से छन्दों का प्रयोग किया है। जिनका यथामति वर्णन इस प्रकार है। लौकिक संस्कृत साहित्य में पढ़ा गया आदिम छन्द अनुष्टुप् प्राप्त होता है। अतः श्रीहर्षदेव के रूपकों में छन्द चिन्तन का प्रारम्भ भी अनुष्टुप् छन्द से ही करते हैं।

अनुष्टुप् छन्द - इस छन्द के विषय में छन्दोमन्दाकिनी नामक ग्रन्थ में परिभाषा इस प्रकार प्राप्त होती है -

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् । द्विचतुः पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घ मन्ययोः ।।⁴

जिस छन्द के एक पाद में आठ अक्षर होते हैं और उसके प्रत्येक पाद में छठवां अक्षर गुरु एवं पाँचवां अक्षर हमेशा लघु होता है। तथा द्वितीय एवं चतुर्थ पाद में सातवां अक्षर लघु एवं प्रथम तथा तृतीय चरण में सातवां अक्षर गुरु होता है।

जैसे - **विधातुं पितृशुश्रूषां, त्यक्त्वैश्वर्यक्रमागतम् । वनं याम्यहमद्यैव यथा जीमूतवाहनः ।।⁵**

प्रस्तुत पद्य में चार चरण हैं और प्रत्येक चरण में आठ-आठ वर्ण हैं और प्रत्येक चरण का पञ्चम वर्ण लघु एवं प्रत्येक चरण का षष्ठ वर्ण गुरु है। पद्य के द्वितीय एवं चतुर्थ चरण का सप्तम वर्ण लघु तथा पद्य के प्रथम एवं तृतीय चरण का सप्तम वर्ण गुरु है। अतः अनुष्टुप् छन्द का लक्षण प्रस्तुत पद्य में पूर्ण रूपेण परिलक्षित हो रहा है। इसी प्रकार श्रीहर्षदेव के रूपकों में निम्नलिखित प्रकार से अनुष्टुप् छन्द दृष्टि गोचर होता है -

प्रियदर्शिका - श्रीहर्षदेव के इस रूपक में अनुष्टुप् छन्द का अभाव है।

रत्नावली - 1/23, 2/6, 2/18, 3/2, 3/16, 4/4, 4/18 **नागानन्द** - 1/5, 1/10, 1/20, 2/7, 2/9, 2/12, 3/11, 3/12, 4/7, 4/8, 4/11, 4/16, 4/17, 4/20, 4/21, 4/29, 5/11, 5/12, 5/24, 5/26, 5/29, 5/34

आर्या छन्द - श्रीहर्षदेव के रूपकों में आर्या छन्द भी प्राप्त होता है। इसका लक्षण इस प्रकार है -

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रा तथा तृतीयेऽपि ।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।⁶

जिस छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में द्वादश मात्राएं तथा द्वितीय चरण में अष्टादश मात्राएं एवं चतुर्थ चरण में पञ्चदश मात्राओं वाला छन्द आर्या छन्द कहलाता है।

जैसे - **द्विजपरिजनबन्धुहिते मद्भवनतटाकहंसि मृदुशीले । परपुरुषचन्द्रकमलिन्यार्ये कार्यादितस्तावत् ।।⁷**

उपरोक्त पद्य में आर्या छन्द लक्षण पूर्णतः घटित हो रहा है। इसी प्रकार श्रीहर्षदेव के रूपकों में आर्या छन्द निम्नलिखित स्थानों दृष्टव्य है।

प्रियदर्शिका - 1/5, 1/8, 2/5, 2/9, 3/1, 3/6, 3/9, 3/12, 4/6, 4/7 **रत्नावली** - 1/7, 1/22, 1/25, 2/1, 2/9, 2/12, 2/19, 3/10, 3/13

नागानन्द - 1/4, 1/14, 2/4, 2/5, 2/8, 2/14, 3/10, 3/14, 3/17, 4/4, 4/19, 4/23, 5/1, 5/4, 5/20, 5/35, 5/41

उपजाति छन्द - श्रीहर्षदेव ने अपने अपने रूपकों में उपजाति छन्द को भी स्थान दिया है। उपजाति छन्द का लक्षण ग्रन्थों में निम्न प्रकार से है -

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौयदीयावुपजातयस्ताः ।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ।।⁸

उपजाति छन्द के चारों चरणों में ग्यारह ग्यारह वर्ण होते हैं तथा यह छन्द इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्दों के मिश्रण से बनता है। छन्द के किसी चरण में इन्द्रवज्रा तथा किसी चरण में उपेन्द्रवज्रा घटित होता है। रत्नावली में इस छन्द का उदाहरण यह है -

परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात्, किं शोषमायासि मृणालहार ।

न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य, तत्रावकाशो भवतः किमु स्यात् ।।⁹

प्रस्तुत पद्य के चारों चरणों में 11-11 वर्ण हैं और प्रथम तथा तृतीय चरण में उपेन्द्रवज्रा एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में इन्द्रवज्रा छन्दों लक्षण घटित हो रहे हैं। इसी तरह श्रीहर्षदेव के रूपकों में उपजाति छन्द को देखा जा सकता है -

प्रियदर्शिका - 1/4 रत्नावली - 2/5, 4/19 नागानन्द - 4/1, 4/13, 4/14, 4/24, 4/26, 4/28, 5/16, 5/23

स्रग्धरा छन्द - श्रीहर्षदेव अपने रूपकों में स्रग्धरा छन्द का भी प्रयोग करते हैं। छन्दोमञ्जरी नामक ग्रन्थ में स्रग्धरा छन्द का लक्षण कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है - **ब्रभैर्याना त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।**¹⁰

जहाँ प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण हों तो वह स्रग्धरा छन्द कहलाता है। इस छन्द में सात सात वर्णों पर यति होती है। रत्नावली में इसका प्रयोग इस प्रकार है -

क्रोधेद्वैर्दृष्टिपातैस्त्रिभिरुपशमिता वह्नयोऽमी त्रयोऽपि,

त्रासार्ता ऋत्विजोऽधश्चपलगणहतोष्णीषपट्टाः पतन्ति ।

दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं विद्रुतश्चापि देवैः,

शंसन्तिव्यट्टहासो मखमथनविधौ पातु देव्यै शिवो वः ।।¹¹

प्रस्तुत पद्य में स्रग्धरा छन्द का लक्षण पूर्णरूपेण परिलक्षित हो रहा है श्रीहर्षदेव के रूपकों में स्रग्धरा छन्द को निम्न स्थानों पर भी देखा जा सकता है -

प्रियदर्शिका - 1/9, 1/12, 2/2, 2/4, 3/11, 4/5 रत्नावली - 1/4, 1/11, 1/17, 1/19, 1/20, 2/12, 3/5, 3/8, 4/5, 4/11, 4/14, 4/22 नागानन्द - 1/2, 1/13, 2/13, 3/7, 3/15, 3/18, 4/15, 4/18, 4/22, 4/25, 5/9, 5/22, 5/25, 5/28, 5/32, 5/36, 5/39

वसन्ततिलका छन्द - श्रीहर्षदेव ने अपने रूपकों में वसन्ततिलका छन्द का भी प्रयोग किया है इसका लक्षण ग्रन्थों में कुछ इस प्रकार प्राप्त होता है - **ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जागौ गः ।**¹² जिस पद्य के चारों चरणों में क्रमशः तगण, भगण, दो जगण एवं दो गुरु हों तो वह वसन्ततिलका छन्द कहा जाता है। जैसे -

विश्रान्तिविग्रहकथो रतिमाञ्जस्य, चित्ते वसन् प्रियवसन्तक एव साक्षात् ।

पर्युत्सको निजमहोत्सवदर्शनाय, वत्सेश्वरः कुसुमचाप इवाभ्युपैति ।।¹³

प्रस्तुत पद्य में वसन्ततिलका छन्द पूर्णतः घटित हो रहा है। श्रीहर्षदेव के रूपकों में निम्न स्थानों पर वसन्ततिलका छन्द को देखा जा सकता है -

प्रियदर्शिका - 1/10, 3/2, 4/2, 4/8 रत्नावली - 1/9, 1/13, 1/21, 2/17, 3/6, 3/14, 4/2, 4/3 नागानन्द - 3/16, 4/6, 5/3, 5/5, 5/7, 5/13, 5/30, 5/38

शार्दूलविक्रीडित छन्द - इस छन्द का प्रयोग श्रीहर्षदेव ने अपने रूपकों में बहुलता से प्रयोग किया है इसका लक्षण ग्रन्थों में इस प्रकार प्राप्त होता है - **सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।**¹⁴ अर्थात् जिस पद्य के

चारों चरणों में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और गुरु वर्ण होता है तो वह शार्दूलविक्रीडित छन्द होता है -

पादाग्रस्थितया मुहूः स्तनभरेणानीतया नम्रतां, शम्भोः सस्पृह लोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने ।

हीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया, विश्लिष्यन्कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः ।¹⁵

उपरोक्त पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण घटित हो रहा है इसी प्रकार श्रीहर्षदेव के रूपकों में इस छन्द के और भी निम्नलिखित उदाहरण देखे जा सकते हैं -

प्रियदर्शिका - 1/1, 1/2, 1/3, 1/6, 1/7, 1/11, 2/1, 2/3, 2/6, 2/7, 2/10, 3/4, 3/5, 3/7, 3/10, 3/13, 3/14, 3/15, 4/1, 4/3, 4/9, 4/11, 4/12 **रत्नावली** - 1/1, 1/2, 1/6, 1/10, 1/12, 1/18, 1/24, 1/26, 2/3, 2/4, 2/5, 2/11, 2/21, 3/1, 3/3, 3/11, 3/13, 3/18, 3/19, 4/1, 4/6, 4/12, 4/20, 4/21 **नागानन्द** - 1/1, 1/3, 1/6, 1/7, 1/8, 1/9, 1/11, 1/15, 1/16, 1/18, 1/21, 2/2, 2/3, 2/10, 3/4, 3/5, 3/6, 3/9, 4/2, 4/3, 4/9, 4/10, 4/27, 5/2, 5/14, 5/15, 5/18, 5/19, 5/21, 5/33, 5/37, 5/40

शिखरिणी छन्द - इसका प्रयोग भी श्रीहर्षदेव ने अपने रूपकों में किया है इसका लक्षण छन्दोमञ्जरी में इस प्रकार प्राप्त होता है - **रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसलभा गः शिखरिणी ।**¹⁶ अर्थात् जिस पद्य के चारों चरणों में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण एवं लघु और गुरु वर्ण हो तो उसे शिखरिणी छन्द कहते हैं। इस छन्द में यति छः और ग्यारह वर्णों पर होती है। श्रीहर्षदेव के रूपक रत्नावली में इसका प्रयोग इस प्रकार है -

परिस्लानं पीनस्तनजघनसंगादुभयतः, स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्य हरितम् ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः, कृशाङ्ग्याः सन्तापं वदति नलिनीपत्रशयनम् ।¹⁷

शिखरिणी छन्द के लक्षण के अनुसार ही यहाँ गणों का प्रयोग हुआ है। श्रीहर्षदेव के रूपकों में इस छन्द का प्रयोग निम्न प्रकार है -

प्रियदर्शिका - 4/40 **रत्नावली** - 2/13, 2/20, 3/4, 3/7, 3/15, 4/13 **नागानन्द** - 3/8, 4/27, 4/31

मालिनी छन्द - श्रीहर्षदेव के रूपकों में मालिनी छन्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। जिसका लक्षण इस प्रकार है - **ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।**¹⁸ अर्थात् जिस छन्द के चारों चरणों में क्रम से नगण, नगण, मगण, यगण, यगण हो और पहले आठ फिर सात अक्षरों पर यति हो तो वह मालिनी छन्द कहलाता है। रत्नावली में इसको इस प्रकार देख सकते हैं -

स्थितमुरसि विशालं पद्मिनीपत्रमेतत्, कथयति न तथान्तर्मन्मथोत्थामवस्थाम् ।

अतिगुरुपरितापम्लापिताभ्यां यथास्याः, स्तनयुगपरिणाहं मण्डलाभ्यां ब्रवीति ।¹⁹

प्रस्तुत पद्य में मालिनी छन्द के गण एवं यति पूर्ण रूप से घट रहे हैं। श्रीहर्षदेव के रूपकों में इस छन्द के और भी पद्यों का स्थान इस प्रकार है -

प्रियदर्शिका - 2/8 **रत्नावली** - 2/14, 3/17, 4/16 **नागानन्द** - 1/12, 2/11

हरिणी छन्द - श्रीहर्षदेव ने अपने रूपकों में हरिणी छन्द का भी प्रयोग किया है। इसका लक्षण छन्दोमञ्जरी नामक ग्रन्थ में इस प्रकार मिलता है - **नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता ।**²⁰ जिस छन्द में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा एक लघु एवं एक गुरु वर्ण हो तथा छः, चार और सात वर्णों पर यति हो तो वह हरिणी छन्द होता है। इस छन्द का प्रयोग रत्नावली में इस प्रकार होता है -

प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्कितां, घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।

वदति बहुशे गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो, रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ।।²¹

प्रस्तुत पद्य में हरिणी छन्द का लक्षण गण और यति के सहित घटित हो रहा है। श्रीहर्षदेव के रूपकों में हरिणी छन्द के अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं -

रत्नावली - 3/9 नागानन्द - 2/6, 3/13

शालिनी छन्द - श्रीहर्षदेव के रूपकों में शालिनी छन्द का प्रयोग भी प्राप्त होता है। इसका लक्षण छन्दोमञ्जरी में इस प्रकार है - **मातौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः ।**²² अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, तगण, तगण और गुरु तथा जिसमें चार तथा सात अक्षरों पर यति हो वह शालिनी छन्द कहा जाता है। रत्नावली में इसका उदाहरण इस प्रकार है - **प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ, दैवेनेत्यं दत्तहस्तावलम्बे । सिद्धेभान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि, स्वेच्छाचारी भीत एवाम्पि भर्तुः ।।**²³ प्रस्तुत पद्य में शालिनी छन्द गण और यति स्थान के सहित घटित है। श्रीहर्षदेव के रूपकों में इसके उदाहरण ये हैं - **रत्नावली - 1/8 नागानन्द - 5/1**

पृथ्वी छन्द - श्रीहर्षदेव पृथ्वी छन्द के भी प्रयोग कर्ता है। इसका लक्षण छन्दोमञ्जरी में इस प्रकार है- **जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।**²⁴ जिस पद्य में क्रमशः जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, तथा लघु और गुरु होता है तथा आठ और नौ अक्षरों पर यति होती है तो पृथ्वी छन्द होता है। रत्नावली में इसका उदाहरण इस प्रकार है- **दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष, श्रुतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याहृतम् । शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा, विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ।।**²⁵ प्रस्तुत पद्य में पृथ्वी छन्द पूर्णतः घटित है। इसके अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं- **रत्नावली-2/6,4/17**

इन्द्रवज्रा - इस छन्द का प्रयोग श्रीहर्षदेव की नाट्यकृतियों में नागानन्द नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस छन्द का लक्षण यह है - **स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।।**²⁶ अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण में दो तगण, जगण तथा दो गुरु वर्ण हों वह इन्द्रवज्रा छन्द कहलाता है। इसका उदाहरण नागानन्द नाटक में इस प्रकार है-

जिह्वासहस्रद्वितयस्य मध्ये नैकाऽपि सा तस्य किमस्ति जिह्वा ।

एकाकाहिरक्षार्थमहिद्विषेऽद्य दत्तो मयात्मेति यया ब्रवीति ।।²⁷

इस पद्य में चार चरण हैं और प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण हैं तथा इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण भी पूर्णतः घटित हो रहा है। श्रीहर्षदेव की नाट्यकृतियों में इसका एक ही उदाहरण प्राप्त होता है। **नागानन्द- 4/5**

प्रहर्षिणी छन्द - इस छन्द का प्रयोग भी श्रीहर्षदेव ने किया है। इसका लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है- **त्र्याशाभिर्मन जगराः प्रहर्षिणीयम् ।**²⁸ अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक पाद में क्रम से मगण, नगण, जगण, रगण एवं गुरु वर्ण हों तो वह प्रहर्षिणी वृत्त कहलाता है। इसका उदाहरण रत्नावली में यह है-

दुर्वारां कुसुमशरव्यथां वहन्त्या, कामिन्या यदभिहितं पुरः सखीनाम् ।

तद्भूयः शिशुशुकसारिकाभिरुक्तं, धन्यानां श्रवणपथातिथित्वमेति ।।²⁹

प्रस्तुत पद्य में प्रहर्षिणी छन्द का लक्षण सम्यक्तया परिलक्षित हो रहा है तथा श्रीहर्षदेव के रूपकों में प्रहर्षिणी छन्द का एक मात्र यही उदाहरण प्राप्त होता है।

पुष्पिताग्रा छन्द - इस छन्द का प्रयोग भी श्रीहर्षदेव के द्वारा किया गया है इस छन्द का लक्षण छन्दोमञ्जरी ग्रन्थ में इस प्रकार प्राप्त होता है- **अयुजि नयगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।**³⁰ इसका अभिप्राय यह है कि जिस पद्य के विषम चरणों में दो नगण, रगण, रगण तथा सम चरणों में नगण, दो जगण, रगण एवं गूय वर्ण हो तो वह पुष्पिताग्रा छन्द होता है। इसका उदाहरण रत्नावली में इस प्रकार है-

जितमुडुपतिना नमः सुरेभ्यो द्विजवृषभा निरुपद्रवा भवन्तु ।

भवतु च पृथिवी समृद्धसस्या प्रतपतु चन्द्रवपुर्नरेन्द्रचन्द्रः ।।³¹

इस पद्य में पुष्पिताग्रा छन्द का लक्षण गणों के सहित घटित हो रहा है। तथा श्री हर्षदेव के रूपकों में इस छन्द का एक मात्र यही उदाहरण प्राप्त होता है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि श्रहर्षदेव ने अपने रूपकों में सर्वाधिक शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि सम्भवतः उनका प्रिय छन्द शार्दूल विक्रीडित छन्द हो। तथा उनके द्वारा न्यूनतम (केवल एक बार) प्रयोग किए गए छन्दों में इन्द्रवज्रा, प्रहर्षिणी पुष्पिताग्रा की गणना होती है। श्रीहर्षदेव ने अपनी प्रथम नाट्यकृति प्रियदर्शिका में सर्वाधिक प्रयोग शार्दूलविक्रीडित का तथा न्यूनतम (एक बार) प्रयोग मालिनी, शिखरिणी का किया है द्वितीय नाट्यकृति रत्नावली में भी सर्वाधिक प्रयोग शार्दूलविक्रीडित का तथा न्यूनतम (एक बार) प्रयोग हरिणी, शलिनी, प्रहर्षिणी एवं पुष्पिताग्रा छन्द का किया है। अन्तिम नाट्यकृति नागानन्द में भी सर्वाधिक प्रयोग शार्दूलविक्रीडित का तथा न्यूनतम (एक बार) शलिनी तथा इन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया है।

सन्दर्भ -

1. छन्दोमञ्जरी, पं. परमेश्वर दीन पाण्डेय, चौखम्बा वाराणसी, भूमिका पृ.7
2. नाट्य शास्त्र 14/47
3. छन्दोमञ्जरी, प्रथम स्तबक 8
4. छन्दोमन्दाकिनी, 14
5. नागानन्द, 1/5
6. छन्दोमन्दाकिनी, 13
7. नागानन्द, 1/4
8. छन्दोमञ्जरी, 2/3
9. रत्नावली, 2/15
10. छन्दोमञ्जरी,
11. रत्नावली, 1/4
12. छन्दोमञ्जरी,
13. रत्नावली 1/9
14. छन्दोमञ्जरी
15. रत्नावली 1/1
16. छन्दोमञ्जरी
17. रत्नावली, 2/13
18. छन्दोमञ्जरी,
19. रत्नावली, 2/14
20. छन्दोमञ्जरी,
21. रत्नावली, 3/9
22. छन्दोमञ्जरी,
23. रत्नावली, 1/8
24. छन्दोमञ्जरी
25. रत्नावली, 2/16
26. छन्दोमञ्जरी
27. नागानन्द 4/5
28. छन्दोमञ्जरी
29. रत्नावली 2/8
30. छन्दोमञ्जरी
31. रत्नावली 1/5

रत्नावली नाटिका के श्लोकों का काव्यप्रकाश में सन्निहित संदर्भ

रंजन कुमार त्रिपाठी

हर्ष नाट्यकला में एक प्रवीण नाटककार हैं। उनके नाट्यकलाओं में वस्तु-विन्यास अत्यन्त प्रभावशाली तथा योजनाबद्ध तरीके से प्रयुक्त है। इनके नाटिकाओं में गतिशीलता और कार्य-व्यापार में धारावाहिकता भी है। इनकी कृतियों में रत्नावली संस्कृत-साहित्य की ऐसी प्रथम नाटिका है जो शास्त्रीय पद्धति पर लिखी गयी है, फलतः यह समस्त नाट्यशास्त्रीय लक्षणों से युक्त रचना है। क्योंकि इसमें अर्थ-प्रकृति, संधि और संध्यङ्गों का प्रयोग, यथास्थान समुचित रूप से किया गया है। इसके प्रयुक्त संध्यङ्गों में संयोजन शास्त्रानुकूल तथा नाट्यशास्त्र की आवश्यक शास्त्रीयता का सुन्दर एवं यथालक्षण प्रयोग हुआ है। यही कारण है कि संस्कृत जगत् के अनेक सिरमौर ग्रंथ भी इसके श्लोकों को उद्धरण रूप में स्पर्श किए हैं। प्रायः नाट्यशास्त्र के परम्परा को मानने वाले सभी आचार्यों ने रत्नावली के पंक्तियों को उद्धृत कर अपने ग्रन्थों को गौरवान्वित किया है। महाकवि हर्षदेव ने अपने कृतियों में से रत्नावली को नाटिका विधा के लक्षणों को ध्यान में रखकर वर्णित किया है। दशरूपककार धनञ्जय ने नाटिका का लक्षण कुछ इस प्रकार दिया है-

देवी तत्र भवेज्जेष्टा प्रगल्भा नृपवंशजा। गम्भीरा मानिनी कृष्णतट्टशा नेतृसंगमा।।

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा। अन्तः पुरादिसम्बन्धादासन्नश्रुतिदशनैः।।

अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम्। नेता तत्र प्रवर्तेत देवी त्रासेन शङ्कितः।।¹

उपर्युक्त में अभिहित लक्षणों का रत्नावली में श्री हर्ष ने अक्षरशः पालन किया है, यही कारण है कि दशरूपक, साहित्यदर्पण जैसे महनीय शास्त्रीय ग्रन्थों में भी उदाहरण रत्नावली नाटिका से प्रस्तुत किए गये हैं। ठीक इसी प्रकार आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश नामक अपने काव्यशास्त्रीय ग्रंथ में अनेक उदाहरणों का चयन उसके सटीकता और औचित्य के कारण रत्नावली नाटिका से ग्रहीत किया है। नाटककार के रूप में हर्ष या हर्षदेव (हर्षवर्धन) को ही भाषा, शैली, वाक्य-विन्यास, घटनाओं की समानता, वर्णन साम्य आदि के दृष्टि से क्रमशः प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द इनकी ही रचनाएं हैं। हर्षवर्धन स्थाणी स्वर (धानेश्वर) और कन्नौज के राजा प्रभाकर वर्धन के पुत्र और राज्यवर्धन के छोटे भाई हैं। महाकवि बाणभट्ट इनके ही आश्रित कवि थे जिन्होंने हर्षचरित ग्रन्थ की रचना में हर्ष के जीवनी के साथ तत्कालीन अनेक प्रामाणिक साक्ष्यवत् तथ्योंकास्पष्ट उल्लेख किये हैं। उक्त कृतियों के लेखकों के सन्दर्भ में मतभेद है जिसका मूल कारण काव्यप्रकाश के कर्ता मम्मट के द्वारा किया गया इस प्रकार का कथन ही है- श्रीहर्षदिर्धावकादीनामिवधनम्।²

जबकि बाण भी हर्ष के राज्याश्रित कवि थे जिन्हें हर्ष ने विपुल धनराशि कवित्व प्रतिभा आदि से प्रभावित होकर दी थी। काव्यप्रकाश के व्याख्या में भी सङ्केतव्य है-

हेम्नोभारशतानि वामदमुचांवृन्दानि वादन्ति नां श्रीहर्षेण समर्पितानि कवये बाणाय कुत्राहतत् ।⁴

पुनरपि अग्रलिखित मुख्य कारणों से हर्ष को उक्त तीनों कृतियों के कर्ता के रूप में स्वीकार किया जाता है क्योंकि तीनों नाटकों में प्रस्तावना के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से इनका कर्ता राजा श्री हर्ष को ही बतलाया गया है यथा-

श्रीहर्षदेवेना पूर्ववस्तुरचनालङ्कृता प्रियदर्शिकानामनाटिकाकृता ।⁵

श्रीहर्षदेवेना पूर्ववस्तुरचनालङ्कृतारत्नावलीनामनाटिकाकृता ।⁶

श्रीहर्षदेवेना पूर्ववचनालङ्कृतं विद्याधरजातकप्रतिनिबद्धं नागानन्दनामटकं कृतम् ।⁷

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि तीनों रचनाएँ महाकवि हर्षदेव की ही हैं। रत्नावली इनमें विशिष्ट है। महाकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित में हर्ष को कवि, विद्वान्, शास्त्रज्ञ, काव्यामृतवर्षी तथा सरस्वती का मूर्तरूप बताया है। वस्तुस्थिति जो भी रही हो परन्तु अधोलिखित सन्दर्भ भी कुछ संकेत करते हैं-

काव्यकथास्वापीतममृतं मुद्वग् मन्तम् ।⁸

विग्रहिणीमिव मुखनिवासिनी सरस्वतीं दधानम् ।⁹

प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य वाचः...नपर्याप्तो विषयः ।¹⁰

सर्वविद्यासंगीतगृहमिव सरस्वत्याः ।¹¹

इस प्रकार प्रस्तुत सन्दर्भों में हर्ष का लेखकत्व के साथ ही साथ रत्नावली आदि कृतियों के पक्ष में उठने वाले संदेह प्रायः शून्य हो जाते हैं।

काव्य शास्त्र संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपना अनुपम स्थान सुनिश्चित करता है कारण कि बिना किसी निमित्त परिभाषा तथा स्वरूप और उदाहरण प्रस्तुत किए काव्यशास्त्र में किसी भी तथ्य का पूर्णतः स्पष्टीकरण नहीं समझा जाता है। इसीलिए काव्यशास्त्र एक अत्यन्त प्राचीन समय से साहित्यिक यात्रा करता हुआ अद्यतन समय में निवर्तमान है, पुनरपि यहाँ पाठक की रुचि, बोधगम्यता और पढ़ने समझने की जिज्ञासा समाप्त नहीं हुयी अपितु उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होती गयी है। परिणामतः आज भी संस्कृत साहित्य के अनेक विधाओं में नित्य-प्रतिनवीन कृतियाँ उद्भूत होती रहती हैं। जो अभिनव संस्कृत साहित्य का स्वरूप निर्धारित करती हैं। काव्यशास्त्र की अनेक प्रवृत्तियाँ रहीं हैं जिनमें से एक प्रवृत्ति परम्परा से चली आ रही है कि एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ का कर्ता किसी भी प्रकार के परिभाषा या स्वरूप अभिव्यक्त करते समय निदर्शनार्थ अन्यान्य ग्रन्थों के श्लोकों, वाक्य अथवा वाक्यांशों को अपने शास्त्रीय ग्रन्थों में समुद्धृत करता है यथा -

काव्य प्रकाशकार तथा साहित्य दर्पणकार ने काव्यलक्षण के स्वरूप को सुलझाते हुए अध्येता को समझाने हेतु अमरुश तक के श्लोक को इस प्रकार से उद्धृत किया है-

यः कौमारहरः स एव हिवरस्ता एव चौरक्षपा-

स्ते चोन्मीलितं मालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः.... ।¹²

संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्र के अन्तर्गत आचार्य मम्मटकृत काव्य प्रकाश एक अलंकार शास्त्र का समन्वयात्मक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें प्राचीन आचार्यों की उपलब्ध सामग्री का यथावश्यक उपयोग किया गया है। उसकी युक्तियुक्त समीक्षा भी प्रस्तुत किया गया है तथा एक सामञ्जस्यपूर्ण मान्यता निर्धारित करने का

सफल प्रयास किया है। इस महनीय ग्रन्थ में जिन आचार्यों अथवा ग्रन्थों का नाम-निर्देश करते हुए उनके वचन अथवा मत को काव्यप्रकाश में उल्लेख किया गया है वे हैं- भरत, महाभाष्यकार, वाक्यपदीय, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, उद्भट, रुद्रट, ध्वनिकार तथा अभिनवगुप्त। इसी प्रकार प्रसङ्गवशात् कालिदास, मयूरकवि, महाकवि बाणभट्ट तथा श्रीहर्ष आदि का भी उल्लेख किया गया है। किन्तु वहाँ किसी भी कवि की कृति से उदाहरण प्रस्तुत करते समय उनका नाम नहीं दिया गया। प्रायः निम्नलिखित कवियों या काव्यकृतियों को उद्धृत करते हुए उनके वाक्य अथवा वाक्यांश उदाहरणवत् प्रस्तुत कर दिया गया है यथा-कालिदास भवभूति, अमरु शतक, कर्पूरमञ्जरी, कुट्टनीमत, चण्डीशतक, नवसाहशाङ्कचरित, बालरामायण, भट्टि, भर्तृहरि, भल्लट, भास, माघ, राघवानन्द, वज्जिका विद्धशालभञ्जिका, विष्णुपुराण, वेणीसंहार, हयग्रीवबध, हरविजय, नागानन्द, तथा रत्नावली इत्यादि।¹³

आचार्य मम्मट एक प्रतिभाशाली एवं सिद्धान्त विशारद तथा संस्थापक महनीय विद्वान् हैं तो इनकी कृति 'काव्यप्रकाश' अपने प्रकृति का एक युगान्तकारी शास्त्रीय ग्रन्थ है जिसमें आचार्य ने महाकवि हर्षदेव और उनकी मुख्य और रोचक शास्त्रीय नाटिका रत्नावली के श्लोकों का चयन करते हुए उद्धरण के रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि इनके काव्यप्रकाश नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ में नैकाधिक बार रत्नावली के श्लोकों, वाक्यों एवं वाक्यांशों की नाटकीयदृष्टि से शास्त्रीय प्रामाणिकता परिपुष्ट होता है। आचार्य मम्मट काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ में इनकी विवेचना का आधार मुख्यतया, भरत, आनन्दवर्धन, उद्भट, भामह, वामन, रुद्रट तथा अभिनवगुप्त की रचनाएँ हैं। आचार्य ने इनके प्रति समादरतो प्रकट किया है, किन्तु अवसर के अनुसार उनकी स्पष्ट आलोचना करने में भी संकोच नहीं किया है क्योंकि काव्य प्रकाश के अनुसार ऐसा ज्ञात होता है कि ध्वन्यालोक का पर्याप्त मात्रा में अनुसरण करते हुए भी काव्यप्रकाश के सप्तम उल्लास के अन्त में 'सत्यं मनोरमा' इत्यादि शब्द के रूप में ध्वनिकार की आलोचना भी की है। इस स्थिति में भी यदि मम्मटाचार्य ने श्रीहर्षदेव और उनके कृतियों नागानन्द, रत्नावली को उद्धरण रूप में ग्रहण किया है तो अवश्य एक विचारणीय और रत्नावली की दृष्टि से गौरवपूर्ण बात है। रत्नावली नाट्यकला की दृष्टि से उपनाटक के अन्तर्गत नाटिका विधा की संस्कृत साहित्य में प्रथम शास्त्रीय प्रकृतिकृति है। इसकी भाषा सहज, पारदर्शी एवं प्रभावोत्पादक तो है ही साथ ही साथ क्लिष्ट शब्दावली एवं दीर्घसामासिक पदों से युक्त प्रसाद गुणमयी भी है। इसका गद्य भाग भी सरल, सरस एवं शाब्दी संघटना से भाषा में सौन्दर्य को ग्रहण किए हुए है। अध्येता इन्हीं कारणों से रत्नावली के अध्ययन में रुचि दिखाता है। संभवतः इस नाटिका को शास्त्रगत नियमों के परिसीमा में रखकर निर्माण किया जाना तथा पाठक के लिए सहज पठनीयता के कारण ही मम्मटाचार्य ने इसे अपने काव्यप्रकाश में उदाहरणार्थ स्थान प्रदान किया है जो अग्रलिखित प्रकार से द्रष्टव्य है -

आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश के काव्यदोष निरूपण नामक सप्तम उल्लास में काव्य में रस दोषों को वर्णित किया है जिसके अन्तर्गत रसदोष वर्णन प्रसंग में रसदोषों के अपवाद का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार कहीं-कहीं रसदोष वस्तुतः दोष रहते हुए भी गुणवत् प्रतीत होते हैं अथवा माने जाते हैं यही रसदोष का अपवाद के रूप में माना जाता है। जैसा कि वे स्वयं कहते हैं कि-**नदोषःस्वपदेनोक्तावपिसञ्चारिणःक्वचित्**।¹⁴ अर्थात् कहीं कहीं व्यभिचारी भाव की स्वशब्दवाच्य होने पर भी दोष नहीं होता।

इसी तथ्य के स्पष्टीकरणार्थ आचार्य मम्मट ने श्रीहर्षदेव के नाट्यतत्त्व में विलक्षणता एवं सटीकता को स्वीकार करते हुए काव्यशास्त्र के अन्तर्गत काव्यशास्त्रीय तत्त्वसदोष के अपवाद (स्वशब्दवाच्यताकीअदोषता)

का उचित प्रयोग करने में सफल मानते हुए उनके रत्नावलीस्थ श्लोक को इस प्रकार उदाहरण के रूप में ग्रहण करते हुए प्रस्तुत किया है-

औत्सुक्येनकृतत्वरासहभुवाव्यावर्तमानाद्रिया, तैस्तैर्बन्धुजनस्यवचनैर्नीताभिमुख्यपुनः ।

दृष्ट्वाग्रेवरमात्तसाध्वसरसागौरीनवेसंगमे, संरोहतुलकाहरेणहसताश्लिष्टाशिवायास्तुवः ।।¹⁵

जैसे- 'नवमिलन के अवसर पर उत्सुकता के कारण शीघ्रता करती हुई, पर सहज लज्जा से लौटती हुई पुनः सम्बन्धी बन्धुजन के अनेक (प्रोत्साहन देने वाली) वचनों द्वारा (शिवके) सामने ले जाई गयी पति को आगे देखकर भय तथा आनन्द का अनुभव करती हुई, तथा हँसते हुए शिव के द्वारा अलिङ्गित पार्वती तुम्हारे कल्याण के लिए होंवें।' अनुशीलनता ऐसा ज्ञात होता है कि रस की स्वशब्द वाच्यता अथवा रस दोष का अपवाद इस श्लोक में महाकवि हर्ष के द्वारा सुन्दर एवं समुचित बन पड़ा है क्योंकि- श्लोक के तात्पर्यार्थ भाव यह है कि औत्सुक्य नामक व्यभिचारीभाव का कोई ऐसा असाधारण अनुभाव नहीं जो- असंदिग्ध रूप से औत्सुक्य की प्रतीति करा सके। जो 'त्वरा' आदि उनके अनुभाव हैं वे भी असाधारण नहीं; क्योंकि वे भय आदि के भी व्यञ्जक होते हैं; अतः औत्सुक्य का स्व शब्दोपादान दोष नहीं माना जाता क्योंकि वह अस्वाद विधा तक नहीं होता। अतः यहाँ रत्नावली की नान्दी में औत्सुक्य शब्द के समान उसकात्वरा रूप अनुभाव उस उत्सुकता की वैसी असंदिग्ध रूप से प्रतीति नहीं करा सकता। इसलिए महाकवि हर्ष का यह श्लोक यहाँ आचार्य मम्मट ने उचित एवं सटीक समझकर उद्धृत किया है।¹⁶

नाटिका के इस उद्धृत पद्य में 'औत्सुक्य' तथा लज्जा (द्रिया) रूप व्यभिचारी भावों का एक स्वशब्द द्वारा कथन किया गया है अतः यहाँ स्वशब्द वाच्यता रसदोष है। यहाँ औत्सुक्य तथा लज्जा व्यभिचारी भाव के अनुभाव 'त्वरा' (शीघ्रगमन) तथा व्यावर्तन ऐसे अनुभाव नहीं हैं जिससे उक्त व्यभिचारी भाव अभिव्यक्त हो सके क्योंकि ये दोनों अनुभाव भयादि के भी व्यञ्जक हैं। तथा उक्त व्यभिचारी भावों के आस्वाद में विधा तक भी नहीं हैं अतः व्यभिचारीभाव के स्वशब्दवाच्य होने पर भी यह रसदोष यहाँ सिद्ध नहीं होता है।

पुनः काव्यप्रकाश के गुणनिरूपण नामक अष्टत् उल्लास में भी महाकवि हर्ष के कृतित्व और रत्नावली के श्लोक को उचित सिद्ध करते हुए उद्धृत किया है। उनके अनुसार काव्य के शोभा बढ़ाने वाले धर्मगुण कहलाते हैं-

काव्यशोभायाःकर्तारोधर्मागुणाः ।¹⁷

आचार्यमम्मट गुणों के प्रकार निरूपण क्रम में उनके तीन भेद मानते हैं उन्होंने स्पष्टतः यह तात्पर्य अभिव्यक्त किया है कि वेतीन गुण ही स्वीकार करते हैं तथा अन्य आचार्यों के अन्यान्य तीन से अधिक गुणों का मूल प्रसाद, माधुर्य और ओज नामक इन्ही तीनों गुणों में अन्तर्भूत करते हैं क्योंकि उनकी ही उक्ति इस प्रकार है-

माधुर्यैजः प्रसादाख्यास्त्रायास्तेनपुनर्दश ।¹⁸

इसी प्रकरण के स्पष्टीकरण हेतु आचार्य प्रसाद गुण का निरूपण करते हुए परिभाषा सहित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम वे कहते हैं कि-

श्रुतिमात्रेणशब्दात्तुयेनार्थप्रत्ययोभवेत् । साधारणः समग्राणांसप्रसादोगुणोमतः ।।¹⁹

अर्थात्- वर्ण, समास, रचना के श्रवण मात्र से ही शब्द के अर्थकाज्ञान प्रस्फुटित होने लगे, वह समस्त रसों एवं रचनाओं में सामान्य रूप से रहने वाला प्रसाद नामक गुण माना जाता है। आचार्य मम्मटने निदर्शनार्थ महाकवि हर्षकृत रत्नावली नाटिका के द्वितीय अंक के श्लोक संख्या त्रयोदश का चयन किया है यथा-

परिम्लानपीनस्तनजघनसंगादुभयतः, तनोर्मध्यस्यान्तःपरिमिलनप्राप्यहरितम् ।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः, दृशाङ्ग्यासन्तापंवदति नलिनीपत्राशयनं ।²⁰

तात्पर्य : स्थूल स्तन युगल तथा जंघाओं के सम्पर्क से दोनों ओर से मुरझाई हुई, शरीर से या क्षीण मध्य भाग कटि (कमर) आदि से सम्पर्क न होने के कारण मध्य भाग में हरी, शिथिल भुजलता के गिरने तथा करवटें बदलने से अस्त व्यस्त रचना वाली यह कमलिनी पत्र रचित शय्या कृशाङ्गी के दुःख को प्रकट कर रही है।

आचार्य ने इस श्लोक को अपने द्वारा प्रस्तुत प्रासादगुण के परिभाषा पर उदाहरणार्थ परिघटित करते हुए इसके युक्तियुक्तता पर इस प्रकार से मान्यता प्रदान किया है कि- परिम्लान इत्यादि रत्नावली नाटिका में सागरिका को लक्ष्य करके वत्सराज के उक्ति का जो तात्पर्य है उससे अभिव्यक्त होता है कि यहाँ अन्वय के लिए आकांक्षित सभी पद यथा स्थान रखे गये हैं यही कारण है कि वण मात्र से ही अन्वय बोध होकर सहजतया प्रासादमय अर्थव्यंजित होने लगता है। यहाँ सरल अन्वय, श्रवण मात्र से ही अर्थप्रतीति, माधुर्यगुण व्यञ्जक वर्ण, मध्यमसमासतथामधुर रचनाये सभी प्रासादगुण के परिचायक हैं। अतः हर्षकृत यह श्लोक मम्मट के मत में प्रासादगुण के परिभाषा के अनुकूल है।

काव्यप्रकाशकार, काव्यप्रकाश के अर्थालङ्कार निरूपण नामक दशवें उल्लास में सन्देह सङ्कर अलङ्कार को निरूपित करते हुए उदाहरणतया रत्नावली के श्लोक भी प्रस्तुत करते हैं। उनके विचार में 'एकतर अलङ्कार के मानने में साधक प्रमाण (न्याय) तथा बाधक प्रमाण (दोष) न होने के कारण जो सन्देह (अनिश्चय) होता है वही सन्देह सङ्कर अलङ्कार है। परन्तु इस श्लोक में सन्देह संकर अलङ्कार नहीं है। जिसका उदाहरण अग्रवत् है—**एकस्यच ग्रहेन्यायदोषाभावाद निश्चयः**।²¹

इसी सन्देह सङ्कर अलङ्कार के अन्तर्गत रूपक के साधक प्रमाण की उपस्थिति का उदाहरण रत्नावली नाटिका से प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि- **वक्त्रेन्दौ तव सत्ययंदपरः शीतांशुरभ्युदगतो**।²² अर्थात् हे राजन! तुम्हारे चन्द्रमुख के रहते हुए भी यह दूसरा चन्द्रमा उदित हो रहा है।

यहाँ 'वक्त्रेन्दौ' इत्यादि पदों में 'अपरत्व' शब्दरूपक के साधक का प्रमाण है, अतः 'वक्त्रचन्द्रः' इस (उपमानोपमेय में अभेदारोप) रूपक की प्रतीति में साधक प्रमाण के रहते उपर्युक्त रूप से बतलाया गया है कि यहाँ पर सन्देह सङ्कर प्राप्त नहीं होता है। वृत्ति में भी आचार्य स्पष्ट करते हैं कि- अपरत्व शब्द चन्द्रमा के अनुकूल है तथा मुख के प्रतिकूल भी नहीं है इसीलिए यह रूपक का साधक प्रमाण है तथा उपमा का बाधक प्रमाण नहीं है।

दशम उल्लास में आचार्य ने अलङ्कार दोषों की समीक्षा किया किया है जिसके अन्तर्गत अलङ्कारों में होने वाले भिन्न-भिन्न दोषों को समझाया है। इसी प्रकरण में आचार्य ने पुरुष के परिवर्तित होने पर अभिव्यक्त होने वाले दोष को पुरुषगत भग्न प्रक्रमदोष के रूप में अलङ्कार दोष के अन्तर्गत समाहित किया है जिसके उदाहरण स्वरूप श्लोक उन्होंने रत्नावली नाटिका से ग्रहण किया है जिसका विवेचन इस प्रकार है-

प्रत्यग्रज्जन विशेषविविक्तकान्तिः, कौशुम्भरागरुचिरस्फुरदंशुकान्ता ।

विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती, बालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ।²³

अर्थात्- हे सखि! नव स्नान से अधिक निर्मल (विविक्त) शरीर वाली कुशुम्भराग से रन्जित सुन्दर वस्त्र (अंशुकान्त) वाली तुम मकर के तन (कामदेव) की पूजा करती हुयी, उस लता के समान शोभायमान हो जो नूतन किस लय-युक्त साखाओं का उत्पत्ति स्थान है।

आचार्य मम्मट के अनुसार यहाँ 'लताविभ्राजते' ऐसा प्रथम पुरुष उचित है व्याकरण की दृष्टि से, न कि 'विभ्राज से' यह मध्यम पुरुष। इस प्रकार संबोध्यमान व्यक्ति निष्ठ (वासवदत्ता विषयक) पद के अन्तिम भाग के असम्बोध्यमान विषयक अर्थात् जो संबोधन के योग्य न हो, लता विषयक परिवर्तन होने से यहाँ पुरुष भेद है। इसीलिए उपमेयगत मध्यम पुरुष तथा उपमानगत प्रथमपुरुष का प्रयोग होने से पुरुषभेद रूपदोष है जिसका अन्तर्भाव मम्मट ने भग्नक्रम दोष में किया है। यह पद्य रत्नावली नाटिका से ही उद्धृत है।

कवि हर्ष कृत रत्नावली संस्कृतसाहित्य- जगत् में वह प्रथम नाटिका है जो अपने प्रकृति की शास्त्रीय नाट्यपद्धति पर वर्णित की गयी है। यही कारण है कि एक प्रतिष्ठित नाटक में प्राप्त होने वाले या पूर्व नाट्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नाट्य नियमों का पूर्णतः निर्वहण रत्नावली नाटिका में अत्यन्त सूक्ष्मता और सावधानी से किया गया है जो रत्नावली को नाटकीय शास्त्रीय पद्धति से निर्मित श्रेष्ठतम नाटकों की श्रेणी में लाकर स्थापित करता है। इसमें अर्थप्रकृति, संधि और संध्यङ्गों जैसे कार्यावस्थाओं आदि के समायोजन के साथ ही साथ अन्य शास्त्रीय तत्त्वों में अलंकार, रस, ध्वनि, छन्द, रीति, भाषाशैली, पात्र संयोजन, संवाद रचना, घटनाओं की क्रमबद्धता तथा कथावस्तु आदि का साङ्गोपाङ्ग निरूपण कर दिया है। इसमें नाटकीय तत्त्वों का प्रत्येक उदाहरण प्राप्त हो जाता है। जैसे एक नाटकीय तत्त्व 'बीज' के निदर्शनार्थ रत्नावली के विष्कम्भक के अंतर्गत सूत्रधार की इस प्रकार की उक्ति है यथा -

‘द्विपादन्यस्मादपि.....विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।’²⁴

से प्रारम्भ होकर पुनः यौगन्धरायण की उक्ति-

प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनोवृद्धिहेतौ, दैवेनेत्यंदत्तहस्तावलम्बे।

सिद्धेभ्रान्तिर्नास्तिसत्यंतथापि, स्वेच्छाचारीभीतएवास्मिभर्तुः।।²⁵

इत्यादि से ही समाप्त भी होता है। यही कारण है कि इसकी गरिमा पर दशरूपक के कर्ता आचार्य धनञ्जय मंत्रमुग्ध हैं और साहित्य दर्पणकार विश्वनाचार्यभीरत्नावली के आकर्षण से बच नहीं सके। परिणामतः स्पष्ट होता है कि काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट भी रत्नावली से प्रभावित रहे थे जिसका विवेचन प्रकृत शोध पत्र करता है।

निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि श्रीहर्ष एक प्रतिष्ठित प्रणय-नाटिका के वर्णन में अत्यन्त कुशलता, प्रौढकवित्व और उच्चकोटि की कल्पनाशक्ति का परिचय देते हैं। इसलिए वे लेखक तथा रंगमंचीय नाटक प्रणेता के रूप में प्रतीत होते हैं। ये कालिदास आदि नाटककारों के महत्त्व के समक्ष भी अपनी नाटिकाओं के वर्णन चातुर्य और वैदग्ध्यता के प्रभाव से अपना महत्त्व स्थापित किये हैं। अतः हर्ष एक नाट्यकला प्रवीण नाटककार हैं जिनके श्लोकों का उदाहरण वत चयन समन्वयवादी काव्यशास्त्रकार आचार्य मम्मट ने सोच समझकर ही किया है।

संदर्भ -

1. दशरूपकम्, तृतीय प्रकाश, कारिका- 45-47, व्याख्या. डॉ. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 289।
2. संस्कृतसाहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी- संस्करण-2012, पृ.265-66।
3. काव्यप्रकाश-प्रथम उल्लास, कारिका 2, व्याख्या.डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.7।
4. काव्यप्रकाश, व्याख्या-सारसमुच्चय।

5. प्रियदर्शिका-प्रस्तावना, अनुवादक - गंगाधर इन्दूकर, पृ.2 ।
6. रत्नावली-अंक -1, प्रस्तावना, व्याख्या. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, पृ.10 ।
7. नागानन्दम्, अंक 1, प्रस्तावना, सम्पादक-संसारचन्द्र, मोतीलाल बनारसी दास, पृ.4 ।
8. हर्षचरितम्, पृ.71 ।
9. हर्षचरितम्, पृ.74 ।
10. हर्षचरितम्, पृ.78 ।
11. हर्षचरितम्, पृ.76 ।
12. (क) काव्यप्रकाश-प्रथम उल्लास, व्याख्या.डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.9 ।
(ख) साहित्यदर्पण, प्रथमप रिच्छेद, मिश्रोभिराज राजेन्द्रः, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.121 ।
13. काव्यप्रकाश-व्याख्या.डॉ.श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.27 ।
14. काव्यप्रकाश- सप्तम उल्लास, व्याख्या. डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.391-92 ।
15. रत्नावली-अंक -1, व्याख्या. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, पृ.3-4 ।
16. काव्यप्रकाश-सप्तमउल्लास, व्याख्या.डॉ.श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.392 ।
17. काव्यप्रकाश-अष्टमउल्लास, व्याख्या.डॉ.श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.414 ।
18. काव्यप्रकाश-अष्टमउल्लास, व्याख्या.डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.416 ।
19. काव्यप्रकाश-अष्टमउल्लास, व्याख्या.डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.418 ।
20. रत्नावली-अंक -2, व्याख्या. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, पृ.93 ।
21. काव्यप्रकाश- दशम् उल्लास, व्याख्या.डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भंडार, मेरठ, पृ.610 ।
22. रत्नावली-अंक -3, व्याख्या. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, पृ.15 ।
23. रत्नावली-अंक-1, श्लोक -21, व्याख्या.डॉ. जयमङ्गल पाण्डेय, पृ.36-37 ।
24. रत्नावली-अंक-1, व्याख्या.डॉ. जयमङ्गल पाण्डेय, पृ.12 ।
25. रत्नावली-अंक -1, व्याख्या. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, पृ.17 ।

यह सत्य है कि संस्कृत भाषा प्राथम्येन अस्तित्व में विद्यमान रही है तदनन्तर व्याकरण की संरचना है किन्तु वैदिक संस्कृत के बाद लौकिक संस्कृत, व्याकरण के आधार पर ही साधु मानी जाती है। इसीलिये सभी साहित्यकार, नाटककार, गद्यकार, पद्यकार व्याकरणविशेषज्ञ होते हैं और अपनी वैयाकरणिका प्रतिभा से अपने शास्त्र को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। समासप्रधानशैली, एकवर्णाश्रितपद्यशैली, ओष्ठवर्णरहितगद्यशैली, सभंगश्लेष-अभंगश्लेषशैली, आदि शैलियां व्याकरणानुसार ही अपने को गढ़ पाती हैं। अपि च अलंकारों की शब्दों में निःसृति भी व्याकरणानुसार निर्मित शब्दों द्वारा ही हो पाती है क्योंकि संस्कृतभाषा ही अपने आप में व्याकरण है। अत एव भरतमुनि नाट्यशास्त्र के वाचिकाभिनयाद्यध्याय में कहते हैं -

वाङ्मयानीह शास्त्राणि वाङ्निष्ठानि तथैव च । तस्माद्वाचः परं नास्ति वाग्धि सर्वस्य कारणम् ।।¹

अर्थात् इस जगत् में सभी शास्त्र तथा वाङ्मय शब्दात्मक हैं तथा शब्दनिष्ठ (शब्दाश्रित भी)। इसलिये वाणी से परे कुछ भी नहीं है और सभी का (भावों वस्तुओं आदि का) कारण शब्द ही होता है। जैसा की आचार्य भर्तृहरि भी वाक्यपदीय में कहते हैं -न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते । अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्व शब्देन भासते ।।² अर्थात् संसार में कोई भी ज्ञान बिना शब्द के संभव नहीं है। शब्द सभी का कारण है। अतः -

वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मृता । अंगनेपथ्यसत्त्वानि वाक्यार्थं व्यञ्जयन्ति हि ।।³

शब्दों पर विशेष उद्योग (प्रयत्न) करना चाहिये क्योंकि यही सारे नाट्यदर्शन का कलेवर है। अङ्ग, नेपथ्यरचना तथा सत्त्वाभिनय वाक्य के शब्द के अर्थों की ही अभिव्यक्ति करते हैं। आशय है कि वाचिक अभिनय के सभी सहायक मात्र है। यदि वाचिक अभिनय शिथिल हो तो अन्य अभिनयों से प्रयोग सुरुचिपूर्ण नहीं बन सकता। वाचिकाभिनय किसे कहते हैं इसे बताते हुये भरतमुनि आगे कहते हैं -

नामाख्यानिपातोपसर्गतद्धितसमासनिर्वर्त्यः । सन्धिविभक्तिनियुक्तो विज्ञेयो वाचिकाभिनयः ।।⁴

अर्थात् यह वाचिकाभिनय नाम-संज्ञा, आख्यात-क्रिया, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, सन्धि तथा विभक्ति के ज्ञान से सम्बद्ध होता है। अभिनवगुप्ताचार्य का मत है कि नट के द्वारा अभिनय की और लेखक के द्वारा निर्माण की दशा में शब्दों की रचना पर ध्यान देना चाहिये।⁵ भरतमुनि के इन निर्देशात्मक विचारों का अनुकरण करने वाले सभी नाटककार भाषापक्ष में, वाचिकाभिनय में सुदृढ़ होते हैं। महाकवि श्रीहर्ष विरचित रत्नावली में वाचिकाभिनयपक्ष की सारी विशेषतायें हैं किन्तु मैंने केवल श्रीहर्ष के तिङन्त पक्ष पर दृष्टिपात

किया है। रत्नावली में तिङन्तों का प्रयोग परस्मैपद आत्मनेपद कर्तृवाच्यरूप (सोपसर्ग-निरुपसर्गतिङन्त) में, कर्मवाच्यरूप (सोपसर्ग-निरुपसर्गतिङन्त) में, नामधातुरूप में, णिजन्तरूप में, तथा अभूतद्भाव में हुआ है।

पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां, शम्भोः सस्पृहलोचनत्र्यपथं यान्त्या तदाराधने।

हीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया, विश्लिष्यन्कुसुमांजलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः।।⁶

अर्थात् भगवान् शंकर की आराधना में तत्पर, पैरों के अग्रभाग पर खड़ी हुई उर के भार से झुकी हुई, शंकर के लालसायुक्त दोनों नेत्रों के द्वारा देखी गई अतः रोमांच, पसीने और कम्पनयुक्त होने से लज्जित पार्वती के द्वारा शंकर के सिर पर चढ़ाने के लिये चाही गई किन्तु फेंके जाने से रोमांच आदि के कारण बीच में ही (शंकर और पार्वती के) बिखरती हुई पुष्पांजलि आप सबकी रक्षा करे।

आशीर्वादात्मक मंगलाचरण की इस चतुर्थ पंक्ति में 'पातु' इस कर्तृवाच्यरूप लोटलकार के प्रथमपुरुष के एकवचन से श्रीहर्ष ने तिङन्त प्रयोग का शुभारम्भ किया है। 'पा रक्षणे' धातु से 'लोट् च'⁸ सूत्र से विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न, प्रार्थना इन अर्थों में लोट् प्रत्यय होता है। अनेक अर्थों को अपने में समाहित करने वाले 'पातु' इस क्रियापद के प्रयोग ने हर्ष के अर्थगौरव को प्रदर्शित किया है। अर्थात् हर्ष उस कुसुमसमवाय से यह कहना चाहते हैं कि (प्रार्थना) आप भक्तजनों की रक्षा करें। (निमन्त्रण, आमन्त्रण) आपको रक्षा करने के लिये हम निमन्त्रित और आमन्त्रित दोनों करते हैं। आपको रक्षा करना चाहिये (विधि)। कृपया आप रक्षा करें, ऐसा हम चाहते हैं (अधीष्ट-सत्कारपूर्वक व्यापार)। आप रक्षा करेंगे न!! (सम्प्रश्न)। इतने भावों एवं अर्थों को व्यक्त करने वाला लोट् प्रत्यय है। यह महर्षि पाणिनिविरचित व्याकरण का वैशिष्ट्य है कि एक प्रत्यय से कितने अर्थों का समावेश कर देते हैं। जिससे श्रीहर्ष कितने विज्ञ है यह हम केवल मंगलाचरण में प्रयुक्त 'पातु' पदप्रयोग से समझ सकते हैं। सम्पूर्ण रत्नावली में लगभग 800 क्रियापदों का प्रयोग है यह गणना अनेक क्रियापदों के पुनः पुनः प्रयोग को लेकर है। श्री हर्ष ने पाणिनीय दस लकारों में से पांच लकारों का प्रयोग किया है वे पांच लकार हैं - लट्, लृट्, लोट्, लङ्, लुङ्। इन पांच लकारों में ही सकल रत्नावली गुम्फित है, इन्हीं पांच लकारों में संवाद अपनी पूर्णता कर सकता है जिसे श्री हर्ष ने करके दिखाया है। इनके अतिरिक्त लिट्, लुट्, लिङ्, लृङ् का प्रयोग रत्नावली में नहीं प्राप्त होता है। संवादानुरूप इनकी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती है। लिङ् के अन्तर्गत विधिलिङ् और आशीर्लिङ् लकार आते हैं ये लकार जिन अर्थों में होते हैं उन्हीं अर्थों में लोट् लकार भी होता है। अतः श्री हर्ष ने इन अर्थों में सर्वत्र लोट् लकार का ही प्रयोग किया है। क्योंकि यह लकार, प्रयोग और अवबोधन दोनों में सुगम होता है। यह हर्ष के भाषासारल्य का अप्रतिम उदाहरण है।

'प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे'⁹ इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार 22 उपसर्ग तिङन्तक्रियापद के साथ संयुक्त होकर उस क्रिया के अर्थपरिर्तन में सहायक होते हैं और अन्य अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति कराते हैं। पाणिनि के इस सूत्रानुसार श्री हर्ष की रत्नावली में 17 उपसर्गों का प्रयोग प्राप्त होता है जिनमें - प्रतपतु (प्र पृ. 43), अपनयामि (अप, पृ. 151), सम्पादयामि (सम्, पृ. 43), अनुतिष्ठामि (अनु, पृ. 46), अवलोकयतु (अव, पृ. 57), निष्क्रामति (निस्, पृ. 115), निर्वर्तयिष्यति (निर्, पृ. 71), विलपति (वि, पृ. 42), आज्ञापयतु (आङ्, पृ. 53), निहूयते (नि, पृ. 101) अधिरोहति (अधि, पृ. 55), अभिलषति (अभि, पृ. 84), प्रतीच्छति (प्रति, पृ. 77), परिक्रामतः (परि, पृ. 66), अतिक्रामसि (अति, पृ. 82), उपैति (उप, पृ. 51), उद्वीक्षते (उत्, पृ. 77) इन उपसर्गों का प्रकृत के अतिरिक्त क्रियापदों के साथ भी प्रयोग मिलता है। तथा दो उपसर्गों का एक साथ प्रयोग करके गिनती के ही तिङन्त उदाहरण रत्नावली में प्राप्त होते हैं यथा व्यापादयति,

व्याख्यास्याति(वि,आ), समाश्वसिहि(सम्,आ), समुच्चरति (सम्,उत्), अनुपहरन्ति(अनु,उप), उपालप्स्ये (उप, आ)। इसके अतिरिक्त परस्मैपद एवं आत्मपद, दोनों प्रकार के क्रियापद रत्नावली में यथोचित देखने को मिलते हैं किन्तु भाषासारल्य की दृष्टि से तथा नाटकपात्रों को प्रयोगकाठिन्य न हो इस दृष्टि से श्रीहर्ष ने परस्मैपदी तिङन्तपदों का अतिशयेन प्रयोग किया है। उभयपदी धातुओं में केवल कृधातु का - करिष्ये (पृ. 119), कुरुध्वम् (पृ. 169), धाधातु का - विधत्ते (पृ. 148) तथा घटधातु का - घटते (पृ. 124) प्रयोग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उन्हीं आत्मनेपदी धातुओं का प्रयोग किया है जो केवल आत्मनेपदी हैं यथा - प्रेक्षते (प्रेक्षसे, प्रेक्षे, प्रेक्षावहे, प्रेक्षस्व, प्रेक्षिष्ये), विभ्राजसे, ईक्षते (उद्दीक्षसे), लज्जसे(लज्जस्व), वेपते, वर्धते (वर्धसे), बाधते, परित्रायस्व, वर्तते, आस्ते, परिष्वजस्व इत्यादि आत्मनेपदी धातुओं का प्रयोग प्रायः हुआ है।

पाणिनीय व्याकरणानुसार सभी णिजन्त धातुयें उभयपदी होती हैं वे चुरादिगणस्थ हों अथवा 'हेतुमति च'¹⁰ सूत्र से प्रेरक कर्ता होने पर णिजन्त हों। अथवा 'तत्करोति तदाचष्टे'¹⁰ अर्थ में णिच् आकर णिजन्त बनकर नामधातु रूप में तिङन्त प्रयुक्त होती हैं। श्रीहर्ष के रत्नावली में जो धातुयें चुरादिगणस्थ हैं वे तो उभयपदी प्रयुक्त दिखाई देती हैं। किन्तु प्रेरक अर्थ में तथा 'तत्करोति तदाचष्टे' अर्थ में प्रयुक्त तिङन्त क्रियापद केवल परस्मैपदी ही दिखाई देते हैं। यथा चुरादिगणस्थ तिङन्त पद - चिन्तयामि (परस्मैपद, पृ. 53), पूजयिष्ये (आत्मनेपद, पृ. 77), मन्त्रयिष्येते, मन्त्रयते (आत्मनेपद, पृ. 87), मानयिष्यामि (पृ. 63) वञ्चयसे (आत्मनेपद, 129) इत्यादि उदाहरणों में प्रयुक्त पदों में धातुयें चुरादिगणस्थ तथा उभयपदी हैं, श्री हर्ष ने संवादप्रवाह में किसी धातु का परस्मैपद में और किसी धातु का आत्मनेपद में प्रयोग किया है जो हर्ष के पाणिनीयव्याकरणविज्ञता को दर्शाता है। एतदतिरिक्त 'हेतुमति च' अर्थ में प्रयुक्त णिजन्त क्रियापद केवल परस्मैपद में प्राप्त होते हैं - प्रतिष्ठापय (पृ. 72), वर्धयिष्यामि (पृ. 93), अतिवाह्यावः (पृ. 91), निर्वर्तयिष्यति (पृ. 71), सम्भावय (पृ. 172), दर्शयिष्यामि (पृ. 104), नाटयतः (पृ. 66), पातयिष्यामि (पृ. 98), उत्पादयिष्यति (पृ. 141) विज्ञापयति (पृ. 65) संस्मरयति (पृ. 57) इत्यादि। अपि च 'तत्करोति तदाचष्टे' अर्थ में भी णिजन्त पदों का प्रयोगसौन्दर्य हमें रत्नावली में दिग्दर्शित होता है, यथा - सम्पादनं करोमि इति सम्पादयामि (पृ. 43) आदेशं कुरु इति आदेशय (पृ. 96) प्रकाशनं करोमि इति प्रकाशयामि (128), पारं करोषि इति पारयसि (पृ.128), तर्जनं करोति इति तर्जयति (पृ.122), प्रकटं करोषि प्रकटयसि (पृ.190) विनोदमाचष्टे विनोदयिष्यामि (पृ.165) चिरं करोति चिरयति (पृ.132) इत्यादि णिजन्त पद परस्मैपद में ही प्राप्त होते हैं जो श्री हर्ष के भाषा सारल्य एवं वागसौविध्य को प्रकट करते हैं।

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार कर्तृवाच्य में तो धातुयें परस्मैपदी, आत्मनेपदी, उभयपदी के रूप में प्रयुक्त होती हैं किन्तु कर्मवाच्य में सभी क्रियापद आत्मनेपद ही होते हैं अतः कर्मवाच्यपरक आत्मनेपद क्रियापद का प्रयोग भी रत्नावली में अल्परूपेण प्राप्त होता है - मन्त्रयते (पृ. 55), लक्ष्यते (पृ. 67), वास्यते (पृ. 68), आरभ्यते (पृ.68), दृश्यते (पृ. 71), रक्ष्यते (पृ. 71), अर्च्यते (पृ. 72) अर्च्यताम् (लोट्, पृ. 74), लीयन्ते (पृ. 80), भुज्यते (पृ. 99), निहूयते (पृ. 101) निहन्तूयते (पृ. 103), मन्यते (पृ. 108), वर्ण्यते (पृ. 108), आलिख्यते (पृ. 123), श्लाघ्यते (पृ. 127), निवेद्यते (पृ. 141), श्रूयते (पृ. 143) श्रूयताम् (लोट् पृ. 199), संभाव्यते (पृ. 146), क्षम्यताम् (पृ. 150), विपद्ये (लट् उत्तमपुरुष, पृ. 154), क्रियते (पृ. 155), क्रियामहे (पृ. 158), अनुभूयते (पृ. 150), रुद्यते (पृ. 164), नीयते (पृ. 164), ज्ञायते (पृ. 164), आश्वास्यते (पृ. 171), आस्यताम् (लोट् पृ. 173), दर्श्यताम् (णिजन्त कर्मवाच्य में दर्श्यते लोट् लकार का एकवचन पृ. 177), प्रस्तूयताम् (लोट् पृ. 1179), कथ्यताम् (लोट् पृ. 186) विपद्यते (पृ. 189), सह्यताम् (पृ. 192), प्रायः इतने

कर्मवाच्यपरक क्रियापदों का प्रयोग रत्नावली में हुआ है, जो कि कर्तृवाच्य प्रयोगों की अपेक्षा न्यून हैं इनमें भी श्रीहर्ष ने लट्लकार प्रथमपुरुष के एकवचन का ही ज्यादा प्रयोग किया है क्वचित् क्वचित् लोट्लकार के एकवचन का प्रयोग भी है जो प्रयोग की दृष्टि से सरल होता है पर कर्मवाच्य के अन्य लकारों का प्रयोग नहीं ही है। कर्मवाच्य के अन्य लकारों का प्रयोग शीघ्र बोधगम्य नहीं हो पाता अतः नाटक के पात्रों द्वारा प्रयोगसौविध्य एवं अवबोध्य सौविध्य को ध्यान में रखकर ही नाटककार ने सम्भवतः अन्य लकारों का प्रयोग नहीं किया।

श्री हर्ष ने कहीं कहीं नवीन शब्दों को क्रियापद का रूप दिया है यथा - 'कुरकुरायते', अद्यापि कुरकुरायते एव एषा सारिका दास्याः पुत्री¹¹ अर्थात् यह दासी पुत्री सारिका कुरकुरा रही है। बुदबुदा रही है, यह भाव है। यहां कुरकुरायते यह प्रयोग श्रीहर्ष के व्याकरणसम्बन्धित प्रकाण्ड पाण्डित्य को प्रदर्शित करता है। महर्षि पाणिनि के अनुसार अव्यक्तानुरणाद् द्वयजवरार्धदन्तौ डाच्¹² सूत्र से अव्यक्त के अनुकरण शब्द से डाच् प्रत्यय करके वक्ता किसी भी शब्द की संरचना कर सकता है फिर तदन्त डाच्प्रत्ययान्त से 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्'¹³ सूत्र से क्यष् प्रत्यय करके 'सनाद्यन्ता धातवः'¹⁴ सूत्र से तदन्त क्यष्प्रत्ययान्त की धातु संज्ञा करके वह एक तिङन्त पद के रूप में निष्पन्न होकर प्रयोगार्ह हो जाता है। लोहितादि आकृतिगण है जिसके अन्तर्गत किसी भी वाच्य शब्द से क्यष् कर सकते हैं। इस विधि से निष्पन्न 'कुरकुरायते' शब्दप्रयोग श्रीहर्ष के वैयाकरणत्व पक्ष को साक्षात् उजागर करता है। इसी प्रकार 'सैन्दूरीक्रियते' शब्दप्रयोग भी उनके व्याकरणीय प्रवृद्ध सामर्थ्य को प्रकट करता है -

धारयन्त्रविमुक्तसंततपयः पूरप्लुते सर्वतः, सद्यः सान्द्रविमर्दकर्मकृतक्रीडे क्षणं प्रांगणे।

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणैः, सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम्।¹⁵

इस पद्य में आये सैन्दूरीक्रियते पद यहां ध्यातव्य है। इसका अर्थ है- सिन्दूर से रंगा हुआ बनाता है, सिन्दूरवर्णी बना देता है। यहां सिन्दूरेण रक्तं सैन्दूरम् 'तेन रक्तं रागात्'¹⁶ सूत्र से सिन्दूर शब्द से अण्प्रत्यय होकर पहले सैन्दूर शब्द बना। फिर न सैन्दूरं असैन्दूरम् - जो सिन्दूर से रंगा हुआ नहीं है। असैन्दूरं सैन्दूरं क्रियते इति सैन्दूरीक्रियते अर्थात् जो सिन्दूर से रंगा हुआ नहीं था वह सिन्दूर से रंगा दिया गया है। यहां अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय करके इस शब्द की निर्मिति होती है। अतिशयेन प्रथयति इति-प्रथयतितराम्, अतिशयेन तिरयति इति-तिरयतितराम्, अतिशयेन जडयति-जडयतितराम् जैसे प्रयोग भी श्रीहर्ष के वैयाकरणीय पक्ष को दर्शाते हैं। अतिशय अर्थ में तरप् प्रत्यय तथा आम् प्रत्यय लगाकर ये प्रयोग बनते हैं।

इस प्रकार रत्नावली में तिङन्त प्रयोग का इतना सरल, सुन्दर एवं व्याकरणसम्मत प्रयोग जहां नाटक को गति प्रदान करता है वहीं नाटककार श्रीहर्ष के व्याकरणपाण्डित्य को भी भलीप्रकार दिग्दर्शित करता है।

सन्दर्भ -

1. नाट्यशास्त्र 15.3	2. वाक्यपदीय (ब्र. का. 124)	3. नाट्यशास्त्र 15.2
4. नाट्यशास्त्र 15.4	5. अभि. भा. पृ. 220	6. रत्नावली 1.1
7. पाणिनीय धातुपाठ भा. 20.1	8. अष्टाध्यायी 3.3.162	9. अष्टाध्यायी 1.4.58
10. अष्टाध्यायी 3.1.26	11. चुरादिगण	
12. रत्नावली, सम्पादक डॉ शिवबालक द्विवेदी, हंसा प्रकाशन, जयपुर, पृ. 100	13. अष्टाध्यायी 5.4.57	
14. अष्टाध्यायी 3.1.13	15. अष्टाध्यायी 3.1.32	16. रत्नावली 1.12
17. अष्टाध्यायी 4.2.1		

50

हर्ष के रूपकों में कविता एवं शैली

राकेश कुमार मिश्र

हर्षवर्धन(606 ई.से 648 ई.) एक कुशल शासक के साथ-साथ महाराज विक्रमादित्य तथा महाराज हाल (शालिवाहन) की तरह एक संस्कृत साहित्य के लेखक तथा बाणभट्ट, मयूरभट्ट, दिवाकर आदि सुप्रसिद्ध विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। संस्कृतसाहित्य में जो रचनाएं सुप्रसिद्ध रूपकों के रूप में जानी जाती हैं, उनमें महाराज हर्ष द्वारा प्रणीत निम्नोक्त तीन भी हैं—(1) प्रियदर्शिका, (2) रत्नावली तथा (3) नागानन्द। अपनी इन तीनों कृतियों में जहाँ इन्होंने नाट्यकला में कुशलता प्रदर्शित की है, वही महाकवि कालिदास के समान नाट्यगुणों एवं काव्यगुणों का अनुपम समन्वय भी स्थापित किया है। वस्तुतः इन्होंने अपनी रचनाओं में कथानक-संयोजन, चरित्र-चित्रण तथा रसोद्भावन की दृष्टि से उत्कृष्ट नाट्यकला का परिचय दिया है।

हर्ष, बाणभट्ट और मयूर के समकालिक होते हुए भी अपने रूपकों में उनकी तरह समास बहुलता तथा गौणी रीति का प्रयोग नहीं करते हैं। इनकी रचनाओं में प्रसादगुणयुक्त वैदर्भी रीति के सुन्दर उदाहरण दिखते हैं। इनके द्वारा प्रणीत पद्यात्मक काव्य वैदर्भी शैली में होने के नाते सहजग्राह्य है। इनके कवित्व शैली की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

नायिका सौन्दर्य वर्णन की विशेषता – हर्ष संस्कृत रूपकों में रोमाञ्चक प्रणय नाटिका रत्नावली के प्रणेता के रूपमें सुप्रसिद्ध है। उनकी कविता में प्रसाद तथा माधुर्य गुणका सौन्दर्य दर्शनीय है। हर्ष अपने रूपकों में नायिकाओं का अपूर्व सौन्दर्य वर्णन करते हैं। यह वस्तुतः प्रणय सफल चित्रकार है। ये उनका प्रमुख क्षेत्र है। जिसके रससे सम्पूर्ण कृतियाँ आप्लावित हो गई हैं। नायिकायों के सौन्दर्य चित्रण में उनकी पारखी दृष्टि है। जैसे नागानन्द में नायिका के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन करते हुए हर्ष कहते हैं – तुम्हारे कटिभाग को कष्ट देने के लिए स्तनों का भार ही पर्याप्त है। फिर दूसरे हार से क्या लाभ? तुम्हारे नितम्बों के भार से दोनों जङ्घाएंक्लेश पाती हैं, फिर इस मेखला से क्या लाभ? तुम तो अपने अङ्गों से ही विभूषित हो, आभूषणों को कष्ट देने के लिए क्यों धारण करती हो?

खेदाय स्तनभार एव किमुते मध्यस्य हारोऽपर- स्ताम्यत्यूर्युगं नितम्बभरतः काञ्चयाऽनया किं पुनः ।

शक्तिः पादयुगस्य नोर्युगलं वोढुं कुतो नूपुरौ- स्वाङ्गैरेव विभूषितासि वहसि क्लेशाय किं मण्डलम् ।।'

रत्नावली में नायिका के सौन्दर्यवर्णन प्रसङ्गमें जब नायक उदयन चित्रलिखित नायिका सागरिका का दर्शन करता है, तो उनके शरीररूपी पर्वत एवं उबड़-खाबड़ प्रदेशों में चलती हुई उदयन की दृष्टि सागरिका के नेत्रों पर आकर रुक जाती है, क्योंकि वह तृपित है, और उनमें जलाभा दिखाई पड़ती है –

कृच्छादुरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले-मध्येऽस्यास्रिवलीतरङ्गविषमे निःस्पन्दतामागता ।

मददृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ-साकांक्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।¹ (2.11)

प्रकृतिचित्रण में काव्यात्मकता – हर्ष ने नायिकाओं के सौन्दर्यवर्णन के साथ ही यथास्थान प्रकृति का अनुपम सौन्दर्यचित्रण भी पर्याप्त किया है। प्रियदर्शिका में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए हर्ष कहते हैं कि बाबलियों का जल “शफर” मछलियोंके उछलने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे सूर्य की किरणों से खोलाया गया हो, नृत्य करते रहने से शिथिल होता हुआ मयूर छत्र के रूप में पङ्खों के भार फैलाएँ है, जल का इच्छुक हिरण का शिशु छाया में जा रहा है, भौरा अब हाथी के कपोल का त्याग कर कर्णपालि में प्रवेश कर हरा है –

आभालर्काशुतापक्वयदिव शफरोद्वर्तनैर्दीर्घिकाम्भ-‘छत्रभं नृत्तलीला शिथिलमपि शिखी बर्हभरं तनोति ।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुपैत्या लबालाम्बुलुब्धः-सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुरः कर्णपाली गजस्य ।²

रत्नावली में वसन्तोत्सव के समय का रम्य वर्णन करते हुए हर्ष कहते हैं कि वसन्त ऋतु आने पर वृक्ष खुशी से मतवाले हो गये हैं। उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताप्रां त्विषं विभ्रतो ।³ वृक्षों के अत्यधिक उत्साह को देखकर ऐसा लगता है जैसे ये शराब के नशे में धुत हैं – भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसङ्गमधुना मत्ता इवामी द्रुमाः ।⁴ वही वासवदत्ता के प्रशंसा में उसकी तुलना नव पल्लवयुक्त वृक्ष की लता से किया गया है –

बालप्रबालविटपिप्रभवा लतेव ।⁵

रत्नावली के प्रथम अङ्कमें ही एक और प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन मिलता है जहाँ कहा गया है जैसे कोई रमणी अपने पीले मुखमण्डल से हृदयस्थित अपने प्रियतम की सूचना देती है वैसे ही यह प्राची दिशा उदयाचल को कन्दरा में वतज्जमान चन्द्रमा की सूचना अपने पाण्डुवर्ण मध्यभाग के द्वारा दे रही है।

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्निशानाथम् । परिपाण्डुना मुखेन प्रियमेव हृदयस्थितं रमणी ।।⁷

नागानन्द ने भी प्राकृतिक सौन्दर्य का एक बड़ा सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है जहाँ विदूषक नागानन्द से कहता है हे मित्र! देखो यह मलय आपको रोमाञ्चित कर रहा है, गीले घने चिकने चन्दन वृक्षों के वनों की गोद में लौटने के कारण इससे सघन सुगन्ध आ रही है, उचें नीचें तट पर गिरने से छिन्नभिन्न हो जाने वाले झरनों से निकले हुए शीतल कणों की बौछार को यह वहन कर रहा है।

रस :- प्रियदर्शिका तथा रत्नावली इन दोनों नाटिकाओं में अङ्गीरस सम्भोग शृङ्गार है। इसके अतिरिक्त विदूषक की उक्तियों में हास्य, युद्धवर्णन में वीर तथा प्रसङ्गानुसार अन्य रसों को अङ्ग रस के रूप में प्रयुक्त किया गया है। नागानन्द नामक नाटक में अङ्गीरस को लेकर प्राचीन नाट्यशास्त्रियों में मतभेद है। कुछ आचार्य इसमें शान्तरस को अङ्गीरस मानते हैं, परन्तु दशरूपककार धनञ्जय इसमें अपना अलग सिद्धान्त रखते हैं। वह कहते हैं कि नाटकों में अङ्गीरस शान्त नहीं हो सकता। इनके अनुसार नागानन्द में वीर रस को ही अङ्गीरस मानना चाहिए।

अलंकार :- हर्ष अपने समकालिक कवियों की भाँति अलंकारों को भाषा के उपर लादते नहीं थे, अपितु स्वाभाविक भावों के उत्कर्ष में इनका प्रयोग करते थे। इनके पद्यों में उपमा, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति के साथ श्लेष तथा अनुप्रास आदि का भी यथास्थान प्रयोग मिलता है। जैसे श्लेष अनुप्राणित उत्प्रेक्षा अलंकार का यह उदाहरण द्रष्टव्य है, जहाँ उदयन वासवदत्ता को देखर कहता है – वासवदत्ता फूलों की तरह सुकुमारी कृशमध्या और स्थापित कन्दर्प प्रतिमा की पाशञ्चवतिज्जनी होने के कारण एवं फूलमय होने के कारण सुकुमार, बीच में पतली, तथा कन्दर्प के साथ रहने वाली उसकी धनुर्लता सी प्रतीत होती है –

कुसुमसुकुमारमूतिस्तर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् । आभाति मकरकेतोः पाशञ्चस्था चापयष्टिरिव ।।⁸

छन्दः – हर्ष लम्बे छन्दों का प्रयोग अधिक करते हैं, स्रग्धरा एवं शार्दूलविक्रीडित ये दोनों इनके प्रिय छन्द हैं, इसीलिए इनके सभी रूपकों में इन दो छन्दों का दर्शन होता है। हर्ष लम्बे छन्दों का प्रयोग अवश्य करते हैं, परन्तु इनके छन्दों में जो पद निबद्ध होते हैं वे बहुत ही सरल तथा सरस होते हैं। ये सङ्गीत के अच्छे जानकार हैं इसीलिए इन्होंने गेय छन्दों का अत्यधिक प्रयोग किया है, जो सहृदयों को अत्यधिक आनन्द प्रदान करते हैं।

हर्ष के रूपकों का काव्यात्मक दृष्टि से अनुशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इनकी नाट्यकला की अपेक्षा कवित्व कला विशिष्टकोटि की थी। डॉ. कीथ कहते हैं कि हर्ष एक अद्भुत लेखक हैं, इनको जितनी प्रशंसा मिलनी चाहिए थी उतनी शायद नहीं मिली। यह वास्तव में कालिदास के पथ के पथिक थे। कालिदास के काव्यकौशल का प्रभाव इनके रूपकों पर प्रचूर दिखता है। इनके काव्य में कालिदास की तरह सरल भाषा, कोमलकान्तपदावली तथा सरसता का सर्वत्र दर्शन होता है। इनके अमर कृतियों के अवदान के कारण संस्कृत जगत सदा सर्वदा इनका ऋणी रहेगा।

संदर्भ –

1. नागा.3/6
2. रत्ना.2/11
3. प्रिय.1/12
4. रत्ना.1/17
5. रत्ना.1/17
6. रत्ना.1/20
7. रत्ना.1/24
8. रत्ना.1/6

51

हर्षवर्धन की काव्यप्रतिभा

भोलाशंकर व्यास

हर्ष की काव्यप्रतिभा निःसन्देह प्रथम कोटि की है। वह कालिदास के मार्ग का ही पथिक हैं और उसके समकालीन मयूर के पद्य या बाण के गद्य का प्रभाव उसकी शैली पर नहीं। हर्ष की शैली स्फीत, सरल तथा कोमल है। प्रणय और प्रकृति के कोमल चित्रों को सजाने में हर्ष कुशल चित्रकार हैं। वह निश्चित रूप से एक दक्ष कलाकार हैं, जिसकी कोमल अँगुलियाँ प्रणय कथा के ताने-बाने को बुनकर उसमें बेलबूटे काढ़ना खूब जानती हैं। उसके प्रकृतिवर्णन संक्षिप्त होते हुए भी रंग और ध्वनि का वातावरण सजाने में पूरे समर्थ हैं, और उसके अन्तःपुर का चित्र विलास और प्रमोद से रञ्जित है। नाटककारों में हर्ष की शैली प्रसादशैली का अन्तिम रूप कही जा सकती है। यद्यपि विशाखदत्त की शैली भी विशेष जटिल नहीं है, पर उसकी गम्भीर वस्तु-योजना उसकी शैली में स्वतः गम्भीरता का वातावरण ला देती है। भट्टनारायण, भवभूति तथा मुरारि की शैली हर्ष की अपेक्षा अधिक कृत्रिम है। हर्षवर्धन के प्रणयचित्र, प्रकृतिवर्णन तथा दो-एक अन्य चित्रों के कुछ उदाहरण यहाँ उपस्थित किये जाते हैं, जिनसे हर्ष की काव्यप्रतिभा पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है।

हर्ष प्रणय के सफल चित्रकार हैं। प्रियदर्शिका, नागानन्द और रत्नावली में कई सुन्दर स्थल हैं। जो कवि की भावुकता का रोमानी सङ्केत देने में समर्थ है। विवाह के बाद प्रथम समागम के समय लजाती हुई मलयवती को देखकर जीमूतवाहन की यह उक्ति कालिदास के कुमारसम्भव की 'सा तथापि रतये पिनाकिनः' पंक्ति की याद दिला देती है। निम्नलिखित पद्य में नवोढा के अनुभाव तथा सञ्चारी भाव का बड़ा सरस वर्णन है-

दृष्टा दृष्टिमधो वदाति कुरुते नालापमाभाषिता, शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिंगिता वेपते।

निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनाङ्घ्रिर्गन्तुमेवेहते, जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया।।

(नागानन्द 3.4)

जब मैं उसकी ओर देखता हूँ, तो वह (लज्जा से) आँखें झुका लेती है। जब मैं उससे बात करता हूँ तो वह कोई उत्तर नहीं देती (बातचीत नहीं करती)। शय्या पर मुँह फेरकर बैठी रहती है, और आलिङ्गन करने पर कांपने लगती है, (और काँप कर आलिङ्गन में विघ्न डाल देती है)। जब उसकी सखियाँ उसे छोड़कर शयनकक्ष में जाना चाहती हैं, तो वह भी बाहर जाना चाहती है। इस तरह नवोढा मलयवती मेरे प्रत्येक प्रणयव्यापार के प्रतिकूल आचरण करती है, पर इतना होने पर भी मुझे आज वह इसी प्रतिकूलता के कारण अधिक प्रिय लगती है।

इस पद्य में नायक जीमूतवाहन की रसप्रवणता व्यक्त होती है। दूसरे चित्र में रसलुब्ध उदयन की तृप्ति दृष्टि की पर्वतयात्रा का वर्णन है, जो 'पानिप' की खोज में चढ़ाई पार कर रही है-

कृच्छादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले, मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निःस्पन्दतामागता ।
मद्दृष्टिस्तृप्तिवैव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ, साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।।

(रत्नावली 2.11)

उदयन सागरिका को देख रहा है। उसके पैरों से लेकर सिर तक एक साथ उनकी दृष्टि नीचे से ऊपर तक उठ जाती है। सागरिका के सुडौल शरीर को देखकर उदयन की दृष्टि एकदम स्तब्ध हो गई है। उदयन को ऐसा प्रतीत होता है, जैसे जाँघों से लेकर सागरिका के नेत्रों तक पहुँचने के लिए उसकी दृष्टि को कई ऊबड़-खाबड़ पार्वत्यप्रदेशों को पार करना पड़ा है, पर फिर भी गिरती-पड़ती वह किसी कदर ऊपर चढ़ती ही रही है, ताकि उसकी प्यास बुझ सके। सागरिका की मोटी, सुडौल और गोल जाँघों को पार करने में दृष्टि को बड़ा कष्ट हुआ (प्रत्येक व्यक्ति को ढाल पर चढ़ने में कुछ दिक्कत होती ही है)। उसके बाद दृष्टि नितम्बस्थल पर पहुँची, जहाँ ढाल को चढ़ लेने पर कुछ चौरस स्थल आ गया था, इसलिए वहाँ बहुत देर तक घूमती रही (नायक ने बहुत देर तक नितम्ब के सौन्दर्य का अवलोकन किया) उसके बाद वह और आगे बढ़ी, और त्रिवली को लहरों से विषम (उतार-चढ़ाव वाले) मध्यभाग में पहुँची। त्रिवली के तरंगों के उतार-चढ़ाव में फँसकर उसकी दृष्टि निश्चल हो गई, वह उन लहरों में इतनी फँसी कि आगे न बढ़ पाई। किसी तरह लहरों से बचकर पहाड़ पर इसलिए चढ़ी कि वहाँ पानी मिलेगा। उदयन की दृष्टि पानी की खोज में चल ही पड़ी, उन्होंने धीरे-धीरे (बड़े परिश्रम से) उत्तुंग (पर्वत के समान) स्तनों को पार किया, और अब वे अश्रुकणों से युक्त (पानी की बूंदों को बहाने हुए) सागरिका के नेत्रों को साभिलाष होकर वैसे ही देख रही हैं, जैसे वे प्यासी हों, और पानी के उस सोते को देख रही हों, जो पर्वत की कष्टसाध्य यात्रा के बाद दिखाई दिया है। चाटुकार उदयन की उक्ति के द्वारा एक साथ वासवदत्ता के सौन्दर्य तथा सन्ध्याकालीन प्रकृति की झाँकी निम्नलिखित पद्य में मिलेगी-

देवि! त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा, पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।

श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना, लीयन्ते कुसुमान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ।। (रत्ना. 1.25)

हे देवी, देखो तो सही चन्द्रमा की शोभा का तिरस्कार करने वाले तुम्हारे मुखकमल से हारे हुए ये कमल एकदम फीके पड़ रहे हैं (बन्द हो रहे हैं), और ये भ्रमरियाँ तुम्हारी दासियों और वारवनिताओं के गीतों को सुनकर लजाती हुई चुपके से फूलों की ओट में छिप रही हैं। वासवदत्ता का मुख-कमल और कमलों से इसलिए बढ़कर है कि चन्द्रमा का उदय होने पर वे मुरझा जाते हैं, किन्तु वासवदत्ता का मुख-कमल सदा विकसित रहकर अपनी कान्ति से चन्द्रमा को चुनौती देता है, उसका तिरस्कार करता है (वह चन्द्रमा से भी बढ़कर है)। इस विशेषता से पराजित होकर कमलों का मुँह फीका पड़ जाता है। जब भ्रमराङ्गनायें वासवदत्ता की दासियों का सङ्गीत सुनती हैं, तो अपने संगीत का गर्व भूल जाती हैं, वे इतनी झेंप जाती हैं कि कहीं छिपना चाहती हैं। पद्य में 'प्रतीप' अलंकार के अनूठेपन के द्वारा प्रकृतिवर्णन तथा वासवदत्ता में वदन-सौन्दर्य की सुन्दर व्यञ्जना है।

सन्ध्याकाल के बाद पूर्वदिशा से नभोमण्डल में धीरे-धीरे फैलते हुए अन्धकार का स्वाभाविक वर्णन रमणीय है। पुरः पूर्वामेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं क्रमात्क्रमाद्भिद्रुमपुरविभागांस्तिरयति । उपेतः पीनत्वं तदनु च जनस्येक्षणफलं तमः पीनत्वं तदनु च जनस्येक्षणफलं तमः सङ्घातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ।। (रत्ना. 3.7)

महादेव के नीले कण्ठ की कान्ति को हरने वाला (उसके समान नीला) यह अँधेरा पहले-पहल केवल पूर्व दिशा को ही आच्छादित करता है, फिर दूसरी दिशा को भी ढँक लेता है। धीरे-धीरे यह पर्वत, वृक्ष, नगर

सभी को समेट लेता है। इसके बाद यह घना होता है और लोगों को दृष्टि के फल को (दृष्टि-पथ को) हर लेता है। अन्धकार के घने हो जाने पर लोगों की दृष्टि की गति रोक दी जाती है।' हर्ष की कृतियों में चन्द्रमा, वसन्त, उपवन, मदनमहोत्सव (होजी)¹ आदि का सुन्दर वर्णन देखा जा सकता है। प्रियदर्शिका ग्रीष्म की दुपहरी का यह वर्णन मालविकाग्निमित्रके ग्रीष्म वर्णन से प्रभावित होते हुए भी अपनी नवीनता से शून्य नहीं।

आभात्यकांशुतापक्वथदिव शफरोद्वर्त नैर्दीर्घिकाम्भ-शुभ्राभं नृत्तलीलाशियिलमपि शिखी बर्हभारं तनोति ।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।।
(प्रियदर्शिका 1.12)

मछलियों के द्वारा हिलाया हुआ बावलियों का पानी ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सूर्य की किरणों की गर्मी से क्वथित हो रहा हो। दुपहर की गर्मी से परेशान मोर अपने पंखों को छतरी की तरह फैलाये हुए हैं, ताकि वह सूर्य के ताप से बच सके, वैसे उसके पंख नृत्य-लीला से युक्त नहीं हैं तथा मोर की नाचने के समय की मस्ती का सङ्केत नहीं देते, फिर भी गरमी से बचने के लिए वे फैले हुए हैं। हिरन का बच्चा आलवाल के पानी को पीने के लिए वृक्षों की छाया के घेरे में चला गया है, और भौंरा (जो हाथी के कपोल पर मदपान कर रहा था) सूर्यताप से उद्विग्न होकर, हाथी के कपोल को एक दम छोड़कर उसके कान में घुस गया है।

युद्ध का ओजोमय वर्णन करने में भी हर्ष असफल नहीं कहा जा सकता-

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणोत्कृतोत्तमाङ्गे क्षणं, व्यूढासूक्सरितिं स्वनत्प्रहरणे वर्मोदलद्वह्नि ।

आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भङ्गप्रतीपीभवन्नेकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हतः ।। (रत्नावली 4.6)

सेनापति रुमण्वान् ने हाथी पर बैठे हुए कोसलपति को, जो पराजय का निवारण करने की भरसक चेष्टा कर रहा था, ललकारा और उस युद्ध में सैकड़ों बाणों से मार गिराया, जहाँ बाणों के द्वारा योद्धाओं के कनटोप दूर फेंके जा रहे थे, और तलवारों के द्वारा उनका सिर काटा जा रहा था, जहाँ रुधिर की नदी बह रही थी, शस्त्र शब्द कर रहे थे, और शस्त्रों की चोट से योद्धाओं के कवच से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं।

अन्तःपुर की भगदड़ का वर्णन करने में हर्ष अत्यधिक कुशल है। रत्नावली में बन्दर के छूटने की भगदड़ और अन्तःपुर में आग लगने का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है। कालिदास के शाकुन्तल (तथा रघुवंश पञ्चम सर्ग) के हाथी वाले आतङ्क से इसकी तुलना की जा सकती है। यहाँ हम अन्तःपुर में आग लगने के कारण मचे हुए आतङ्क का चित्र उपस्थित करते हैं-

हर्म्याणां हेतशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्घिषामादधानः, सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।

कुर्वन् क्रीडामहीघ्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै, रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवीत्यितोऽन्तः पुरेऽग्निः ।

(रत्नावली 5.14)

अरे, अन्तःपुर में एक दम आग लग गई है, जिससे अन्तःपुर की स्त्रियाँ डर के मारे चिल्ला रही हैं। आग की लपटें फैलकर राजप्रासादों के शिखर को छू रही हैं, और ऐसा मालूम होता है, जैसे वे प्रासादों के सुनहरे शिखर हों। उसने सघन उद्यान के द्रुमों को झुलसाकर अपने तीव्र ताप का परिचय दे दिया है। आग से उठा हुआ धुआँ क्रीडापर्वत का स्पर्श कर ऐसा मालूम हो रहा है जैसे क्रीडापर्वत पानी से भरे बादल की तरह काला हो गया है। रङ्गमञ्च की दृष्टि से हर्ष के रूपक हासोन्मुखी नाटकों की अनभिनेयता से रहित हैं। हर्ष की कृतियाँ बड़ी छोटी है, इसलिए उनके अभिनय में कोई दिक्कत नहीं होती, साथ ही मञ्चीय व्यवस्था में भी कोई जटिल संविधान नहीं दिखाई देता। हर्ष के संवाद छोटे, मार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं, जिससे अभिनय में सहायता मिलती है।

संस्कृत साहित्य को हर्ष ने एक नई परम्परा दी है, वह है नाटिकाओं की परम्परा। राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका और कर्पूरमञ्जरी (सट्टक), विल्हण की कर्णसुन्दरी और हासकाल की दो तीन और नाटिकायें, जिनमें प्रमुख कायस्थ मथुरानाथ की वृषभानुजा नाटिका है, हर्ष के ही पदचिन्हों पर चलती दिखाई पड़ती है। केवल नाटिकाओं की परम्परा के लिए ही नहीं, नाटकीय गुणों की दृष्टि से भी हर्ष की रत्नावली संस्कृत साहित्य की बेजोड़ कृतियों में से एक है।

● संस्कृत कवि दर्शन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1994 से साभार ग्रहण।

संदर्भ -

1. नागरिकों के होली खेलने का सुन्दर वर्णन रत्नावली के प्रथम अङ्क के 10,11 तथा 12 इन तीन पद्यों में मिलता है।
धारायन्त्रविमुक्तसन्ततपयःपूरप्लुते सर्वतः, सद्यः सान्द्रविमर्दकर्मकृतक्रीडेक्षणं प्रांगणे।
उदामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणं, सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरः कुट्टिमम् ॥ (रत्नावली 1.11)

रत्नावली नाटिका का नाट्य शास्त्रीय विवेचन

नन्दिता आर्या

हर्ष प्रणीत दोनों ही कृतियाँ उदयन कथाश्रित हैं, जिनमें से रत्नावली नाटिका को सर्वाधिक प्रचलित नाटिका कहना अतिशयोक्ति न होगा। रत्नावली में नाटककार ने प्रियदर्शिका की विषय वस्तु को ही अधिक परिष्कृत व कलात्मक रूप में पुनर्निबद्ध किया है। वस्तुतः नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में प्राप्त होने वाले अपने उद्घरणों के कारण इस नाटिका ने यह ख्याति अर्जित की है। रत्नावली नाटिका को नाट्यशास्त्रीय मानकानुसार उत्कृष्ट कृति माना गया है। इस उपरूपक के प्रणयन में नाटककार द्वारा सभी नाट्यशास्त्रीय नियमों का अनुपालन किया गया है।

रत्नावली नाटिका में कथावस्तु-विवेचन

नाटक तथा प्रकरण की विशेषताओं से निर्मित नाटिका की कथावस्तु प्रकरण के समान उत्पाद्य तथा 04 अंकों में निबद्ध बताई गई है। उत्पाद्य अथवा कवि कल्पित कथा वस्तु हेतु बृहत्कथा आदि लोक परम्पराश्रित ग्रंथों से प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है, ऐसा करते समय कवि को यह अवश्य ध्यान देना होता है कि उसके द्वारा कथावस्तु में नवीन कल्पनाओं के समावेश का प्रयत्न किया जाए। रत्नावली में उदयन और रत्नावली की प्रेमकथा वर्णित है। इस कथा का मूलगुणाढ्य की बृहत्कथा को माना जाता है। वर्तमान में अनुपलब्धता के कारण बृहत्कथा के संस्कृत रूपान्तरण बृहत्कथा मंजरी, बृहत्कथा संग्रह तथा कथा सरित्सागर रत्नावली नाटिका के उपजीव्य ग्रंथ हैं। इस नाटिका का कथानक इन ग्रंथों में प्रतिष्ठित उदयन कथा है। प्रस्तुत नाटिका में सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली तथा महाराज उदयन की प्रणय कथा का निबंधन चार अंकों के अंतर्गत किया गया है।

नाटिका का प्रारंभ राजा उदयन के मंत्री यौगंधरायण द्वारा रत्नावली के साथ उदयन के विवाह की योजना से होता है, जहाँ यौगंधरायण के कथन से ज्ञात होता है कि सिद्ध पुरुषों की भविष्यवाणी है कि जिसका भी विवाह सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली के साथ होगा, वह व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट बनेगा। स्वामी के हित-चिंतन की भावना से यौगंधरायण रत्नावली के साथ उदयन के विवाह हेतु राजकुमारी रत्नावली को कौशाम्बी बुलाते हैं। समुद्र मार्ग में यान के दुर्घटनाग्रस्त होने पर भी यौगंधरायण को रत्नावली सकुल मिल जाती हैं, जिन्हें वे सागरिका नामक सेविका के रूप में रानी वासवदत्ता के पास सुरक्षित रखते हैं। मदनोत्सव के अवसर पर सागरिका प्रथम बार उदयन को देखती हैं एवं उनके प्रति अनुरागवती हो जाती हैं। इधर उदयन भी

सागरिका को पसंद करने लगते हैं। राजा उदयन तथा सागरिका के मिलन के विभिन्न प्रयास रानी वासवदत्ता की उपस्थिति के कारण विफल हो जाते हैं। नाटिका के अन्त में सागरिका की वास्तविकता का ज्ञान होने पर वासवदत्ता स्वयं उदयन और रत्नावली को परिणय सूत्र में बाँधकर प्रसन्नता का अनुभव करती हैं।

प्रस्तुत नाटिका की आधिकारिक कथावस्तु का संबंध उदयन तथा रत्नावली से है। उदयन द्वारा रत्नावली की प्राप्ति कथावस्तु का प्रधान फल है। अतः उदयन-रत्नावली की प्रणय गाथा यहाँ प्रधान इतिवृत्त है। द्वितीय अंक के आरम्भ में जंजीर तोड़कर भागे वानर के भय से चित्र बनाती सागरिका का चित्रफलक को कदलीगृह में ही छोड़कर चले जाना तथा राजा द्वारा कदलीगृह में उस चित्रफलक का देखा जाना प्रासंगिक कथावस्तु है; क्योंकि आगे चलकर यह घटना मुख्य कथावस्तु की उपकारक सिद्ध होती है।

रत्नावली की कथावस्तु का संबंध वासवदत्ता-उदयन के विवाह के उपरांत वाले कथाप्रसंग से सम्बद्ध है। प्रस्तुत नाटिका में कवि के द्वारा लोक-प्रसिद्ध उदयन कथा में निज कवित्व-शक्ति से विभिन्न परिवर्तन किए गए हैं। यहाँ रत्नावली तथा उदयन के विवाह का कारण सिद्धों द्वारा की गई भविष्यवाणी है। मूलकथा में वासवदत्ता छद्म-वेश में पद्मावती के पास रहती हैं, किन्तु प्रस्तुत नाटिका में रत्नावली छद्म-वेश में वासवदत्ता के संरक्षण में निवास करती हैं। इस प्रकार कथावस्तु के चुनाव तथा उसके गुम्फन में कवि के द्वारा नाट्यशास्त्रीय नियमों का ध्यान रखा गया है।

अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, संधि एवं अर्थोपक्षेपक योजना

प्रस्तुत नाटिका के प्रथम अंक में प्रस्तावना के उपरांत यौगंधरायण का प्रवेश तथा रत्नावली एवं राजा उदयन के विवाह से संबंधित अपनी योजना के उद्घाटन में प्रस्तुत कथावस्तु का बीज है³, जो आगे चलकर विभिन्न प्रयासों द्वारा विकास को प्राप्त होता है। यहीं पर 'प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनोवृद्धिहेतो' कथन द्वारा स्वामी के अभ्युदय हेतु यौगंधरायण द्वारा कार्य के प्रारम्भ को प्रदर्शित किया गया है। प्रथम अंक में यौगंधरायण के प्रवेश से अंक के अंत तक मुख संधि है।

प्रथम अंक में मदनोत्सव के अवसर पर नगरवासियों के क्रीडा-प्रसंग के वर्णन में नाटिका की मूलकथावस्तु का विच्छेद हो जाता है, किन्तु अंक की समाप्ति पर कामदेव के रूप में बैठे हुए राजा उदयन की स्तुति में वैतालिक द्वारा कहे गए पद्य से सागरिका के हृदय में उनके प्रति अनुराग का विकास होता है। यह प्रसंग मुख्य कथावस्तु की पुनःस्थापना के कारण बिन्दु⁴ नामक अर्थप्रकृति है। प्रथम दर्शन के पश्चात् उदयन से भेंट की इच्छुक सागरिका द्वारा द्वितीय अंक के आरम्भ में मनोविनोद के निमित्त उदयन के चित्र को चित्रफलक पर अंकित करने का उद्योग प्रयत्न नामक कार्यावस्था है; क्योंकि सागरिका का यह उद्योग ही कदलीगृह में वत्सराज से उनकी मुलाकात का निमित्त बनता है। द्वितीय अंक में कदलीगृह में सुसंगता एवं विदूषक द्वारा उदयन एवं सागरिका के समागम का ज्ञान तथा अंक के अंत में वासवदत्ता के द्वारा चित्रकल की घटना के माध्यम से सागरिका एवं उदयन के पारस्परिक अनुराग के संज्ञान में बीज के कुछ लक्ष्य तथा कुछ अलक्ष्य रूप में प्रकट होने के कारण प्रतिमुख संधि है।

नाटिका के तृतीय अंक में विदूषक तथा सुसंगता द्वारा राजा उदयन एवं सागरिका के मिलन की योजना बनाई जाती है, जिसके अनुसार सागरिका रानी वासवदत्ता के वेश में उदयन से मिलने जायेगी। वेश परिवर्तन के इस उपाय द्वारा दोनों के मिलन की सम्भावना बनती है किन्तु वासवदत्ता द्वारा इस योजना का ज्ञान तथा सागरिका के स्थानपरस्वयंवासवदत्ता का संकेत-स्थान पर उपस्थित हो जाने में प्राप्त्याशा नामक अवस्था है क्योंकि यहाँ उदयन द्वारा सागरिका की प्राप्ति की आशा में वासवदत्ता विघ्न रूप में उपस्थित हो जाती हैं। प्रायः

नाटिका में पताका नामक अर्थ प्रकृति नहीं होती है। उदयन तथा सागरिका के मिलन की इस युक्ति से खिन्न वासवदत्ता द्वारा तृतीय अंक के अंत में सागरिका को बंदी बना लिया जाता है। वस्तुस्थिति की गंभीरता को देखते हुए उदयन का तर्क है कि देवी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के अतिरिक्त इस परिस्थिति के निवारण तथा सागरिका से मिलन का अन्य कोई उपाय संभव नहीं है। इस प्रकार बीज के दृष्ट तथा नष्ट होने के इस उपक्रम के कारण प्रस्तुत अंक में गर्भसंधि है।

चतुर्थ अंक के आरंभ में विजयवर्मा (उदयन का सेनापति) द्वारा रूमण्वान को सलोच्छेद के वर्णन में प्रकरी नामक अर्थप्रकृति है। यह प्रसंग नाटिका के चतुर्थ अंक में कुछ समय के लिए आता है और पुनः मूलकथा गतिपूर्वक आगे बढ़ने लगती है। क्रुद्ध वासवदत्ता की प्रसन्नता ही सागरिका के प्राणों की रक्षा तथा उदयन से उसके मिलन का उपाय है। निवारण हो जाने से सागरिका की प्राप्ति निश्चित हो गई है यही नियताप्ति है। चतुर्थ अंक में ऐन्द्रजालिक द्वारा अग्नि-उपद्रव के प्रसंग के उपरांत वासवदत्ता की प्रसन्नता से निर्विघ्न रूप से उदयन को रत्नावली की प्राप्ति का निश्चय हो जाने की स्थिति नियताप्ति नामक कार्यावस्था तथा विमर्श संधि का स्थान है। कार्य नामक अन्तिम अर्थ प्रकृति प्रत्येक नाट्य में अनिवार्य रूप से विद्यमान होती है। चतुर्थ अंक में ही सागरिका और उदयन के विवाहोपरांत 'रत्नावली-समागम' तथा 'चक्रवर्तित्य की प्राप्ति' रूपी फल प्राप्ति की दृष्टि से कार्य नामक अर्थ प्रकृति है। समस्त फल की प्राप्ति फलागम है, प्रस्तुत नाटिका में उदयन को नायिका रत्नावली की प्राप्ति एवं चक्रवर्ती पद की प्राप्ति फलागम नामक कार्यावस्था है। बीज से संबंधित सभी कथांशों के एक प्रयोजन हेतु एकीकरण में निर्वहण संधि होती है। प्रस्तुत नाटिका के चतुर्थ अंक में रत्नावली-समागम रूप उदयन के प्रयोजन की सफलता हेतु सागरिका, वसुभूति तथा वाभ्रव्य आदि पात्रों के इस अंक में एकत्रित होने तथा वसुभूति द्वारा सागरिका के राजकुमारी रत्नावली रूप के रहस्योद्घाटन में निर्वहण संधि है; क्योंकि उक्त घटनाओं के फलस्वरूप ही राजा उदयन एवं रत्नावली का मिलन सुनिश्चित होता है।

कथावस्तु के इस सम्यक् प्रवाह हेतु अर्थोपक्षेपकों का भी अपना विशेष महत्त्व है। नाटिका के इतिवृत्त को निर्बाध गति से आगे बढ़ाने तथा रस के सम्यक् संचरण हेतु नाटककार द्वारा प्रस्तुत नाटिका में आवश्यकतानुसार विष्कम्भक, प्रवेशक तथा चूलिका नामक अर्थोपक्षेपकों का स्वाभाविक एवं सारगर्भित प्रयोग किया है। प्रथम अंक में प्रस्तावना के उपरांत यौगंधरायण के प्रवेश तथा रत्नावली विषयक उसके कथन में शुद्ध विष्कम्भक का प्रयोग है। प्रवेशक का प्रयोग नाटिका के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में किया गया है। द्वितीय अंक के आरम्भ में सुसंगता तथा निपुणिका के वार्तालाप द्वारा सागरिका के उदयन में अनुराग तथा चित्र निर्माण की सामग्री के साथ में उसके कदलीगृह में प्रवेश की सूचना प्राप्त होती है। तृतीय अंक में प्रवेशक द्वारा ज्ञात होता है कि विदूषक तथा सुसंगता द्वारा राजा तथा सागरिका के मिलन का उपाय सोचा गया है, जिसकी जानकारी रानी की सेविका कांचनमाला को हो जाती है तथा कांचनमाला वासवदत्ता के समक्ष यह रहस्योद्घाटन कर देती है। चतुर्थ अंक में सागरिका द्वारा विदूषक को दी जाने वाली रत्नावली के प्रसंग में प्रवेशक का प्रयोग है। द्वितीय अंक में वानर के प्रवेश की सूचना चूलिका का प्रयोग है।

रत्नावली नाटिका में पात्र-विवेचन

1. नायक-

नाटक के ही समान नाटिका का नायक भी राजा होता है।¹ किन्तु प्रकृति की दृष्टि से वह नाटक के धीरोदात्त प्रकृति के नायक से भिन्न धीरललित प्रकृति का माना गया है।² वस्तुतः नाट्यशास्त्र में राजा को ही धीरललित प्रकृति का माना गया है।³ चिन्तामुक्त, विविध कलाओं से प्रेम करने वाला, भोगों में आसक्त रहने

वाला, शृंगारप्रिय, सुख भोगनेवाला, मृदुस्वभाव वाला तथा शिष्ट व्यवहार करने वाला नायक धीरललित कहा गया है।⁸ धीरनायक की कला में आसक्ति होती है। वह गीत, चित्र, वाद्य आदि कलाओं में अभिरुचि रखता है। वह राज्य का भार मंत्री आदि पर सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है। इस प्रकार के नायक को ललित इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उसकी चेष्टाएँ शृंगार के अनुरूप स्वाभाविक एवं मृदु होती हैं अर्थात् शृंगार रस में आसक्त होने के कारण इसे ललित कहा जाता है।

रत्नावली नाटिका का नायक राजा उदयन है। उसके चरित्र में धीरललित नायक की समस्त विशेषतायें दृष्टिगत होती हैं। नाटिका में उदयन अपना समस्त राज्यभार योग्य मंत्री योगन्धरायण को सौंपकर स्वयं भोग-विलास में रत दृष्टि गोचर होता है। गीतवाद्यादि कलाओं में भी उसकी अभिरुचि है। शृंगारी प्रकृति का होने के कारण उसका स्वभाव अत्यन्त कोमल तथा मृदु है। निम्नांकित श्लोक में उदयन के काम व्यसनी प्रकृति का परिचय मिलता है-

राज्यं निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भरः
सम्यक्पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतं
कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ।। 01.09

उपरोक्त पद्य द्वारा उदयन में निश्चिन्तता, शृंगार प्रियता इत्यादि धीरललित नायक के गुणों को स्पष्टतः अनुभव किया जा सकता है। सागरिका के प्रति उदयन का आकर्षण तथा वासवदत्ता से भयभीत होने पर भी रत्नावली से मिलने के प्रयासों में उदयन के कैशिकी वृत्तिपूर्ण चरित्र का परिपाक दृष्टिगत होता है। वस्तुतः संस्कृत दृश्य काव्य परंपरा में उदयन का चरित्र 'धीरललित' नायक का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

2. नायिका -

नाटिका में दो नायिका होती हैं-ज्येष्ठा नायिका तथा मुग्धा (कन्या) नायिका। ज्येष्ठा नायिका राजवंशोत्पन्ना तथा मानिनी कही गयी है। मुग्धा नायिका, ज्येष्ठा नायिका के अधीन अंतःपुर वासिनी होती है। नाटिका के अंतर्गत मुग्धा नायिका भी ज्येष्ठा नायिका के ही समान राजकन्या होती है, किन्तु दैववश वह नायक के अंतःपुर में संरक्षण प्राप्त करती है। अंतःपुर में उसे देखकर राजा उसके प्रति अनुराग का अनुभव करता है तथा मुग्धा नायिका भी नायक में अनुरक्त होती है। मुग्धा नायिका की प्राप्ति हेतु नायक को ज्येष्ठा देवी के क्रोध एवं प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। किन्तु राजा द्वारा इसके उपशमन की योजना बना ली जाती है।

रत्नावली नाटिका में रत्नावली मुग्धा नवानुरागा कन्या नायिका है। वह सिंहलेश्वर विक्रमबाहु की पुत्री है किन्तु परिस्थितिवश रानी वासवदत्ता की सेविका के रूप में राजा उदयन के अंतःपुर में निवास कर रही है। रत्नावली राजा उदयन में अनुरक्त एक अनिन्य सुन्दरी है। कदलीगृह में चित्रफलक पर अंकित रत्नावली के चित्र को देखकर उदयन के मुख से अनायास ही निकल पड़ता है-

दृशः पृथुतरी—कृताजितनिजाब्जपत्रत्विष-
श्चतुर्भिरपिसाधु साध्वित मुखैः समं व्याहृतम् ।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवस्त्वि वेधसा
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ।। 02.16

जहाँ एक ओर रत्नावली अप्रतिमसुन्दरी है, वहीं दूसरी ओर वह भाव-प्रवणकला-प्रवीण प्रेमिका भी है। उदयन विषयक अपनी उत्कण्ठा मिटाने के लिये वह एकान्त स्थान में बैठकर उदयन का चित्र बनाती है। प्रथम

दर्शन से ही रत्नावली के अंतःकरण में उदयन के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है किन्तु वह इस वास्तविकता से ही अवगत है कि यह प्रेम सरल नहीं है। उदयन के दर्शन को व्याकुल अपने भावुक हृदय को सांत्वना देने हेतु रत्नावली द्वारा उदयन के चित्र बनाने का प्रसंग उसके अंतःकरण की निश्चलता तथा भावों के अतिरेक का प्रमाण है। वत्सराज से मिलने के लिये जब वह लतामण्डप में जाती है तथा उदयन को वहाँ न पाकर यह समझ जाती है कि रानी को सम्पूर्ण प्रेम प्रसंग ज्ञात हो गया है, तब स्वाभिमानिनी रत्नावली को रानी वासवदत्ता से अपमानित होने की अपेक्षा प्राण-त्यागना अधिक उपयुक्त विकल्प प्रतीत होती है। रत्नावली में एक मुग्धा नायिका के समस्त गुण विद्यमान हैं। नाटिकान्तर्गत वह अपने लावण्य, मधुरता, लज्जाशीलता एवं शालीनता से नायक के हृदय को प्रदीप्त करती दृष्टिगोचर होती है।

वासवदत्ता महाराज उदयन की प्रधान महिषी है तथा नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है। नाटिका के लक्षणानुरूप ही वह एक राजवंशोत्पत्ता तथा मानिनी स्त्री है। राजा प्रद्योत की पुत्री रानी वासवदत्ता स्वभावतः अत्यन्त कोमल तथा प्रीति प्रवण है। वह उदयन से अत्यंत प्रेम करती है। सागरिका तथा उदयन की प्रच्छन्न रूप में मिलने की योजना का ज्ञान होने पर वह कष्ट का अनुभव करती है तथा उदयन अत्यंत क्रोधित होती है किन्तु उदयन द्वारा क्षमा याचना करने पर वह उसे माफ भी कर देती है। ऐसा होने पर भी उसे अपने अस्तित्व का भी भान है, इसी कारण राजा को पुनः रत्नावली के पास देखकर वह राजा को दण्डित करते हुए रत्नावली को बंदी बना लेती है। वासवदत्ता बुद्धिमती एवं नीतिप्रवण महिला भी है। राजा उदयन की रसिक प्रवृत्ति से परिचित होने के कारण ही उसकी यह कोशिश है कि सागरिका राजा की दृष्टि में न आए।

पात्रों के रूप में नाटिका में नायक, नायिका, दूती और परिजन (सेवक) आदि से युक्त होती है। रत्नावली नाटिका में उदयन, रत्नावली, वासवदत्ता के अतिरिक्त विदूषक वसंतक, रानी की परिचारिकाएँ सुसंगता एवं कांचनमाला, राजा का मंत्री यौगंधरायण, वसुभूति, कंचुकिबाभ्रव्य, ऐन्द्रजालिक आदि पात्र हैं। जिनके विभिन्न प्रयासों से अंततः नाट्य अपनी फल-सिद्धि तक पहुंचता है।

रस-विवेचन

नाटिका शृंगाररस प्रधान रूपक है। धीरोदात्त नायक का चयन शृंगार की चर्चणा हेतु उचित ही है। रत्नावली नाटिका का अंगीरस भी शृंगार ही है। यहाँ शृंगाररस की दोनों ही अवस्थाओं-सम्भोग तथा विप्रलम्भ, का परिपाक है। प्रस्तुत रूपक में सम्भोग शृंगार की सृष्टि द्वितीय अङ्क में उदयन और सागरिका (रत्नावली) के प्रेम प्रसङ्ग में होती है। उदयन चित्रस्थ सागरिका के प्रत्येक अवयव को देखकर अत्यधिक मुग्ध हो जाता है तथा जब वह प्रत्यक्ष रूप में उसे देखता है तो उसके रूप-सौन्दर्य पर आश्चर्य करते हुए सागरिका को ब्रह्मा की अपूर्व रचना बताता है।¹ तृतीय अङ्क में उससे समागम प्राप्त करने के लिए उत्सुकतापूर्वक कहता है-

शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौपद्मानुकारौकरौ रम्भागर्भनिभं तथोरुयुगलं बाहू मृणालोपमौ ।

इत्याह्लादकराखिलाङ्गि रभसान्निःशङ्कमालिङ्ग्यमा-मङ्गानि त्वमनङ्गतापविधुराण्येह्येहि निर्वापय ।। 03.11

चतुर्थ अङ्क में भी अचानक अन्तःपुर में आग लग जाने से, आग से उसकी रक्षा करते हुए वह उसे गले से लगाकर, आँखें मूंदकर, स्पर्श सुख का अनुभव करता हुआ कहता है-

अहो क्षणान्मेऽपगतोऽयं संतापः । प्रिये समाश्वसिहि समाश्वसिहि । व्यक्तंलग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः । यतः संतापमेवायं स्पर्शस्ते हरतिप्रिये ।। 04018

विप्रलम्भ शृंगार के भी अनेक उद्धरण प्रस्तुत नाटिका में दिखाई देते हैं। प्रथम अंक में मदन महोत्सव के अवसर पर सागरिका प्रत्यक्ष रूप से उदयन को देखकर अपने को कृतार्थ समझने लगती है। किन्तु क्षणभर के उदयन के दर्शन से तृप्ति न पाकर वह निःश्वासपूर्वक कह उठती है- हाधिक् हाधिक्। मन्दभागिन्यामयाप्रेक्षितुमपिचिरं न पारितोऽयं जनः। इस प्रथम दर्शन के उपरान्त सागरिका के मन में उदयन से मिलने की अभिलाषा बलवती होने लगती है, किन्तु वह जानती है कि यह कार्य इतना सरल नहीं है। द्वितीय अंक में परस्पर प्रत्यक्ष भेंट से पूर्व उदयन तथा सागरिका दोनों ही विरह वेदना का अनुभव करते हैं। तृतीय अंक में भी यह विरह वेदना पूर्ववत् विद्यमान है, जहाँ सागरिका से उदयन के मिलन का वृत्तान्त जानकर वासवदत्ता स्वयं उदयन के पास आ जाती हैं तथा उदयन एवं सागरिका पुनः मिलते-मिलते रह जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत नाटिका में शृंगाररस की दोनों ही अवस्थाओं का अवसरानुरूप सम्यक् संयोजन देखा जा सकता है।

शृंगाररस प्रधान रूपकों में हास्यादि रसगौण रूप में नाट्य प्रयोग की सफलता में अंग की भूमिका का निर्वहन करते हैं। प्रस्तुत रूपक के प्रथम एवं द्वितीय अंक में विदूषक वसंतक के कथन तथा कृत्यों में हास्य रस, तृतीय अंक में आत्महनन को उद्यत रत्नावली तथा उसे रोकने का प्रयत्न करते उदयन के कथन में करुणरस, चतुर्थ अंक में विजय वर्मा द्वारा वर्णित युद्ध प्रसंग में वीररस तथा चतुर्थ अंक के ही ऐन्द्रजालिक के प्रसंग में अद्भुत रस की योजना की गई है। इन सभी रसों के समन्वय ने प्रस्तुत नाटिका की कथावस्तु को हृदयावर्जक रूप प्रदान करने में अपनी भूमिका का निर्वहन किया है।

कथावस्तु, नायक तथा रस के साथ ही लक्षण ग्रंथों में नाटिका में प्रयुक्त वृत्ति हेतु भी प्रावधान प्राप्त होता है, जिसके अनुसार नाटिका कैशिकी वृत्ति प्रधान रूपक है। कैशिकी वृत्ति की प्रधानता के कारण यहाँ स्त्री-पात्रों का प्रयोग भी प्रचुरता से होता है। रत्नावली नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता है। कैशिकी वृत्ति के नर्म, नर्मस्फोट, नमगर्भ आदि सभी अंगों का प्रयोग इस नाटिका में देखा जा सकता है। वस्तुतः शृंगार रस प्रधान की प्रधानता के कारण इस उपरूपक में कैशिकी वृत्ति का प्रयोग तर्कसंगत भी है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों के आलोक में नाटककार हर्षप्रणीत रत्नावली नाटिका एक उत्कृष्ट कृति ज्ञात होती है। इस नाटिका की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा इस तथ्य की ओर भी इंगित करती है कि उस काल में लक्षण ग्रंथ अत्यंत प्रचलित थे एवं नाटककारों के अभ्यास का विषय थे।

संदर्भ -

1. अन्तर्भावगताहोषाभावयोरुभयोर्यतः। अत एव दशैतानि रूपाणीत्युदितानिवै। नाट्यशास्त्र, 18.61
2. नाटकंप्रकरणं च नाटिकाप्रकरण्यथ। व्यायोगः समवकारोभाणः प्रहसनंडिमः।।
अंकईहामृगोवीथीचत्वारः सर्ववृत्तयः। नाट्यदर्पण, 01.03-04
3. रत्नावली, 01.06
4. वही, 01.23
5. प्रकरणनाटकभेदादुत्पाद्यं वस्तुनायकं नृपतिम्। नाट्यशास्त्र, 18.58
6. प्रख्यातो धीरललितः शृंगारोऽङ्गी सलक्षणः। दशरूपक, 03.44
7. देवा धीरोद्धत्ताज्ञेयाः स्युर्धीरललितानृपाः। नाट्यशास्त्र, 24.18
8. निश्चिन्तोधीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः। दशरूपक, 03.44
9. रत्नावली, 02.16

लेखक परिचय

- प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी - अध्यक्ष, संस्कृत एवं हिन्दी विभाग,
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.
- डॉ. ऋचा मुक्ता - एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
ए.पी.सेन. मेमो. गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, चारबाग, लखनऊ, उ.प्र.
- सन्त कुमारी - शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ-उत्तरप्रदेश
- अंकित दुबे - शोधार्थी- हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ.प्र.
- डॉ. धनञ्जय मणि त्रिपाठी - संस्कृत विभाग, जामिया मल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- डॉ. दशरथ कुमार चौधरी - अस्सिस्टेंट प्रोफेसर - संस्कृत विभाग, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलॉम,
शासकीय महाविद्यालय सिलवास, डी.एन.एच.
- डॉ. श्रुति राय - सहायक आचार्य- संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. सुजाता शाण्डिल्य - सहायक प्राध्यापक- संस्कृत विभाग
श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
- डॉ. उमेशचन्द्र तिवारी - सहायकाचार्य - संस्कृत विभाग, लाल बहादुर शास्त्री स्मारक पी.जी.कॉलेज,
आनन्दनगर, महाराजगंज, उत्तरप्रदेश
- नीतीश उपाध्याय - शोध छात्र-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. अवधेश प्रताप सिंह - सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. पंकज कुमार मिश्र - विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर- संस्कृत विभाग
सेंट सटीफेंस कॉलेज, दिल्ली
- डॉ. धनंजय कुमार - पोस्ट डाक्टरेल, आई.सी.पी.आर, दिल्ली
- मयूरी झा - शोध छात्रा- संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर - सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग,
राजकीय विठ्ठलनाथ सदाशिव पाठक आचार्य, संस्कृत महाविद्यालय, कोटा
- डॉ. ममता त्रिपाठी - सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग,
गार्गी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. सञ्जय कुमार - सह आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- देवीप्रसाद मिश्र - शोधच्छात्र- संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- डॉ. सकीना कुमार सालवी - ई-602 न्यू टीचर्स फ्लैट जोधपुर कॉलोनी बी.एच.यू. वाराणसी उ.प्र.
- डॉ. शिवशंकर यादव - सहायक आचार्य-शिक्षा शास्त्र विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

- डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सराफ - सहायक आचार्य-शिक्षा शास्त्र विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
- डॉ. राम करण लुहार - अतिथि प्राध्यापक - संस्कृत विभाग, इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रो. दया शंकर तिवारी - आचार्य - संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- भरत यादव - शोध छात्र-प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, म.प्र.
- गुलशन कुमार - शोध छात्र-संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
- डॉ. शशिकुमार सिंह - सहायक प्राध्यापक-संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
- भूपेन्द्र लोधी - शोध छात्र-संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
- डॉ. रामहेत गौतम - सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)
- डॉ. सुषमा देवी - सहायक आचार्या, नॉन कॉलेजिएट वुमन एजुकेशन बोर्ड,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- हलीमा खान - शोध छात्रा - संस्कृत विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई
दिल्ली-110025
- डॉ. पूनम यादव - प्रोजेक्ट एसोसिएट- कलाकोश विभाग इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र,
नई दिल्ली
- डॉ. विजयशंकर द्विवेदी - एसोसिएट प्रोफेसर-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- निकिता शर्मा - शोध छात्रा-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. पुष्कर आनंद - सहायक आचार्य- साहित्य श्री रामसुन्दर संस्कृत विश्वविद्यालय प्रतिष्ठान,
आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, दरभंगा (बिहार)
- डॉ. रूपा कुमारी - संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110007
- प्रो. विमलेश कुमार सिंह यादव - अध्यक्ष - संस्कृत विभाग, भवन्स मेहता डिग्री कॉलेज, भरवारी कौशाम्बी, उ.प्र.
- डॉ. त्रिलोक चंद अवस्थी - संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
- हर्षित मिश्र - अनुसन्धाता, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नव देहली
- डॉ. प्रतिभा आर्या - सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)

- डॉ. संजीव कुमार सिंह - असिस्टेंट प्रोफेसर- संस्कृत विभाग, दयाल सिंह सांध्य महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रिया मजूमदार - शोध छात्रा- संस्कृत संकाय, मानवीकी विद्यापीठ, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- डॉ. देवराज - सहायक आचार्य- संस्कृत विभाग, दूरवर्ती एवं ऑनलाइन शिक्षा केन्द्र हिमाचल प्रदेश, विश्वविद्यालय शिमला-5
- स्वागतिका दाश - शोध छात्रा- संहिता एवं संस्कृत विभाग आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश
- ओम जी - शोध छात्र- संहिता एवं संस्कृत विभाग, आयुर्वेद संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश
- डॉ. कृपा भास्कर सचदेव - सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- श्री विष्णु कुमार मिश्र - शोध छात्र- संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. सुचित्रा भारती - असिस्टेंट प्रोफेसर-संस्कृत विभाग गार्गी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रो. रंजन कुमार त्रिपाठी - प्रोफेसर- संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. कामेश्वर शुक्ल - आचार्य - संस्कृत विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
- डॉ. स्मिता कुमारी - अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार
- डॉ. मिथिलेश कुमार पाण्डेय - संस्कृत विभाग, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. ललित कुमार - सहायक आचार्य, संस्कृत पालि प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- डॉ. करुणा आर्या - एसोसिएट आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. नौनिहाल गौतम - सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 470003
- सौरभ मिश्र - शोध छात्र-संस्कृत विभाग डॉ. हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)
- डॉ. किरण आर्या - संस्कृत विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
- डॉ. राकेश कुमार मिश्र - सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, जी.डब्ल्यू.सी. पुरी, उड़ीसा
- प्रो. भोलाशंकर व्यास - पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उ.प्र.
- नन्दिता आर्या - संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान



श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु, नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु ।
गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनककोटिशतेन बाणः । ।
सोड्डलकृत 'उदयसुंदरीकथा'



प्रकाशक
नाट्य परिषद्, संस्कृत विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर (म. प्र.) पिनकोड - 470003